Saurashtra University
Re – Accredited Grade 'B' by NAAC
(CGPA 2.93)

Parmar, Dipti B., 2004, "मोहन राकेश की कहानियों में युग-चेतना", thesis PhD, Saurashtra University

http://etheses.saurashtrauniversity.edu/id/eprint/701

Copyright and moral rights for this thesis are retained by the author

A copy can be downloaded for personal non-commercial research or study, without prior permission or charge.

This thesis cannot be reproduced or quoted extensively from without first obtaining permission in writing from the Author.

The content must not be changed in any way or sold commercially in any format or medium without the formal permission of the Author

When referring to this work, full bibliographic details including the author, title, awarding institution and date of the thesis must be given.

Saurashtra University Theses Service
http://etheses.saurashtrauniversity.edu
repository@sauuni.ernet.in

© The Author

नयी कहानी के पश्चिप्रेक्ष्य में

मोहन राकेश की कहानियों में युग–चेतना

सौराष्ट्र विश्वविद्यालय की पीएच.डी. (हिन्दी)
की उपाधि के लिए प्रस्तुत
शोध–प्रबन्ध

✦
✦✦
✦

❖ प्रस्तोता ❖

दीप्ति बीश्चपश्चमाश्च
व्याख्याता
हिन्दी विभाग
श्रीमती आर. आर. पटेल महिला कॉलेज
राजकोट

✦
✦✦
✦

❖ निर्देशिका ❖

डॉश्चसुधाबहन पौश्चणा
मातुश्री वीरबाइमाँ महिला आर्ट्स कॉलेज
राजकोट

२००४

श्चमाणपत्र

श्चमाणित किया जाता है कि *दीप्ति बीश्च पश्चमाश्च* ने सौश्चष्ट्र विश्वविद्यालय की पीएचश्चडीश्च(हिन्दी) की उपाधि के लिए मेश्च निर्देशन एवं निश्चीक्षण में **''नयी कहानी के पश्चिश्चेक्ष्य में मोहन श्चकेश की कहानियों में युग-चेतना''** शीर्षक से शोध-श्चबंध तैयाश्च किया है । इस शोध-श्चबंध में इन्होंने उक्त विषय का यथा-शक्ति अध्ययन, अनुशीलन एवं शोध-पश्चक विश्लेषण - विवेचन कश्चके वैज्ञानिक ढंग से मौलिक निरूपण किया है ।

साथ ही यह शोध-श्चबंध अथवा इसका कोई अंश अब तक न तो श्चकाशित हुआ है औश्च न ही इसका कहीं कोई उपयोग हुआ है ।

दिनांकः

स्थलः श्चजकोट   निर्देशिका

डॉश्चसुधाबहन पौश्चणा
हिन्दी विभाग,
मातुश्री वीश्चबाई माँ महिला आर्टस कॉलेज,
श्चजकोट

प्राक्कथन

❀ विषय प्रवेश :

जीवन की गंभीर समस्याओं पर कटु एवं भयावह सत्यों से जूझने के कारण आज कहानी अत्यंत महत्त्वपूर्ण साहित्यिक विद्या बन गयी है । आज की कहानी सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, वैयक्तिक समस्याओं और चिंतन का चित्रण मात्र नहीं करती, बल्कि उसे नयी दिशा और आयाम भी प्रदान करती है । नये कहानीकारों ने कहानी के परंपरित 'फार्म' को तोड़ा है, कहानी के विकास की यह एक विशेष कड़ी है । कहानी आज गद्य की अन्य विद्याओं को भी अपने में समाहित करती जा रही है ।

नयी कहानी को पोषित और पल्लवित करने की दिशा में जो महत्त्वपूर्ण नाम सामने आते है उनमें मोहन राकेश का नाम शीर्षस्थ हैं । मोहन राकेश की कहानियाँ अपने समय, समाज और उससे जुड़े अवबोध की कहानियाँ हैं । यह कहानियाँ अपने समय के दस्तावेज है, साथ ही समय की सारथी भी । तत्कालीन युग-चेतना को पूर्ण यथार्थ के साथ आत्मसात् कर कहानियों में उसे जीवन की व्यापकता के साथ प्रस्तुत किया गया है । राकेशजी की कहानियाँ हिन्दी साहित्य को एक नयी दिशा देती हैं । राकेशजी की कहानियाँ चिरस्थायी कहानियाँ हैं और हिन्दी कहानी की विकास-यात्रा का प्रमुख पड़ाव भी हैं ।

❀ शोध-विषय की प्रेरक भावभूमि :

किसी भी शोधकार्य की प्रेरक भावभूमि के रूप में शोधार्थी की जिज्ञासावृत्ति उत्तरदायी होती है । विचार मनुष्य की वह उर्वरभूमि है जो किन्हीं विशेष परिस्थिति में एक निश्चित दिशा तय करने लगती है और शोधकार्य का स्वरूप भी वहीं से आकार ग्रहण करने लगता है । समूची साहित्यिक विद्याओं में कथा-साहित्य मुझे बहुत अधिक प्रभावित करता रहा है । बचपन से सुनी दादी-नानी की काल्पनिक कहानियों से लेकर साहित्यिक कहानियों ने शायद मेरे

मन में इस विद्या के प्रति आस्था का भाव पैदा किया होगा, यह मैं मानती हूँ । अपनी कॉलेज की शिक्षा के दौरान मैंने हिन्दी साहित्य विषय को इसलिए प्रमुखता दी कि उसके माध्यम से मेरी यह अभिरुचि और भी जीवंत होगी । पहले अध्ययन और बाद में अध्यापन के दौरान कहानी पढ़ने का सिलसिला चलता रहा । इसी दौरान मोहन राकेश की 'मेरी प्रिय कहानियाँ' कहानी संग्रह हाथ में आया । मैंने कहानी–संग्रह में संकलित राकेशजी की चुनी हुई कहानियाँ पढ़ी । किन्तु कहानी संग्रह के प्रारंभ में दी गयी भूमिका मुझे कहानियों से भी ज्यादा आकर्षक लगी । प्रस्तुत भूमिका में राकेशजी ने कहानी लिखते समय की अपनी मानसिकता को अपने जीवन सम्बन्धी तथ्यों के साथ पूरी ईमानदारी से स्पष्ट किया हैं । राकेशजी की यह निच्छल स्वीकृति मुझे अन्य साहित्यकारों से अलग लगी । इसी बात ने मुझे राकेशजी के साहित्य और व्यक्तित्व के विषय में अधिक जानकारी प्राप्त करने के लिए आकृष्ट किया ।

अपनी जिज्ञासापूर्ति के प्रारंभिक प्रयास में कमलेश्वरजी द्वारा संकलित 'मेरा हमदम मेरा दोस्त' पुस्तक में कमलेश्वरजी द्वारा राकेशजी के जीवन से सम्बन्धित बेहद निजी शब्द–चित्र को पढ़ा । इसमें राकेशजी के जीवन और कर्म का मार्मिक तथा यथार्थ चित्रण संस्मरण द्वारा रेखांकित किया गया है । इसी संदर्भ में आगे गिरीश रस्तोगी की राकेशजी के नाटकों के संदर्भ में लिखित 'मोहन राकेश और उनके नाटक' पुस्तक पढ़ी । इसमें 'मोहन राकेशः व्यक्तित्व की जटिलता और रचना का द्वन्द्व' अध्याय में राकेशजी के जीवन और साहित्य के सम्बन्ध में कुछ रोचक जानकारी प्राप्त हुई । इन दो पुस्तकों से राकेशजी के जीवन और साहित्य के विषय में जो भी जानकारी प्राप्त हुई उसने मुझे राकेशजी के जीवन और साहित्य के विषय में और अधिक जानने के लिए आकृष्ट किया । फिर इसी सिलसिले में आगे राकेशजी की कहानियाँ, उपन्यास, नाटक, एकांकी, यात्रावृत्तांत, डायरी आदि के साथ–साथ राकेशजी के साहित्य पर उपलब्ध आलोचनात्मक पुस्तके भी पढ़ी गयी । परिणामतः राकेशजी के व्यक्तित्व और कृतित्व के सम्बन्ध में जो सत्य और रोचक बाते सामने

आयी वह किसी आश्चर्य से कम नहीं थी । क्योंकि राकेशजी के कुछ आलोचकों और मित्रों ने उन्हें मसीहा, आकर्षक व्यक्तित्व का धनी और उच्चकोटि का साहित्यकार साबित किया है तो कुछ विद्वानों ने उन्हें घटिया, बदनाम इन्सान और उनके साहित्य को भी सामान्यकक्षा का माना हैं । राकेशजी के साहित्य और उनके अंतर्विरोधी व्यक्तित्व के सम्बन्ध में यह जानने के बाद राकेशजी के साहित्य पर कुछ विशेष शोध–कार्य करने की मेरी जिज्ञासा बलवती हुई ।

मोहन राकेश नयी कहानी के सशक्त कहानीकारों में अपना शीर्ष स्थान रखते हैं । प्रारंभ से ही कहानी के विषय में रुचि होने के कारण मैंने राकेशजी के कहानी–साहित्य पर शोध–कार्य करने का निश्चय किया । शोधकार्य का विचार परिपूर्ण करने के लिए मैं प्रथम मार्गदर्शक की खोज में लग गयी । इसी सिलसिले में मैं डॉ. सुधाबहन पौराणा से मिली । डॉ. सुधाबहन से प्रारंभिक विचार विमर्श के बाद मेरी जिज्ञासा और भी बलवत्तर हो गयी क्योंकि उन्होंने मुझ पर अपनी आस्था व्यक्त की । डॉ. सुधाबहन हिन्दी साहित्य की मर्मज्ञ, प्रखर चिन्तक और विचारक हैं । साथ ही स्वजन के रूप में भी वे निखालस प्रवृत्ति की सौहार्दपूर्ण एवं उदारमना हंमेशा बनी रही ।

डॉ. सुधाबहन ने मुझे हर कदम पर इस विषय ‘मोहन राकेश की कहानियों में युग–चेतना’ से जुड़े शोध–कार्य को लेकर आगे बढ़ने का हौसला दिया और निरंतर सकारात्मक रुख अपनाते हुए मुझे प्रेरित किया । इन्हीं मे मुझे इस शोध–कार्य यथा समय पूर्ण करने की शक्ति और दृष्टि भी मिली । अपने शोध–कार्य की फलश्रुति को आपके समक्ष सादर प्रस्तुत करते हुए मुझे विशेष प्रसन्नता हो रही है ।

❀ प्रस्तुत शोध प्रबंध की विशेषताएँ :

- ✦ जीवन में साहित्य का स्थान स्थापित करते हुए साहित्य में युग–चेतना का महत्त्व स्पष्ट करना ।
- ✦ युग–चेतना के प्रति साहित्यकार का दायित्व स्पष्ट करना ।

✦ नये कहानीकारों में मोहन राकेश के प्रदान को स्पष्ट करना ।

✦ मोहन राकेश लिखित समग्र कहानियों में अभिव्यक्त युग–चेतना को स्पष्ट करना ।

✦ मोहन राकेश के जीवन, व्यक्तित्व और साहित्य के विषय में समग्र जानकारी देने का प्रयास ।

✦ कहानियों में अभिव्यक्त युग–चेतना के माध्यम से राकेशजी की युग–चेता दृष्टि का मूल्यांकन करना ।

✦ राकेशजी की कहानियों की उपलब्धियाँ और सीमाओं को स्पष्ट करना ।

✦ युग–चेतना को केन्द्र में रखकर मोहन राकेश की समग्र कहानियों का विविध पहलुओं से किया गया यह मूल्यांकन इस शोध–प्रबंध की उपादेयता को अपने आप सिद्ध कर पायेगा ।

प्रबंध का सारांश :

❀ प्रथम अध्याय : साहित्य और युग–चेतना

प्रथम अध्याय में साहित्य, समाज और जीवन की पूरकता स्पष्ट की गयी है । साहित्य निरंतर समाज और जीवन से प्रभावित होता रहता है तथा समाज और जीवन साहित्य से । साहित्य समाज से 'गिरा अर्थ जल बीचि' के समान भिन्न होते हुए भी अभिन्न है । जीवन में साहित्य की उपयोगिता और साहित्य का मानव–जीवन पर पड़नेवाला प्रभाव कुछ प्रसिद्ध उदाहरणों द्वारा प्रस्तुत किया गया है ।

'युग', 'चेतना' और 'युग–चेतना' की परिभाषा एवं स्वरूप को स्पष्ट करते हुए युग–चेतना और युग–बोध, युग–चेतना और आधुनिकता, युग–चेतना और जीवन मूल्य का सहसम्बन्ध और भिन्नता स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है ।

साहित्य का सम्बन्ध मूलतः अपने युग के मानव समाज के आंतरिक सत्यों और संवेदनाओं के साथ होता है । जब साहित्यकार मानव के भीतरी या बाहरी जगत का स्पर्श करता है तब वह किसी साहित्यिक कृति का रूप धारण

कर लेता है । साहित्यकार द्वारा चित्रित समाज का चित्र ही युग–चित्र बन जाता है, जो सर्जक की युग–चेतना की देन है । साहित्यकार का सम्बन्ध सामाजिक श्रेय से होता है प्रेय से नहीं । इस दृष्टि से युग–चेतना के प्रति साहित्यकार की प्रतिबद्धता आवश्यक नहीं अनिवार्य बन जाती है ।

❀ द्वितीय अध्याय : मोहन राकेश की जीवनी और वाङ्मयी व्यक्तित्व

द्वितीय अध्याय में मोहन राकेश की जीवनी और वाङ्मयी व्यक्तित्व पर विस्तार से प्रकाश डाला गया हैं । राकेशजी के जीवन सम्बन्धी तथ्यों पर प्रकाश डालते हुए उन घटनाओं को उजागर–करने का प्रयास किया गया है जिसने राकेशजी के वाङ्मयी व्यक्तित्व पर प्रभाव छोड़ा है । राकेशजी के व्यक्तित्व के विभिन्न पहलुओं को भी यहाँ भिन्न–भिन्न शीर्षकों के अंतर्गत बाँटकर राकेशजी के अंतर्विरोधी व्यक्तित्व को समग्रता के साथ जानने का प्रयास किया गया हैं ।

रचनाकार जिस परिवेश में साँस लेता है, वहीं परिवेश उनकी रचनाओं में साफ झलकता है । राकेशजी को बचपन से जो परिवेश मिला था, वह उनकी इच्छाओं के विरुद्ध था । इस बात को स्वयं राकेशजी ने स्वीकार किया हैं । उस परिवेश ने राकेशजी को विद्रोही, स्वच्छंदी, आवेशमयी बनाने में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया था । साथ ही अपने परिवेश और जीवन की विभिन्न घटनाओं ने उन्हें लेखन के लिए पर्याप्त सामग्री और दृष्टि भी प्रदान की थी ।

राकेशजी का बाह्य व्यक्तित्व जितना सरस, आकर्षक और मोहक था, उनका आंतरिक व्यक्तित्व उतने ही विरोधाभासों से युक्त था । राकेशजी के मित्रों और आलोचकों की बात उदाहरण के रूप में स्पष्ट करते हुए राकेशजी की जीवनी को यहाँ रेखांकित किया गया हैं ।

राकेशजी के वाङ्मयी व्यक्तित्व पर प्रकाश डालते हुए, कहानीकार, उपन्यासकार, नाटककार, एकांकीकार के रूप में उन्हें उभारने का प्रयास किया

गया है । साथ ही यात्रावृत्तांत, डायरी, निबंध, संस्मरण, अनुवाद आदि साहित्यिक विद्याओं में राकेशजी के योगदान को स्पष्ट किया गया हैं ।

❀ तृतीय अध्याय : मोहन राकेश की कहानियों में वैयक्तिक चेतना

तृतीय अध्याय के प्रारंभ में हिन्दी कहानी के उद्‌भव और विकास को संक्षेप में प्रस्तुत करते हुए नयी कहानी और नये कहानीकारों पर प्रकाश डालते हुए राकेशजी के स्थान को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है ।

स्वतंत्र्योत्तर भारत की परिवर्तित स्थिति और बदली हुई मानसिकता से उत्पन्न व्यक्ति की स्थिति को राकेशजी ने अपनी कहानियों में विश्वसनीय ढ़ंग से रेखांकित किया हैं । व्यक्ति का अकेलापन, घुटन, उब, तनाव, निराशा, निर्णय–अनिर्णय का दर्द, कुंठा, संत्रास आदि का चित्रण राकेशजी ने अपनी कहानियों में वैयक्तिक चेतना द्वारा किया हैं । यह राकेशजी की कहानियों की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है ।

व्यक्ति की भीतरी टूटन, साथ रहते हुए झेला जा रहा अकेलापन, निरंतर अनुभव होता भीतरी खालीपन, परिवार के बीच में रहते हुए भी महसूस होता अजनबीपन, व्यर्थताबोध, आत्मनिर्वासन का बोध आदि स्थितियों को राकेशजी ने पूर्ण संवेदना के साथ प्रामाणिक अभिव्यक्ति दी हैं ।

इस अध्याय में राकेशजी की कहानियों में निरूपित वैयक्तिक चेतना को विभिन्न शीर्षकों के अंतर्गत रखकर उसे अधिक स्पष्ट करने का प्रयास किया है ।

❀ चतुर्थ अध्याय : मोहन राकेश की कहानियों में सामाजिक चेतना

चतुर्थ अध्याय में राकेशजी की कहानियों में अभिव्यक्त सामाजिक चेतना पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है । मध्यवर्ग समाज की अनेक समस्याओं को राकेशजी ने अपनी कहानियों में स्वर दिया हैं । राकेशजी ने नगर जीवन

की समस्याओं को अधिक्तर अपनी कहानियों का कथ्य बनाया है, साथ ही बहुत सीमित स्तर पर ग्राम बोध भी प्राप्त होता हैं ।

दाम्पत्य एवं पारिवारिक समस्याओं को राकेशजी ने अपनी कहानियों में विस्तृत फलक प्रदान किया हैं । पति–पत्नी के सम्बन्धों को लेकर लिखी गयी कहानियों में राकेशजी ने पति–पत्नी सम्बन्ध की समस्याओं को अलग–अलग कोणों से प्रस्तुत करने का प्रयास किया है और उन्हें इसमें सफलता भी मिली हैं । पति–पत्नी के सम्बन्धों को लेकर लिखी गयी राकेशजी की कहानियाँ हिन्दी कहानी–साहित्य में चर्चित एवं लोकप्रिय रही हैं ।

तत्कालीन स्थिति से उत्पन्न पारिवारिक विघटन और उससे उत्पन्न स्थिति को राकेशजी ने पूर्ण यथार्थ के साथ अभिव्यक्ति दी है । पति–पत्नी, के बनते–बिगड़ते सम्बन्धों के कारण बच्चों के मानस पर पड़ने वाले प्रभाव को भी राकेशजी ने सशक्त अभिव्यक्ति दी हैं । बच्चों की अन्य महत्त्वपूर्ण समस्याओं को राकेशजी ने बाल मनोविज्ञान के साथ जोड़कर संवेदनात्मक शैली में अभिव्यक्ति दी है ।

राकेशजी अपने समाज के प्रति सजग एवं युग–चेतना रचनाकार के रूप में सामने आते हैं । उन्होंने अपने लेखकीय दायित्व को निभाते हुए समाज के बीच होनेवाले मूल्य विघटन और मूल्य परिवर्तन को सही रूप में पकड़ने की कोशिश की हैं । युगीन सत्यों को यथार्थवादी दृष्टि से अभिव्यक्त करते हुए मानवता और नये मानवतावादी मल्यों की खोज भी राकेशजी ने की हैं ।

राकेशजी ने भारत विभाजन के समय उपस्थित विडंबनाओं को अपनी आँखों से देखा और झेला था । अतः भारत–विभाजन और उससे उत्पन्न स्थिति में हुआ मूल्य विघटन उनकी कहानियों में सशक्तता के साथ उभरा है ।

समाज की शाश्वत समस्याओं के मुख्य भाग के रूप में नारी पर हो रहे अत्याचार, शोषण और नारी जीवन की विडंबनाओं को राकेशजी ने अपनी कहानियों में यथार्थवादी धरातल पर प्रस्तुत किया हैं ।

राकेशजी की कहानियों में अभिव्यक्त सामाजिक चेतना के कारण उनकी कहानियाँ तत्कालीन समाज की आसन्न कड़ियाँ बनी नज़र आती है । इस

अध्याय में राकेशजी की कहानियों की सामाजिक चेतना को समग्रता के साथ प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है ।

❀ पंचम अध्याय : मोहन राकेश की कहानियों में आर्थिक चेतना

पंचम अध्याय में राकेशजी की कहानियों में निरूपित आर्थिक चेतना पर प्रकाश डाला गया है । नयी कहानी के विषय में कहा जाता है कि उसका यथार्थ, भोगा हुआ यथार्थ है । मध्यवर्ग के सभी पहलुओं का चित्रण नयी कहानी करती है – उसकी आशा, आकांक्षा, निराशा, बेरोजगारी, परस्पर–सम्बन्ध, कुंठाएँ, पीड़ा–घुटन, अनास्था, संत्रास व ऊब इत्यादि । लेकिन इन सबके मूल में आर्थिक विपन्नता व अभावग्रस्तता है । प्रभावित संवेदनाओं और उससे उत्पन्न विसंगतियों का चित्रण राकेशजी की कहानियों में हुआ है ।

आज अर्थ ही सभी सम्बन्धों की मूल धुरी बन गया है । मानव–मानव के बीच का भावनात्मक जुड़ाव खत्म हो चुका है । अधिकांश सम्बन्ध अर्थ के आधार पर ही बन रहे है । पति–पत्नी, माता–पुत्र, भाई–बहन, पिता–पुत्री आदि जैसे भावनात्मक सम्बन्ध में अर्थ किस प्रकार अपना सर्वोच्च स्थान बना चुका है – इसका वर्णन राकेशजी ने अपनी कहानियों में यथार्थवादी स्वर में किया है ।

बेरोजगारी के कारण आर्थिक संकट दिन–प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है । बेकारी की समस्या ने युवा वर्ग को लाचार, हताश और निरुपाय बना दिया है और साथ ही उनके परिवार को अभाव में रहने के लिए मजबूर । राकेशजी ने बेरोजगारी से उत्पन्न आर्थिक समस्याओं को अपनी कहानियों में विविध संदर्भ में चित्रित किया है ।

अर्थ के बढ़ते प्रभाव ने नारी की स्थिति को और भी दारुण बना दिया है । अर्थ के कारण उत्पन्न विवशता ने कहीं नारी को अस्मत का सौदा करने के लिए मजबूर कर दिया है तो कहीं निर्जीव सामान की तरह बिकने के लिए

लाचार । अर्थ के अभाव में पीसते नारीत्व को राकेशजी ने अपनी कहानियों में संवेदना के साथ अभिव्यक्ति दी हैं ।

❀ षष्ठ अध्याय : मोहन राकेश की कहानियों में राजनीतिक चेतना

षष्ठ अध्याय में मोहन राकेश की कहानियों में निरूपित राजनीतिक चेतना को उजागर करने का प्रयास किया गया है । स्वतंत्रता के उपरांत राजनीतिक क्षेत्र में एक प्रकार की ईमानदारी का अभाव, नैतिकता का त्याग और स्वार्थ की भावना दिखाई पड़ी । स्वाधीनता आंदोलन के समय देश के राष्ट्रीय जीवन में जिस सदाचार और उच्चता की लहर दौड़ रही थी वह क्रमशः लुप्त हो रही थी । एक ओर जनता में विकसित राजनीतिक चेतना, बृहत्तर जीवन जीने की आकांक्षा, समानता, स्वातंत्र्य और ईमानदार सामाजिक, जीवन की माँग, दूसरी ओर नेता और सरकारी अफसरों में अधिक सुविधाएँ और बेहतर जिन्दगी को आसानी से प्राप्त करने के अवसर मिल जाने के कारण, त्याग, संयम, देश हित, सामाजिकता की भावना नहीं के बराबर रह गयी थी । परिणामतः उत्पन्न संघर्ष को राकेशजी ने अपनी कहानियों में अभिव्यक्ति दी हैं ।

सरकारी व्यवस्था के खोखलेपन, निष्क्रियता, घूसखोरी और अन्याय के सामने पीड़ित आम आदमी की स्थिति अपनी कहानियों में रेखांकित करते हुए राकेशजी ने सरकारी तंत्र की बखियाँ उघेड़ कर रख दी है । सामान्य आदमी के सामने आज अपनी सुरक्षा का प्रश्न उपस्थित हुआ है । पुलिस तंत्र की निष्क्रियता के कारण गुंडों का बोलबाला है और सामान्य आदमी को अन्याय के सामने चुप रह जाना पड़ता है । सार्वजनिक रूप से खत्म हो रही वैयक्तिक सुरक्षा के प्रश्न पर राकेशजी ने प्रकाश डाला है । पद की आड़ में अफसरों और नेताओं के द्वारा हो रहे कुकृत्यों को भी अपनी कहानियों में अभिव्यक्ति देते हुए राकेशजी ने उन पर से भी परदा हटाने का प्रयास किया है ।

इस अध्याय में राकेशजी की कहानियों में रेखांकित राजनीतिक चेतना के विभिन्न परिदृश्यों को स्पष्ट करने का प्रयास किया है ।

❀ सप्तम अध्याय : मोहन राकेश की कहानियों में धार्मिक चेतना

राकेशजी की कहानियों में धार्मिक चेतना का समावेश बहुत कम मात्रा में हुआ हैं । क्योंकि स्वातंत्र्योत्तर युग में धार्मिकता की भावना मात्र उपरी दिखावे की वस्तु बन गयी थी आत्मा से इनका सम्बन्ध टूट गया है । जीवन में भौतिकवाद बढ़ रहा है और धर्म कही शेष भी है तो उसकी अशक्तियों के ही दर्शन हो रहे है ।

राकेशजी मानवतावादी तथा युगचेता कहानीकार के रूप में हमारे सामने आते हैं । अपनी कुछेक कहानियों में उन्होंने धार्मिक आडंबर, बढ़ रही अंधश्रद्धा, सांप्रदायिक स्थलों में हो रहे आंतरिक संघर्ष और कुकृत्यों पर प्रकार डाला है । धर्म को सिर्फ व्यवसाय के रूप में अपनाने वाले लोगों द्वारा हो रहे शास्त्रों के दुरोपयोग की ओर व्यंग्य करते हुए राकेशजी ने हमे सचेत किया हैं ।

इस अध्याय में राकेशजी की कहानियों में अभिव्यक्त धार्मिक चेतना पर दृष्टिपात किया गया है ।

❀ उपलब्धियाँ और सीमाएँ :

यहाँ मोहन राकेश की कहानियों का सम्यक् मूल्यांकन करते हुए उनकी कहानियों की उपलब्धियाँ और सीमाओं को स्पष्ट करने का प्रयास किया है ।

काल–क्रमानुसार प्रकाशित कहानी–संग्रहों की कहानियों का विवेचन करते हुए प्रस्तुत कहानी–संग्रह की कहानियाँ लिखते समय की राकेशजी की मानसिकता और परिवेश का संक्षिप्त परिचय दिया गया है । कहानी–संग्रह के प्रकाशन के बाद की आलोचकों की आलोचनाओं को स्पष्ट करते हुए उससे सम्बन्धित राकेशजी की प्रतिक्रियाओं का भी यहाँ उल्लेख किया गया हैं ।

स्वयं राकेशजी द्वारा स्वीकृत कुछ तथ्यों को उन्हीं के शब्दों में स्पष्ट करते हुए बाद के कहानी संग्रहों के सम्बन्ध में विद्वान आलोचकों की समीक्षाओं को स्पष्ट करते हुए राकेशजी की कहानियों में उत्तरोत्तर बढ़ते रचनात्मक सामर्थ्य को स्पष्ट किया गया है ।

राकेशजी की कहानियों के सम्बन्ध में प्राप्त विभिन्न मतों को स्पष्ट करते हुए उनकी कहानियों की उपलब्धियाँ और सीमाओं से अवगत होते हुए; यहाँ राकेशजी की युग चेता दृष्टि और उनकी कहानियों में स्पष्ट युग–चेतना को स्पष्ट करने का विनम्र प्रयास किया है ।

❀ उपसंहार :

अंत में इस शोधकार्य का उपसंहार प्रस्तुत किया गया है । इसके अंतर्गत आवश्यक मुदों का जैसे कि वैयक्तिक चेतना, सामाजिक चेतना, आर्थिक चेतना, राजनीतिक चेतना, धार्मिक चेतना आदि के आधार पर राकेशजी की कहानियों का मूल्यांकन करते हुए निष्कर्ष प्रस्तुत किया गया है ।

राकेशजी की कहानियों में युग–चेतना की अभिव्यक्ति पूर्ण यथार्थ के साथ हुई है । यह कहानियाँ नये संदर्भो की तलाश वैयक्तिक जीवन के आधर पर करने में सफल हुई है । पारिवारिक समस्याओं एवं पति–पत्नी के सम्बन्धों की समस्याओं को राकेशजी ने विविध दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया है । भारत विभाजन की स्थिति पर लिखी गयी राकेशजी की कहानियाँ उनकी संवेदनात्मक दृष्टि को तो स्पष्ट करती ही है साथ ही विभाजन के पश्चात टूटे मानवीय मूल्यों की कहानी भी कह जाती है । टूटते बनते मूल्य, नारी जीवन की समस्याएँ, अर्थ का बढ़ता प्रभाव, और उससे उत्पन्न समस्याएँ, तथा बेकारी से उत्पन्न समस्याओं को राकेशजी ने यथार्थ अभिव्यक्ति दी हैं । तत्कालीन राजनीति के खोखलेपन एवं धूसघोरी को स्पष्ट करते हुए राकेशजी ने राजनीति में दिन–प्रतिदिन बढ़ती असंगतियाँ एवं सार्वजनिक रूप से खत्म हो रही व्यक्ति की सुरक्षा जैसे प्रश्नों को उभारने का सशक्त प्रयास किया हैं ।

इस प्रकार शोध–प्रबंध के निष्कर्ष पर विचार करने के बाद निःसंकोच रूप से कहा जा सकता है कि राकेशजी सचेत युग–चेता कहानीकार के रूप में उभरकर सामने आते हैं । उनकी कहानियाँ युगीन संदर्भो की यथार्थ अभिव्यक्ति करने में सफल हुई है । यह राकेशजी की कहानियों की महत्तम उपलब्धि है ।

❀ *कृतज्ञताज्ञापन :*

किसी के प्रति आभार अथवा कृतज्ञता–ज्ञापित करना वास्तव में अनुभूति का विषय होता है, अभिव्यक्ति का नहीं । परंतु कभी–कभी अभिव्यक्ति भी अनुभूति को निरंतर ताजगी ही देती रहती है । साहित्य में अभिव्यक्ति का अपना एक विशिष्ट मूल्य हुआ करता है । इस दृष्टि से कृतज्ञता–ज्ञापित करना भले ही एक औपचारिकता हो, उसकी अनिवार्यता को नज़र अदाज नहीं किया जा सकता ।

प्रस्तुत शोध–प्रबंध के विषय–चयन के प्रारंभ से लेकर अनुष्ठान की पूर्णाहुति तक श्रद्धेय डॉ. सुधाबहन के प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करती हूँ । उनकी प्रेरणा, प्रोत्साहन, स्नेह, धैर्य तथा सक्रिय सहयोग एवं निर्देशन में इस शोध–कार्य को मैं निश्चित समयावधि में पूर्ण कर सकी हूँ । उन्होंने लगातार तीन–वर्ष तक मुझे काफी कठिनाईयों के बीच निरंतर आगे बढ़ने की प्रेरणा एवं शक्ति प्रदान की है । डॉ. सुधाबहन ने अपना मूल्यवान समय देकर विषय सम्बन्धी जिज्ञासाओं का निराकरण किया तथा महत्त्वपूर्ण जानकारी देकर अनजाने तथ्यों को उजागर किया । उन्होंने मुझे जो सहयोग दिया है उसे मैं कभी नहीं भूल सकती ।

इसके अतिरिक्त मेरे शुभचिंतक डॉ. शैलेष पंडित, डॉ. सुशील धर्माणी, डॉ. एस. पी. शर्मा, श्री मन वघासिया के प्रति मैं श्रद्धावान हूँ, जिन्होंने प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से दिशा–निर्देशन करके प्रस्तुत शोध–कार्य को आगे बढ़ाने में सहयोग दिया हैं ।

मेरी इस कठिन साधना में अपने परिवार और मित्रों को मैं कभी नहीं भूल सकती । उपर्युक्त समी सुविधाओं के बावजूद यदि इनका सहयोग न मिलता तो निश्चिय ही मेरी यह साधना अपूर्ण रहती ।

परम पूजनीय मेरी माताजी श्रीमती कंचनबहन और मेरे पिताजी डॉ. बी. टी. परमार ने सदैव शोध–प्रबंध शीघ्रातिशीघ्र पूर्ण करने का आग्रह रखा । साथ ही मेरे भाई डॉ. कौशिककुमार परमार तथा भाभी श्रीमती प्रियंका का स्नेह सदा ही मुझे मिलता रहा । इसके लिए मैं अपने परिवार की ऋणी रहूँगी ।

मेरे आराध्य और इष्टदेव श्री सहजानंद स्वामी, और मेरे गुरुहरि श्री प्रमुख स्वामीजी की तो मुझ पर अपार कृपा रही है ।

मैं उन सभी लेखकों, विद्वानों, शुभेच्छकों, मित्रों साथियों के प्रति अपनी विनम्र कृतज्ञता प्रकट करती हूँ, जिनकी सहायता मुझे शोध–कार्य में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से प्राप्त हुई हैं और जिनकी कृतियों के उद्धरण मैंने अपने प्रबंध में यथा प्रसंग प्रस्तुत किए हैं ।

विनीता

दिनांक :
राजकोट

दीप्ति बी. परमार

अनुक्रमणिका

❀ प्राक्कथन I-XVI

❀ प्रथम अध्याय : ००१–०३२
"साहित्य और युग–चेतना"

❀ द्वितीय अध्याय : ०३३–१२०
"मोहन राकेश : जीवनी और वाङ्मयी व्यक्तित्व"

❀ तृतीय अध्याय : १२१–१८८
"मोहन राकेश की कहानियों में वैयक्तिक चेतना"

❀ चतुर्थ अध्याय : १८९–३०१
"मोहन राकेश की कहानियों में सामाजिक चेतना"

❀ पंचम अध्याय : ३०२–३५३
"मोहन राकेश की कहानियों में आर्थिक चेतना"

❀ षष्ठ अध्याय : ३५४-३७१
"मोहन राकेश की कहानियों में राजनीतिक चेतना"

❀ सप्तम अध्याय ३७२-३८५
"मोहन राकेश की कहानियों में धार्मिक चेतना"

❀ उपलब्धियाँ और सीमाएँ ३८६-४००

❀ उपसंहार ४०१-४१०

❀ परिशिष्ट ४११-४२०

❀❀❀

श्चथम - अध्याय
साहित्य औश्च युग-चेतना

१.१ भूमिका

१.२ साहित्य समाज और जीवन

१.३ युग–चेतना परिभाषा एवं स्वरूप

- ➢ *युग परिभाषा एवं स्वरूप*
- ➢ *चेतना परिभाषा एवं स्वरूप*
- ➢ *युग–चेतना परिभाषा एवं स्वरूप*
- ➢ *युग–चेतना और युगबोध*
- ➢ *युग–चेतना और आधुनिकता*
- ➢ *युग–चेतना और जीवन मूल्य*

१.४ युग–चेतना और साहित्यकार की प्रतिबद्धता

श्रथम अध्याय
साहित्य औश्र युग-चेतना

❀ प्रस्तावना :

साहित्य शब्द की व्युत्पति संस्कृत भाषा के शब्द 'सहितस्य भाव : साहित्यम' से हुई है, जिसका अर्थ है – साथ होना । अर्थात् जिसमें साथ होने का भाव हो, उसे साहित्य कहते हैं । स + हित, सहभाव और हित सहित होने का भाव ही साहित्य से प्रकट होता है । अतः शब्द और अर्थ तथा भाव व विचार का सामंजस्य ही साहित्य है ।

❀ साहित्य समाज और जीवन :

साहित्य विचारों का स्त्रोत है जो मानव–जीवन और समाज के साथ निरंतर प्रवाहित होता रहेता है । अनादिकाल से कुछ कहने को बेकरार मानव अपने विचारों, भावों, भावनाओं, इच्छाओं, आकाक्षांओं को लिपिबद्ध रूप में आदान–प्रदान करता आ रहा है । यह कहने की उत्कंठा उसके परिवेश से उत्प्रेरित है । यह एक वर्गीकृत प्रक्रिया है, जहाँ वह कुछ देखता है तो उसे अभिव्यक्त करना उसके बाद की प्रतिक्रिया होती है । उसके उत्तर रूपी खंडन–मंडन प्रवाह को एक और दिशा मिलती है । इस ज्ञान को सुरक्षित और चिरंतन रखने के लिए उस अभिव्यक्ति को लिपिबद्ध रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास करता है । यही समाज के हित–रूपी चिन्तन अनावरुध्द हमारे समक्ष साहित्य के रूप में उपलब्ध है । इस प्रकार की 'ज्ञानराशि के संचित कोष' को ही आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'साहित्य' कहा है ।[1]

मानव जीवन और समाज से भावतत्त्व और विचारतत्त्व ग्रहण करके साहित्य स्वरूप पाता है । इस दृष्टि से साहित्य मानव जीवन से ही आधार ग्रहण किये हुए हैं । हिन्दी के प्रख्यात साहित्यकार और आलोचक जैनेन्द्रजी के विचार से ''मानव जाति की इस उन्नत निधि में जितना कुछ अनुभूति भंडार

लिपिबद्ध है वही 'साहित्य' है, और भी अक्षरबद्ध रूप में जो अनुभूति संचय विश्व को प्राप्त होता रहेगा 'साहित्य' है ।"[2] मनुष्य अपने आस–पास के परिवेश मे जो देखता है, अनुभव करता है, सोचता है, समझता है, उसका वर्णन वह साहित्य में करता जाता है । इस प्रकार जीवन के विविध पहलुओं का वर्णन साहित्य के माध्यम से होता है । दूसरे शब्दो में कहे तो जीवन के जो पक्ष हमें निकट लगते हैं, और स्थायी रूप से प्रभावित करते हैं उसको साहित्य में व्यक्त किया जाता है । इसी दृष्टि से डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत ने साहित्य को "जीवन और जगत के गत्यात्मक सौन्दर्य की भावमयी झाँकी"[3] कहा है । गुलाबराय के अनुसार – "साहित्य संसार के प्रति मानसिक प्रतिक्रिया अर्थात् विचारों, भावों और संकल्पों की शाब्दिक अभिव्यक्ति है और हमारे किसी न किसी प्रकार के हित का साधन करने के कारण संरक्षणीय हो जाता है ।"[4]

हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार – "साहित्य में उन सारी बातों का जीवन्त विवरण होता है, जिसे मनुष्य ने देखा है, अनुभव किया है, सोचा है और समझा है ।"[5] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने साहित्य या काव्य में रागतत्त्व की प्रधानता पर बल दिया हैं । उनके अनुसार – "जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञानदशा कहलाती है, उसी प्रकार हृदय की मुक्तावस्था रस–दशा कहलाती है । हृदय की इसी मुक्त की साधना के लिए मनुष्य की वाणी जो शब्द विधान करती आयी है उसे कविता कहते हैं ।"[6] जीवन को मनुष्य की भावभूमि पर स्थापित करने वाली वस्तु साहित्य ही हो सकता है ।

साहित्य जीवन से निर्मित होता है, उसे जीवन से अलग नहीं किया जा सकता । अतः साहित्य सामाजिक जीवन का चित्र बनकर हमारे सामने आता है । अंग्रेजी विद्वान मेथ्यु आर्नोल्ड ने साहित्य को इस तरह परिभाषाबद्ध किया है – "Leterature is the mirror of society."[7] एक अन्य परिभाषा साहित्य को इस प्रकार स्पष्ट करती है – "Leterature is nothing more than the result of certain society forces"[8] अर्थात् साहित्य अपने युग की समर्थ सामाजिक चेतनाओं की सशक्त अभिव्यक्ति है । आधुनिक भारतीय मनीषियों में अपना

महत्त्वपूर्ण स्थान रखनवाले कवीन्द्र रवीन्द्र का मत साहित्य के अर्थ को अधिक स्पष्ट करता हैं – ''साहित्य शब्द से साहित्य में मिलने का भाव पाया जाता है । वह केवल भाव–भाव का, भाषा–भाषा का, ग्रन्थ–ग्रन्थ का ही मिलन नहीं, अपितु मानव के साथ मानव का, अतीत के साथ वर्तमान का, दूर के साथ अत्यन्त निकट का अन्तरंग मिलन भी है, जो साहित्य को छोड़कर अन्यत्र कहीं संभव नहीं है ।''[9] उपन्यास सम्राट प्रेमचन्दजी ने साहित्य को जीवन की आलोचना मानते हुए लिखा हैं – ''साहित्य उस रचना को कहेंगे जिसमें कोई सच्चाई प्रकट की हो, जिसकी भाषा पौढ़ और सुन्दर हो और जिसमें दिल और दिमाग पर असर डालने का गुण हो । साहित्य की बहुत–सी परिभाषाएँ की गयी है, पर मेरे विचार से उसकी सर्वोत्तम परिभाषा जीवन की आलोचना है । चाहे वह निबन्ध के रूप में, चाहे कहानियों के या काव्य के । उसे हमारे जीवन की व्याख्या करनी चाहिए ।''[10]

उक्त सभी परिभाषाओं में साहित्य को जीवन से सम्बन्धित माना गया है । मनुष्य जो कार्य करता है उनका प्रतिफल साहित्य में झलकता है । प्रेमचन्दजी ने जीवन की आलोचना को साहित्य कहा है । आलोचना का अर्थ है – किसी भी विषय या वस्तु का सम्यक दृष्टि से अध्ययन । आलोचना के तीन स्तर हैं – किसी विषय को सम्यक देखना, उसके प्रति एक दृष्टिकोण बनाना तथा उसका मूल्यांकन करना । साहित्यकार इन तीनों प्रक्रियाओं से गुजरता है तथा कृति को शब्द रूप देता है । इसलिए साहित्य जीवन की आलोचना है ।

साहित्य और जीवन न केवल एक–दूसरे से सम्बद्ध है, बल्कि जीवन में साहित्य की आवश्यकता होती है । क्योंकि, साहित्य मनुष्य की रुचि का परिष्कार करता है । आदि कवि वाल्मीकि ने अपनी 'रामायण' में एक आदर्श सामाजिक व्यवस्था को चित्रित किया है । अपने दृष्टिकोण के अनुसार आदर्श समाज के विभिन्न पक्षों की विवेचन करते हुए वाल्मीकि ने यह सिद्ध किया है कि मानव समाज किस प्रकार आदर्श समाज के रूप में परिणत हो सकता

है । इस दृष्टि से यह भी कहा जा सकता है कि पहले 'रामायण' लिखी गयी है, और फिर रामराज्य का आविर्भाव हुआ । हिन्दी साहित्य के वीरगाथा काल में तो ऐसे अनेक उदाहरण प्रसिद्ध है कि वीरगाथाओं की रचना करने वाले चारण कवियों से तत्कालीन राजा तथा सैनिकों को लड़ने के लिए प्रेरणा मिलती थी । भक्तिकाल के विश्रृंखल, निराशाग्रस्त जीवन को कबीर, तुलसीदास आदि भक्त कवियों की रचनाओं से ही आशा का प्रकाश प्राप्त हुआ था ।

जीवन में साहित्य की उपयोगिता और साहित्य का मानव–जीवन पर पड़ने वाले प्रभाव को प्रेमचन्दजी ने नादिरशाह के उदाहरण द्वारा जीवन में साहित्य के स्थान को अधिक स्पष्ट किया हैं – ''नादिरशाह से ज्यादा निर्दयी मनुष्य और कौन हो सकता है – हमारा आशय दिल्ली में कत्लेआम करनेवाले नादिरशाह से हैं । अगर दिल्ली कत्लेआम की सत्य घटना है, तो नादिरशाह के निर्दयी होने में कोई सन्देह नहीं रहता । उस समय आपको मालूम है, किस बात से प्रभावित उसने कत्लेआम को बन्द करने का हुक्म दिया था । दिल्ली के बादशाह का वजीर एक रसिक मनुष्य था । जब उसने देखा कि नादिरशाह का क्रोध किसी तरह शान्त नहीं होता और दिल्ली वालों के खून की नदी बहती चली जाते है, यहाँ तक कि खुद नादिरशाह के मुँहलगे अफसर भी उसके सामने आने का साहस नहीं करते, वह हथेली पर जान रखकर नादिरशाह के पास पहुँचा और यह शेर पढ़ा –

''कसे न माँद कि दीगर व तेजे नाज कुशी ।
मगर कि जिन्दा कुनी खल्क राव बाज कुशी ।''

इसका अर्थ यह है कि तेरे प्रेम की तलवार ने अब किसी को जिन्दा न छोड़ा । अब तो तेरे लिए इसके सिवा और कोई उपाय नहीं है कि तू मुर्दो को फिर जिला दे और फिर उन्हें मारना शुरू कर । यह फारसी के एक प्रसिद्ध कवि का श्रृंगार – विषयक शेर है । पर इसे सुनकर कातिल के दिल में मनुष्य जाग उठा । इस शेर ने उसके हृदय के कोमल भाग को स्पर्श किया और कत्लेआम को तुरन्त बन्द करा दिया ।''[11] क्योंकि – ''साहित्य मस्तिष्क की वस्तु नहीं हृदय की वस्तु है । जहाँ ज्ञान और उपदेश असफल होते है,

वहाँ साहित्य बाजी मार ले जाता है ।"[12] विश्व साहित्य पर दृष्टिपात करने से यह स्वयं सिद्ध हो जाता है कि साहित्य का मानव जीवन और समाज के साथ अभिन्न सम्बन्ध है ।

साहित्यकार अपने देश–काल से प्रभावित होता है, अतः तत्कालीन समय का प्रतिबिम्ब साहित्य में मिलता है । साहित्य जीवन की रागात्मक अभिव्यक्ति है । अतः साहित्य समाज में मनुष्य के मनोरंजन के साथ उसमें संस्कार सिंचन का कार्य भी करता है । आज के मनुष्य के पास मनोरंजन के लिए अनेक साधन है, किन्तु फिर भी साहित्य का महत्त्व कम नहीं हुआ । आज भी साहित्य मानव–जीवन और समाज के साथ जुड़कर उसके सामाजिक, सांस्कृतिक और बौद्धिक क्षेत्रों में उसके सीर को उठाने के लिए सतत प्रयत्नशील है । इस दृष्टि से जीवन में साहित्य की आवश्यक्ता सिद्ध होती है ।

साहित्यकार सामाजिक प्राणी होता है । उसकी रचनाएँ सामाजिक परिवेश में विकसित होती है । वह अपनी अनुभूतियों को व्यक्ति सीमा से निकाल कर समष्टि चेतना प्रदान करता है । ये अनुभूतियाँ और भावनाएँ लेखक की अपनी न रहकर समष्टि की हो जाती है । साहित्यकार अपनी प्रतिभा के बल पर नए भाव और विचार समाज को देता है । साहित्य की शक्ति के विषय में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने लिखा हैं – "साहित्य में जो शक्ति छिपी है वह तोप, तलवार और बम के गोले में भी नहीं पायी जाती ।"[13]

साहित्य समाज और जीवन के विषय में डॉ. शशिभूषण सिंहल ने लिखा हैं – "मनुष्य जीवन जीता है और उसकी अनुभूति को अपने व्यक्तित्व की नयी भंगिमा देकर साहित्य के रूप में परिणत करता है । साहित्य की जड़े समाज में है और उसके बदले में साहित्य स्वतः जीवन का पथ प्रशस्त करता है ।"[14] साहित्य में जीवन का आदर्श रूप प्रस्तुत होता है । वह जीवन से अनुप्रणित होकर ही अपना रंग दिखा पाता है । साहित्य को विज्ञान तथा दर्शन से व्यापक मानते हुए डॉ. रामविलास शर्मा ने लिखा हैं – "साहित्य शब्दों द्वारा, चित्रों द्वारा मनुष्य को प्रभावित करता है । उसका प्रभाव दर्शन और

विज्ञान से ज्यादा व्यापक इसलिए होता है कि उसका सम्बन्ध इन्द्रियबोध से है । उसका माध्यम भी रूपमय है, कल्पना के सहारे वह तरह–तरह के रूप पाठक या श्रोता के मन में जगाता है । उसकी विषय वस्तु भी रूपमय है । वह चिंतन का निष्कर्ष ही नहीं देता, जीवन के चित्र भी देता है । दर्शन और विज्ञान से भिन्न उसकी निजी कलात्मक विशेषता जीवन के चित्र देने में है ।"[15]

साहित्य ही समाज को विकासोन्मुख बनाता है । साहित्य का शिव, सुन्दर और सत्य ही समाज को अंधकार के कूप से ज्योर्तिमय मार्ग इंगित करता है । अतः साहित्य से समाज को आदर्श पथ प्राप्त होता है और समाज से साहित्य को विकास प्राप्त होता है । अतः समाज और साहित्य एक–दूसरे के पूरक है ।

जिस तरह मानव शरीर के समुचित विकास के लिए शुद्ध भोजन की आवश्यकता होती है, ठीक उसी तरह मानव–मस्तिष्क के विकास के लिए सत्साहित्य आवश्यक है । साहित्य समाज का प्रिज्म है । साहित्य को प्रिज्म इसलिए माना है क्योंकि जिस तरह प्रिज्म प्रकाश की किरणों को बहुआयामी, विविध रंगो में दिखाता है, वैसे ही साहित्य भी जीवन को विविध रूपों में प्रस्तुत करता है ।

साहित्य मनुष्य जीवन के भूत एवं वर्तमान को प्रस्तुत करनेवाला सबल माध्यम है, साथ ही वह भविष्य की ओर भी संकेत करता चलता है । जीवन से सम्बन्ध होने के कारण इसका क्षेत्र भी विशाल है । जीवन के विविध पक्षों, समस्याओं का चित्रण साहित्य की विविध–विधाओं द्वारा किया जा रहा है । साहित्य जीवन की उलझनों को सुलझाने का प्रयत्न करता है । जीवन को सरसता से, रोचकता से आकर्षक रूप में किन्तु यथार्थ के साथ चित्रण करने का प्रयत्न साहित्य में होता है ।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि समाज जीवन और साहित्य का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है । साहित्य समाज और जीवन से प्रभावित होता है, और समाज और जीवन साहित्य से । साहित्य समाज से 'गिरा अर्थ

जल बीचि' के समान भिन्न होते हुए भी अभिन्न होता है । अतः स्पष्ट है कि समाज के आन्तिरिक भावों, अनुभावों, विकारों का शब्दांकित रूप ही साहित्य है ।

❀ युग–चेतना परिभाषा एवं स्वरूप

➢ *युग परिभाषा एवं स्वरूप*

'युग' शब्द का अर्थ 'समय या काल' से लगाया जाता है । इसका अर्थ 'बृहस्पति का एक राशि में स्थिर रहने का पंचवर्षीय काल' भी होता है । युग से तात्पर्य पुराण मत से काल का सुदीर्ध परिणाम सत्य, त्रेता, द्वापर और कलियुग से भी होता है । अर्थात् ये चारों युग भी 'युग' की संज्ञा से अभिहित किये जाते हैं । 'युग' का एक अर्थ 'गाड़ी का जुआ'[16] से भी लिया जाता है । जैसे गाड़ी का जुआ चलते रहने पर क्रमशः परिवर्तित होता रहता है उसी प्रकार युग भी परिवर्तित होता रहता है ।

आचार्यो ने 'युग' शब्द से तात्पर्य 'एक समय विशेष' से माना है । " 'युग' शब्द अपनी व्याप्त में संपूर्ण मानव–संस्कृति का काल सापेक्ष अर्थ देता है । इसलिए जब हम हिन्दी साहित्य के इतिहास के संदर्भ में किसी विशिष्ट युग (अथवा काल) की चर्चा करते हैं तो उससे उस युग की सामान्य प्रवृत्तियों, परिस्थितियों एवं उपलब्धियों का अर्थ बोध होता है ।"[17] इस दृष्टि से 'युग' एक सीमित समय का द्योतक बन जाता है । 'युग' शब्द के प्रयोग द्वारा संपूर्ण युग का बोध नहीं हो जाता, क्योंकि यहाँ यह काल विशेष की अभिव्यंजना करने के कारण संपूर्ण का एक भाग होता है, फिर भी अपने आप में पूर्ण होता है ।

अंग्रेजी में 'युग' को 'Age' कहते हैं । 'Age' का अर्थ 'Life time' या 'The time during which a personal or thing has lived' है । 'Age' से तात्पर्य 'A period of time' से भी है । जिसका हिन्दी में अर्थ युग, काल या समय है । इस प्रकार 'युग' शब्द से एक समय विशेष का अर्थ प्रकट होता है ।

संपूर्ण सृष्टि परिवर्तनशील है । सृष्टि के इस नियम के अनुसार कोई भी वस्तु शाश्वत नहीं है । जिसका निर्माण होता है उसका किसी–न–किसी रूप में अंत भी निश्चित होता है । किन्तु 'अर्थशास्त्र' के उपभोग के नियमानुसार कोई भी वस्तु संपूर्ण रूप में नष्ट नहीं हो जाती, बल्कि उसका रूप परिवर्तित हो जाता है, और इस प्रकार उसका अस्तित्व अन्य रूप में परिवर्तित होकर नये रूप में विद्यमान रहता है । 'युग' की भी यही स्थिति है । एक युग की समाप्ति के पश्चात् उसका स्थान दूसरा युग–ग्रहण कर लेता है । यह परिवर्तन सृष्टि के प्रारंभ से ही होता चला आ रहा है । प्रत्येक युग अपनी प्रारंभिक अवस्था से चरमावस्था पर पहुँचकर समाप्ति की ओर बढ़ता है । परंतु, वास्तव में उस युग की समाप्ति नहीं होती वरन् वह नये युग के रूप में अवतरित होता है, और इस प्रकार युग के आवागमन का क्रम निरंतर चलता रहता है ।

समाप्त होता युग आनेवाले युग को कुछ आधार प्रदान करता जाता है, जिसके कारण आनेवाले युग का प्रारंभ हो सके । ''प्रत्येक युग दूसरे युग को कुछ देकर जाता है, अन्यथा इतनी बड़ी सृष्टि अस्तित्वहीन होकर कभी की शून्य में समा जाती ।''[18] इस दृष्टि से वर्तमान समय में जो कुछ भी हमारी धरोहर है वह सभी बिते हुए युगों के आधार पर स्थिर है । युगों के इस आदान–प्रदान की प्रक्रिया द्वारा ही नये–नये युगों से संपूर्ण सृष्टि का संचालन चल रहा है ।

'युग' को कई प्रकार से विभक्त किया जाता है । अतीत, वर्तमान एवं भविष्य तीन रूपो में संपूर्ण युग समाहित होता है । धार्मिक विचारानुसार 'युग' को चार भागों में विभक्त किया जाता हैं – सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग । इस स्वरूप से परे भी एक स्वरूप 'युग' का है जो सिर्फ काल सापेक्ष माना जाता है । ''युग शब्द काल सापेक्ष है जैसे भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग, प्रेमचन्द युग, प्रेमचंदोत्तर युग आदि । किसी भी युग में अनेक प्रकार के भाव और विचारधाराएँ प्रचलित रहती है ।''[19] किन्तु ये सभी युग मूल रूप में एक–दूसरे से सम्बन्धित होते हैं । बिते युग का प्रभाव चल रहे युग पर

अवश्य परिलक्षित होता है । जैसे भारतेन्दु युग का द्विवेदी युग पर, द्विवेदी युग का प्रेमचंद युग पर और प्रेमचन्द युग की प्रेमचंदोत्तर युग पर स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है । युग परिवर्तन की यह प्रक्रिया एक लंबे समय से युग अस्तित्व की स्थापना में सहायक बनी रही है । युग कभी स्थिर नहीं होते । इसमें निरंतर परिवर्तन आता रहता है । युग परिवर्तन की यह परंपरा सुदीर्ध काल से निरंतर चल रही है ।

संक्षेप में 'युग' को कई प्रकार से विभक्त किया जाता है । 'युग' परिवर्तनशील होता है । इनकी स्थिति एवं इनका विनाश स्वयमेव होता है । युग–परिवर्तन की यह प्रक्रिया अज्ञात, अलौकिक एवं प्राकृतिक रूप से चलती रहती है ।

➢ *चेतना परिभाषा एवं स्वरूप*

'युग' शब्द की तरह 'चेतना' शब्द भी व्यापक संदर्भ में प्रयुक्त हो रहा है । 'चेतना' शब्द 'चेतन' या सूक्ष्म दृष्टि से देखे तो 'चेत' शब्द से बना है । 'चेत' शब्द 'चेतस्' का पर्याय है जो संस्कृत से ग्रहण किया गया है । 'चेत' या 'चेतस्' का अर्थ होश, संज्ञा, याद, चित, ज्ञान आदि होता हैं । 'चेतना' शब्द भी संस्कृत का है जिसका अर्थ आत्मा, जीव, परमेश्वर, मनुष्य, मन आदि से हैं । 'चेतना' शब्द अकर्मक क्रिया के अर्थ में होश में आना, बुद्धि–विवेक से काम लेना, सावधान होना है और सकर्मक क्रिया के अर्थ में सोचना–विचारना आदि अर्थ देता है । " 'चेतना' शब्द का संस्कृत में जब स्त्रीलिंग में प्रयोग होता है तो इसका अर्थ चैतन्य, ज्ञान, होश, याद, चेतन, जीवनी–शक्ति, जीवन आदि से होता है ।"[20] और "मानस की प्रमुख विशेषता चेतना है, अर्थात् वस्तुओं, विषयों एवं व्यवहारों का ज्ञान ।"[21] इस प्रकार चेतना शब्द आत्मा और बुद्धि दोनों से सम्बन्धित है ।

'चेतना' जीवधारियों में रहने वाला वह तत्त्व है जो उन्हें निर्जीव पदार्थो से भिन्न बनाता है । दूसरे शब्दों में हम उसे मनुष्यो की जीवन क्रियाओं को चलाने वाला तत्त्व कह सकते हैं । " 'चेतना' स्वयं को और अपने

आस–पास के वातावरण को समझने तथा उसकी बातों का मूल्यांकन करने की शक्ति का नाम है ।”[22]

“ ‘चेतना’ उपयोगी एवं अनुपयोगी दोनों को पहचानने का कार्य करती है । चेतना के समुचित प्रयोग द्वारा ही उपयोगी उपकरणों का प्रयोग लक्ष्य–सिद्धि में सहायक होता है । इसलिए मानवीय चेतना की मूल प्रवृत्ति निर्माणोन्मुख रहती है ।”[23]

“ ‘चेतना’ व्यक्ति विशेष में निहित एक ऐसी मापक इकाई है जो व्यक्ति, समाज, राष्ट्र या देश को गतिशील करती है । विकाशशील बनाती है । यह स्वतंत्र आंतरिक जागृति है । वह व्यक्ति के क्रिया–कलापों, व्यवहारो तथा अभिवृत्तियों का नियमन करती है । अतः चेतना किसी भी व्यक्ति की ज्ञानावस्था या बुद्धित्त्व है जो उसे जीवन के सही मार्ग की ओर दिग्दर्शित कराती रहती है ।”[24]

“ ‘चेतना’ प्राणीमात्र में रहनेवाला वह तत्त्व है जो उन्हें निर्जीव जड़ पदार्थो से भिन्न बनाता है और उन्हें चैत्य सम्पन्न बनाकर जीवधारी सिद्ध करता है ।”[25] ‘चेतना’ निर्जीव एवं जड़ पदार्थो में नहीं होती । इसलिए चेतना–सम्पन्न जीवधारी निर्जीवों से अधिक कुशल होता है । चेतना के अंतर्गत परिवर्तनशीलता विधमान होती है । अनुभव के आधार पर चेतना का बाह्य स्वरूप निर्धारित होता है । भिन्न–भिन्न उपकरणों की चेतना भिन्न–भिन्न होती है । चेतना का स्वतंत्र अस्तित्व है । चेतना मनुष्य का समुचित मार्गदर्शन करती है । चेतना एक विशेष प्रकार की अनुभूति है जो मस्तिष्क में पहुँचने वाले आवेगों के अर्थ स्पष्ट करती हुई उसे क्रियाशील और विचारशील बनाती है ।

मनोविज्ञान के अन्तर्गत चेतना का महत्त्व विशेष रूप से वर्णित है । अनेक प्रकार की अनुभूतियाँ चेतना द्वारा ही प्राप्त होती है । “ ‘चेतना’ स्वयं को और अपने आस–पास के वातावरण को समझने तथा उसकी बातों का मूल्यांकन करने की शक्ति का नाम है ।”[26] इसके अभाव में मानव–जीवन निरर्थक हो जाता है । मनुष्य द्वारा सुख–दुःख की अनुभूतियाँ चेतनाधारित ही

होती है । चेतना के आधार पर ही मानवचरित्र का भी निर्माण होता है । अतः कहा जा सकता है कि 'चेतना' वह अनुभूति है जो मनुष्य को विशेषता प्रदान करती है । जिसके कारण वह उसे व्यक्तिगत और बाह्य वातावरण के विषय में ज्ञान कराती है । मनुष्य की सारी प्रवृत्तियाँ एवं क्रिया–कलाप तथा परिवर्तन का मूल कारण चेतना ही है । चेतना का विकास व्यक्ति में अपने समाज के संपर्क से होता है । अपने वातावरण से प्रभावित होकर वह अपने बोद्धिक स्तर के अनुसार अपने विभिन्न कार्यो में कुशलता प्राप्त कर सकता है ।

'चेतना' का मूल उद्देश्य 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' है । एतदर्थ वह त्रिपथगा के समान सत्यं, शिवं और सुदन्रम् के तीनों लोकों में प्रवाहित होती है ।

चेतना विभिन्न रूपों में प्रकट होती है । ज्ञानात्मक, भावात्मक और क्रियात्मक चेतना के तीन सोपान हैं । इन तीनों सोपानों को पार करती हुई मानव–चेतना गतिशील होती है और अंत में वह मनुष्य को अपने लक्ष्य तक पहुँचाने में सक्षम बनाती है । अलग–अलग परिस्थितियों में चेतना का स्वरूप भी अलग–अलग हो जाता है । मुख्य रूप से चेतना को सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, नैतिक, दार्शनिक, सांस्कृतिक, वैयक्तिक आदि अनेक रूपों में रूपायित किया जा सकता है ।

निष्कर्षतः कह सकते हैं कि 'चेतना' वह अनुभूति है जो मनुष्य को विशेषता प्रदान करती है । जिसके कारण वह व्यक्तिगत और बाह्य वातारण के विषय में ज्ञान प्राप्त करता है । मनुष्य की सारी प्रवृत्तियाँ एवं परिवर्तित विचारशीलता का मूल कारण चेतना ही है । चेतना जीवन के हर क्षेत्र से गहराई से सम्बन्धित है । वह जीवन के भाव को वहन करती है और साथ ही जीवन के प्रत्येक पहलुओं को उजागर करने में सक्रिय भूमिका निर्वाह करती है । यह ऊर्ध्वमुखी और अन्तर्मुखी दोनों रूपों में होती है । चेतना जीवन का रस है । इसकी महत्ता अनेक रूपों में दृष्टिगत होती है । यही चेतना की विशेषता है । यही चेतना का विशेष गुण है ।

➢ युग–चेतना परिभाषा एवं स्वरूप

'युग–चेतना' का तात्पर्य है किसी काल विशेष के संपूर्ण क्रिया–कलापों को आत्म एवं बुद्धि से अनुभव करने की क्रिया । अंग्रेजी में 'युग–चेतना' को 'Spirit of the age' कहते हैं । अर्थात् किसी समय विशेष में अभिव्यंजित चेतना को युग–चेतना कहते हैं ।

'युग–चेतना' के अन्तर्गत 'चेतना' शब्द व्यापक अर्थ में प्रयुक्त होता है । इसके अंतर्गत अपने संपूर्ण स्वरूप के साथ 'युग' समाहित होता है । समाज, संस्कृति, दर्शन आदि का स्वरूप जिस युग में जैसा रहता है ठीक उसे उसी रूप में ग्रहण कर अभिव्यक्ति दे देना साहित्यकार की रचना की युग–चेतना कही जाती है । दूसरे शब्दों में युग भावनाओं की अभिव्यंजना साहित्य में युग–चेतना की संज्ञा पाती है । "काल या समय के परिवर्तन के साथ–साथ युग–चेतना बदलती रहती है । समाज, संस्कृति, धर्म, दर्शन, आध्यात्मिक, नैतिकता तथा विज्ञान, आदि का स्वरूप जिस युग में जैसा रहता है, उसे ठीक उसी रूप में ग्रहण कर अभिव्यक्त करना कवि, कथाकार एवं नाटककार के साहित्य की युग–चेतना कही जाती है ।"[27]

तत्कालीन युग की विचारधाराएँ जो युगीन जीवन में चेतना का संचार करती है, साहित्य में युग–चेतना के नाम से जानी जाती है । प्रत्येक रचनाकार की रचना का मूलाधार युगीन जीवन और उससे संबंधित घटनाएँ रहती है । इसलिए साहित्य के माध्यम से युग–चेतना की अभिव्यक्ति होना सहज बात है । हर नये युग की अपनी चेतना होती है अपनी विशेषता और सीमा भी । सदृष्टा रचनाकार तत्कालीन युग–चेतना की सापेक्षता में अपने साहित्य का सृजन करता है । युग–चेतना से पृथक रहकर साहित्यकार अपनी रचना में तत्कालीन समय को उपस्थित नहीं कर सकता । परिणामतः कुछ अपवादों को छोड़कर इस प्रकार का साहित्य अपने मूल उद्देश्य तक पहुँचने में अधिक सफल नहीं हो पाता । क्योंकि "युग–चेतना ऐसे आलोकमय नेत्र के समान है जिससे विश्व के संपूर्ण रहस्यों का उद्घाटन होता है । युग–चेतना का महत्त्व समाज की त्रुटियों के निराकरण में सन्निहित है । समाज में रहने

वाला मानव सदगुणों एवं दुर्गुणों का पूंजीभूत स्वरूप है । सदगुण देवत्व का और दुर्गण पाशविकता का प्रतीक है । इसलिए मानव न देवता है और न पशु । वह मानव है । युग–चेतना उसकी मानवीय भावनाओं को उजागर करती है और उसे युग को पहचानने–परखने की क्षमता प्रदान करती है । उसके अनुरूप ही वह उसे क्रियाशील होने की प्रेरणा प्रदान करती है । इस क्रियाशीलता के परिणाम के प्रति मानव जागरूक रहता है । यही जागरूकता उसकी चेतना है । जागरूकता–विहीन मानव समाज का तथा स्वयं का किसी प्रकार का हित नहीं कर सकता । इसलिए समय–समय पर अनेक युग–चेतना सम्पन्न सन्त, महात्मा, सुधारक आदि का उद्‌भव होता रहेता है । ये सभी युग को देखते–परखते हैं और दोष–परिपूर्ण विगलित तथा प्रपीड़क मान्यताओं को समाज से बहिष्कृत करने के उद्देश्य से क्रान्ति का नाद फूँकते हैं । चेतना का यह स्वरूप सुधारात्मक होता है । इस प्रकार की युग–चेतना व्यक्ति, समाज, राष्ट्र आदि सबके लिए उपादेय एवं श्रेयष्कर है ।''[28]

युग का प्रभाव पूरे समाज पर देखा जा सकता है । नयी मान्यताएँ युग को निरंतर प्रभावित करती है । जिसके परिणाम स्वरूप पुरानी और तत्कालीन चेतना, मान्यता और आस्था धीरे–धीरे परिवर्तित होती है और नयी मान्यताएँ, चेतना और आस्था सुदृढ़ बनती रहती है । इस दृष्टि से हर युग अपनी विशिष्ट प्रवृत्ति एवं प्रकृति के कारण बिते सभी युगों से भिन्न होता है । इसी भिन्नता के कारण प्रत्येक युग की चेतना भी भिन्न–भिन्न पायी जाती है । जैसे मध्यकाल की मूल चेतना धार्मिक या आध्यात्मिक रही है । इस युग के रचनाकारों ने इस सृष्टि की रचना के लिए और परिचालन के लिए ईश्वरतत्त्व को आधार माना है और इस मान्यता की अभिव्यक्ति उन्होंने अपनी रचनाओं में भी की है । यहाँ तक कि सभी प्रकार के न्याय का आधार भी ईश्वर को बताया है । मनुष्य की सभी क्रियायें और उसकी तत्कालीन स्थिति का आधार पूर्व जन्म के कर्मो के साथ जोड़ा गया । किन्तु, आधुनिककाल तक आते आते हम इस विचारधारा को पूर्णतः बदला हुआ पाते हैं । दो–दो महायुद्धों के बाद–बदली हुई मानव–चेतना ने अपने पुराने विश्वासों और संस्कारों के सामने

प्रश्नचिन्ह लगा दिया । क्योंकि, बदलते युग की बदलती परिस्थिति में औद्योगिक, भौतिक और विज्ञान जैसे क्षेत्रो में उन्नति हो चुकी थी । इस विकास ने प्रारंभिक चेतना को पूर्णतः बदल दिया था । आधुनिक युग की शिक्षा प्रणाली, औद्योगिक प्रगति, टेक्नोलोजी आदि के विकास के परिणाम स्वरूप धर्म का स्थान अर्थ ने, कल्पना का स्थान प्रयोग ने, आदर्शवादिता का यथार्थ दृष्टि ने, आध्यात्मिकता का स्थान विज्ञान ने ले लिया है । फलतः औपचारिकता, अकेलापन, उदासीनता, अजनबीपन, निष्क्रियता, संत्रास, मानव का स्व में विश्वास, उसके सामर्थ्य और गरिमा के प्रति आस्था आदि आधुनिक युग–चेतना के प्रमुख लक्षण बन गये हैं ।

यहाँ साहित्य के संदर्भ में युग–चेतना पर विचार किया जा रहा है तब एक बात स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि जहाँ युग–चेतना का अर्थ अन्य भौतिक क्षेत्र जैसे राजनीति, विज्ञान, अर्थ आदि की अपेक्षा में सीमार्न्तगत मौलिक रूप में ही ग्रहण किया जा सकता है । क्योंकि साहित्य के क्षेत्र में भौतिक क्षेत्रों की तरह शीध्रता से गति, विकास और परिवर्तन नहीं हो सकता । साहित्य सर्जन की प्रक्रिया जटील और गंभीर है । साहित्य का सीधा सम्बन्ध मानव समाज और उसके साथ जुड़े हुए सत्यों के साथ होता है । साहित्य मानव समाज और उसके जीवन–मूल्यों के साथ गहराई के साथ जुड़ा हुआ होता है । साहित्य का सीधा सम्बन्ध हमारे तथ्य–जगत से होने के कारण ही वह नये तथ्यों के आगमन के साथ परिवर्तन की प्रक्रिया के प्रारंभ में वह पुराने को साथ लेकर चलता है । क्रमशः ही उसमें परिवर्तन होता देखा जा सकता है । अन्य भौतिक क्षेत्रों में युग परिवर्तन के साथ ही चेतना में भी शीध्रता से परिवर्तन हो जाता है । यह साहित्य के क्षेत्र में संभव नहीं है ।

साहित्य के क्षेत्र में युग–चेतना साहित्यकार की वह मानसिकता है जो समय के अनुरूप वैचारिक स्तर पर उभरती है । किन्तु, यहाँ एक और बात भी दृष्टि में आती है कि एक ही समय या एक ही कथ्य को अलग–अलग रचनाकार अपनी वैचारिकता के आधार पर अलग–अलग रूप में प्रस्तुत करता है । क्योंकि चेतना रचनाकार की निज स्वतंत्र अनुभूति हुआ करती है ।

साहित्यकार की शिक्षा, संस्कार, अनुभव, दर्शन आदि का प्रभाव एक–दूसरे से अलग–अलग होता है । इस स्वतंत्र प्रभाव के कारण ही समय के एक ही कथ्य पर लेखनी चलाने वाले अलग–अलग साहित्यकारों की चेतना, विचारधारा या दृष्टिकोण अलग–अलग हो सकते हैं और होते भी है । अतः ''वास्तविकता यह है कि युग–चेतना का कोई सुनिर्दिष्ट प्रतिमान नहीं होता, क्योंकि एक ही युग विशेष में भिन्न–भिन्न व्यक्तियों की चेतना अलग–अलग हो सकती है और होती है ।''[29]

साहित्य में साहित्यकार का व्यक्तित्व समाहित रहता है । इसी कारण प्रत्येक साहित्यकार का कृतित्व उसके व्यक्तित्व के अनुरूप अलग विशिष्टता एवं महत्ता से मंड़ित होता है । अतः यह देखा जाता है कि – ''एक ही युग, देश और वातावरण में रहते हुए भी हर एक साहित्यकार के कृतित्व की अपनी अलग विशेषताएँ होती है और निजीपन होता है । उसकी प्रेरणा–भूमि, अनुभव और चिंता–प्रणाली बिलकुल किसी दूसरे की तरह नहीं होती ।''[30] तथा ''साहित्यकार का बोध और उसकी अभिव्यक्ति की प्रक्रिया भी सामान्य से पृथक होती है । साहित्यकार अवबोधित यथार्थ को कृति में रूपायित करता है । साहित्यिक कृति सामाजिक, वैयक्तिक और विशिष्ट होती है, कारण कृति का मूल बोध समाज से अभिन्न है, उसकी मूल प्रेरणा और सन्दर्भ समाज से गहरी जुड़ी होती है । कृति का विशिष्ट सन्दर्भ यह है कि उसमें रचनाकार विशेष की संवेदना, दृष्टिकोण, कल्पना, संस्कार और सौन्दर्यबोधी दृष्टि का समावेश होता है । साहित्यकार की संवेदनाशीलता, कल्पनाशक्ति और व्यक्तित्व से सामाजिकबोध सत्कारित होता है । साहित्यकार की संवेदनशेलता और कल्पना के कारण ही हर साहित्यिक कृति विशिष्ट होती है । एक ही कथ्य पर दो अलग–अलग रचनाकारों की कृति एक–दूसरे से अलग और विशिष्ट होने के कारण यही है ।''[31]

प्रत्येक रचनाकार अपनी निजी वैचारिकता के स्तर पर युग विशेष की स्थिति को समझने की और उसे अपनी रचनाओं में चित्रित करने का प्रयास करता है । साथ ही वह अपनी वैचारिकता के आधार पर उसे बदलने की

कोशिश भी करता है । तो कभी–कभी यह भी देखने में आया है कि रचनाकार स्वयं भी युग–चेतना के प्रभाव में आकर अपनी निज–चेतना में परिवर्तन ले आता है । हिन्दी साहित्य के इतिहास पर दृष्टि करने से यह बात स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है । उदाहरण के रूप में प्रेमचंदजी का साहित्य जो पहले गांधीवाद और आदर्शवादी विचारधारा से प्रभावित रहा । किन्तु बदलती परिस्थिति विशेष में यह यथार्थवादी विचारधारा को अपनाता नज़र आता हैं ।

समय के परिवर्तन के साथ–साथ साहित्यकार की वैचारिकता और अनुभूति में आये बदलाव से युग–चेतना भी परिवर्तित होती है । प्रत्येक युग की अलग–अलग चेतना होती है और युग के परिवर्तन के साथ–साथ अपना स्वरूप बदलती रहती है । प्रत्येक युग के साहित्य में तत्कालीन समय की परिस्थितियाँ स्पष्ट प्रतिबिंबित होती है । क्योंकि रचनाकार अपनी कृतियों में युगीन–जीवन को व्यक्त करते हुए अपने सामाजिक परिवेश के अनुरूप अपनी वैचारिकता के आधार पर एक स्वस्थ चिंतन, बोध या दृष्टि को अपनी रचना में स्पष्ट करता है । यह रचनाकार की विचारधारा जो युग के जीवन से प्रभावित और प्रसारित रहती है, वस्तुतः 'युग–चेतना' से संयुक्त कहलाती है । और यह वैचारिकता, बोध, या दृष्टि साहित्य में 'युग–चेतना' के नाम से अभिधान धारण करती है ।

अतः स्पष्ट है कि युग–चेतना का स्वरूप अत्यंत परिवर्तनशील और विस्तृत है । यह देश–काल और अन्य विभिन्न परिस्थितियों से प्रभावित होती है । इसमें भाव और कला पक्ष दोनों की अभिव्यंजना होती है । युगानुरूप संपूर्ण क्रिया–कलापों की चेतना या व्याख्या युग–चेतना में सन्निहित है । इसलिए तद्विषयक युगीन मान्यताएँ, परिस्थितियाँ अपने सभी अच्छे–बुरे, सत्य और असत्य रूपों को इसके अन्तर्गत प्रस्तुत किया जा सकता है । साथ ही युग–चेता रचनाकार अपने साहित्य के माध्यम से अपने अनुभवों द्वारा अपने युग की परिस्थितियाँ मान्यताएँ, वैचारिकता आदि को निरूपित करते हुए अपना मत प्रदर्शित करता है । साथ ही वह युग–चेतना को व्यक्त करते हुए

मार्गदर्शक के रूप में समाज का पथ प्रदर्शन भी करता है । इसे ही साहित्यकार की युग–चेतना कहीं जायेंगी ।

निष्कर्षतः युग–चेतना से अभिप्राय है युग–विशेष की सामाजिक, वैयक्तिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, दार्शनिक आदि मान्यताओं के प्रति साहित्यकार की सजगता और तीव्रता जिसे वह अपनी वैचारिक निजता के साथ साहित्य में अभिव्यक्त करता है । यह अति महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इसका प्रभाव तत्कालीन युग के साथ आनेवाले युग को भी परिचालित करने में अपनी सक्षम भूमिका निभाता है ।

➢ *युग–चेतना और युगबोध*

'युग–चेतना' के अर्थ में कई बार 'युग–बोध' 'युग–दृष्टि' आदि शब्दों का प्रयोग भी सामान्यतः हो रहा है । किन्तु, 'युग–चेतना' और 'युग–बोध' जो सामान्यतः समानार्थी लगते है, दोनों एक–दूसरे से भिन्न है । 'चेतना' का सम्बन्ध स्मरण, बुद्धि, या कहे तो मस्तिष्क से सम्बन्धित शक्ति से किया जाता है । किन्तु 'बोध' का अर्थ ज्ञान या जानकारी से हैं । 'बोध' को अंग्रेजी में सेंस (Sense) कहते हैं । इसे हिन्दी में 'ज्ञान या जानकारी'[32] के अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है । 'चेतना' का सम्बन्ध चित से हैं और बोध का सम्बन्ध ज्ञान से हैं । इस दृष्टि से चेतना का सम्बन्ध हृदय और मस्तिष्क की गहराईयों को स्पर्श करने में सक्षम शक्ति से हैं । और बोध का सम्बन्ध विमर्श शक्ति से हैं जो विवेक तथा बुद्धि से नियत है ।

चेतना और बोध का प्रभाव तत्कालीन साहित्य पर अवश्य परिलक्षित होता है । अपने युग विशेष के विषय में साहित्यकार जो अनुभव करता है उस अनुभव को वह अपनी रचनाओं में अभिव्यक्त कर देता है । समाज की सत्य और असत्य, अच्छी और बुरी दोनों प्रकार की घटनाएँ और स्थितियों को सचेता साहित्यकार अपनी रचना में अभिव्यक्त कर देता है । जिसे तत्कालीन युग के निरूपण की संज्ञा दी जा सकती है । समाज की अहितकर घटनाओं

की भी वह आलोचना और प्रत्यालोचना करता है तथा इसके माध्यम से युग को प्रेरणा और सन्देश देता है ।

सद्दृष्टा साहित्यकार अपनी रचनाओं में युग बोध और युग–चेतना का यर्थाथरूप में निरूपण करने में समर्थ होता है । वह भावी युग के लिए तत्कालीन युग से चेतना और बोध प्राप्त कर भावी निर्माण करने में और आनेवाले युग को एक नयी और सही दिशा देते हुए उसे सक्षम बनाने का प्रयत्न करता है । परिणामतः किसी भी युग के नव–निर्माण में सहायता प्राप्त होती है । प्रत्येक युग की अभिव्यक्ति के लिए साहित्यकार साहित्य की अलग–अलग विद्याओं को अपनाता है । साथ ही प्रत्येक युग का भावपक्ष और कलापक्ष भी अपनी विशेष पहचान लिए हुए होते हैं ।

इस प्रकार युग–बोध और युग–चेतना की अभिव्यक्ति साहित्य में प्रबल रूप से अनिवार्य होती है । 'युग–चेतना' के अंतर्गत साहित्यकार का मस्तिष्क और हृदय दोनों चलते हैं । परिणामतः वह अपनी रचनाओं में तत्कालीन युग की अच्छाईयों को निष्कर्ष रूप में अभिव्यक्ति करते हुए बुराईयों से दूर रहने की प्रेरणा देता है । साहित्य में साहित्यकार की युग–चेतना अत्यंत प्रबल रूप से क्रियाशील होती है और ''युग–बोध में साहित्यकार मात्र युग का बोध ही करता है, उसकी आलोचना और प्रत्यालोचना प्रस्तुत नहीं करता । वास्तव में 'युग–बोध' प्रथम सोपान है जिसके बाद ही मनुष्य युग–चेतना के सोपानों पर पद–निक्षेप कर पाता है । यदि किसी भी वस्तु का बोध नहीं होता तो उसके विषय में विभिन्न ज्ञान मनुष्य प्राप्त ही नहीं कर सकता है । 'बोध' का सम्बन्ध बुद्धि से होता है । किसी भी युग की विभिन्न घटनाओं को साहित्यकार अपने ज्ञान चक्षु खोलकर देखता है । यही उस युग का 'युग–बोध' है । 'युग–बोध' परम शिव की ओर अग्रसरित करता है । यह ऐसी प्रक्रिया है जिससे दृष्टि एवं बुद्धि की क्रियाशीलता अभिव्यक्त होती है । यह किसी विशेष युग की क्रियाशीलता का बोध कराने में सक्षम है ।''[33]

इस प्रकार स्पष्ट है कि युग–बोध को पहचान कर ही युग–चेतना तक पहुँचा जा सकता है । दूसरे शब्दों में कहे तो युग बोध समाजिक परिवेश से

सम्बन्धित होता है और इसको जानने के पश्चात ही साहित्यकार की चेतना क्रियाशील होती है । युग–चेतना और युग–बोध दोनों ही साहित्य के महत्त्वपूर्ण पहलू है । क्योंकि ''यदि 'युग–बोध' और 'युग–चेतना' की प्रक्रिया न होती तो समाज में विभिन्न क्रान्तियाँ संभव न होती । समाज के अनेक प्रकार के अवरोधों का बोध कराके साहित्यकार अपने साहित्य के माध्यम से आलोचना–प्रत्यालोचना प्रस्तुत करता है । जिसे ध्यान में रखकर सामाजिक नियम निर्धारित किए जाते हैं । फलस्वरूप समाज की अकल्याणकारी प्रवृत्तियों का विरोध होता है । इन अर्थो में 'युग–बोध' और 'युग–चेतना' के द्वारा समाज में उस युग से सम्बन्धित स्वस्थ परम्पराएँ स्थापित होती है ।''[34]

➢ *युग–चेतना और आधुनिकता*

'युग–चेतना' और 'आधुनिकता' दोनों एक दूसरे से निकट है । किसी भी युग की आधुनिकता 'युग–चेतना' से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकती । आमतौर पर आधुनिकता शब्द अंग्रेजी के मार्डर्निटी (Modernity) का हिन्दी अनुवाद माना जाता है । हिन्दी में आधुनिकता सम्बन्धी विचारों की व्याख्या करते समय अधिकांश आलोचक इसे मार्डनिज्म (Modernism) शब्द से मिलाने का प्रयास करते हैं । मार्डर्निटी (Modernity) और मार्डनिज्म (Modernism) दोनों का सम्बन्ध मार्डन (Modern) से होने के कारण यह भ्रम होने लगता है । लेकिन यह मार्डनिजम आधुनिकतावाद का पर्याय नहीं है । वस्तुतः मार्डनिटी आधुनिकता एक विचारधारा मानी जा सकती है । अतः ''आधुनिकता मानसिक प्रत्ययों तथा सामाजिक रहस्यों को समझाती तथा विश्लेषित करती है ताकि विशेष देशकाल के सन्दर्भ में मनुष्य सचते एवं परंपरामुक्त होकर परिवर्तन भी कर सके । वास्तव में आधुनिकता में सिद्धांत एवं व्यवहार का संयोग है ।''[35] अतः आधुनिकता शब्द विशेषण और काल दोनों के लिए समानरूप से प्रयुक्त होता है । इस सन्दर्भ में यह कहना समीचीन होगा कि आधुनिकता एक बौद्धिक प्रक्रिया होने के साथ–साथ एक अन्वेषण भी है । इस प्रकार हम कह सकते हैं कि आधुनिक शब्द एक शोधपूर्ण बौद्धिक प्रक्रिया है । दूसरे शब्दों

में आधुनिकता विभिन्न प्रभावों से उत्पन्न एक चेतना है जिसको निरन्तरता के अन्तर्गत रखा जा सकता है ।

समय की गति में कहीं कोई विराम नहीं है । आज हम जिस क्षण का अनुभव कर रहे है, उसका बीज अतीत के क्षण में छिपा रहता है और प्रत्येक युग का समाज अपने समय की आधुनिक स्थिति और प्रवृत्ति से जूझता रहता है । इस तरह आगत विगत को चुनौती देता रहा है, अतीत की कल में साझेदारी रहती है और आने वाला कल आज से संबल प्राप्त करता है । अतः प्रत्येक युग अपने युग में आधुनिक होता है । क्योंकि हर युग में नयी–नयी परिस्थितियाँ होती है और इसके परिणाम स्वरूप नयी–नयी समस्याओं का जन्म होता रहा है और उसके समाधान के लिए नये रास्तों का अन्वेषण होता रहता है । बौद्धकाल आज प्राचीन हो गया परन्तु निश्चित रूप से अपने युग में वह आधुनिक रहा होगा । कबीर, तुलसी, प्रेमचंद और जयशंकर प्रसाद आज पुराने कहे जायेंगे पर निश्चित रूप से अपने समय में वे आधुनिक थे । फिर भी कबीर तुलसी की तुलना में अधिक आधुनिक थे, क्योंकि तुलसी की अपेक्षा कबीर में आधुनिक चेतना अधिक थी । कबीर अपने विचार जितनी निर्भीकता से प्रस्तुत करते थे तुलसी नहीं कर सकते थे । इस प्रकार अगर प्रेमचंदजी और 'प्रसाद' जी की तुलना की जाय तो प्रेमचंदजी 'प्रसाद'जी से अधिक आधुनिक सिद्ध होते हैं । उनकी 'कफन' कहानी और 'गोदान' उपन्यास इसके प्रमाण हैं ।

अतीत का अन्वेषण ही आधुनिकता का विशेष गुण है, साधारणः बीते हुए से उसकी प्रवृत्ति विद्रोहात्मक होती है । आधुनिक मनुष्य प्राचीन परम्पराओं, सामाजिक प्रारूपों एवं सांस्कृतिक सम्बन्धों को अस्वीकृत कर, उसे नवीन रूप देता है, वह अपने समय से संघर्ष करता है, उससे जूझता है और अपने लिए सार्थक की रचना करता है । इस तरह आधुनिक होने के लिए प्रगतिशील चेतना आवश्यक है । यह दावा करना कि आज का मनुष्य ही मात्र आधुनिक है, कल का नितान्त अ–आधुनिक था तो यह बेमानी की बात है । क्योंकि हर युग आधुनिक मनुष्य को जन्म देता रहा है और हर युग अपने युग में

आधुनिक रहा है । डॉ. रमेश कुन्तल मेघ के अनुसार – ''आधुनिक होना आधुनिक मनुष्य का ही एकाधिकार नहीं रह जाता क्योंकि आधुनिक मनुष्य (अर्जुन, कोटिल्य, कबीर) भी हुए हैं और इसके पहले भी आधुनिक युगों की कौंध हुई है ।''[36] आधुनिक मनुष्य समय की गति के साथ कदम से कदम मिलाता हुआ अपने युग के पूर्ववर्ती मूल्यों से टकराता ही है, अपने समय से भी टकरता है । इस तरह आधुनिक शब्द काल विशेषण और नूतन विचार के अर्थ का द्योतक है ।

आधुनिकता प्रचलित मूल्यों और मर्यादाओं को नई दृष्टि देने में निहित है । वह रूढ़ियों और गत परंपराओं को त्यागकर नई स्थापनाएँ प्रतिष्ठित करती है । वह बौद्धिक जागरूकता के आधार पर रूढ़ियों के समक्ष विद्रोह के रूप में उपस्थित होती है । इसलिए आधुनिकता देश–काल सापेक्ष होते हुए भी उसके बंधन में पूर्णतः नहीं बांधी जा सकती । प्रत्येक देश एवं काल में आधुनिकता का यह शाश्वत क्रम रहा है, फिर भी परिस्थितियों एवं समय के अनुसार आधुनिकता के स्वरूप में परिवर्तन होता रहेता है ।

आधुनिकता किसी काल का विरोध नहीं करती । यह अतीत का पुनर्निर्माण करती है । विगत काल के परिवर्तन–हेतु आधुनिकता का उन्नयन होता है । आधुनिकता यथार्थ को प्रस्तुत करने में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान देती है । ''आधुनिकता यथार्थ के अधिक निकट है ... आधुनिकता के बारे में यह भी कहा जाता है कि यथार्थ की नकल करने के बजाय कैसे यथार्थ प्रकट होता है, यह उसकी खोज है ।''[37] आधुनिकता की यह यथार्थमय दृष्टि इसे प्रखरता प्रदान करती है । आधुनिकता का रूढ़ियों से कोई सम्बन्ध नहीं है । यह धार्मिक अन्ध–विश्वासों, समाजगत रूढ़ियों का विरोध करती है क्योंकि आधुनिकता वैज्ञानिक और बौद्धिक दृष्टिकोण का दूसरा रूप है । यह निरंतर गतिशील रहती है । इस प्रकार आधुनिकता नयी परिस्थितियों के अनुरूप अपने आपको संस्कार प्रदान करती है ।

अतः स्पष्ट है कि आधुनिकता का स्वरूप युग–चेतनानुसार परिवर्तित होता रहता है । युग के परिवर्तन के साथ ही चेतना के अनेक रूप दृष्टिगत

होते हैं । चेतना जिस मात्रा में होगी उसी मात्रा में आधुनिकता का निर्माण होगा । निष्कर्षतः आधुनिकता विशेषतः नवीनता पर आधारित है और युग–चेतना इसे संस्कार प्रदान करती है ।

➢ *युग–चेतना और जीवन मूल्य*

मानव जीवन विविध मूल्यों द्वारा आलोड़ित है । जीवन और मूल्य एक–दूसरे से युग–चेतनारूप जुड़ते रहे हैं । जीवन–मूल्यों में युग की स्थितियों के साथ–साथ बदलाव होता है । युग–चेतना और जीवन–मूल्य का सहसम्बन्ध समाज की संस्थापना के साथ ही हुआ है ।

'मूल्य' शब्द संस्कृत की मूलधातु में 'यत' प्रत्यय लगाने से बना है । सामान्यतः जिसका तात्पर्य किसी वस्तु का मूल्य या कीमत रहा है । इस प्रकार किसी वस्तु के विनिमय में दिये गये रुपया या धन से इसका अर्थ लीया जाता है । 'मूल्य' को अंग्रेजी में 'Value' कहा जाता है । इसका अर्थशास्त्र से सम्बन्धित अर्थ है प्रचलित मूल्य (Value in use) अथवा विनिमय दर (Value in exchange) । 'मूल्य' शब्द अर्थशास्त्र में Cost के अर्थ में भी प्रयुक्त किया जाता है ।

किन्तु साहित्य में 'मूल्य' का अर्थ अर्थशास्त्र का सीमित अर्थ नहीं है । यहाँ इसे मानव–जीवन के साथ जोड़ दिया गया है । अतः यहाँ मूल्य का प्रयोग मानवधारणा या मानवदण्ड के अर्थ में भी अभिव्यक्त होने लगा है । अब 'मूल्य' की कल्पना मानव अस्तित्व को उसके पूर्णरूप में स्वीकृत किये बिना संभव नहीं है । विशेषज्ञों ने मूल्यों का तात्त्विक विश्लेषण करते हुए इस बात का निर्देश किया है कि आन्तरिक मूल्य वस्तु आश्रित न होकर मानवीय इच्छा, आकांक्षा एवं परितोष के आश्रित होती है । मानव–मूल्य को व्याख्यायित करने के लिए डॉ. वासुदेव शर्मा का यह कथन उद्धरणीय है – '' 'मूल्य' मानव समाज के आदर्श से सम्पृक्त होने के कारण ये मानव जीवन के मानदण्ड हैं, जो हमारे अनुभवों, विचारों तथा चिंतनों को संयमित करते हैं । 'मूल्य' एक जीवन जीने का दृष्टिकोण है । तरीका है । आज मूल्यों को

विविध रूपों में स्वीकार किये जाने के कारण इसकी परिभाषा अत्यन्त व्यापक और जटिल हो गयी है । आज के परिवेश में इसका प्रयोग दर्शनशास्त्र, समाजशास्त्र, नीतिशास्त्र, विज्ञानशास्त्र, अर्थशास्त्र, मनोविज्ञानशास्त्र, आध्यात्मिक आदि में होने के कारण बहुमुखी हो गया है । इसे किसी एक बिन्दु तक केन्द्रित नहीं किया जा सकता है । इस प्रकार 'मूल्य' एक ऐसी चिन्तन में उपयोगी आन्तरिक मूल्यानुभूति है, जो व्यक्ति विशेष की आकांक्षाओ, आवश्यकताओं, अभिलाषाओं, संवेदनाओं, महत्त्वकांक्षाओं, आदि की पूर्ति का लक्ष्य है । यही कारण है कि मूल्य व्यक्ति के अभावों, अभिलाषाओं, मनोवृत्तियों एवं तज्जनित तनावों से उत्पन्न उद्देश्यों की पूर्ति करता है । ये वैचारिक इकाई है जो हमारे शुभ–अशुभ कार्यो की पहचान में सहायता करते हैं । 'मूल्य' व्यक्ति को नियंत्रण ही नहीं करते हैं, अपितु उसके व्यक्तित्व की संरचना भी करते हैं ।"[38]

विशेष अर्थ में मानव मूल्यों का तात्पर्य उन मूल्यों से है, जो मानव के आंतरिक सहज स्वरूप के सबसे निकट प्रकट होते हैं, तथा उसके संवेदनात्मक व्यक्तित्व से सबसे अधिक सीधे और गहन रूप से सम्बन्ध हैं । उनकी विशेषता इसी में है कि मानवीय संवेदनाओं की उनमें मुक्त स्वीकृति होती है । जीवन में उन मूल्यों की प्रतिष्ठा का अर्थ मानवता एवं मानवीयता की प्रतिष्ठता है । उसके बिना मानव अस्तित्व निरर्थक है ।

'मूल्य' मानव जीवन को स्थायी ही नहीं बनाता है बल्कि उसे अन्य अनेक महत्त्वपूर्ण उपादानों से उत्कृष्ट भी करता है । जिसके बल पर सामाजिक व्यवस्था संचालित होती है । " 'मूल्य' समाज के जीवन को व्यवस्थित एवं सुशासित करता है । यह सामाजिक, धार्मिक तथा नैतिक व सांस्कृतिक पक्षों की आधारशीला है जो हमारे कार्यो कलापों, व्यवहारों तथा सामाजिक व्यवहारों को मर्यादित करता है । यह मानसिक तथा वैचारिक एक ऐसी इकाई है जिसका झुकाव मानव से समाज की ओर होता है, जिसके साथ हमारा मानसिक सम्बन्ध होता है । जिसके माध्यम से हम शुभ–अशुभ, सत्–असत, औचित्य और अनौचित्य का निर्णय करते हैं । इससे समाज सुसंगठित एवं व्यवस्थित तो

होता है साथ ही व्यक्ति भी विकास की ओर उन्मुख होता हुआ शान्ति, सुख आदि का अनुभव करता हैं । 'मूल्य' मानवीय जीवन के ऐसे लक्ष्य है, दृष्टिकोण है जो समाज द्वारा स्थापित किये जाते हैं जो प्रत्येक व्यक्ति के लिए मान्य है ये अदृश्य रूप में कार्य–कलापों तथा विचारों को संचालित और संयमित करते हैं ।"[39]

'मूल्य' की जीवन में महत्ता को देखकर साहित्य में मूल्यों का समावेश सहज बात है । साहित्य में वही मानव–मूल्य समाविष्ट एवं प्रतिबिम्बित हो जाते हैं जिन्हें साहित्यकार अपने परिवेश में पाता है । जो उसके संवेदनशील व्यक्तित्व का अविभाज्य अंग बन जाता है । ऐसे मानव–मूल्य सहज रूप में साहित्य और कला में संश्लिष्ट होकर व्यक्त होते हैं तथा आरोपित प्रतीत नहीं होते । इसे ही साहित्य के माध्यम से उपलब्ध मानव–मूल्य कहा जा सकता है ।

मानव–विवेक एवं विश्लेषण–शक्ति जीवन–मूल्यों के उद्घोषक है । अतः "मानव–चेतना सर्वहिताय प्रयत्नशील है । आधुनिक खण्डित मानव–चेतना को ऐक्य की सीमा में युगानुरूप आबद्ध करना जीवन–मूल्य का लक्ष्य है । परिवेशगत एवं परिस्थितिगत विघटित व्यक्तित्व में सौष्ठवता का संचरण मानव–मूल्यों द्वारा ही संभव है । उदार, व्यापक एवं मानवतावादी भावनाओं को विश्व–मंच पर प्रतिस्थापित करना अति आवश्यक है । एतदर्य युगानुरूप चेतना–समन्वित जीवन–मूल्यों की प्रतिस्थापना लाभकारी है ।"[40] इस प्रकार युग–चेतना और जीवन मूल्य–दोनों का अत्यंत निकट का सम्बन्ध है ।

❀ युग–चेतना और साहित्यकार की प्रतिबद्धता

किसी भी युग की चेतना से उस युग का साहित्यकार अवश्य प्रभावित होता है । इसलिए युग का प्रतिबिम्ब साहित्य में प्राप्त होता है । इसका अर्थ है कि साहित्यकार युग–चेतना से कटकर नहीं चल सकता उसे किसी न किसी रूप में इसे साथ लेकर ही चलता है । साहित्य और युग–चेतना एक–दूसरे से अभिन्न रूप से जुड़े हुए होते हैं; क्योंकि युगचेता साहित्यकार अपने साहित्य में

तत्कालीन युग–चेतना का प्रस्तुतीकरण आवश्यक नहीं अनिवार्य मानता है । युग–चेतना की अभिव्यक्ति किये बिना साहित्यकार अपनी कृति को युग–प्रतिनिधि रचना के रूप में प्रस्तुत नहीं कर सकता । क्योंकि समाज के अन्तर्गत अनेक प्रकार कें भावों और विचारों का प्रसारण होता हैं । ये भाव और विचार समाज में गतिशील रहते हैं । साहित्य इनके प्रसार का एक सशक्त माध्यम है ।

अपने युग के कार्य–कलाप, व्यवहार तथा आचरण साहित्य में रेखांकित होता रहता है । साहित्य तत्कालीन युग की परिस्थितियों की योग्यता–अयोग्यता को पहचानता हुआ अपने युग के अनुरूप एक नयी चेतना या दृष्टिकोण का विकास करते हुए समाज को गतिशीलता प्रदान करता है । साथ ही साहित्यकार अपनी संवेदनशीलता और अपनी वैचारिकता के आधार पर समाज में एक नयी चेतना के संचार द्वारा वह समाज का पथ–प्रदर्शन तो करता ही है साथ ही साथ पुरानी परंपरा, रुग्ण मान्यताओं को तोड़कर एक नयी दृष्टि प्रदान करता हुआ वर्तमान के साथ भविष्य को संवारने का प्रयास भी करता है ।

यह स्पष्ट है कि साहित्य का सम्बन्ध मूलतः अपने युग के मानव समाज के आंतरिक सत्यों और संवेदनाओं के साथ होता है । जब साहित्यकार मानव के भीतरी या बाहरी जगत को स्पर्श करता है तब वह किसी भी साहित्यकृति का विषय बन जाता है । साहित्यकार द्वारा चित्रित समाज का चित्र ही युग चित्र बन जाता है, जो सर्जक की युग–चेतना की ही देन है । युगचेता रचनाकार की रचना में अपने समाज में प्रसारित घड़कन स्पष्ट सुनायी देती है । शाश्वत साहित्य के रूप में वहीं साहित्य समाज में स्वीकृत होता है जिस में अपने युग का प्रतिबिंब स्पष्ट दिखाई दे रहा हो । युग–चेतना से बद्ध साहित्य समाज के मानदंड का आधार बन गये हैं । इसलिए तत्कालीन युग–चेतना का प्रस्तुतीकरण साहित्य का एक अविभाज्य अंग माना गया है ।

साहित्य न विज्ञान है न इतिहास : वास्तव में साहित्य सामाजिक पृष्ठभूमि में युग–चेतना के दर्पण से प्रतिबिंब होने वाला चित्र है । जिसमें समाज वास्तविक स्वरूप में प्रस्तुत होता है । समाज साहित्य को क्लेवर प्रदान

करता है और साहित्यकार अपने साहित्य द्वारा समाज को एक नयी गति, दिशा और वैचारिकता प्रदान करता है । इस प्रकार समाज, साहित्य और युग–चेतना का सम्बन्ध भी सहज माना जा सकता है । ‘‘साहित्य और समाज के संबंध में परस्पर प्रगाढ़ता लाने का श्रेय युग–चेतना को हैं ।’’[41] और ‘‘साहित्यकार साहित्य के माध्यम से समाज से जुड़ा रहता है । युग–चेतना इन्हें ऐक्य की छोर तक पहुँचाती ही नहीं वरन् एक–दूसरे में घुला–मिला देती है । सच पूछा जाय तो युग–चेतनानुरूप अभिव्यक्ति के प्रति साहित्यकार प्रतिबद्ध होता है । साहित्य एक ओर समाज को प्रभावित करता है और दूसरी ओर समाज से प्रभावित होता है । साहित्यकार भी इसी तरह दोनों मार्गो का अनुसरण करता है । दोनों एक दूसरे के साध्य एवं साधक है ।’’[42]

साहित्यकार समाज का एक अभिन्न अंग होता है । समाज की एक–एक परिस्थितियाँ उसकी सजग दृष्टि से होकर गुजरती है । इस दृष्टि और अपने दायित्वों के साथ लिखा गया साहित्य सत्यं, शिवं, सुन्दरम् से आपूर्ण होता है और साथ ही यह चिदानन्द्प्रदतक होता है । इस प्रकार के साहित्य का प्रणेता साहित्यकार राग–द्वेष, मोह–माया, अपना–पराया आदि अनेक प्रकार की भावनाओं से बहुत दूर होता है । ऐसे साहित्यकार की चेतना देश एवं कालजयी होती है । वह युगों–युगों से विगलित मान्यताओं को ध्वस्त करता हुआ, देवनदी के समान सबको तृप्त करता हुआ आगे बढ़ता है । इस दृष्टि से साहित्य इतिहास का मात्र अनुगामी न होकर उसका निर्माता होता है । साहित्यकार की साहित्यिक अभिव्यक्तियाँ चिरतीत, सुखकारी एवं उद्देश्य–पूर्ण होती हैं । सच्चा साहित्यकार आदर्श एवं यथार्थ दोनों प्रकार के मूल्यों का प्रतिस्थापक होता है ।

साहित्यकार समाज और मानव मूल्य से प्रभावित रहता है । यहीं से वह अपना कथ्य ग्रहण करते हुए उसे अपनी चेतना द्वारा ग्राह्य रूप में समाज के सामने प्रस्तुत करता है । इस प्रकार स्पष्ट है कि साहित्य का साध्य एवं साधन मानव–मूल्य और समाज है । वह इन दोनों से प्रतिबद्ध होकर ऐसे साहित्य का निर्माण करता है जिसमें – ‘‘युग–चेतना की आभा विद्यमान होती

है । मानव–संवेदना से अनुप्राणित साहित्य के अन्तर्गत मानव–चेतना का अपकर्ष नहीं होता । इस प्रकार के साहित्य में सर्जना जीवनावस्था, संस्कृतिक उत्थान आदि से समन्वित जीवन–मूल्यों का समावेश होता है जो युग–चेतना से प्रभावित होता है ।"[43]

हरेक साहित्यकार के सामने बहुत सी ऐसी समसामयिक परिस्थितियाँ होती है जो एक–दूसरे से विरुद्ध होती है और जिसमें ताल–मेल बेठाना कठिन होता है । सफल साहित्यकार वह है जो इनमें ताल–मेल बैठाकर युग–चेतनानुरूप सर्वहितकारी साहित्य का प्रणयन करता है । वह समाज की प्रत्येक स्थिति के लिए प्रतिबद्ध होकर अपनी रचना में उसका प्रस्तुतीकरण करते हुए उसमें सर्वहिताय की भावना के साथ उसका निराकरण भी करे । क्योंकि साहित्यकार का सम्बन्ध सामाजिक श्रेय से होता है प्रेय से नहीं । इसलिए वह आत्यंतिक मूल्यों का प्रति स्थापक होता है । युग–चेतना का यहीं सर्व हितकारी स्वरूप है ।

साहित्यकार दो प्रकार के व्यक्तियों से परिपूर्ण होता है । उसके व्यक्तित्व का प्रथम रूप सामाजिक–व्यक्ति का रूप है और दूसरा रूप साहित्यकार का है । साहित्यकार होने के नाते वह अपने प्रथम रूप का उपयोग साहित्यिक हित में करता है । इन अर्थो में वह युग–चेता होता है । इसलिए वह युग के यथार्थ को पहचानता हुआ विवेकशील दृष्टि से उसे अभिव्यक्ति प्रदान करता है । वह सचेत, ज्ञानी होने के कारण नवीन जागरण से प्रभावित उसी चेतना के अभिनव मूल्यों का सृजन अपनी रचनाओं में करता है । वह युग–निर्माता के रूप में युग–चेतना का प्रतिस्थापन साहित्य के माध्यम से करता है । इस प्रकार युग–चेतना और साहित्यकार एक–दूसरे से सम्बद्ध होते हैं ।

अतः स्पष्ट है कि साहित्य और समाज के सम्बन्धों में धनिष्ठता लाने का श्रेय युग–चेतना को है । साहित्यकार युग–चेतना को अपने साहित्य–रूपों में कथ्य के माध्यम से व्यक्त करके इसे अधिक स्पृहणीय रूप प्रदान करता है । 'युग–चेतना' साहित्य का प्रमुख उद्देश्य है । अतः सच्चा साहित्यकार युग–चेतन की यथार्थ पृष्ठभूमि से मुँह नहीं मोड़ सकता, वह तत्कालीन

युग–चेतना को छोड़कर सिर्फ कल्पना या आदर्श का चोला पहनकर चलने की कामना नहीं करता वह अपने दायित्व को बराबर समझते हुए तत्कालीन युग–चेतना की अभिव्यक्ति अपने साहित्य में अवश्य करता है । अतः स्पष्ट है कि – ‘‘साहित्य और समाज की दो तिर्यक् रेखा युग–चेतना ही तो हैं । युग–चेतना अपने संपूर्ण वैभव के साथ साहित्य की सामग्री बनती है और साहित्यकार को प्रेरणा प्रदान करती है । साहित्य समाज का श्रेय और प्रेय है । एक ओर तो वह समाज से प्रभावित होता रहता है तथा दूसरी ओर समाज को प्रभावित करता है । साहित्यकार युग–चेतना द्वारा ही अपने साहित्य को सँवारता है ।’’[44]

‘युग’ एवं ‘चेतना’ का सम्बन्ध अटूट है । युग के अनुरूप युग–चेतना एवं युग–बोध का निर्माण होता है । आधुनिकता भी युग–चेतना से प्रभावित होती है । मानव–जीवन के उत्थान में जीवन–मूल्यों का विशेष महत्त्व होता है । जीवनमूल्य समाज में प्रवाहमान होते हैं । साहित्यकार समाज का संवेदनशील, विवेकशील व्यक्ति होने के नाते अपने युग के संपूर्ण क्रिया–कलापों एवं युग–चेतना से अवश्य प्रभावित होता है । युग–चेता साहित्यकार अपने समाज के विकास के लिए प्रतिबद्ध होते हैं । वह अपने साहित्य में युग–यथार्थ के साथ अपनी कल्पना का सम्मिश्रण कर एक आदर्श–कृति का निर्माण करता है । इसलिए उसकी दृष्टि कालबद्ध और कालातीत होती है । युग–चेता रचनाकार अपने समाज का पथ निर्देशक तो होता ही है साथ ही वह भविष्य को भी आलोकित करता है । उसकी यह दृष्टि उसे सार्वभौमिक और कालजयी भी बना देती है । वह सही अर्थो में सामाजिकों से चेतता भी है और उन्हें चेताता भी है । प्रत्येक साहित्य–सर्जक के लिए इसी अर्थ में युग–चेतना अति महत्त्वपूर्ण है ।

संदर्भ सूची :

1 साहित्यिक निबंध – शिवदत शर्मा, सरोजिनी शर्मा P. 19

2 साहित्य का श्रेय और प्रेय – जैनेन्द्र कुमार – P. 20

3 शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धांत – (प्रथम भाग) – डॉ. गोविन्द त्रिगुणाय P.6

4 साहित्य और समीक्षा – गुलाबराय – P.13

5 साहित्य सहचर – हजारी प्रसाद द्विवेदी, P.3

6 चिंतामणी (पहला भाग) – आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, – P.113

7 भारतीय काव्य शास्त्र के सिद्धांत – डॉ. सुरेश अग्रवाल P. 26

8 भारतीय काव्य शास्त्र के सिद्धांत – डॉ. सुरेश अग्रवाल P. 25

9 भारतीय काव्य शास्त्र के सिद्धांत – डॉ. सुरेश अग्रवाल P. 27

10 प्रेमचन्द : कुछ विचार – P. 7

11 जीवन में साहित्य का स्थान (प्रेमचंद) – 'गद्य मंजूसा' – सं. गोविन्द P.11-12

12 जीवन में साहित्य का स्थान (प्रेमचंद) संपादक – गोविन्द P. 9

13 उपन्यास का समाजशास्त्र – बी. डी. गुप्ता, P.18

14 हिन्दी साहित्य : विधाएँ और दिशाएँ, P.13

15 साहित्य स्थायी मूल्य और मूल्यांकन – डॉ. रामविलास शर्मा, P.12

16 हिन्दी बृहत कोश – सं कालिका प्रसाद P. 930

17 विविध बोध नये हस्ताक्षर – डॉ. हुकुमचन्द राजपाल – P. 10

18 'युग और साहित्य' – शान्तिप्रिय द्विवेदी P. 20

19 रांगेय राधव के उपन्यास में युग चेतना – डॉ. वैश्य P. 23

20 बृहत हिन्दी कोश – कालिका प्रसाद P. 384

21 हिन्दी साहित्य कोश (भाग–१) – डॉ. धीरेन्द्र वर्मा P. 319

22 हिन्दी विश्वकोश (खंड़–४) डॉ. रामप्रसाद त्रिपाठी P. 282

23 छायावादी काव्य में राष्ट्रीय चेतना – रवीन्द्रनाथ दरगन P. 120

24 साठोत्तरी हिन्दी कहानी : मूल्यों की तलाश – डॉ. वासुदेव शर्मा P. 77

25 भगवती चरण वर्मा के उपन्यास में युग–चेतना, डॉ. बैजनाथ प्रसाद शुक्ल – P. 6

26 हिन्दी विश्वकोश (खंड़–४) डॉ. रामप्रसाद त्रिपाठी P. 282

27 भगवती चरण वर्मा के उपन्यास में युग–चेतना, डॉ. बैजनाथ प्रसाद शुक्ल – P. 7

28 प्रसाद साहित्य में युग–चेतना – लीलावंती देवी गुप्ता P. 26

29 हिन्दी उपन्यास : युग चेतना और पाठकीय संवेदना – डॉ. मुकुन्द त्रिवेदी P. 1

30 मोहन राकेश का साहित्य : समग्र मूल्यांकन – डॉ. सुरेशचन्द्र चुलकीमठ P. 11

31 मोहन राकेश की कहानियों में आधुनिक बोध – डॉ. सदनकुमार पाल P. 19

32 प्रामाणिक हिन्दी कोश – आचार्य रामचन्द्र वर्मा P. 610

33 प्रसाद साहित्य में युग–चेतना– डॉ. लीलावंती देवी गुप्ता P. 28

34 प्रसाद साहित्य में युग–चेतना– डॉ. लीलावंती देवी गुप्ता P. 29

35 आधुनिक खण्ड़ काव्य में युग चेतना – डॉ. एन. डी. पाटील P. 27

36 आधुनिक बोध और आधुनिकीकरण – डॉ. रमेशकुन्तल मेघ P. 56

37 आधुनिकता के पहलू – विपिन कुमार अग्रवाल P. 28-29

38 साठोत्तरी हिन्दी कहानी : मूल्यों की तलाश – डॉ. वासुदेव शर्मा P. 13

39 साठोत्तरी हिन्दी कहानी : मूल्यों की तलाश – डॉ. वासुदेव शर्मा P. 14

40 प्रसाद साहित्य में युग–चेतना– डॉ. लीलावंती देवी गुप्ता P. 44

41 भगवती चरण वर्मा के उपन्यासो में युग चेतना, डॉ. बैजनाथ प्रसाद शुक्ल P.5

42 प्रसाद साहित्य में युग–चेतना– डॉ. लीलावंती देवी गुप्ता P. 45

43 प्रसाद साहित्य में युग–चेतना– डॉ. लीलावंती देवी गुप्ता P. 46

44 रांगेय राघव के उपन्यासों में युग चेतना– डॉ. वैश्य P. 30

***

द्वितीय - अध्याय
मोहन राकेश : जीवनी और वाङ्गमयी व्यक्तित्व

२.१ भूमिका

२.२ मोहन राकेश की जीवनी

- ❀ जन्म और प्रारंभिक परिवेश
- ❀ नाम परिवर्तन की प्रकिया
- ❀ व्यक्तित्व निर्माण में माता–पिता और परिवार की भूमिका
- ❀ सोलह साल की उम्र में
- ❀ दो घटनाएँ
- ❀ शिक्षा–दीक्षा
- ❀ निरंतर बदलता कार्यक्षेत्र
- ❀ अभिशप्त वैवाहिक जीवन
- ❀ *बाह्य व्यक्तित्व*
- ❀ *अंतर्विरोधी व्यक्तित्व*
- ❀ *राकेशजी का ईगो - अहं और आवेश*
- ❀ *जिन्दादिली और आत्मसम्मान*
- ❀ *विद्रोही, स्वच्छंद और अपनी तरह ज़िन्दगी जीने के कायल*
- ❀ *भावुकता और संवेदनशीलता*
- ❀ *स्वभाव और रुचियाँ*
- ❀ *घर की तलाश*
- ❀ *तीन कमिटमेंटस*
- ❀ *आखरी शाम*

२.३ मोहन राकेश का वाङ्मयी व्यक्तित्व

- *कहानीकार मोहन राकेश*
- *उपन्यासकार मोहन राकेश*
- *नाटककार*
- *एकांकी एवं अन्य नाटय साहित्य*
- *निबंध और लेख*
- *जीवनी*
- *डायरी*
- *अनुवाद*
- *यात्रा–वृत्तांत*
- *रूप और रूपांतर*

द्वितीय अध्याय
मोहन श्चकेश : जीवनी औश्च
वाङ्मयी व्यक्तित्व

२.१ भूमिका

इस अध्याय के अन्तर्गत हमारा तात्पर्य मोहन राकेश के जीवन सम्बन्धी तथ्यों को प्रकाश में लाना तो है ही, पर साथ ही राकेशजी के साहित्यिक व्यक्तित्व पर जिन–जिन परिस्थितियों ने प्रभाव छोड़ा है, उन पर भी दृष्टिक्षेप करना रहा है । इस दृष्टि से इस अध्याय के अन्तर्गत राकेशजी के जीवन सम्बन्धी प्रमुख तथ्यों को रेखांकित करने का प्रयास किया जा रहा है, जो राकेशजी के अंतर्विरोधी व्यक्तित्व के निर्माण में महत्त्वपूर्ण रहे है ।

हिन्दी साहित्यकारों में मोहन राकेश अपने अनूठे व्यक्तित्व और कृतित्व के लिए विशेषरूप से प्रसिद्ध हैं । उनके अंतर्विरोधी व्यक्तित्व को लेकर सभी उनकी अलग–अलग इमेज बनाते हैं । राकेशजी के व्यक्तित्व के विषय में गोविन्द चातक लिखते हैं – ''निराला के बाद हिन्दी साहित्य में जिस आदमी के चारों ओर सबसे ज्यादा 'मिथ' बनी गई वह थे मोहन राकेश । कुछ उनका व्यक्तित्व ही ऐसा था और कुछ उनके हमदम, दोस्त, प्रशंसक और आलोचक भी ऐसे रहे हैं कि उन्होंने उन्हें या तो निहायत घटिया आदमी के रूप में पेश किया था या फिर मसीहा बनाकर रख दिया ।''[1] डॉ. जयदेव तनेजा राकेशजी को 'एक अनूठा विद्रोही' की उपाधि से सन्मानित करते हुए लिखते हैं – ''मोहन राकेश के एक दोस्त ने उन्हें साहित्य का 'सुल्तान का डाकू' कहा था, जो टाइम्स ऑफ इन्डिया जैसे अमीरों को लूटता था और 'इनैक्ट' जैसे गरीबों में बाँट देता था । विश्वम्भव सुरेका ने उन्हें साहित्य का 'बुगड़ोग' कहा हैं, तो उनके अभिन्न हृदय मित्र कमलेश्वर के अनुसार 'राकेश जैसा आदमी दुनिया के पर्दे पर नहीं हैं ।' राकेशने अपने नाम, काम और आत्म–सन्मान को लेकर कभी, कहीं, कोई समझौता नहीं किया । उन्होंने अपनी कोई चीज (रचना) मौजूदा कीमत पर कभी नहीं बेची । हंमेशा अपनी शर्तें रखीं और मनवाई ।''[2]

राकेशजी के बाह्य और आंतरिक व्यक्तित्व की सूक्ष्म रेखाओं को बड़ी गहराई से रेखांकित करते हुए डॉ. पुष्पा बंसन्त ने लिखा हैं –"किन सूत्रों में किस प्रकार के पेटर्न में मैं बुनूं कि उस राकेश की तस्वीर बन जाए, चाहे झिलमिलाती ही सही, जो आज भी, आज की ही क्यों ? समस्त हिन्दी साहित्य की सबसे बड़ी विरोधाभासी चुम्बकीय, अनेक कोणनीय पर्सनालेटी रही है । जिसने शरीर से बहुत उँचा न होते हुए भी साहित्यकाश की बड़ी से बड़ी उँचाईयों को छूआ था, जिसके गोल मटौल से शरीर में अत्यंत तीखी, पैनी संवेदनशील मेघा व प्रतिमा निवास करती थी । जो अपने मोटे लेन्स के पीछे से झाँकते हुए अत्यंत चमकदार आँखों से जीवन, साहित्य एवं सौन्दर्य के नितान्त अनछुए पर सामान्य आयामों को उदघाटित कर देता था, जिसके झबरे बालों के गुच्छों के नीचे छिपे मस्तिष्क में निहायत सुलझे स्पष्ट एवं निश्चित मूल्य स्थिर थे; वे मूल्य जिन पर वह अपने जीवन को जीना चाहता था और वह जिया ।"[3]

जिन्दादिली, तार्किकता, सत्य के अन्वेषण की जिज्ञासा, अहं, असुरक्षा बोध, लेखन के प्रति प्रतिबद्धता आदि अंतर्विरोधी व्यक्तित्व के गुणों के कारण तथा नए मूल्यों की स्थापना का संकल्प और अपनी कला के प्रति उनका संपूर्ण समर्थन का भाव आदि राकेशजी के व्यक्तित्व और कृतित्व को विशेषता और निजीपन प्रदान करते हैं । यह विशेषता और निजीपन उसको अपने परिवेश और जीवन के अनुभव क्षेत्रों से मिला । वैसे देखा जाय तो प्रत्येक रचनाकार को उसका परिवेश सृजन चेतना प्रदान करता है । इसलिए किसी भी रचनाकार के सृजन को उसीके परिवेश के साथ जोड़कर ही उसे पूरा समझा जा सकता है और उसकी रचनाओं के मूल उत्स को पहचाना जा सकता है ।

२.२ मोहन राकेश की जीवनी

डॉ. नगेन्द्र का कथन है कि – "व्यक्ति और उसकी कृति में रक्त का सम्बन्ध है, अतएव एक का विश्लेषण दूसरे को साथ लिए बिना असंभव हैं ।"[4] इस दृष्टिकोण से राकेशजी को एक व्यक्ति, एक मनुष्य, एक

साहित्यकार के रूप में जानने समझने के लिए उनका समग्र साहित्य ही प्रमुख आईना है । कहानी, उपन्यास नाटक, निबंध, संस्मरण, डायरी आदि तथा अपनी पुस्तकों की भूमिकाओं और टिप्पणियों में वह इतने स्पष्ट हैं कि कहीं और से कुछ ढुँढ़कर लाने की आवश्यकता नहीं होती । संभवतः हर संवेदशनशील रचनाकार की मानसिकता, रचनात्मकता को पहचानने का यह एक सीधा और सही तरीका है । जिसमें निःसंदेह उस रचनाकार का सारा परिवेश और समूचा युग प्रतिबिम्बित रहता है ।

राकेशजी के लौकिक जीवन और अलौकिक साहित्य का अनुबंध घनिष्ठ रहा है । राकेशजी अपने निबंध संग्रह 'परिवेश' में स्पष्ट करते हैं – "मैं वैयक्तिक और साहित्यिक दोंनों स्तरों पर ज़िन्दगी से जुड़ा हुआ पाता हूँ ।"[5] राकेशजी का यह आत्मकथन उसके संपूर्ण साहित्य को उसके व्यक्ति के साथ अभिन्न रूप से जोड़ देता है ।

आलोचकों ने और स्वंय राकेशजी ने यह स्वीकार किया है कि उसका समग्र साहित्य उनके जीवन की छोटी मोटी घटनाओं का संकलन रहा है । राकेशजी के आत्मकथनों, आत्म रचनाओं, डायरी, निबंध और पुस्तकों की भूमिका के पन्नों और उसकी कृतियों के चरित्र निरूपण में यह स्पष्ट देखा जा सकता है कि जीवन में घटित होने वाली घटनाएँ, संघर्ष और व्यक्तिगत तनावों के बीच से गुजरते हुए सुख–दुःख को झेलते हुए वह एक सामान्य व्यक्ति की तरह किस प्रकार संघर्षरत रहे और उनके भीतर का रचनाकार किस तरह रचनात्मकता ग्रहण करता गया और कब मदन मोहन से मोहन राकेश का विद्रोही, जिन्दादिल, अहम्‌वादी, खुद्दार, संवेदनशील और विचित्र व्यक्तित्व कैसे, कब और क्यों बना – यह जानना दिलचस्प भी है और जरूरी भी ।

❀ जन्म और प्रारंभिक परिवेश :

मोहन राकेश का जन्म ४ जनवरी सन्‌ १९२५ को पंजाब प्रांत के प्रमुख शहर अमृतसर की जंड़ीवाली गली के एक सीलनभरे, अंधेरी सीढ़ियों और बदबूदार नालियों वाले घर में हुआ । जहाँ, कठोर अनुशासन और वर्जनाओं के बीच राकेशजी का बाल्यकाल प्रारंभ हुआ । उस घर में दादी माँ के

अंधविश्वासों, टोने–टोटकों और भूत–प्रेतो के सच्चे झूठे आतंक ने बालक राकेश को बचपन से ही आतंकिंत कर रखा था । राकेशजी इस विषय में अपनी डायरी में लिखते हैं – ''क्योंकि मेरा जन्म एक तंग शहर की एक छोटी–सी गली के एक बहुत ही अंधेरे घर में हुआ और वातावरण मुझे आरंभ से मिला, उसमें भी श्लाघनीय कुछ नहीं था । मुझे ऐसे लोगों से स्पर्धा होती है जो देवदारों से लदे हुए उन पहाड़ी प्रदेशों में पैदा हुए जहाँ गिरते और मचलते हुए पहाड़ी झरनों ने उनकी विस्मित शिशुं आँखों को अपने सौन्दर्य से भर दिया था जिन्हें बचपन में खेलने को मिले जहाँ वे रेत के घरौंदे बनाते और बिखरते रहे । मेरा जन्म अमृतसर की जिस गली में हुआ, वहाँ ताजा हवा तक तो पहुँच नहीं पाती थी ।''[6] यहाँ राकेशजी ने यह स्वीकार किया है कि जो वातावरण उनको बचपन में मिला वह उसके स्वभाव और रुचि के विरुद्ध था ।

एक जगह अन्यत्र भी राकेशजी ने यह स्वयं स्वीकार किया है – ''जीवन में जो पहली शिक्षा मुझे प्राप्त हुई, वह यही थी कि घर के बाहर (और इस अर्थ में ताई का कमरा भी घर के बाहर ही था) कोई भी व्यक्ति स्नेह और विश्वास का पात्र नहीं !.... वह जीवन की कल्पना कुछ ऐसी थी, जैसे चारों और बुने हुए मकड़ी के जाले के अन्दर थोड़ी–सी खाली जगह थी, जहाँ हम रह रहे थे; जरा भी हिलने–डूलने में उस जाले में फँस जाने की सम्भावना थी, अतः सुरक्षा इसी में थी कि अपने कोने में यथासंभव निश्चेष्ट रहा जाए । आमोद खतरे का विषय था । साहस खतरे का विषय था । जीवन में कोई भी प्रयत्न खतरे का विषय था । डिबिया में बन्द कीड़े की तरह जीना ही जीने का एक रास्ता था ।''[7] डॉ. जयदेव तनेजा घर की इस संकीर्णता को राकेशजी के विद्रोही स्वभाव का प्रथम चरण मानते हुए स्पष्ट करते हैं – ''सबसे पहले राकेश ने होश सँभलते ही 'घर' इस संकीर्ण और घुटनभरी बंद कैद से ऐसा विद्रोह किया कि लगभग जीवन भर वह बेघरबार की सी ज़िन्दगी ही जीते रहे । गालिब की तरह बेदरो–दीवार का घर बेशक न बनाया हो, मगर जब बनाया भी तो उसकी खिड़कियाँ, दरवाजे और

रौशनदान सबके लिए हंमेशा खुले रहे । महानगरों में रहने के बावजूद प्रकृति के साथ तादात्म्य करके जीना ही उनकी जीवन–शैली बन गयी । दुस्साहसी बनकर नए–नए खतरे उठाना और बने–बनाए रास्तों को छोड़कर चलना, विश्वास करना और धोखे खाना उनका जीवन–दर्शन हो गया । उन्होंने दुनिया को मुसाफिरखाना और स्वयं को खानाबदोश बना लिया ।”[8]

प्रत्येक क्रिया की प्रतिक्रिया प्रारंभ से ही राकेशजी के मन में होती रही और एक प्रकार का आलोचनात्मक दृष्टिकोण शायद बचपन से ही उनके मन में पनपने लगा था । परिवार का कठोर अनुशासन और संकीर्ण मनोवृत्ति ने उनके मन में विद्रोह भर दिया था । इसी वृत्ति के आधार पर बालक राकेश को गली में जाने की भी मनाही थी, छत पर जाने की भी मनाही थी । और जब कभी वे घर के वातावरण से उबकर गली में भाग जाता तो पकड़कर बन्द कर दिया जाता । राकेशजी स्पष्ट करते है – “घर में दम घुटता है । अक्सर गली में भाग जाता हूँ । पकड़कर लाया जाता हूँ, फिर भग जाता हूँ । कभी देवीद्वारे के आँगन में पाया जाता हूँ, कभी गली के बाहर गौओंके झुण्ड़ के नीचे से पकड़ा जाता हूँ । जब घर में बन्द रखा जाता हूँ तो रो–रोकर बीमार हो जाता हूँ ।”[9] बचपन से ही घर के वातावरण के प्रति राकेशजी की प्रतिक्रिया को देखकर घर के लोगों द्वारा कहा जाता था – “यह लड़का जिस तरह एक–एक चीज को घुरता है उससे लगता है बड़ा होकर डाकू बनेगा ।”[10]

राकेशजी का परिवार कट्टर वैष्णव संप्रदाय में माननेवाला था । राकेशजी के पिता वल्लभ संप्रदाय के वैष्णव थे और उन्होंने ‘ब्रह्म सम्बन्ध’ ले लिया था । उस धार्मिक नियम के तहत वह अपने ‘घर’ या किसी ब्राह्मण के चौके के अतिरिक्त और कहीं का भोजन नहीं खा सकते थे । पानी वह कुएँ में से शुद्ध अपने या ब्राह्मण के हाथ का खींचा हुआ ही पीते थे । राकेशजी ने इस वैष्णव कट्टरता की बात का उल्लेख करने हुए लिखा है – “जब भी बुलाहट होती, मुझे पता होता कि नीचे कोई ऐसे सज्जन आये है, जिन्हें जाकर ‘जय श्रीकृष्ण’ कहना होगा । हमारा घर कट्टर सनातन धर्मी था और ‘नमस्ते’ कहना

हमारे घर में वर्जित था, क्योंकि 'नमस्ते' आर्यसमाजी अभिवादन समझा जाता था ।"[11]

राकेशजी को जिस परिवार में साँस लेनी पड़ती थी वह अंवाछित और एक भावी कलाकार की इच्छा के विरुद्ध था । किन्तु वह इस स्थिति में रहने के लिए विवश थे । शायद यही वह प्रारंभिक स्थिति थी जिसने उसके मने के किसी कौने में यह भाव भर दिया था कि दुनिया को निकट से देखो और उसे अपने ढंग से–मन से जीने की कोशिश करो । राकेशजी के घर के पीछे की ओर जो कंजरों के घर थे, वे घृणित और कुत्सित माने जाते थे, अंतः उनकी दादी माँ ने उसे उधर की ओर देखने के लिए भी मना कर रखा था । किन्तु राकेशजी का मन होता था कि वह कंजरों को नजदीक से देखे । इस प्रकार मन के भीतर जग रही कामना और पारिवारिक जीवन से मिला कड़ा आदेश इन दोनों को साथ–साथ निभाना राकेशजी के लिए संभव नहीं था । उन्होंने लिखा है – "हमारे घर के पीछे कंजरों के घर थे और मैं भी उन्हीं की तरह नाचना चाहता था, किन्तु दादी माँ मुझे उधर को झाँकने तक नहीं देती थी – कहती हैं – वह घर कंजरों का है । मुझे कंजर अच्छे लगते हैं । मैं खुद उनकी तरह नाचना चाहता हूँ । मगर दादी माँ घूरकर देखती है तो कंजर बनने और नाचने का सारा उत्साह गायब हो जाता है । मैं दादी माँ के घूटनों में दुबक जाता हूँ ।"[12]

राकेशजी की दादी माँ उनके लिए शरणस्थली थी । उनकी गोद एक ऐसा आश्रय थी जहाँ पहुँचने पर सारे भय, प्रश्न सब दूर भाग जाते थे । राकेशजी ने 'आईने के सामने' आकर इसे स्वीकार किया है – "दादी माँ की घुली मैली धोती से खास तरह की गंध आती है – पसीने की, मसाले की फूलों की, ठाकूरजी के भोग की, उस गंध की शरण में किसी का डर नहीं । न चमगादड़ का, न भूत का, न डायन का । दादी माँ से भूत–प्रेत भी खौफ रखते है । उनकी गलियों के आगे किसी का वश नहीं ।"[13] दादी माँ के स्वभाव के कारण घर में अक्सर लड़ाई होती रहती

थी । दादी माँ की दृष्टि में राकेशजी की माँ भी अच्छी नहीं थी । फलतः उनके पिताजी को भी वह प्रायः माँ दूर रखने का प्रयत्न करती रहती थी ।

राकेशजी ने 'आईने के सामने' में यह लिखकर कि ''घर के लोगों से बहुत–बहुत शिकायतें हैं । बहुत सी चीजें जो मेरे पास होनी चाहिए, उन्होंने अपने कब्जे में कर रखी है ।''[14] यह बात राकेशजी की तत्कालीन मनःस्थिति और प्रतिक्रियात्मक भावना को ही अभिव्यक्त करती है ।

राकेशजी को जिस पारिवारिक परिवेश में बड़ा होने का अवसर मिला वह एक साधारण ऋण भार से ग्रस्त और अपनी दुर्बलताओं में भी अनेक विशेषताओं से युक्त परिवार था । राकेशजी का परिवार ऋण–ग्रस्त था और कर्ज वाले आकर उनके पिता को नित्यप्रति तंग करते थें । राकेशजी ने स्वयं पंडित लोकनाथ और सरदार निहालसिंह का उल्लेख किया है जो उनके घर कर्ज वसूल करने आया करते थे । उनके डर से घर में किसी को खुलकर रहने की आज़ादी नहीं थी । राकेशजी के पिताजी संगीत के शौकिन थे, अतः घर में हारमोनियम, सितार, वायोलिन और ग्रामोफोन था, किन्तु इसे भी लेनदारों से बचकर रखा जाता था । राकेशजी के शब्दों में ''जब भी घर में कोई अच्छी चीज़ आये, तो लोगों के सामने खाने, पहनने की मनाही है – निहालसिंह की वजह से । निहालसिंह ने देख लिया तो ? निहालसिंह ने सुन लिया तो ? अच्छे कपड़ें ट्रंको में बंद रहते है । हारमोनियम, सितार, वायोलिन निहालसिंह की आहट पाते ही चारपाइयों के नीचे छिपा दिये जाते हैं । खुलकर जीने की हर कामना उस दिन की कीलपर टँगी रहती है, जिस दिन निहालसिंह का कर्ज उतरेगा ।''[15] और ''पंडित लोकनाथ लाठी टेकता हुआ जीनेसे उपर आता है तो मैं अन्दर के कमरें में जा छिपता हूँ । माँ ढूँढ़कर निकालती हैं । मुझे जाकर कहना होता है कि पिताजी घर में नहीं है । पंडित लोकनाथ यह सुनकर वापस नहीं जाता, बैठक में बैठकर इन्तजार करता है ।''[16] रात के वक्त खाने के बाद राकेशजी के पिताजी ग्रामोफोन पर शास्त्रीय संगीत के रेकार्ड सुना करते थे । बालक राकेशजी के सिर्फ यह कहने पर कि – '' 'निहालसिंह !' वह अचकचाकर उठ बैठते है ।

माँ ग्रामोफोन के साउण्ड बोक्स में तौलिया ठूस देती है ।"[17] राकेशजी और सारे परिजनों के मन में कर्जदारों का डर बना रहता था । राकेशजी सोचते थे अगर परिवार का कर्ज उतर जाय तो अपने ढंग से जीना संभव हो सके । वह चाहते थे कि कुछ ऐसा किया जाये जिससे सबके सब कर्ज एक साथ उतर जाये । अतः कर्ज उतारने के काम में पिताजी की सहायता करने के लिए उनकी गैरहाजिरी में एक दिन अलमारीयों में भरी किताबों को बेचने के इरादे के साथ अपना कार्य प्रारंभ है किन्तु –"मेरे नेक इरादे का पता घरवालों को तब चलता है जब किताबों समेत लुढ़कता हुआ सिरके बल नीचे जा पहुँचता हूँ ।"[18]

राकेशजी अपने प्रारंभिक जीवन में ही बहुत कुछ देख समझ चुके थे । परिणामतः उनके मानस में एक उत्क्रांति जन्म ले चुकी थी, तथा भीतर वस्तुओं को समझने की सूक्ष्म दृष्टि का विकास हो चुका था ।

❀ नाम परिवर्तन की प्रकिया :

राकेशजी के सम्बन्ध में अब यह स्पष्ट हो चुका है कि उसने अपने जीवन में वही किया जो उन्हें सही लगा या फिर उनके व्यक्तित्व के अनुकूल लगा । इस संदर्भ में देखें तो राकेशजी का वास्तविक नाम मदन मोहन गुगलानी (गोगलानी) था । जो आगे चलकर साहित्य के क्षेत्र में मोहन राकेश के नाम से पहचाने गये । यह बात स्पष्ट है कि उन्होंने अपना नाम मोहन राकेश स्वयं धारण किया था । जिस प्रकार राकेशजी के व्यक्तित्व को लेकर अलग–अलग आलोचकों की अपनी–अपनी अवधारणाएँ है, वैसी ही राकेशजी के नाम सम्बन्धी भी । जो राकेशजी के व्यक्तित्व के विषय में विशेष जानकारी पूर्ण रोचक बातों को उजार कर जाती हैं ।

'सारिका' के मोहन राकेश की कहानियों के विशेषांक में राकेशजी के अभिन्न मित्र कमलेश्वरजी ने उनके नाम के सम्बन्ध में स्पष्ट किया हैं – " 'नन्ही' राकेश की सँभवतः पहली कहानी है जो उन्हीं की हस्तलिपी में स्कूल की परीक्षा की लम्बी कोपी के कागजों पर लिखी प्राप्त हुई । यह कहानी ७

मार्च १६४४ में लाहौर में लिखी गयी – इसकी पांडुलिपी पर तरह–तरह से राकेश लिखकर देखा गया है । संभवतः यह प्रक्रिया उपनाम चुनने की रही है, जो बाद में उनका नाम ही हो गया ।"[20]

इस सम्बन्ध में डॉ. सुष्मा अग्रवाल का मत हैं – "इनका वास्तविक नाम मदन मोहन गोगलानी था । जिसमें पहले और अंत (मदन और गोगलानी) शब्दों को निर्वासित करके जब मोहन एकला रह गया तब उसकी सम्मोहिनी शक्ति से खिंचकर राकेश उसका सहयात्री बन गया । फलतः यें दोनों मिलकर साथ–साथ रहने लगे और इनकी प्रसिद्धि मोहन राकेश के नाम से हो चली । इसमें ऐसा मेल है कि एक के बिना दूसरा अस्तित्वहीन हो जाता हैं । मोहन हैं क्योंकि उसे राकेश की आत्मा प्राप्त है और राकेश हैं अतः मोहन का होना आवश्यक है ।"[21] डॉ. सदन कुमार पाल अन्य साहित्यकारों के नाम परिवर्तन की प्रकिया को साथ लेते हुए मोहन राकेश के नाम सम्बन्धी अपना अभिप्राय स्पष्ट करते हुए लिखते हैं – "अमृतसर के प्रतिष्ठित वकील करमचन्द गुगलानी का पुत्र मदन मोहन गुगलानी ही आगे चलकर मोहन राकेश के नाम से ख्यात हुआ । तमाम संघर्ष और व्यक्तिगत तनावों से जूझते हुए रचनाकार की अन्वेषा, नवीनता की खोज और अपने आपको एक नयी पहचान प्रदान करने की प्रक्रिया सम्भवतः अपने नाम से ही जाहीर होती है – राम बोला का तुलसीदास, सुर्जकुमार तिवारी का सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', धनपतराय का प्रेमचन्द और मदन मोहन गुगलानी का मोहन राकेश बनना सम्भवतः मनोवैज्ञानिक धरातल पर व्यक्ति के संघर्ष में नवीनता का उद्घोष है ।"[22]

डॉ. जयदेव तनेजा राकेशजी के नाम परिवर्तन की प्रक्रिया को एक नयी बात से जोड़कर स्पष्ट करते हैं – 'नियति में राकेश का विश्वास नहीं था और भाग्य के मुकाबलें भी वह भविष्य को ही अधिक महत्त्व देते थे ।' फिर भी अधिकांश लोगों की तरह उन्हें तीन की संख्या पसंद नहीं थी । अनीता राकेश को सम्बोधित कुफ्री (शिमला) में लिखे ४–४–६३ के पत्र में राकेश स्वीकार करते हैं कि 'आज तीन तारीख है । पत्र कल निकलेगा इसलिए ऊपर

चार तारीख डाली है । तीन का हिंदसा वैसे भी मुझे मनहूस लगता है ।' और मजेदार बात यह है कि उनके जन्म के नाम मदन मोहन का अंक भी तीन ही बनता है । जिसके अनुसार व्यक्ति प्रतिभावान और कल्पनाशील तो होता है परंतु इस अंक के व्यक्तियों में पाए जाने वाले विज्ञान, कलाओं और खेलों में दिलचस्पी तथा तात्कालिक लाभ के लिए भावी सर्वोतम लाभों को छोड़ देने या मामूली चीजों के लिए धैर्य खो देनें जैसे दुर्गुणों (?) से स्वयं को बचाने के लिए उन्होंने अपना नाम मदन मोहन से मोहन राकेश बनाकर अपने नाम–अंक को भी तीन की बजाए पांच का बना दिया । इस नाम–संख्या वाला व्यक्ति उत्साही, दुस्साहसी, असामान्य के प्रति आकर्षित होने वाला, नए विचारों को ग्रहण करने के लिए तत्पर, धुमक्कड़, देश–विदेश में कहीं भी रह सकने में समर्थ, अनिश्चित अप्रत्याशित, अस्थिर स्वभाव तथा रुटिन कर्तव्यों के प्रति अत्यंत लापरवाह जैसी विशेषताओं से युक्त होता है और मोहन राकेश के व्यक्तित्व एवं कृतित्व से परिचित उनके लगभग समी पाठक ये अच्छी तरह जानते हैं कि पाँच की नाम संख्या वाले ये तमाम गुण या अवगुण राकेश में कूट–कूट भरे हुए थे । जाहिर है कि राकेश ने अपने नाम को ही नहीं, इन विशेषताओं को भी स्वयं ही अर्जित किया था । .... लेकिन कैसी विडम्बना है कि अपने नाम अंक को तीन से पाँच बना लेने वाले राकेश की मृत्यु मनहूस तीन तारीख को ही हुई ।"[23]

कोई भी रचनाकार रचनात्मक दुनिया में प्रवेश करते हुए समय और समाज के साथ स्वंय की उपस्थिति चाहता है । यदि परिवार से मिला नाम उसे अपने क्षेत्र के लिए अप्रासंगिक लगता है तो वह अपनी वैचारिकता, क्षेत्र और समय के संदर्भ के अनुसार अपना उपनाम चुनता है या नाम में परिवर्तन करता है जो उसे अपने क्षेत्र में गहरी स्थापना और प्रासंगिकता दे सकें । साथ ही यह नाम सारगर्भित, सीधा तथा सरल हो और जो जनता की जुबान पर सुविधा से स्थान पा ले । साथ ही जो कलात्मक हो और जिसमें रचनाकार का संपूर्ण व्यक्तित्व उभरकर सामने आता हो ।

मदन मोहन गुगलानी एक पंजाबी परिवार की संतान थे । जिन्हें अपने पारिवारिक परिवेश की पहचान के साथ साहित्य की व्यापक दुनिया में उतरना शायद स्वीकार नहीं था । वे अपने व्यक्तित्व के अनुसार साहित्य की दुनिया में उस नाम से आना चाहते थे जो परिवार की नहीं खुद की पहचान बनने में सक्षम हो, और साथ ही सार्वदेशिक, सार्वकालिक और सार्वजनिक हो । मदन मोहन गुगलानी ने स्वयं अपनी प्रतिभा से अपना नाम मोहन राकेश कर दिया और मोहन राकेश नाम से ही साहित्य क्षेत्र में प्रसिद्ध रहे ।

❀ व्यक्तित्व निर्माण में माता–पिता और परिवार की भूमिका :

मोहन राकेश के पिता का नाम करमचन्द गुगलानी था और माता का नाम श्रीमती बच्चन कौर था । राकेशजी के पिता पेशे से वकील थे । किन्तु वह वकालत से बढ़कर साहित्यिक गतिविधियों की ओर अधिक आकर्षित थे । घर में देर रात तक मित्रों के साथ बैठके होती थी और उनमें गरमा–गरम साहित्यिक चर्चाएँ चलती रहती । उन साहित्यिक मित्रों में उपेन्द्रनाथ अश्क भी एक थे । घर के वातावरण से उबकर मन बहलाने के लिए बालक राकेश पिताजी की अलमारी में भरी बेसुमार किताबों से खलते थे । 'परिवेश' में राकेशजी स्वयं इस बात का जीक्र करते हुए लिखते हैं – "मैं किताबों से खेलता हूँ । पिताजी की बैठक में बेसुमार किताबें अलमारियों में भरी हैं । मैं उनके साथ आँख–मिचौली खेलता हूँ । उन्हें आड़ी–तिरछी रखकर किले बनाता हूँ । कोई भारी किताब गिरकर पैर तोड़ देती है, तो उससे नाराज होकर उसे अलमारी में पीछे की तरफ पटक देता हूँ ।"[24] इसी नाराजगी से किताबों से राकेशजी की मित्रता प्रारंभ हुई, जो बाद में हमदम बनकर अंत तक उनके साथ चली ।

इस दृष्टि से राकेशजी की सर्जना के मूल उसके पैतृक संस्कार में ही थे । उन्होंने आठ या नौं वर्ष की आयु में हिन्दी कविता लिखने का प्रयास किया था । और यह कविता हिन्दी दैनिक के बच्चां के कोलम में छपी भी थी । यह उनकी प्रथम प्रकाशित रचना थी । राकेशजी के पिताजी उन्हें संस्कृत

पढ़ाते थे । अंतः संस्कृत में भी उन्होंने कविताएँ रची थी जो संस्कृत पत्रिकाओं में छपी थी । आगे कॉलेज की पढ़ाई के दौरान उन्होंने कुछ कविताएँ लिखने का प्रयास किया था । इसे राकेशजी के साहित्य–सर्जन के प्रारंभिक प्रयास के रूप में स्वीकार किया जा सकता है । इस प्रकार बचपन से ही राकेशजी को साहित्यिक परिवेश मिला था ।

राकेशजी के पिताजी स्वभाव से शांत, सरल और धार्मिक प्रभाव से युक्त थे, साथ ही वे सिद्धांतवादी थे । वह राकेशजी के साथ बचपन से ही दोस्त जैसा व्यवहार करते थे । डॉ. शरेशचन्द्र इस बात का उल्लेख करते हुए लिखते हैं – ''राकेश जब केवल बारह बरस के थे, वे उनके साथ एक मित्र की तरह बातें करते । दोस्तों की महफिल जमाना, साहित्य की चर्चा करना, देर रात तक कहकहे लगाना और इस तरह दो–चार घंटे अपने निज दुःखों को भूल जाने की प्रवृत्ति राकेश के पिताजी में थी । संभवतः यही राकेशजी को भी जीने का जुस्सा दे गयी । यह उनको प्राप्त पैतृक संपति कही जा सकती है । उनके व्यक्तित्व के रूपायन में माता–पिता की प्रवृत्तियों का बड़ा योगदान रहा है । वह स्वयं कहा करते थे कि पिता की सृजनशीलता और माँ के संस्कार दोनों से उनके व्यक्तित्व का निर्माण हुआ है ।''[25]

माँ जिसे राकेशजी 'अम्मा' कहा करते थे । वह सहज स्वभाव की, धीरगंभीर, शांत और धैर्यशील आदर्श भारतीय नारी थी । 'अम्मा' के प्रति राकेशजी को अत्याधिक प्रेम और आस्था थी । 'अम्मा' के मन में भी राकेशजी के प्रति अनंत, अखंड़ विश्वास और प्यार था । उन्होंने जीवन में आनेवाली अनेक समस्याओं और दुःख का सामना बड़ी धैर्यता के साथ किया । 'अम्मा' ने प्रारंभ में संयुक्त परिवार के सुख–दुःख को झेला और कम आयु में ही अपने पति के मृत्यु के दुःख को सहा और बाद में राकेशजी के साथ रहते हुए उसके सुख दुःख को झेलते हुए अपना जीवन बिता दिया । 'अम्मा' ने अपने बेटे के हर निर्णय को सही मानते हुए उसे स्वीकार किया । उसने बेटे पर किसी भी बात के लिए जोर नहीं डाला और अत्याधिक मोह के कारण वह राकेशजी की हर बात को सही मानकर उसके पीछे पीछे चलती रही ।

डॉ. तनेजा लिखते हैं – "राकेश ने शहर बदला हो या नौकरी हो, या बीबी – उन्होंने कभी कोई सवाल नहीं किया । राकेश को इस तरह 'निरंकुश' बनाने में 'माँ' के इस अंधे प्यार ने भी निर्णायक भूमिका निभाई होगी ।"[26]

किन्तु फिर भी माँ के व्यक्तित्व से राकेशजी विशेष प्रभावित रहे । वे ही उनकी प्रेरणा शक्ति थी । माँ का प्यार उनके लिए वो आधारस्तंभ था, जिससे उन्हें बाल्यावस्था से अंतः तक वात्सल्य, सांत्वना, सुरक्षा एवं दिशा मिलती रही ।

राकेशजी अपने माता–पिता की मझली संतान थे । उनकी एक बड़ी बहन और एक छोटा भाई है । भाई से ज्यादा बहन के प्रति राकेशजी का अधिक हार्दिक सम्बन्ध रहा ।

'श्याम' राकेश के प्रिय चाचा थे, जिनसे उनकी सबसे ज्यादा पटती थी । ये ही वे व्यक्ति थे जो बचपन में राकेशजी की मनःस्थिति समझते थे । तभी तो मामा देवीदयाल की मौत पर यकायक राकेशजी के मन में जब यह प्रश्न उठा कि 'मौत क्या होती है' तो उनका समाधानात्मक उत्तर उन्हें इन्हीं चाचा से प्राप्त हुआ था ।

इस प्रकार हर स्थिति पर गइराई से सोचने समझने का आलोचनात्मक दृष्टिकोण राकेशजी को बचपन से ही अपने परिवार के व्यक्तियों और परिस्थितियों से मिला था ।

❀ सोलह साल की उम्र में :

कुछ अविस्मरणीय घटनाएँ, जिनका उल्लेख राकेशजी ने किया है, जो उनके मन पर गहरी छाप छोड़ गयी और जीवन के प्रति कटु अनुभव पैदा कर गयी ।

प्रस्तुत प्रसंग में किशोर राकेश की अन्तःचेतना में घनीभूत रूप से संग्रहित उस घटना का उल्लेख अप्रासंगिक नहीं होगा जो फरवरी १६४१ में जब राकेशजी की आयु मात्र सोलह वर्ष की थी, उनके पिता की मृत्यु के समय घटित हुई ।

अपने पिता कारुणिक मृत्यु की घटना राकेशजी के जीवन की एक ठहरी हुई घटना है, जो कभी भी उनके अन्तर्मन से नहीं भूली । राकेशजी 'परिवेश' में लिखते हैं – ''एक रात उसके आर–पार दो दुनियाएँ हैं । दोनों ही मेरी हैं – मेरी अपनी निजी । और उनके बीच की वह रात – वह भी मेरी अपनी है । इतनी कि आज तक वह बीती नहीं । ... उस रात, सारी रात नींद नहीं आयी थी । पहले अंधेरे ज़ीने में दीवार से सिर टिकायें बैठा था । फिर बैठक में तख्त पर औंधा पड़ा रहा था । फिर खिड़की की सलाखों से सटकर स्याह आकाश की यात्रा करता रहा था । आकाश की ओर आने वाले कल की अनजान गइराइयों की''[27] कई महीनों का किराया बकाया होने के कारण मकान मालिक ने पिता की लाश को तब तक उठने नहीं दिया जब तक कि किराया न चुकाया गया । माँ की चूड़ियाँ बेचकर यह किराया चुकाया गया था । यह घटना राकेशजी के जीवन का एक 'विरूप अनुभव' था, साथ ही उसके व्यक्तित्व का एक आहत पक्ष भी थी । राकेशजी इस घटना के सम्बन्ध में लिखते हैं – ''कुछ ही देर पहले पिता की मृत्यु हुई थी शरीर नीचे पड़ा था । सुबह तक और शायद सुबह के बाद भी पड़ा रहता । अंधेरे को चीरती हुई एक आवाज़ ने चेतवानी दी थी । घर के लोगों का करुण, कन्दन खामोश हो गया । रोने की आवाजों को एकाएक चुप कर दिया था । आवाज़ मालिक–मकान के बड़े लड़के की थी । बाजार में खड़े होकर छाती ठोकते हुए उसने कहा था, '' 'मैं मुरदा नहीं उठाने दूँगा । जब तक किराया अदा नहीं किया जाता, मैं किसी को मुरदे को हाथ नहीं लगाने दूँगा ।' मकान का कुछ महीनों का किराया कई सालों से बाकी था । इधर बीमारी में छह सात महीना का किराया उसमें और जुड़ गया था ।''[28] किसी को कुछ कहने की हिम्मत नहीं हुई । रोने की भी नहीं । जितने लोग जमा थे, वे एक–एक करके खिसक गये ।

इस समग्र घटना ने एक ऐसा घाव निर्मित किया जो आजीवन नहीं भर पाया । ''उस रात, खिड़की की सलाखों के पास से आकाश की गहराइयों

में न जाने कितना कुछ देख लिया था, वह सब जो बीत चुका था और वह भी जो बीत रहा था और जिसे अभी बीतना था ।"[29]

डॉ. गिरीश रस्तोगी लिखती हैं – "भावुक मन पर बहुत से प्रभाव निरन्तर पड़ते रहे । जिन्होंने निश्चित रूप से राकेश को रचना प्रेरणा दी, गहरी संवेदनशीलता और अनुभवों का विस्तार दिया ।"[30] क्योंकि मात्र सोलह वर्ष की आयु में दुनिया का रूप उनके सामने खुलने लगा था । स्वयं राकेशजी के शब्दों में – "सोलह साल की उम्र में ज़िन्दगी ने एक ऐसे चौखटे में फिट कर दिया था । जैसे भी हो अपने को उस चौखटे के आकार में ढ ालना था । आँखे आस–पास की ज़िन्दगी के प्रति बहुत सतर्क हो रही थी, अपने से बाहर घर को और घर के बाहर सामाजिक बन्धनों को प्रश्नात्मक दृष्टि से देखने लगी थी । बरसात के दिनों में अमृतसर के बाजारों में बहुत कीचड़ हो जाता था । गुजरकर जाते हुए टाँगे उपर तक लथपथ हो जाती थी । अपने आस–पास को माहौल भी कुछ वैसा ही लगता था । परिचय–क्षेत्र के बहुत से लोग गुजरते दिन के साथ पहले से छोटे होते जान पड़ते थें ।"[31] इस घटना के साथ उन्होंने यह भी अनुभव किया कि पिताजी की शोक–सभा में श्रद्धा–सुमन अर्पित करने वाले या पिताजी के अच्छे व्यक्तित्व के विषय में भाषण देने वालों ने फिर कभी उनके पिताजी को याद नहीं किया और न उनके परिवार के व्यक्तियों की परिस्थिति की ओर मुड़कर भी देखा । समाज के इस बनावटीपन के प्रति राकेशजी के मन में जो प्रतिक्रिया उत्पन्न हुई थी, उसे प्रकट करते हुए वे स्वयं लिखते हैं – "कौन–सी विवश्ता है कि जो उन्हें जूठ बोलने, दिखावा करने और वास्तविकताओं को छिपाने के लिए मजबूर करती है । जैसे हैं वैसे बनकर जिये और विश्वास के साथ जिये, तो इनके हितों को क्या क्षति पहुँचेगी ? क्या कभी, किसी भी क्षण ये अपने छलके साक्षी होते ? उसकी प्रताड़ना नहीं सहते ?"[32]

किशोर आयु में ही लोगों की परते उनके सामने खुलने लगी थी । इस घटना को और इससे उत्पन्न स्थिति को राकेशजी के साहित्य का बीजरोपण मानते हुए डॉ. कविता शनवरे लिखती हैं – "अनुभव सभी को होते है पर

उन्हें अनुभूति में रूपांतरित करने की सूक्ष्म पर्यवेक्षक दृष्टि के बिना कलाकार का जन्म नहीं होता । राकेश के पास यह दृष्टि बचपन से ही थी । जीवन की पाठशाला से जो अनुभव राकेश ने प्राप्त किये थे, उसके कारण जीवन के समझने की शक्ति उन्हें प्राप्त हुई थी । ....दर्द के अकेलेपन के बीज राकेश के लहू मांस में बस गये थे । राकेश के बचपन में जिन बीजों का बीजारोपण हुआ था वे किसी भी स्थिति में जड़ो से नहीं उखड़े वे कलात्मक सतह पर से अभिव्यक्त हुए है ।"[33]

पिता की मृत्यु, सारे घर का बोझ और भविष्य की चिंता ने उनके सामने कई चुनौतियाँ एक साथ रख दी थी । राकेशजी के शब्दों में – "जिन व्यक्तियों और संस्कारो के बीच पलकर बड़ा हुआ था, उनके अकेलेपन को लेकर मन में गहरी, कटुता और वितृष्णा थी । घर की पूरी जिम्मेदारी सिर पर होने से उसे निभाने की मजबूरी से मन छटपटता था । मैं किस तरह अपने को विरासत के सब बन्धनों से मुक्त कर लेना चाहता था, परंतु मुक्ति का कोई उपाय नहीं था । छोटा भाई इतना छोटा था, बड़ी बहन इनकी संस्कारग्रस्त और माँ इतनी असहाय की मेरी स्वतंत्रता की भूख कोरी मानसिकता के सिवा कुछ महत्त्व नहीं रखती थी ।"[34]

पिता की जल्दी मृत्यु होने के कारण उत्पन्न भूत की दहशत और भविष्य के धुँधलेपन के बीच उनका वर्तमान कहीं खो गया था । फलतः वे व्याकुलता और अस्थिरता से ग्रसित रहते थे । संयम, नियम, मर्यादा या बांधनेवाली अनिवार्यता के प्रति असंतोष, विरोध और विद्रोह का भाव अब उनके स्वभाव का अविभाज्य अंग बन गया था । अतिवादी प्रवृतियाँ उनमें घर कर गयी थी । उनमें आत्मीयता की अनबुझी प्यास थी । जिस किसी में भी उसकी झलक पाते, तुरंत उसके सामने अपना सबकुछ कह देते और जरा–सी उदासीनता दीख पड़ती तो फूल की तरह मुरझा जाते । अक्सर बुखार में ग्रस्त रहते । पढ़ने का मन नहीं करता तो आवारा बनकर इधर–उधर धूमते । और फिर कमरा बंद करके बिस्तर पर पड़े देर रात तक 'दास्ताएवस्की' या 'शरतचंद्र' पढ़ते ।

जीवन की बिकट से विकट परिस्थिति में भी राकेशजी की रुचि साहित्य से नहीं हटी । इस तनावपूर्ण वातावरण में भी उनकी अभिरुचि साहित्य के प्रति पनपनी रही । उनको अपनी मानसिक द्वन्द्व की अभिव्यक्ति के लिए जो आधार चाहिए था वह उन्होंने कागज़ो में खोज़ लिया था । राकेशजी लिखते हैं – ''यह व्याकुलता, यह अस्थिरता स्वभाव बनती जाती है । कोई भी क्षण आने वाले क्षण को जल्दी से पा लेने की चाह में सहज नहीं रह पाता ।... बीते कल का यथार्थ आज का सपना बन जाता है । आने वाले कल का सपना आज का यथार्थ है । जीने का कोई भी क्षण अकेले और स्वतंत्र न रहकर आगे पीछे के क्षणों में खोया रहता है । जो बीत जाता है, मन पर अपनी जड़े फैलाये रखता है । जो अनागत है उसकी और उसकी डालिया हिलती रहती है । जीवन का हर दिन पिछले दिन के अन्दर से उगकर आता लगता है – आने वाले को जल्दी से अपने अन्दर से उगा लेने को व्याकुल... मैं अकेला पड़ा हर करवट अपने को व्यस्त रखता हूँ । छत की कड़ियों को बार–बार तोड़ो और जोड़ दो । आँगन में एक पूरी दुनिया बसा दो और समेट लो । रोशनदान के रस्ते बाहर कूद जाओ और दुनिया भर में घूम लो । हर चेहरें की लकीरों का इतिहास जोड़ो और तोड़–फोड़ दो । कान में पड़ी हर बात की सिर्फ एक कहानी बुनो ।''[35]

जीवन की विभिन्न परिस्थितियों से उत्पन्न यह मानसिकता राकेशजी के साहित्य की निधि है । जो राकेशजी के वाङ्मयीन चरित्र का निर्माण करने में सहयोगी रही ।

❀ दो घटनाएँ :

निजी जीवन की विकट परिस्थितियों से गुजरते हुए राकेशजी दुनियादारी को भी समझ रहे थे । दुनिया के लोगों के निरंतर बदलते चेहरे को देखकर उनका मन तड़प जाता । वे अपनी एक मात्र आत्मीय प्रिया दिव्या के सामने ऊँची आवाज में बोलते – ''आर्थिक क्रान्ति के साथ–साथ दुनिया में एक और क्रान्ति का होना अनिवार्य है । यह क्रान्ति होगी मानवीय सम्बन्धों में, हमारी

सामाजिक संस्थाओं में । धर्म, नैतिकता और संस्कृति सम्बन्धी हमारे संस्कार जिस सभ्यता की देन हैं, वह अब खोखली पड़ चुकी है ।"[36] साथ ही राकेशजी महसूस करते थे कि – "अन्दर हर समय कोई चीज सुलगती रहती है और लगता कि दिमाग की नसे फटने जा रही है । कई–कई चीजें आपस में टकराती महसूस होती – कल के संस्कार आज की अनुभूतियों के साथ, कैशौर्य के सपने धिरे आते यथार्थ साथ । जिस रूप में तब तक ज़िन्दगी को जाना था, उसे गलत मानने की मजबूरी सामने थी ।"[37]

अस्थिरता, अतिवादिता और आक्रोश ने उन्हें बहुत विद्रोही बना दिया था । उस विद्रोही मन की साक्षी थी दिव्या । राकेशजी इस बात को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं – "विद्रोही मनः स्थिति की साक्षी थी दिव्या (यह उसका असली नाम नहीं) ।"[38]

राकेशजी अपनी इस मनःस्थिति को दूर करने के लिए कोफी हाउस में, बाग में, सिनेमा में, लाइब्रेरी में घुमने रहते पर उन्हें चैन नहीं मिलता था । उनके भीतर लावा–सा कुछ सुलगता, घुमड़ता बाहर आने को । उनके मित्र कहते थे कि – "इस छोर और उस छोर के बीच तुम्हारा मन पेण्डुलम की तरह झूलता रहता है । तुम कभी 'रिलेक्स' नहीं कर पाते और हर वक्त 'टेंस' बने रहते हो । सिर्फ दो चीजों से तुम्हारा इलाज हो सकात है – एक 'नर्व टोनिक', दूसरे स्त्री का शरीर ।"[39] लेकिन राकेशजी ने आगे का पथ ढूँढ़ निकाला । उसे खुद निर्मित किया । फिर भी राकेशजी का यह जीवनकाल अभिशप्त व्यक्ति का रहा, क्योंकि इस समय राकेशजी के जीवन में ऐसी दो दुर्घटनाएँ घटी जिसने उनके जीवन पर गहरा प्रभाव डाला । पहली घटना है देश विभाजन की । पंजाब प्रांत के निवासी होने के कारण उन्होंने विभाजन के समय की विभिषिका और नरसंहार को करीब से देखा था । जिसने उसके मन और हृदय को गहरा आघात दिया । तथा दूसरी घटना थी सहृदय मित्र दिव्या की मौत । इन दोनों घटनाओं का उल्लेख करते हुए राकेशजी लिखते हैं – "दो घटनाएँ लगभग साथ–साथ हुई । पहले विभाजन, फिर दिव्या की मृत्यु । पहली ने परिवेश से उखाड़कर परे फेक दिया

। दूसरी ने उखड़ने के अहसास को बहुत गहरा बना दिया ।"[39] और बाईस साल की उम्र में राकेशजी बुजुर्ग बन गये । इन घटनाओं के कारण उद्भूत उनकी मनःस्थिति का अंकन उनकी समग्र रचनाओ में हुआ हैं । स्वयं राकेशजी इस बात का स्वीकार करते हुए स्पष्ट लिखते हैं – "बाईस साल की उम्र में लड़का बुजुर्ग हो गया । पर तब–तक रास्ता मिलने लगा था – इन कागज़ो में जिनके कई–कई ढेर बाद में भी जलाये और नष्ट किये जाते रहे ।"[40]

यह स्थितियाँ राकेशजी के बाईस वर्ष तक की उम्र की है जिसे राकेशजी की साहित्यिक पृष्ठभूमि कहा जा सकता है । यह वह परिवेश है जो लगातार राकेशजी के लिए साहित्य सृजन के लिए पृष्ठभूमि तैयार करता रहा ।

❀ शिक्षा–दीक्षा :–

मोहन राकेश पहले से ही एक होनहार छात्र थे । ऋण भार से ग्रस्त परिवार में भी राकेशजी की शिक्षा पूरी हुई । उन्होंने अपनी शिक्षा की पूर्ति लाहौर और अमृतसर में की । उन्होंने सोलह बरस की उम्र में संस्कृत की ओनर की परीक्षा पास की । यह परीक्षा उन्होंने अपने पिताजी की मृत्यु के तीन महीने बाद दी थी । फिर अंग्रेजी में बी.ए. पास की । यद्यपि राकेशजी १६ वर्ष की उम्र में ही बहुत अधिक विद्रोही हो गये थे किन्तु फिर भी एक कलाकार का मन लेकर वे अपनी तमाम अस्थिरता और आक्रोशी वृत्ति पर काबू पाकर एम.ए. करने के लिए लाहौर चले गये । उन्होंने वहाँ के ओरिएन्टल कॉलेज में एम.ए. (संस्कृत) में दाखिला करा लिया । वहाँ उनके व्यक्तित्व को खुलने का पूरा वातावरण मिला और उनमें जीवन को देखने का संवेदनशील दृष्टिकोण पनपा । अपने कॉलेज के जीवन के दौरान वे विकट आर्थिक तथा मानसिक स्थितियों से गुजर रहे थे ।

बहन स्कूल में काम करके घर चलाती थी और राकेशजी टयूशन से अपना खर्च निकाल लेते थे । कुछ समय बाद ऐसी परिस्थितियाँ आ गयी की बहन घर को सँभाल नहीं सकी और इधर राकेशजी के टयूशन भी बंद हो

गये । यदि उस समय कोलेज के प्रिन्सीपाल स्वर्गीय डॉ. लक्ष्मण स्वरूप उनकी सहायता न करते तो उनकी पढ़ाई अधूरी रह जाती । इस प्रकार राकेशजी ने उन्नीस की उम्र में ही एम.ए. की परीक्षा पास की । इसके बाद सन् १९५२ में उन्होंने पंजाब युनिवर्सिटी से एम.ए. (हिन्दी) की परीक्षा पास की ।

अध्ययन कार्य भी राकेशजी के लिए आसान नहीं था । उन्होंने विभिन्न विकट और तनावपूर्ण परिस्थितियों को झेलते हुए अपनी शिक्षा पूर्ण की । इस सम्बन्ध में डॉ. सुष्मा अग्रवाल लिखती हैं – ''१६ वर्ष की अवस्था में ही वे पिता से वंचित हो गये । यहीं से उनका मन अध्ययनरस्त रहते हुए भी एक अस्थिर चितता से भर उठा । वे खोये से, कहीं–न–कहीं कुछ–न–कुछ खोजते से रहने लगे । अध्ययन के दौरान राकेश अपना सारा दिन दोस्तों के साथ 'बार' और 'रेस्तराँ' में व्यतीत करते थे । इतना ही नहीं वे 'टयूशन' और 'स्टाईपैन्ड' से प्राप्त पैसो के खर्च हो जाने पर कर्ज लेकर काम चलाते । इस समय वे संस्कार, अनुभूति तथा कैशौर्य के सपने और यथार्थ की टकराहट को झेलने को विवश थे । उन्हें लगने लगा था कि उन्होंने अब तक ज़िन्दगी को जिस रूप में जाना है, वह गलत है । अपने जिये के प्रति उनके मन में तीव्र वितृष्णा की भावना थी । वह सदैव तनाव की स्थिति में रहते थे ।''[41]

❀ निरंतर बदलता कार्यक्षेत्र :

मोहन राकेश का कार्यक्षेत्र विस्तृत था । एक सामान्य आदमी की भांति उन्हें भी नौकरी की समस्या को लेकर जीवन के खट्टे–मीठे अनुभवों से गुजरते हुए संघर्ष करना पड़ा । राकेशजी अपने स्कूली दिनों में नाटक–आध्यापक के प्रिय शिष्य रहे क्योंकि वे सहज रूप में उनके कहे अनुसार अभिनय करने में सक्षम थे । सन् १९४५-४६ में उन्होंने पंजाब युनिवर्सिटी के संस्कृत संघ के द्वारा आयोजित दो संस्कृत का निर्देशन भी किया था । इस प्रकार वे अभिनेता और निर्देशक के रूप में कॉलेज के दिनों से ही सबकी प्रशंसा के पात्र बन गए थे । इसमें कोई संदेह नहीं की नाटककार मोहन राकेश की रंग–चेतना को रूपायित करने में उक्त अनुभवों का समुचित योग रहा हैं ।

राकेशजी को एम.ए. करने के बाद रिसर्च स्कोलरशिप मिली । लेकिन वह मात्र दो साल के लिए रही । उनमें कुछ करने की आकांक्षा रही । सन् १९४५ के आसपास राकेशजी की लाहौर की एक फिल्म कंपनी में कहानी लेखक के रूप में नियुक्त हुई । इक्कीस बरस की उम्र में एक फिल्म के लिए कहानी लिखने का आत्मविश्वास उनमें रहा । पन्द्रह महीने इसी काम में बीत गए । बाद में भारत विभाजन हुआ तो वे मुम्बई चले आये । लोकप्रिय फिल्म–निर्माता–निर्देशक विजय भट्ट ने राकेशजी को अपने यहाँ नौकरी करने का प्रस्ताव दिया । किन्तु संवाद के पुर्नलेखन का काम राकेशजी जैसी सृजनात्मक चेतना–संपन्न प्रतिभा को छोटा, यांत्रिक और नीरस लगा अंतः उन्होंने इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया । कृश्न चन्दन से राकेशजी की बातचीत से स्पष्ट हो जाता है कि फिल्मी तड़क–भड़क उनको रास नहीं आयी क्योंकि वे जीवन को दो खानों में बाँटकर जीने में विश्वास नहीं करते थे । राकेशजी ने कहा था –‘‘जिस तरह तुम फिल्मों के लिए लिख लेते हो ।.... मैं दो खाने नहीं बना सकता । मेरा सारा वजूद एक खाना है ।’’[42] यही वह कारण था जो राकेशजी को सारा जीवन स्थिर होकर कही टिकने नहीं देता था ।

सन् १९४७ ई. में राकेशजी ने मुम्बई विश्वविद्यालय के एलफिंस्टन कॉलेज में हिन्दी के अध्यापक का कार्य सँभाला । परंतु दो साल भी नहीं बीते थे कि कन्फरमेशन के वक्त मेडिकल टेस्ट में वे फेल हो गए । क्योंकि, उनकी आँखों कि दृष्टि (Eye-Sight) कमजोर थी । इस कारण सन् १९४९ ई. में इस नौकरी से उन्हें अलग होना पड़ा । कुछ समय बाद जालन्धर के डी.ए.बी. कॉलेज में प्राध्यापक के पद पर नियुक्त हुए । यहाँ उन्होंने कुल पाँच महीने तक काम किया । किन्तु अपने स्वतंत्र चेता व्यक्तित्व और टीचर्स युनियन की गतिविधियों के कारण बिना कन्फर्म के ही उन्होंने इस नौकरी से त्याग–पत्र दे दिया । यह नौकरी राकेशजी ने क्यों छोड़ी और उसके बाद उसकी मनःस्थिति क्यां थी, इस पर विश्लेषण करते हुए डॉ. सदन कुमार पाल लिखते हैं – ‘‘यहाँ भी राकेशने जीवन के कटु यथार्थ से साक्षात्कार किया जिन लोगो के साथ मिलकर उन्होंने अधिकारियों की दमन–नीति के विरुद्ध संघर्ष छेड़ा था,

अन्ततः वे साथ नहीं रहे । इसी समय की रचित कहानी 'लडाई' इन कटु अनुभवों और संघर्ष का प्रतिफलन है और साथ ही राकेश द्वारा निरंतर सत्य केन्द्रित निर्णय लेने का उसकी प्रतित और प्रत्यक्षता का रचनामूलक प्रमाण है ।"[43]

इसके बाद बेकारी के दिनों से गुजरते राकेशजी ने शिमला के 'विशप कॉटन स्कूल' में नौकरी स्वीकार कर ली । वहाँ रहते वे इस बात को गंभीरतापूर्वक सोचते रहे कि क्यों न लेखन पर ही निर्भर रहकर जिए ? यह नौकरी राकेशजी ने अपनी बेकारी को दूर करने के लिए की थी । अतः इस नौकरी से उनको बहुत कोफ्त होती थी । १ मई १९६८ ई. की सारिका में इस समय की मनःस्थितियाँ इन शब्दों में अभिव्यक्त हुई हैं – "बहुत कोफ्त होती है इस ज़िन्दगी से ... वही रोज की ज़िन्दगी अनचाही । अनमने ढंग से किया काम ।... एक लम्बे सिलसिले की एक–सी कड़ियाँ, एक से ढंग से रोज–रोज जोड़ते जाना ... पर यह ज़िन्दगी नहीं फक्त एक ज़िन्दगीनुमा खेल है ।.... प्रभु ईसा को कभी नौकरी नहीं करनी पड़ी, वरना सारा टेस्टामेन्ट ही बदल गया होता... एक–एक कर के सात पीरियड पढ़ा सकते थे ईसा मसीह इतने पीरियड ? इससें कही आसान था क्रास कंधे पर लेकर चलना ।"[44] सन् १९५२ ई. में राकेशजी ने यहाँ से इस्तीफा दे दिया । अब तक उनका पहला कहानी–संग्रह छप चुका था । इस स्कूल की नौकरी के दौरान उन्होंने जीवन का जो रूप देखा उसका सशक्त अंकना 'न आने वाला कल' उपन्यास में मिलता है ।

इस घटना को राकेशजी के जीवन की व्यंग्यात्मक स्थिति कहे या उनकी खुशकिस्मति क्योंकि जिस डी.ए.बी. कॉलेज जालन्धर से उन्हें कुछ बरस पहले कन्फर्म किए बिना निलंबित कर दिया गया था, वही पर उन्हें विभागाध्यक्ष पद पर आसीन किया गया । नौकरी का यह दौर काफी लम्बा रहा सन् १९५७ ई. तक वे वहाँ रहे । सन् १९५७ ई. में डी.ए.बी. कॉलेज से इस्तीफा देकर सन् १९६० ई. तक कहीं भी नौकरी नहीं की, लेखन पर ही निर्भर रहे । सन् १९६० ई. में आर्थिक दबाव के कारण दिल्ली विश्वविद्यालय में प्राध्यापक

की नौकरी की । किन्तु जीवन के न ठहरने वाले बहाव ने उन्हें यहाँ भी अधिक काल टिकने नहीं दिया । सन् १९६२ ई. में उन्होंने 'सारिका' का सम्पादक का पद सँभाला । साहित्यक पत्रिका का संपादन करना उनके मनोनुकूल काम था किन्तुं ओफिस में सुबह दस बजे से शाम पाँच बजे तक बैठकर यंत्रवत काम करना उनके स्वभाव के विपरीत पड़ता था । राकेशजी के पास नौकरी करने और न करने सम्बन्धी अकसीर नुसखा था – "अगर कपड़े बदलकर दफतर जाने को मन करता हो, तो तुम्हे नौकरी करनी चाहिए, अगर न करता हो, तो छोड़ देनी चाहिए । और कुछ सोचने की जरूरत नहीं है – सीधा–सादा नुस्खा है... ।"[45] और इसी नुस्खे को अपने जीवन में अपनाते हुए सन् १९६३ ई. में राकेशजी ने 'सारिका' के संपादक पद से भी इस्तीफा दे दिया । यह राकेशजी की आखिरी नौकरी थी । राकेशजी के 'सारिका' को छोड़ने के सम्बन्ध में और एक कारण भी बताया जाता है – "राकेशजी जब यह जान गए कि उसी मेनेजमेन्ट की अंग्रेजी पत्रिका के संपादक को उनसे भी ज्यादा तनख्वाह दी जाती है तब उनको लगा कि यह उनका अपमान है । वास्तव में सवाल पैसे का नहीं था, इज्जत का था । इसलिए उन्होंने इस्तीफा दिया और वहाँ से निकलते हुए उन्होंने धर्मवीर भारती को भी वहाँ से निकल पड़ने की सलाह दी थी ।"[46] और इसके बाद राकेशजी स्वतंत्र लेखन में रमें रहे ।

इस प्रकार नौकरीयाँ को बदलने के पीछे जहाँ व्यवस्था के साथ राकेशजी का व्यक्तित्व एक मुख्य कारण था वहीं उनकी पारिवारिक समस्याएँ भी कारणभूत थी । स्वतंत्र रहने की प्रवृत्ति राकेशजी में प्रमुख थी, फिर भी जो–जो भी नौकरीयाँ जितनी भी अवधि तक की पूरे मनोयोग के साथ की । कमलेश्वरजी इस सम्बन्ध में स्पष्ट करते हैं – "राकेश नौकरियाँ छोड़ने के लिए बदनाम रहा है । एक यह बहुत बड़ा इल्जाम भी उसके सिर पर है । अच्छे से अच्छी नौकरी छोड़कर वह चला आया है । लोग उसे मानते रहे हैं, पर इस मस्तमौला ने कभी यह नहीं सोचा कि आगे क्या होगा । भविष्य की चिंता करना उसकी आदत में नहीं है । जो उसके हाथ में है, उसे लेकर वह

भरपूर ज़िन्दगी जीने का आदी है ।"[47] नौकरी राकेशजी के जीवन का साध्य कभी नहीं बनी । राकेशजी के जीवन का साध्य था कुछ नयी खोज । स्वयं को संबोधित करते हुए १ जून १९५७ को अपनी डायरी में लिखते हैं – "…. तू हवा और पानी का साथी है– उनके साथ मिलकर उनकी तरह ही – जी, जीवन में ख्याति या प्राप्ति तेरी उपलब्धि नहीं है । तेरी उपलब्धि तेरी खोज है । खोज और जी ।"[48]

❀ अभिशप्त वैवाहिक जीवन :

राकेशजी के वैवाहिक जीवन की कहानी विसंगतीयों, विडंबनाओं और जटिलताओं से पूर्ण है, साथ ही बड़ी अनोखी भी । उन्होंने अपने जीवन में तीन विवाह किये, शीला से, पुष्पा से, और अनीता से । पहले दो असफल विवाह के कारण उन्होंने जितनी विडंबनाओं को झेला है, उसके निर्मम यथार्थ के दर्शन उनकी कहानियों, उपन्यासों और नाटकों में बखूबी मिलते हैं । वैवाहिक जीवन ने उन्होंने इस तरह तोड़ दिया था कि ज़िन्दगी भर वह उसकी छाया से मुक्त नहीं हो पाए । राकेशजी का अधिकांश जीवन वैवाहिक जीवन के कष्टों और विडंबनाओं से अपने आपको समेटने में ही गुजरा । शायद इसी कारण वह वैवाहिक जीवन के कुशल, परन्तु निष्ठुर चितेरे बन पाए हैं ।

➢ *पहला विवाह :*

पहली बार जब २१ वर्ष की आयु में राकेशजी के सामने विवाह का प्रश्न आया तो वे द्वन्द्व में पड़ गये । इस समय तक वे ज़िन्दगी के अनेक उतार–चढ़ाव को देख चुके थे । नौकरी को लेकर उनमें एक तरह की वितृणता पैदा हो गयी थी । मानसिक और आर्थिक द्वन्द्व से शान्तवना पाने के लिए तथा बिखरी ज़िन्दगी को समेट ने के हेतु उन्होंने शीलाजी से विवाह करने का निर्णय किया । जो आगरा के दयालवाल में ट्रेनींग कॉलेज की आध्यापिका थी । इस समय तक राकेशजी का प्रथम कहानी संग्रह 'इन्सान के खंड़हर' (१९५०) प्रकाशित हो चुका था । इस समय दौरान की राकेशजी की मानसिकता अकेलापन क्षोभ, विद्रोह, आर्थिक अभाव की कटु संवेदनाओं से भरी

थी । किन्तु इस कहानी संग्रह की अधिकांश कहानियों में इन सब संवेदनाओं का अभाव ही है । शायद इसका कारण यह है कि राकेशजी स्वयं इन सब बातों को भूलना चाहते थे और इस मानसिकता से दूर रहने के लिए ही उन्हों ने इस कहानी–संग्रह की कहानियाँ लिखी हो । 'मरुस्थल', 'वासना की छाया में', 'लक्ष्यहीन' आदि इस कहानी संग्रह की चर्चित कहानियाँ है ।

शीलाजी से विवाह करने बाद राकेशजी ने सोचा था कि पत्नी घर संभालेगी और वे लेखन–कार्य पर निर्भर रहने का प्रयास करेंगे । किन्तु राकेशजी का यह ख्याल मात्र सपना बनकर रह गया, क्योंकि प्रोविडन्ट फंड के खत्म होते ही पत्नी का व्यवहार बदल गया । जीवन के उखड़ेपन को समेटने के प्रयास में और घर की तलाश में जो विवाह किया था; वह एक सिरे पर मोहभंग की शुरुआत थी । इस परिस्थिति ने राकेशजी को गहरी चोट पहुँचाई । स्वयं राकेशजी शब्दों में "विवाह के साथ ही सहसा मैंने अपने को रुका हुआ पाया, रुके हुए ही नहीं जड़ और स्तंभित ।"[49] इस विवाह के सम्बन्ध में राकेशजी ने अपने मित्र राजेन्द्रपाल के सामने कुछ तथ्य रखे थे । इस सम्बन्ध में राजेन्द्र पाल के शब्द हैं – "राकेश पहले इस विवाह के लिए मानसिक रूप से तैयार नहीं थे । एक छोटी–सी मुलाकात में ही उन्होंने अपनी भावी पत्नी को देखा था और वे अन्दर से महसूस कर रहें थे कि यह रिश्ता गलत है और इस बात की सूचना उन्होंने उसे पत्र द्वारा दी भी थी । लेकिन उसके तुरंत बाद पत्रों का एक लम्बा सिलासिला, बड़े–बड़े वादे और तर्क के सामने अपनी अंतःप्रेरणा को दबाकार उन्होंने शादी कर ली । जीवन में पहली बार वे इस प्रसंग में झुक गये थे और यह उनकी प्रवृत्ति के विरुद्ध था । शायद इसी कारण उन्हें बाद में मानसिक सज़ा भुगतनी पड़ी ।"[50] इस प्रसंग का उल्लेख करते हुए राकेशजी अपनी डायरी में लिखते हैं – "शीला को मैंने कितना समझाने का प्रयत्न किया था ? वैवाहिक प्रक्रिया को छोड़कर हम लोगों के सम्बन्ध का और कोई भी तो आधार नहीं है । वह आत्मतुष्ट भाव से जी लेती है, इसलिए उसे शायद यह समझ ही नहीं आता कि इस विवाह ने मुझे

इतना अस्थिर और असंतुलित क्यों कर दिया ?... काश की उस लड़की ने मुझे वह fatefull पत्र न लिखा होता ।"[51]

शीलाजी का स्वभाव राकेशजी की कल्पना की गयी पत्नी से विपरीत था । उसमें बहुत अंह था । वह राकेशजी के बराबर पढ़ी लिखी थी और उनसे ज्यादा कमाती थी । अपनी स्वतंत्रता का उसे बहुत मान था और वह समझती थी कि किसी भी परिस्थिति में वह अकेली रहकर मुकाबला कर सकती है । साथ ही उसके पिता के घर का वातावरण और संस्कार भी उसके भीतर थे । शीला से तलाक के बाद एक प्रसंग में राकेशजी ने उनके स्वभाव के विषय में लिखा हैं – "निःसंदेह वह सुखी नहीं है । एक बच्चा दूसरे उसके कट्टर आर्य समाजी संस्कार, तीसरे उसके घर का वातावरण और चौथे उसका अंह ।"[52]

विवाह से पहले ही राकेशजी को शीलाजी के अंहवादी स्वभाव का अनुभव होने लगा था । राकेशजी ने राजेन्द्रपाल से कहा था कि – "विवाह की रस्मों में सादगी की बजाय भोंड़ा आडम्बर देखकर उन्हें और भी दुःख हुआ । विवाह के बाद पहली रात को ही असफलता के बीज बो दिये गए थे । उनकी पत्नी आकाश पर उड़ी जा रही थी कि 'आखिर तुम्हें मेरे हठ के सामने झुकना पड़ा न । बहुत जीद कर रहे थे, विजय आखिर किसकी हुई ? मेरी न । इसके बाद मानसिक यातनाओं और कुंठाओं का दौर शुरू हुआ ।"[53] अपने आपको संबोधित करते हुए राकेशजी लिखते हैं – "मन बार–बार उन दिनों में लौट जाता है, जब यह विवाह नहीं हुआ था । यदि यौवन के प्रथम चरण में ही यह कालरात्रि आरंभ न हो जाती... बार–बार मन को मारा है । बार–बार अपने को और दूसरे को धोखा दिया है । बार–बार यह चाहा है कि इस दुःस्वप्न की परिणति मंगलमयी हो .... ।"[54]

राकेशजी और शीलाजी का वैवाहिक जीवन असल में डेढ़ साल का था । जिसे उन्होंने शिमला में मिलकर बिताया था । किन्तु दोनों में प्रकृति की असमानता होने के कारण दोनों अलग–अलग जगह रहने लगे थे । राकेशजी को विवश होकर नौकरी करनी पड़ी और वे जालन्धर चले गये और शीला

आगरा चली गयी और फिर से कॉलेज में काम करने लगी । यह समय राकेशजी के लिए वैयक्तिक और सामाजिक दोनों स्तरो पर अस्थिरता का समय रहा । राकेशजी ने स्वयं इस बात को स्वीकार करते हुए लिखा हैं – ‘‘सन् पचास से सन् चौपन के बीच का समय मेरे लिए काफी उथल–पुथल का समय था ।’’[55] इस समय दौरान उनकी लेखन प्रक्रिया भी कुछ थमी सी नज़र आती है । सन् १९५० से १९५२ तक राकेशजी की केवल दो कहानियाँ सामने आयी ‘एक पंखयुक्त ट्रेजडी’ और ‘एक घटना’ । इस समय दौरान यात्रा विवरण ‘आखिरी चटान’ तक लिखा गया ।

धीरे–धीरे पति–पत्नी का व्यवहार अजनबी सा होता गया । सन् १९५२ से १९५७ तक यानी पाँच साल तक अलग–अलग जगाहों में रहकर ही उन्होंने अपना वैवाहिक सम्बन्ध निभाया । कभी–कभी मिल भी जाते तो दुनिया को यह दिखाने का प्रयास करते कि दोनों आधुनिक ढंग का स्वस्थ वैवाहिक जीवन जी रहे हैं । किन्तु वास्तविकता यह थी कि शादी के दिन से ही दोनों एक–दूसरे के लिए निरंतर अजनबी बनते जा रहे थे । इस बीच राकेशजी को जब यह समाचार मिला की शीला उसके बच्चे की माँ बननेवाली हैं तो उन्हें और बहुत आघात लगा । क्योंकि वे विवाह–विच्छेदन की बात सोच रहे थे । इस समय की स्थिति को स्पष्ट करते हुए राकेशजी लिखते हैं –‘‘यद्यपि व्यक्तिगत जीवन बहुत से तनावों के बीच जीया जा रहा था, फिर भी अपने परिवेश से कटे होने की अनुभूति का स्थान र्स्वथा दूसरी अनुभूति ने ले लिया था और वह भी जुड़े रहने की अनिवार्यता की अनूभूति । एक तरह की कड़वाहट इस अनुभूति में भी थी, पर वह कड़वाहट आरोपित नहीं थी । उसका उद्देश्य भी जुड़े होने की स्थिति से मुक्ति पाना नहीं, उसकी तत्कालिन शर्तो को अस्वीकार करते हुए भी जुड़े रहने के सार्थक संदर्भो को खोजना था । जिन स्थितियों को लेकर असंतोष था, उनकी विसंगतियों के प्रति मन में ‘हयूमर’ का भाव भी था । ‘नये बादल’ और ‘जानवर और जानवर’ की अधिकांश कहानियाँ इसी मानसिक स्थिति की उपज है ।’’[56]

सन् १९५७ ई. में राकेशजी ने शीला से तलाक चाहा किन्तु अनबन के बाबजूद वह तलाक के लिए तैयार नहीं थी । उसने राकेशजी पर 'वासना से चलित और इन्सानियत से गिरा हुआ' होने का आरोप लगाया । इस प्रसंग से उत्पन्न विड़म्बना को स्पष्ट करते हुए राकेशजी लिखते हैं – "आज सवा साल बाद, बल्कि सोलह महीने के बाद – इस दौरान ज़िन्दगी के सबसे बड़े द्वन्द्व से गुजरा हूँ – मैंने पीछले छह साल की घुटन को समाप्त करना चाहा है– जिस औरत से मैं प्यार नहीं कर सकता, उसके साथ मैं ज़िन्दगी किस तरह काट सकता हूँ ? आज वह मुझ पर 'वासना से चलित' और 'इन्सानियत से गिरा हुआ' होने का आरोप लगाती है – क्योंकि मैंने उससे तलाक चाहा है – क्योंकि मैं अपने अभाव की पूर्ति के लिए एक ऐसे व्यक्ति का आश्रय चाहता हूँ, जो मुझे खींच सकता है, बांधकर रख सकता है ।"[57]

अपने परम मित्र उपेन्द्रनाथ अश्क और उनकी पत्नी जिसे राजेशजी कौशल्याभाभी कहते थे, दोनों के प्रयत्न से शीला राकेशजी को तलाक देने के लिए तैयार हो गई । इस प्रकार १२ अगस्त १९५७ को राकेशजी अपनी पहली पत्नी शीला से हंमेशा के लिए अलग हो गए । पत्नी से अलग हो जाने पर भी वह अपने बच्चे नीत को कभी नहीं भूला पायें । तलाक के बाद नीत के सम्बन्ध में सोचकर उन्हें बहुत दुःख होता । किन्तु फिर भी राकेशजी का सहृदय यह सोचता – "बच्चा बड़ा होकर इस परिस्थिति को ठीक से समझ सके तो मुझे खुशी होगी । न समझ सके तो भी दुख नहीं होगा । बच्चे की गलतफहमी उसकी माँ को सांतवना दे सके तो भी मैं उसे सान्वतना से वंचित नहीं करना चाहूँगा ।"[58] और "नीत की तस्वीर सामने है । मुझे इस बच्चे से कितना प्यार है, फिर भी ... ।"[59] जब भी उन्हें बच्चे की याद आती वे असहनीय पीड़ा का अनुभव करते । उनकी अत्यंत प्रसद्धि कहानी 'एक और ज़िन्दगी' के प्रकाश–बीना और बच्च पलांश के माध्यम से राकेशजी ने अपने शीला और नीत के जीवन को ही चित्रित कर दिया हैं ।

यह विवाह राकेशजी के जीवन में एक मनहूस छाया बनकर आया । अपने इस विवाह के तलाक के बाद की मनःस्थिति स्पष्ट करते हुए राकेशजी

लिखते हैं – ‘‘मैं अपने घर में अपने विवाहित जीवन का कोई भी निशान नहीं रहने देना चाहता । मेरे मन का एक कौना मेरी नृशंसता की आलोचना करता है । लेकिन उस आलोचना का मुझ पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता । मैं जो कुछ कर रहाँ हूँ, अपने जीवित रहने के हित में ठिक कर रहा हूँ । आज सम्बन्ध विच्छेदन के इतने दिन बाद भी मैं निश्चित रूप से कह सकता हूँ कि दाम्पत्य में जो साहचार्य चाहिए, वह दोनों में कहीं नहीं था – कोई भी परम्परापेक्षिता नहीं थी । यह एक दुर्वह स्वप्न छाया थी, जिसे हट जाना ही चाहिए ।’’[60]

➢ *दूसरा विवाह :*

प्रथम विवाह की असफलता के बाद राकेशजी अपने लेखन से हिन्दी साहित्य क्षेत्र में प्रसिद्ध होने लगे थे । लेकिन उन्हें किसी की आत्मीयता की और घर की तलाश उन्हें थी । घर और सहचरी की अभिलाषा को पूर्ण करने हेतु सन् १९६० में राकेशजी ने पुष्पा नामकी लड़की से दूसरा विवाह किया । पुष्पा उनके एक मित्र मोहन की बहन थी, जिसे राकेशजी ने विवाह से पहले कई बार देखा था । पहली पत्नी शीला और पुष्पा में बड़ा अंतर था । फिर भी यह विवाह भी राकेशजी के लिए गलत चुनाव का ही परिणाम था । इस विवाह से राकेशजी को बड़ा संघर्ष झेलना पड़ा, क्योंकि उनकी यह पत्नी मानसिक रूप से विक्षिप्त थीं । यह तथ्य उनके सामने शादी के बाद आया । यह उसकी नियति का अजीब खेल था ।

मानसिक रूप से विक्षिप्त पत्नी के साथ रहना राकेशजी के लिए मुश्किल हो गया । पत्नी की स्थिति से उत्पन्न मानसिक तनाव से बचकर वह खुद घर छोड़कर भाग निकले । इस प्रसंग को लेकर लोगों ने राकेशजी पर अनेक आरोप लगाये । इस प्रसंग के सम्बन्ध में कमलेश्वरजी लिखते हैं – ‘‘मुझे लगा कि राकेशने दूसरी बीबी को छोड़कर बड़ी कमीनी हरकत की है । पर भीतर ही भीतर मैं स्थितियों को सुलझा रहा था, और रह–रहकर कीर्तिनगर का वह मकान मेरी आँखों के सामने घूम जाता था, जहाँ राकेश ने कई बार

फिर सुस्थिर तरीके से रहने और जमकर लिखने की योजना बनाई थी । उस घर में मैं कई बार उससे मिला और हर बार मुझे यही लगा कि उस घर में सुख–शान्ति नहीं, एक बेहद खौफनाक सन्नाटा रेंग रहा है ... ।''[61] पत्नी की इस मानसिक स्थितिने उन्हें दर–दर की ठोकरे खाने को मजबूर कर दिया था । घर छोड़ने के कुछ महीने बाद कमलेश्वरजी से सारी बाते स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा था – ''कमलेश्वर, स्थिति यह थी कि मैं आत्महत्या कर लेता । चार महीनें से माँग–माँगकर कपड़े पहन रहा हूँ । सचमुच, मैं जान दे देता ।''[62] इस समय की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि उनका पहला नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' और पहला उपन्यास 'अंधेरे बन्द कमरे' हैं । साथ ही वे कहानियाँ भी सामने आयी जिसने राकेशजी को कहानीकार के रूप में अधिक उज्ज्वलता प्रदान की । इन कहानियों में 'सुहागिनें' 'मिस पाल' 'एक और ज़िन्दगी' आदि प्रमुख हैं । इन सभी रचनाओं के पात्र जैसे अपने व्यक्तित्व के लिए जूझ रहे है । जो राकेशजी की तत्कालीन मनस्थिति को ही स्पष्ट करती है – ''इन चार सालों में पहला नाटक लिखा 'आषाढ़ का एक दिन' और पहला उपन्यास 'अंधेरे बन्द कमरे' । इन रचनाओं के अतिरिक्त कई एक कहानियाँ भी लिखी जिसमें प्रमुख थी, 'सुहागिनें' 'मिस पाल', 'एक और ज़िन्दगी' । इस दौर की अधिकांश कहानियाँ सम्बन्धों के यन्त्रणा को अपने अकेलेपन में झेलते लोगों की कहानियाँ हैं । जिनमें हर इकाई के माध्यम से उसके परिवेश को अंकित करने का प्रयत्न है । यह अकेलापन समाज से कटकर व्यक्ति का अकेलापन नहीं, समाज के बीच होने का अकेलापन है और परिणति उसकी भी किसी तरह के सिनिसिज्म में नहीं, झेलने की चेष्टा में है ।''[63]

राकेशजी पुष्पा को उसके घरवालों के पास छोड़ आने का प्रस्ताव रखा था, किन्तु इसी बात से उसने इतना बड़ा तमाशा खड़ा कर दिया कि राकेशजी के आत्मसम्मान पर चोट लगी । ''इसी पत्नी ने 'सारिका' के कार्यालय में आकर तमाशा खड़ा कर दिया तो राकेश के आत्मसम्मान को इतना आघात पहुँचा कि उससे उबरने तक उन्होंने असह्य यंत्रणा झेली । यदि राकेश का जीवन उसी के साथ आगे बढ़ता तो वे पागल हो जाते । जब उन्होंने छोड़

देने और दूसरा विवाह कर लेने की सोची तो उन पर गुण्डों द्वारा आक्रमण भी करवाया गया । इस प्रकार वैवाहिक जीवन के दर्दनाक मोड़ो को पार करते राकेश में विवाह और घर के प्रति भय–मिश्रित वितृष्णा घर कर गयी । 'पत्नी' नाम से ही उनमें एक तरह की दहशत भर जाती ।"[64] लगातार दो विवाह सम्बन्धों की असफलता ने उनके जीवन में न ठहरने वाला बहाव उत्पन्न कर दिया जो राकेशजी को अपने साथ बहाता चलता था । सन् १९६३ ई. में राकेशजी की इस दूसरी शादी का परिणाम भी विच्छेदन ही हुआ । डॉ. इन्द्रनाथ मदान राकेशजी के जीवन की इस विडम्बना को स्वर देते हुए स्पष्ट करते हैं – " राकेश को घर और बीबी बदलने की विवशता हर दो–तीन साल बाद पड़ जाती थीं । यह अमीरों की पुरानी गाड़ियाँ बदलने की ऐयाशी नहीं थी, लाचारी थी ।"[65]

➢ *तीसरा विवाह :*

पहले दोनों विवाहने राकेशजी को गहरी चोट पहुँचायी क्योंकि विवाह के बाद राकेशजी को जिस स्नेह और घर की अपेक्षा थी वह उसे नहीं मिल पाया । अनीताजी राकेशजी की तीसरी पत्नी हैं । वैसे तो वैधानिक ढंग से राकेशजी ने उनके साथ विवाह नहीं किया था । प्रारंभ में अनीता आलोक से कोर्टशिप के पश्चात् २२ जुलाई १९६३ को उन्होंने गंधर्व विवाह कर लिया । इस विवाह के पश्चात राकेशजी के जीवन के सारे संघर्षो का अंत हो गया, साथ ही उन्हें वह घर भी मिल गया जिसकी उसे सालों से तलाश थी ।

अनीताजी से राकेशजी का परिचय जिन परिस्थितियों में हुआ उसकी एक लंबी कहानी है । अनीता की माँ राकेशजी की ओर आकृष्ट थी लेकिन राकेशजी उसकी बेटी ओर जूके । जब अनीता और राकेशजी के बीच प्रेम हुआ था तब वह कानूनी तौर पर नाबालिक थी और राकेशजी अडतीस को छूते थे । किन्तु दोनों एक–दूसरे के लिए हृदय से समर्पित हो चुके थे । दोनों अपनी चाहत को मंजिल पर पहुँचाने चाहते थे । अनीता ने राकेशजी से शादी कर ली । यह गंधर्व विवाह था, अतः इसका गवाह उन दोनों के सिवाय और

कोई नहीं था । राकेशजी कमलेश्वरजी की मदद से दिल्ली से मुम्बई पहुँच गये क्योंकि अभी तक अनीता कानूनी तौर पर नाबालीग थी । उसके बालीग होने में चार दिन बाकी थे । इस कारण वे मुम्बई में छिपे रहे । ३, अगस्त १९६३ को उन्होंने अपने नये जीवन को प्रारंभ की सूचना दुनिया को दी ।

यह राकेशजी की नयी ज़िन्दगी की शुरुआत थी । जीवन की अंतिम घड़ी तक वे इस ज़िन्दगी से जुड़े रहे । वैसे तो दोनों के बीच प्रारंभ में अनबन रही किन्तु दोनों का प्रेम और समर्पण इतना अधिक था कि कठिन से कठिन स्थिति में भी वे एक–दूसरे से जुड़े रहे । अनीताजी ने अपने आपको राकेशजी के अनुसार ढालने की पूर्ण कोशिश की थी । राकेशजी अनीताजी के शब्दों को अपनी डायरी में लिखते हैं –‘‘तुम कैसे उम्मीद करते हो कि मैं बिल्कुल Perfect हो जाउँ, जैसे तुम चाहो । बिल्कुल वैसे ही चलूं वैसे ही सोचू ? मैंने अस्सी की सदी अपने को तुम्हारे सांचे में ढाल दिया है, बीस की सदी अगर नहीं ढाल पाती तो उसके लिए क्या करू ?’’[66] अनीताजी राकेशजी के लिए अपने आपको बदल दिया, बिल्कुल वैसी ही बनकर रही जैसा उसने चाहा । समय के साथ एक–दूसरे के प्रति उनका प्रेम और विश्वास भी बढ़ता गया । इस अटल विश्वास की दृढ़ कड़ियों के रूप में खड़े है – पुरवा और शालीन । राकेशजी को अपने बच्चों से असीम प्यार था ।

राकेश ‘होम ब्रेकर’ है और एक ही औरत के साथ नहीं रह सकता । यह सबसे बड़ा इलजाम उस पर था । यह सच भी था कि उन्हों ने दो बार घर को तोड़ा था और पत्नियों को छोड़ा था, किन्तु इसके पीछे की वास्तविक स्थिति से सब जानकार ही है । वे खुद अनीताजी से मज़ाक करते थे – ‘‘तूने मेरा रिकार्ड खराब कर दिया है । दो साल से ज्यादा में किसी औरत के साथ नहीं रहा । पहले मैंने सोचा था कि दो–तीन साल के बाद चली जाएगी । लेकिन छः साल हो गए और जाने के कोई आसार ही नज़र नहीं आ रहे ... ।’’[67] राकेशजी ने अपने जीवन के अंत तक अनीताजी के साथ सफल ही नहीं सार्थक दाम्पत्य जीवन बिताकर अपने पर लगे इलजाम को नकारा ही नहीं बल्कि सामाजिक मान्यताओं को चुनौती भी दी ।

अनीताजी के साथ सार्थक दाम्पत्य जीवन प्रारंभ के बाद राकेशजी ने अपना पूरा ध्यान अपने परिवार, मित्रों और अपने साहित्य सृजन की ओर दिया । इसी अत्यंत निजी लगाव के दौर में राकेशजी ने अपने प्रसिद्ध नाटक 'लहरों के राजहंस' की रचना की । इस नाटक ने राजेशजी को नाटककार के रूप में अद्वितीय कीर्ति दिलायी ।

सन् १९६३ के बाद की अधिकाँश रचनाओं में राकेशजी ने शहेरी जीवन की ज़िन्दगी के संत्रास, भय, असुरक्षा, आतंक आदि का ही अधिक निरूपण किया हैं । इन रचनाओं में समकालीन जीवन का साक्षात्कार अपने पात्रों के माध्यम से कराना राकेशजी की विशेषता रही हैं । इस दौरान लिखित दो–तीन कहानियों को छोड़कर प्रायः सभी कहानियाँ बड़े शहर की भयावहता से पूर्ण ज़िन्दगी को चित्रित करती हैं । इस सम्बन्ध में 'ज़खम', 'एक ठहरा हुआ चाकू', 'सोया हुआ शहर', 'ग्लास टैंक', 'पांचवे माले का फ्लैट' आदि कहानियाँ उल्लेखनीय हैं । बदलती मानसिक संवेदनाओं के साथ राकेशजी ने शिल्य भी बदलता है । इस सम्बन्ध में राकेशजी स्पष्ट करते हैं –“ 'ग्लासटेंक' से 'एक ठहारा हुआ चाकू' तक जितनी कहानियाँ उन तीन वर्षो में लिखी गयी उनमें से दो–तीन कहानियों को छोड़कर प्रायः सभी बड़े शहर की ज़िन्दगी की भयावता की कहानियाँ है, हांलाकि भयावहता के संकेत इनमें भी व्यक्ति के माध्यम से ही सामने आते है, फिर भी इनका केन्द्रबिन्दु व्यक्ति न होकर उसके चारों ओर का संत्रास है । 'ज़खम', 'एक ठहरा हुआ चाकू' शीर्षक कहानियों में यह संत्रास अधिक रेखांकित है । इस दौर की कहानियों में मेरी एक और दृष्टि भी रही है – समय की मानसिकता के अनुकूल कहानी की भाषा और शिल्प की खोज के लिए अलग–अलग तरह के प्रयोग करने की ।”[68]

सन् १९६६ से १९७२ के बीच की राकेशजी रचनाओं में 'क्वाटर्स', 'खाली', 'पहचान', आदि प्रमुख कहानियाँ, 'अंतराल' और 'न आने वाला कल' उपन्यास तथा 'आधे अधूरे' नाटक आदि विशेष उल्लेखनीय है । इन सभी रचनाओं में भी लगभग पूर्ववर्ती मानसिकता के साथ आज के मनुष्य की

समस्या, विडंबना को आज की परिवेशगत स्थिति के साथ सहज स्वामाविक रूप में चित्रित कर दिया है ।

प्रत्येक रचनाकार के व्यक्तिगत जीवन का प्रयास उसके साहित्य में परिलक्षित होता है । मोहन राकेश इसके अपवाद नहीं थे । बाल्यावस्था से लेकर जीवन की विभिन्न स्थितियों ने उनके मन पर जो–जो प्रभाव छोड़ा उन प्रभावों को उनके साहित्य में स्पष्ट देखा जा सकता है । डॉ. सुष्मा अग्रवाल इस बात को समर्थन देत हुए लिखती हैं – ''कहने की आवश्यकता नहीं कि राकेश का लेखन उनके व्यक्तिगत, उनकी परिस्थितियों और तत्कालीन स्थितियों का रेखाचित्र ही है ।''[39] दूसरे शब्दों में कहे तो मोहन राकेश का संपूर्ण साहित्य उनके निज को व्यक्त करता है । राकेशजी का सच्चा परिचय आज भी उनकी कहानियों में, उपन्यासों में और नाटकों में मिल जाता है ।

अपने आस–पास की परिस्थिति, समाज और अपने सम्बन्ध में आने–वाले व्यक्ति और आपसी सम्बन्ध, अपने रोजमर्रा के जीवन के व्यवहार, बदलती मानसिकता आदि के माध्यम से राकेशजी ने जो अनुभव प्राप्त किया, वही यथार्थ शिल्प की ऊँचाई के साथ उनकी साहित्यिक रचनाओं में निरूपित हुआ है । राकेशजी का काव्य के क्षेत्र में योगदान नहीं हैं । लेकिन कहीं कुछ पंक्तियों में जो कुछ भी लिखा है, उनमें भी वही लिखा है जो स्वयं जीया है । 'उन्नीसवाँ सिगार' की यह पंक्तियाँ इसी बात का स्पष्ट प्रमाण हैं –

''पी लिया
अपने आत्मदाह में
फिर एक बार
जी लिया''

('सारिका' मार्च – 1973 – P-81)

संक्षेप में कहे तो राकेशजी ने अपने साहित्य में अपने जीवन और परिवेश को पूरे सत्य और ईमानदारी से व्यक्त किया हैं । मोहन राकेश का साहित्य ही वास्तव में उनकी पहचान है । डॉ. जयदेव तनेजा के शब्दों में – ''उन्होंने जब भी और जो कुछ भी लिखा, अपने ही जीवन के इतिहास को

फिर–फिर दोहराया ।"[70] अपने साहित्य में अपने ही जीवन को बार–बार दोहराने की बात का समर्थन करते हुए राकेशजी ने अपनी डायरी में लिखा है – "जिस तरह 'सैलर' में शराब बरसों Mature होती रहती है, उसी तरह छोटी–छोटी घटनाएँ बरसों दिमाग में Mature होती रहती हैं । उन्हें फिर लिपिबद्ध करने में पुरानी शराब का सा ही नशा हासिल होता है ।"[71]

अब तक मोहन राकेश की जीवन कथा का वह भाग विवेचित हुआ है जो उनके जन्म, नाम, विवाह, परिवेश, शिक्षा और नोकरी से संबंधित है । यों तो इस विवेचन में राकेशजी के व्यक्तित्व की विशेषताएँ स्पष्ट हो ही गयी है किन्तु यह व्यक्तित्व उनके प्रारंभिक व्यक्तित्व से सम्बन्धित है । दरअसल व्यक्ति वह नहीं है जो बाहर दिखता है असली व्यक्ति तो भीतर छीपा हुआ होता है । यह बात प्रत्येक व्यक्ति पर तो लागू होती ही है किन्तु साहित्यकार पर और अधिक सार्थक रूप में यह अनुभव की जा सकती है । एक रचनाकार का असली व्यक्तित्व तो तब निखरता है जब वह ज़िन्दगी की विविध परिस्थितियों से संघर्ष करता हुआ अपना स्वतंत्र चिंतन विकसित कर लेता है । कलाकार का सृजन उसके व्यक्तित्व को प्रमाणित करता है और सृजन व्यक्तित्व का परिचायक होता है । राकेशजी का समग्र साहित्य उनके व्यक्तित्व को लेकर चलता हैं ।

परिवेश और जीवन की विभिन्न घटनाओं के साथ रचनाकार के बाह्य और आंतरिक व्यक्तित्व की जानकारी भी महत्त्वपूर्ण होती है । रचनाकार समाज का सशक्त अंग होता है । इस दृष्टि से उसके व्यक्तित्व के स्वरूप, स्वास्थ्य, शारीरिक संरचना, बुद्धि, ज्ञान, अनुभव, आदतें, स्वभाव, आस्थाएँ, व्यवहार आदि घटकों पर भी लोगों का ध्यान आकृष्ट रहता हैं । राकेशजी अपने आंतरिक और बाह्य व्यक्तित्व को लेकर हिन्दी साहित्य के अन्य साहित्यकारों से ज्यादा चर्चित रहे हैं । अतः यहाँ राकेशजी के बाह्य व्यक्तित्व और आंतरिक व्यक्तित्व के विभिन्न पहलुओं पर भी प्रकाश डालना आवश्यक समझा गया है ।

❀ *बाह्य व्यक्तित्व*

महादेवी वर्मा के अनुसार – ''साहित्यकार का व्यक्तित्व अपने ही अनुरूप विशिष्ट शैली, माध्यम और उपकरण का चयन करता है ।''[72] इस दृष्टि से राकेशजी के व्यक्तित्व पर नज़र डाले तो उनका व्यक्तित्व अनूठा प्रतीत होता हैं । वास्तविकता यह है कि राकेशजी एक आकर्षक व्यक्तित्व के धनी थे । उनका स्वस्थ शरीर और आकर्षक चेहरा सभी को अपनी ओर खिंचने और प्रभावित करने में सक्षम था । डॉ. सुष्मा अग्रवाल राकेशजी के शारीरिक सौन्दर्य के प्रभाव को शब्दांकित करते हुए लिखती हैं – ''कुल मिलकर राकेश का बाह्य व्यक्तित्व प्रभावकतत्त्वों के विनियोग से बना था । उसमें एक दुर्निवार आकर्षण था । वह एक गोरे तेजयुक्त पंजाबी युवक थे । उनकी आँखों पर लगा चश्मा उनके व्यक्तित्व को गरिमा प्रदान करता था । अनीता के मन पर उनके विषय में किसी के द्वारा दिया गया यह ब्यौरा सदैव अंकित रहा – 'गोरा रंग, कद छोटा, घुँघराले बाल और आँखों पर चश्मा, उम्र पच्चीस वर्ष कुल मिलाकर एक खूबसूरत नौजवान ।' उनके व्यक्तित्व का प्रभाव उनसे सम्बन्धित सभी व्यक्तित्व पर पड़ता था ।''[73]

राकेशजी का चेहरा हँसता हुआ और आकर्षक था । आवाज में खनक के साथ गहराई थी । वे जहाँ पहुँच जाते थे वहाँ का वातावरण खिल उठता था । उनकी आँखें और हँसी उनके व्यक्तित्व को और निखारती थी । राकेशजी के आकर्षक व्यक्तित्व को रेखाकिंत करते हुए राज बेदी लिखते हैं – ''उसकी दो चीजें अक्सर घेरे रहती है : उसकी आँखें और उसकी हँसी । कहते हैं आँखें इन्सान की रूह का दर्पण होती है । उसके घुँघराले बाल, भरा हुआ गोरा और निष्कपट चहेरा, खूबसूरत होठों में दबी हुई सिगरेट, लेकिन सबसे बढ़कर उसकी आँखें और आँखों की नज़र और नज़र के पीछे एक गहरी नज़र, जिसमें कैसे–कैसे अनूठे रंग के कमल खिलते थे । उन आँखों में जाने कैसी अजीब चमक थी या कोई करिश्मा था कि उनकी गहराई को देखों तो बस फिर देखते ही रह जाओ ।''[74] राकेशजी का प्रभावी व्यक्तित्व किसी

को भी एक नज़र में अपनी ओर आकृष्ट करने में सक्षम था । डॉ. गिरधारीलाल वैद ने राकेशजी को जब पहली बार देखा और वे उसके प्रति किस तरह आकर्षित हो गये, इस बात को स्पष्ट करते हुए डॉ. वैद लिखते हें – ''जुलाई का महीना बारिश में भीगा पहला दिन । कॉलेज के सबसे छोटे क्लास के रूम में दाखिल होता हुआ एक निहायत खूबसूरत बाईस वर्ष का गोरा–चिट्टा नौजवान । सुर्ख चेहरा, घुँघराले बाल, चश्में के मोटे काँच के पीछे चमकती हुई सुरमाई आँखें । बोस्की की लम्बी आस्तीन की कमीज, ऊनी पैंट, टाई और कोट पहने, कंधे पर बढ़िया किस्म का 'रेन कोट' डाले बाईस वर्ष का यह लड़का निहायत बुजुर्ग लगता था । गुरु–गंभीर स्वर में धारा–प्रवाह व्याख्यान मैं मंत्र–मुग्ध सुनता रहा । पहली बार में ही एक विचित्र आकर्षण का सम्बन्ध स्थापित हो गया । विश्वास नहीं होता था कि हिन्दी का प्रोफेसर भी ऐसा हो सकता है ।''[75]

राकेशजी का आकर्षक व्यक्तित्व भी एक कारण था कि बहुत–सी लड़कियाँ उनके साहित्य के साथ–साथ उनके व्यक्तित्व की भी फेन हुआ करती थी । प्रिया, दिव्या, वर्षा, वीणा से लेकर अनीता आलोक भी राकेशजी के साहित्य के साथ–साथ उनके बाह्य गठन से प्रभावित रही हैं ।

कमलेश्वरजी राकेशजी के अभिन्न मित्र रहे है । राकेशजी के बाह्य व्यक्तित्व को लेकर कमलेश्वर का निरीक्षण देखने योग्य है । 'मेरा हमदम मेरा दोस्त' में राकेशजी के व्यक्तित्व को स्पष्ट करते हुए कमलेश्वरजी ने लिखा हैं – ''अगर कहीं एक ऐसा शख्स दिखाई पड़े, जो सिल्क की निहायत लम्बे कालरवाली कमीज पहने हो, जिसके कफ कोट की वाँहों से छः अंगुल बाहर निकले हों और उनमें एकदम पुरानी चाल के कफ–बटन हों, जिसकी टाई की गाँठ ढीली मुट्ठी की तरह गर्दन में बेतरतीबी से कसी हो, कीमती कपड़े की पैंट जिस पहननेवाले से पनाह माँग रही हो और जो गोल्ड फलैक की सिगारटें जला–जलाकर खा रहा हो और माचिस की तीलियाँ राख और टुकडे निहायत साफ–सुथरी और सजी जगहों में फेंकता जा रहा हो और बात–बात पर आसमान–फाड़ ठहके लगाता हो, तो समझ लीजिए कि वह राकेश है । अगर

वह राकेश न भी हुआ तो वह राकेशनुमा आदमी आपको उसका अता–पता बता देगा ।”[76]

राकेशजी का व्यक्तित्व परिचित–अपरिचित सभी को प्रभावित करता था । विशेष रुचि और वैचारिकता के कारण उनका रहन–सहन, परिधान विशेष था । उसकी आँखें और हँसी एकदम निराली थी । शारीरिक गठन भी बेजोड़ था । राकेशजी का बाह्य व्यक्तित्व भीड़ में भी उसको अलग पहचान देता था । अतः यह कहा जाय कि दुनिया की चमक–दमक ने उन्हें जितना प्रभावित नहीं किया, उनकी चमक–दमक ने दुनिया को कहीं अधिक प्रभावित किया था – तो यह अत्युक्ति न होगी । उनके साहित्य के संपर्क में आनेवाले उसके फेन, उसके मित्र सभी पर उनके व्यक्तित्व की छाप परिलक्षित होती थी । डॉ. शरेशचन्द्र के शब्दों में – “राकेश की रचनाएँ जितनी आकर्षक है और उनका मन जितना सुन्दर था उतना ही आकर्षक और सुन्दर उनका बाहरी व्यक्तित्व था । घुँघराले काले बाल, भरा हुआ गोल चेहरा, मोटे ग्लास के पीछे से झाँकती चमकदार आँखें, भरे–पूरे बदन का गोरा रंग और ‘वायब्रेटिंग वॉयस’ – ये सब अनायास ही दूसरों को अपनी ओर आकर्षित करते थे ।”[77]

❀ *अंतर्विरोधी व्यक्तित्व*

राकेशजी ने अपने जीवन में अभाव–तृप्ति, सुख–दुःख, संगत–असंगत सभी प्रकार की स्थितियों का सामना किया था । शायद कहीं कारण है कि बाहर से आकर्षक दिखने वाला व्यक्तित्व अपने भीतर व्याकुलता, तनाव और अनेक तूफानों को समेटे हुए था । जो उसके संपर्क में आनेवाले व्यक्तित्व के लिए पहेली से कम नहीं था, और इसलिए राकेशजी का व्यक्तित्व उनके लिए अंतर्विरोधी व्यक्तित्व ही बना रहा । राकेशजी के आंतरिक विरोधाभास से युक्त व्यक्तित्व को समझना लगभग असंभव सा था । डॉ. सुष्मा अग्रवाल स्पष्ट करती हैं – “कमलेश्वर के ‘हमदम’ और ‘अन्ना’ – अनीता के ‘राजे’ – राकेश अपने आंतरिक व्यक्तित्व में अनेक संगतियाँ, असंगतियाँ और विराधाभासों

से युक्त था । बराबर कहा जाता रहा है कि राकेश को समझना मुश्किल है, उसके अंतस् को टटोलना तो और भी कठिन है ।''[78]

राकेशजी के इस अंतर्विरोधी व्यक्तित्व को सही–सही पहचान पाना उनकी पत्नी अनीता के लिए भी कुछ हद तक दूभर हो गया था । किन्तु अपने स्नेह और प्रेम के कारण वह राकेशजी को पहचानने में कुछ हद तक सफल रही है । अनीताजी ने भी राकेशजी के व्यक्तित्व के लिए कहा हैं कि वह बाहर से जितने सीधे और सरल दिखते थे उतने वह वास्तविक जीवन में नहीं थे । उन्हें भीतर से समझ ने के लिए तपस्या की जरुरत थी । राकेशजी बाहर से जितने इन्फार्मल थे, मन से उतने ही अधिक फार्मल । वे जिन्दादिल आदमी तो थे ही, लेकिन कभी लगता – ''जैसे वह ज़िन्दगी से ऊबा हुआ व्यक्ति है... एक्सट्रीमली इंटलेक्चुअल और कभी–कभी एक्स्ट्रीम्ली इमोश्नल ।''[79] राकेशजी के मित्र राजेन्द्रपाल ने राकेशजी के अंतर्विरोधी व्यक्तित्व के कारण को स्पष्ट करते हुए लिखा हैं – ''उनकी परिचय परिधि में आने वाले लोग राकेश के जीवन की विसंगतियों को नहीं समझते है या उनमें और उनके व्यव्हार में सामंजस्य न बिठा पाने के कारण ही बहुत सी अनपेक्षित भ्रांतियों के शिकार हो जाते है । इनमें से कुछ विसंगतियों तो बड़ी दिलचस्प हैं, जैसे – राकेश अपने दोस्तों के लिए जीते हैं । राकेश बहुत आत्म केन्द्रित हैं, उनकी दोस्तियाँ निभती हैं तो दूसरों की वजह से । वे तो एक कदम भी साथ न चल सकें । ... वे कहीं टिक नहीं सकते, किसी के हो नहीं सकते । राकेश को घटियापन बर्दाशत नहीं है, न दूसरों का, न अपना । राकेश बहुत घटिया इन्सान हैं । 'बीजेल' की तरह दूसरों के व्यक्तित्व को चूस लेता हैं, उसे खोखला कर देता हैं, फिर बड़ी बेबाफी से पल्ला छुड़ा जाते हैं, बदले में कुछ देना वे नहीं जानते । ऐसी बहुत–सी विसंगतियों में उनका व्यक्तित्व उलझकर रह गया हैं ।''[80]

राकेशजी के व्यक्तित्व के विषय में कहीं गयी बाते कितनी ठीक है और कितनी गलत, इसका अनुमान राकेशजी की मनः स्थिति और जीवन संघर्ष को सामने रखकर ही की जा सकती है । सिर्क बाहर से देखने वालों को उनकी

परस्पर विरोधी प्रवृत्तियों तथा व्यव्हार में कोई संगति नहीं दिखाई पड़ती थी । अतः उनके सम्बन्ध में भ्रमक निर्णय दे बैठते । किन्तु फिर भी राकेशजी के व्यक्तित्व में कहीं–न–कहीं थोड़ी असंगति और विरोधाभास तो था ही । अतः उनके व्यक्तित्व को उनके मित्रों एवं आलोचको ने उन्हें अंतर्विरोधी व्यक्तित्व से युक्त माना है । जो राकेशजी के व्यक्तित्व की विशेष पहचान है ।

❀ *अहं और आवेश :*

राकेशजी के व्यक्तित्व का सबसे प्रबल पक्ष था उनका अहं । वे किसी भी परिस्थिति में समझौते के लिए तैयार नहीं थे, चाहे वे नौकरी हो, मित्रता हो, या फिर पत्नी उन्होंने कभी समझोता नहीं किया । आत्मसम्मान से पूर्ण होने के कारण अहं उसके व्यक्तित्व का प्रबल अंग था । दूसरें शब्दों में कहे तो उनका अहं उनकी संचित शक्ति था, जिसे उन्होंने कभी खण्डित होने नहीं दिया । राकेशजी के व्यक्तित्व की इस विशेषता पर प्रकाश डालते हुए डॉ. गिरीश रस्तोगी लिखती हैं – ‘‘राकेश में एक जबरदस्त अहं हंमेशा रहा है । वह कभी उपेक्षित नहीं रहना चाहते थे । उपरी सहानुभूति से ही चिढ़ नहीं थी, उस हद तक सहानुभूति से चिढ़ थी जो उनकी पर्सनेलिटी को दबा दे । कोई आदमी अगर घटिया है तो रग–रग दुखने लगेगी । यह ‘एक्स्ट्राआर्डिनरी’ स्वभाव और व्यक्तित्व ही उसका निजी व्यक्तित्व है । जिसने वैवाहिक सम्बन्धों को भी हंमेशा उलझाया ही ।’’[81] उनके मित्रों में भी यह बात चर्चित रही है कि वे अपनी शर्तो पर जीवन जीने के कायल थे । अनीताजी ने इस सम्बन्ध में लिखा हैं – ‘‘उसने मित्रता भी की तो अपनी शर्त पर – जिन–जिन लोगों ने उसे स्वीकारा या सिर्फ उसकी शर्तो को मानकर ही स्वीकारा था । अतः उनका कोई मित्र ऐसा नहीं था जो उन्हें न समझता हो – लेकिन उनकी शर्त मानने के बाद वो फिर उन सबका गुलाम भी हो जाता था ।’’[82]

वस्तुतः राकशेजी का अहं बड़ा प्रबल था । वे झुकना नहीं जानते थे, झुकाना जानते थे । यहीं वह अहं था जिसने उसे एक उच्चकोटि का

रचनाकार बनाया । जीवन के हर क्षेत्र में उनका अहं प्रबल रहा । इसीने उन्हें स्वाभिमानी भी बनाया और संवेदनशील भी । अपनी डायरी में एक घटना का उल्लेख करते हुए राकेशजी ने अपने इसी स्वभाव को व्यक्त किया है । एक बार खुद राकेशजी ने अनीताजी को यह सलाह दी कि वह आगे पढ़नें के लिए मुम्बई चली जाय । कहने के बाद उन्हें लगा कि उन्होंने गलत सलाह दी है । वह अनीताजी को रोकना चाहते थे लेकिन एक–बार कहकर उसे वापस लेना उसके ईगो के खिलाफ था । अनीताजी बम्बई चली गयी और राकेशजी तड़पते रह गये । अनीताजी को गाड़ी में छोड़ने के बाद की मनः स्थिति को व्यक्त करते हुए उन्होंने लिखा हैं – ‘‘लौटने में बिना बात के अम्मां पर गुस्सा हो गया । रास्ता भर ‘शाउट’ करता रहा ।... घर लौटकर आया तो खालीपन महसूस हुआ ।... बाहर जाकर लौटा, तो अकेलापन और भी महसूस हुआ । लगा कि वह यहाँ होती, तो... ।’’[83] कमलेश्वरजी ने राकेशजी की जिद्दी स्वभाव को बराबर पहचाना हैं । वे लिखते हैं – ‘‘जिद तो उसकी पुरानी आदत है... इसमें राकेश को शायद एक अजीब तरह का दर्दभरा संतोष भी मिलता है । और एक मर्तबा जब वह यह कर लेता है, तो जिद्दी की तरह अड़ा रहता है । लेकिन यह सब वह करता तभी है, जब उसे अपना व्यक्तित्व जकड़ता हुआ नज़र आता है, तब वह अपनी परेशानियों की परवाह नहीं करता और हर तरह का गम उठाने के लिए तैयार हो जाता है ।’’[84]

वास्तव में राकेशजी का ईगो या जीद उनके व्यक्तित्व की सिर्फ सामान्य चीज नहीं है, वरन् उनके निजी अस्तित्व को प्रभावित करने वाला तत्त्व है । डॉ. सुष्मा अग्रवाल को स्पष्ट करती हैं – ‘‘वस्तुतः राकेश का अहं बड़ा प्रबल था । वे कभी किसी से दबे नहीं । हिन्दी साहित्य में अनेक वर्षो तक उनका आतंक रहा किन्तु उन्होंने कभी उसका अनुचित लाभ नहीं उठाया । वे अहंवादी तो थे ही किन्तु दूसरों की प्रतिभा को आदर की दृष्टि से भी देखते थे । यदि वे दूसरों की किसी कमी को सहन नहीं कर सकते थे तो अपनी कमियों को भी नहीं ।’’[85]

यह कहना गलत न होगा कि राकेशजी के अपराजेय व्यक्तित्व की आधारशीला उसका अहं या ईगो था ।

❀ *जिन्दादिली और आत्मसम्मान :*

राकेशजी एक जिन्दादिल व्यक्ति थे । उसे जीने का चाव था । वह हर स्थिति में खुश रहना जानते थे । राकेशजी ने सभी परिस्थितियों में सिर उठाकर आत्मसम्मान से जिया है । उन्होंने जीवन को भरपूरा जिया है । उनकी इच्छा अच्छी तरह से जीने के साथ लंबी उम्र बिताने की थी । उनमें जिजीविषा बहुत थी । 'आलोचना' द्वारा आयोजित आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ले षष्ठिपूर्ति महोत्सव की गोष्ठी में किसीने राकेशजी को पूछा ''तुम जब साठ के होगे, तो ... ।''[86] उसे बीच में ही काट कर राकेशजी ने जवाब दिया ''तुम्हारा खयाल है, मैं मानूंगा तब अपने को साठ का ? कोई अगर मुझे कह देगा साठ का, तो मैं उससे कहुँगा, साठ के होगे तुम । मुझे तुम साठ का कहते हो ?''[87] उन्हें पहाड़ो पर धूमना, शहर–शहर फिरना, और वर्षा में भीगना अच्छा लगता था । राकेशजी की जिन्दादिली का और एक उदाहरण भी यहाँ उल्लेखनीय है कि एक बार उन्होंने ओंप्रकाश से कहा था ''यह क्या हम बूढ़ों की सी शक्ले बनाते जा रहे है ? हमें सफेद कपड़ो की ही कमीज क्यों पहननी चाहिए ? चलो आज रंगीन कपड़ो की कमीजें सिलवायें... और सचमुच उसी दिन हमने राजपथ की एक दूकान से जितने रंग के कपड़े मिले कई पाँच–सात कमीजों के लिए फड़वा लिए ।''[88]

आर्थिक अभावों ने कभी उसे निराश नहीं किया । राकेशजी ने अपने जीवन में बार–बार आर्थिक अभावों का सामना किया और कितनी ही बार ऐसे अभावों को उन्होंने झेला है, जहाँ सामान्य आदमी बिखर कर टूट जाता । किन्तु अपनी जिन्दादिली पूर्ण सोचने राकेशजी को हर हालत में चिंता से मुक्त रखा । इस विषय में कमलेश्वरजी ने लिखा हैं – ''भविष्य की चिंता करना उसकी आदत में नहीं है । जो उसके हाथ में है, उसे लेकर वह भरपूर ज़िन्दगी जीने का आदी है । भविष्य की चिंता कीजिए तो एक से एक नुस्खे

उसके पास हैं "कम–से–कम पाँच सौ में गुजारा हो जाएगा ! हे न ? तो सूद पर तीन हजार कर्ज लो और आराम से बेफिक्र होकर छः महीने में छः हजार का काम करो.. फिक्र किस बात की है !" इस तरह की निहायत बेमिसाल अव्यवहारिक योजनाएँ उसके पास है... शेखचल्ली की तरह वह एक मिनट में सब हिसाब लगाकर बता देगा और दूसरे मिनट भूल जाएगा । तीसरे मिनट खुद जाकर कही चार सौ रुपये महीने का शानदार फलैट किराये पर ले लेगा ।"[89] उन्होंने आर्थिक अभाव में भी बहुत शानदार जीवन व्यतीत किया । महँगी सिगरेट और सिगार पीने के बारे में उसका तर्क था – "देखिए यह लोग समझते हैं कि हिन्दी का लेखक बड़ा दीन–हीन और अभाव ग्रस्त प्राणी होता है, उससे मुझे सख्त नफरत है । मैं इन सबको बता देना चाहता हूँ कि हिन्दी का लेखक अब दान का डिब्बा हाथ में लेकर घूमने वाला प्राणी नहीं है ।"[90] राकेशजी जीवनपर्यत हिन्दी लेखक की इस इमेज को प्रतिष्ठित करने में लगे रहे ।

राकेशजी के स्वभाव की विशेषता थी आत्मसम्मान अतः जहाँ–जहाँ उनके आत्मसम्मान को चोट पहुँची, या जहाँ उनका सौदा नहीं पटा कि वे नौकरी छोड़ देते थे । राकेशजी के पास निश्चित आय के जरिये थे पर आत्मसम्मान को उन्होंने पैसे से अधिक महत्त्व दिया । उन्होंने कभी पारिश्रमिक तक के विषय में समझौता नहीं किया । 30-9-67 को लिखे पत्र का अपनी डायरी में उल्लेख करते हुए उन्होंने लिखा हैं – "भारती और कमलेश्वर के पत्रों में पारिश्रमिक की बात थी । 'धर्मयुग' से 150 रुपये का चेक आया था । हालांकी छः महीने पहले इन्हें लिख दिया था कि आगे से प्रकाशित होनेवाली रचनाओं के लिए 250 रुपये से कम पारिश्रमिक मुझे स्वीकार नहीं होगा । चेक भारती के पत्र के साथ लौटा दिया ।... स्थिति को स्वीकार न कर सकना मेरी मजबूरी है । कम्पनी उचित पारिश्रमिक देना एफोर्ड नहीं कर सकती पर एक लेखक तो पारिश्रमिक न लेना एफोर्ड कर ही सकता है ।"[91] राकेशजी के लिए पैसे का उतना महत्त्व नहीं था जितना आत्मसम्मान का । राकेशजी की आत्मसम्मान की भावना को जो ठीक से नहीं समझ सके ऐसे

उनके मित्रों और आलोचकों ने उन्हें व्यापारिक मनोवृत्ति वाला साबित किया है पर इसके पीछे राकेशजी की व्यापारिक मनोवृत्ति कम और साहित्यकार के सम्मान–सुरक्षा की भावना ही अधिक थी ।

❀ *विद्रोही, स्वच्छंद और अपनी तरह ज़िन्दगी जीने के कायल :*

अक्सर देखा गया है कि कलाकार किसी–न–किसी स्तर पर विद्रोही, स्वच्छंदी और अपनी तरह ज़िन्दगी जीने के कायल होते हैं । इसी मनोवृत्ति के कारण उनका सृजन यथार्थ, प्रभावी और तत्कालीन परिवेश का दर्पण होता है । राकेशजी का जीवनवृत्त जानने के बाद यह बाज स्पष्ट रूप से सामने आ गयी है कि राकेशजी में कलाकार होने के यह लक्षण या संस्कार बचपन में ही सामने आने लगे थे । जब घर पर उन्हें 'ऐसा करो, वैसा नही, वहाँ मत घूमो, अपने घर को छोड़ कर कहीं मत खाओं, कंजरों की बस्ती में मत जाओ– आदि जैसी हिदायते दी जाती तो उनका मन विद्रोह कर उठता । 'परिवेश' में राकेशजी ने स्वयं स्वीकार किया है कि बचपन के बंधनो से उन्हें तिलमिलाहट होती थी और उसका मन विद्रोह करने लगता था । किन्तु उम्र में छोटे होने के कारण वे अपने विद्रोह को दबा देते थे । किन्तु जैसे–जैसे स्वतंत्रता बढ़ी यह विद्रोह भी बढ़ा । उनका यह विद्रोह न केवल साहित्यिक प्रतिमानों के पुनरन्वेषण में दिखायी देता है, अपितु अपने सामाजिक और व्यक्तिगत जीवन में भी मिलता है ।

राकेशजी बंधन से हंमेशा दूर रहे हैं । वे सदैव अपनी ज़िन्दगी अपने ढंग से स्वतंत्र रूप से जीने में मानते थे । अतः वे किसी भी समझौते के लिए तैयार नहीं थे । अपनी इस स्वच्छंद मनोवृत्ति के कारण राकेशजी को काफी हानी भी उठानी पड़ी, लोगों के ताने भी सुनने पड़े यहाँ तक कि दुश्मनी भी मोल लेनी पड़ी । किन्तु राकेशजी ने इन सबकी परवाह कभी नहीं की । वे हंमेशा अपनी इच्छानुसार जिये । उनके एक त्यागपत्र का अंश उनकी इस विशिष्टता को अच्छी तरह प्रकाश में लाता है – "... मेरे आधीन काम करते थे । और अब स्थिति ऐसी चरमसीमा को पहुँच चुकी है कि मेरा मस्तिष्क

अब ऐसे कार्य से और अधिक संबद्ध रहने का इन्कार करता है । में अपने जीवन के लाभों को भविष्य की सुनहरी आशाओं की वेदी पर न्योच्छावर नहीं कर सकता ।"[92] राकेशजी ने अपने जीवन–काल में ऐसे ही कितने पदों को इसलिए ठुकरा दिया था कि इन सबसे उनकी स्वतंत्रता आहत होती थी ।

राकेशजी जब तक जिये अपनी शर्तो और अपने विचारों के साथ । उन्होंने पूरी ईमानदारी के साथ जीवन जिया । उनके व्यक्तिगत का प्रमुख गुण था उनकी ईमानदारी । वे अपने ढंग से जीकर जितने ईमानदार रहे उतने सामान्य लोग नहीं रह सकते हैं । इसलिए "कभी–कभी कुछ लोग राकेश को दम्भी, बनावटी और स्नॉब भी समझ बैठते हैं । उनका यह समझना बहुत गलत भी नहीं होता क्योंकि वे उसके संपर्क में बहुत ज्यादा नहीं आ पाते । ख्याति, सम्मान और यश के बावजूद दम्भ नाम की चीज़ कताई इस आदमी में नहीं है और न यह आदमी काल्पनिक सृष्टि और आडम्बरपूर्ण बातावरण में रहने का हामी है । इसके बरक्स वह हर उस स्थिति को तोड़–मरोड़कर फेंक देता है, जिसमें बनावटीपन की बू आती है – कभी–कभी तो वह ऐसी स्थितियों के खिलाफ जिहाद बोल देता है । ... और आज के जमाने में हर सम्पूर्ण व्यक्ति की ट्रेजडी यही है कि लोग उसे काट–काटकर अपने – अपने लिए बाँट लेना चाहते हैं । और जब इस तरह के बँटवारे किये जाते है, तो वह विद्रोह करता है और भागता है... ।"[93] राकेशजी को अपने ढंग से जीवन जीने की कीमत सदैव चुकानी पड़ी, किन्तु फिर भी बेफिक्र होकर उन्होंने अपने ढंग से जीवन व्यतित किया ।

राकेशजी के स्वभाव की एक और एक बात भी सामने आती है कि वे एक ही तरह की ज़िन्दगी को बार–बार दोहराकर जीना पसंद नहीं करते थे । हर रोज ज़िन्दगी को नये ढंग से जीना और कुछ–न–कुछ नया पाना उनकी चाहत थी । एक तरह से जीना और सिर्फ जीते चले जाना उनकी प्रकृत्ति के विरुद्ध था । 16-8-64 को लिखी गयी डायरी में राकेशजी ने इस बात का उल्लेख करते हुए लिखा हैं – "इसमें क्या सार्थक्ता है कि आदमी एक ही जिये हुए दिन को बार–बार जिये : फिर–फिर से उसी तरह, उसी क्रम से

और उसी दायरे में । वही बातें करे–या वे नहीं तो वैसी ही । उसी तरह हँसे । उसी तरह हैरानी जाहिर करे । उसी तरह बैठे । उसी तरह उठे । और उसी तरह मुंह उठाए । कल की तरह आज भी बस के क्यू में आ खड़ा हो ?''[94] नये–पन के साथ अपने ढंग से जीना राकेशजी के जीवन के प्रति स्वस्थ दृष्टिकोण को स्पष्ट करता है किसी विकृति या 'एबनोर्मेलिटी' को नहीं ।

❀ *भावुकता और संवेदनशीलता :*

राकेशजी एक संवेदनशील और भावप्रवण व्यक्ति थे । बनावट उसे पसंद नहीं थी । कमलेश्वरजी ने लिखा है – ''राकेश बनावट में रहने का आदी नहीं है, इसलिए वह अधूरी ज़िन्दगी जीने का कायल भी नहीं है । वह पैसे से, मन से, यार–दोस्तों, साथी–संगियो के साथ पूरी जागरूकता और संचेतना के साथ रहने का तलबगार है । वह आदमी की ममता, अपनत्व और लगाव को रोज–रोज नहीं तौलता, न खुद तुलने के लिए तैयार होता है ।''[95] राकेशजी को इसी संवेदनशीलता, नेकी और भावुकता के कारण न जाने कितनी बार धोखा खाना पड़ा । ''भावुकता और आदर्श की चट्टान पर राकेश को बार–बार पटका गया है और उसके अतिभावुक क्षणों में उसे बार–बार अपने को अनजाने ही दाँव पर लगाया है । और गलतियों की हद तक गया है अपनी परवाह किये बगैर उसने दूसरो के गमों को हलका करने के लिए स्वयं को समर्पित किया है और लगातार एक बेहतर ज़िन्दगी की तलाश में भटकता रहा है – एक ज़िन्दगी और... एक और ज़िन्दगी... खामोशी से वह खोजता रहा है... ।''[96]

राकेशजी की भावुकता और संवेदनशीलता को हम उसकी माँ के प्रति, अनीताजी और बच्चों के प्रति प्रेम में विशेष देख सकते हैं । राकेशजी माँ के निधन से टूट ही गये थे । उन्हें 'अम्मा' से विशेष लगाव था । 'अम्मा' के लिए कई बार राकेशजी को रोते बिलखते देखा गया था । ''16 दिसम्बर को एकाएक चल बसी माँ का दुःख । आँसू पोंछकर वह पास आ बैठता है –

मुझसे अम्मा के कमरे की तरह से गुजरा नहीं जाता । क्या करूँ ?''[97] 'मेरे हमदम मेरे दोस्त' में कमलेश्वरजी ने ऐसे प्रसंग स्पष्ट किये है जिस से राकेशजी की भावुकता और संवेदनशीलता का पता चलता है । ''एयरपोर्ट – चलने से पहले वह परेशान है – पुरवा के लिए खिलौने लेना है । इतवार । बाजार बन्द है । सोचा दादर से होते निकल जायेंगे । वह खुला होगा । फिर वक्त नहीं रहा । सीधे एयरपोर्ट पहुँच गये । वह बहुत उदास है ।''[98] राकेशजी को हंमेशा इस बात की अनरवत तलाश रही है कि – ''कोई उसका है और वह किसी का है – वह चाहे माँ हो, दोस्त हो या दो दिन का मुलाकाती । वह एकाएक अपना सब कुछ दे बैठता है, कहता कुछ भी नही, पर जिससे एक बार मिल लेता है, उसे वह गैर नहीं समझता । वह उसकी ज़िन्दगी के दायरे में आ जाता है ।''[99] इसी भावुकता के कारण वह पहाड़ी पर पिछले साल की पहचान वाले एक तम्बू लगाने वाले व्यक्ति के लिए तीन दिन परेशान रहे । जरा–सी–जान पहचान के तम्बूवाले के लिए इन्तार करते रहे और जब वह मिला तभी उसने अपना तम्बू लगवाया । उसने तकलीफ भी उठाई, पैसे भी खराब किये पर किसी से जुड़े होने की यह भावुकता ही उसकी धरोहर हैं । एक अन्य प्रसंग का उल्लेख करते हुए कमलेश्वरजी ने लिखा हैं – ''गुरुद्वारा रोड़ के टैक्सी स्टैन्ड पर जब आठ महीने बाद एक दिन फिर वह मेरे साथ पहुँचा, तो वह उसी टैक्सीवाले को खोज रहा था, जिसने उसे मुसीबतजदा दिनों में बाहिफाजत पूरी दिल्ली घुमाई थी और जिसका नाम तक उसे याद नहीं था । और इस मायने में कमबख्त की किस्मत भी बड़ी जोरदार है – जिसे वह चाहता है, वह मिल भी जाता है ।''[100]

'चन्द सतरें और' में श्रीमती अनीता राकेश ने राकेशजी की भावुकता और संवेदनशीलता के अनुभवों को वर्णित किया हैं । अपने आखिरी दिनों में तो वे खासे भावुक हो गये थे । वे हर रोज अनीताजी से कहते थे कि – ''अब कभी कहीं नहीं जाऊँगा अन्ना – मैं बहुत थक गया हूँ ... ।''[101] यह भी उनकी संवेदनशीलता और भावुकता ही थी कि वे कही भी जाते तो उन्हें घर लौटने की लगी रहती थी ।

राकेशजी के मन में संवेदशीलता और भावुकता भरी हुई थी । वे दूसरों के दुःख स्वयं ओढ़ लेते थे । राजेन्द्रपाल ने इस सम्बन्ध में राजेन्द्रपाल ने लिखा हैं – ''नीते (नवनीत राकेशजी का बड़ा लड़का) के आने पर वे सब कुछ भुल जाते थे । एक बार अजमल खाँ रोड़ पर मुझे साथ लेकर परेशान घूमते फिरे–नीते के लिए खिलौने चाहिए । फैसला नहीं कर पा रहे थे कि क्या लेना है । फिर जक तक जेब खाली नहीं हो गयी, जो अच्छा लगा खरीदते चले गये ।... राकेश दूसरों के लिए अपनी जेब खाली कर देने के कायल थे । वे माँ जी पर जान दे सकते थे । नीत के लिए घोड़ा बने–बने घूम सकते थे । पूर्वा के खिलौने के लिए परेशान हो सकते थे । दुनिया भर की खुशियाँ समेटकर अनीता के आँचल में डाल सकते थे ।''[102] राकेशजी वात्सल्य, स्नेह और प्रेम की जीवित प्रतिमा थे । यह भावुकता और तज्जनित संवेदना उनके व्यक्तित्व का एक अनिवार्य अंग थी ।

❀ *स्वभाव और रुचियाँ :*

राकेशजी के स्वभाव और रुचियों में अनेक विचित्रताएँ थी । जहां एक और स्नेह, भावुकता, संवेदनशीलता, ईमानदारी, आत्मीयता जैसी विशेषता थी, वही दूसरी और अहं, तार्किकता, जिन्दादिली, आत्मसम्मान, जिद, दूसरों से अपनी बात मनवा कर रहने जैसी अपने ढंग से जीने की दूसरों से अलग स्वाभाविक विशेषताएँ भी थी । डॉ. सुष्मा अग्रवाल राकेशजी के विशिष्टतापूर्ण व्यक्तित्व पर प्रकाश डालते हुए लिखती हैं – ''वे स्वभाव से स्नेही और आत्मीयतापूर्ण, विनोदी और भावुक, बौद्धिक और संस्कारशील, परदुःखकातर और संवेदनशील, जीनियस किन्तु दुनियादारी के खिलाफ, स्वभाव से बच्चे, विचारों से बुजुर्ग और खाने–पीने में अपनी पसंद को प्राथमिकता देने वाले एक–एक साफगोई वृत्ति के आकर्षक व्यक्ति थे । सिगरेट पीना उनकी अनिवार्यता थी । सभी से खुलकर बात करना उनका स्वभाव था और बहस के दौरान आयी तेजी से अप्रभावित रहते थे ।''[103]

जहाँ तक उनके शौक और रुचियों का प्रश्न है उनमें ताश खेलना, बीयर पीना, सिगरेट पीना, शहर–शहर घूमना, अपनी इच्छा अनुसार अपनी इच्छा की जगह पर जाकर खाना खाना, दोस्तों के करीब रहना, उनसे आत्मीयता पूर्ण बात करना, गप्पें लड़ाना, कहकहे लगाना, पर्वत पर घूमना, वर्षा में भीगना, लेखन कार्य के लिए किसी एकांत जगह पर सुबह से शाम तक रहकर रोचना, लिखना आदि प्रमुख हैं । राकेशजी एक बंधी–बांधी ज़िन्दगी में जीने के कायल नहीं थे अतः वह हंमेशा कुछ नया करने और जानने की इच्छा रखते थे । वे खाने के मामले में बड़े शौकीन थे और स्वतंत्र भी । उनका परिवार शुद्ध वैष्णव संप्रदाय में माननेवाला था और राकेशजी स्वतंत्र ढंग से खाने–पीने वाले । डॉ. जयदेव तनेजा इस सम्बन्ध में लिखते हैं – ''खाने–पीने के मामले में राकेश अंत तक स्वतंत्र बने रहे । दिल्ली में जामा मस्जिद की निहायत गंदी सी दुकान के बेहद लजीज कबाब और चिल्ड बियर राकेशजी की कमजोरी थी । लेकिन माँ (श्रीमती बच्चन कौर) की बेहंतिहा इज्जत करने वाले राकेश ने उनकी 'रसोई' को कभी 'अपवित्र' नहीं होने दिया और उनकी आस्था को कभी ठेस नहीं पहुँचाई ।''[104] राकेशजी के खाने के मामले की विचित्रता का उल्लेख करते हुए जवाहर चौधरी ने मोहन राकेश के 'सारिका' के स्मृति अंक में स्पष्ट किया हैं – ''उसके खाने का सिस्टम बड़ा अजीब था । जो चीज पहले परोस दी जाती वह उसको ही खाना शुरू कर देता । मसलन अगर अचार पहले आ गया हो तो आचार खाना शुरू कर देता, सब्जी पहले आ गयी है तो रोटी आने तक हो सकता है सब्जी साफ हो जाये । उसकी इस आदत के अनुसार मैंने एक बार हरी मिर्च खाकर 'हाय–हाय' करते भी देखा है ।''[105]

राकेशजी में आत्मीयता का भाव बहुत गहरा था । वे अपने मित्रों के परिवार का हिस्सा था । अपने मित्रों के घर पर भी अधिकार से जाते थे । उनका मानना था कि मित्रों के घर जाना और रहना 'यह उसका अधिकार है' । शाम होती, तो उसका कोमल मन धड़कने लगता था । वह देर–देर तक दोस्तों की महफिलों में चुटकियाँ लेते और ठहके लगाते ।

राकेशजी के ठहके की चर्चा के बिना यहाँ व्यक्तित्व की स्वाभाविक विशेषता का अंकन अधूरा ही रह जाएगा । उनका ठहका हिन्दी संसार में काफी प्रसिद्ध हो चुका था । वे जब भी किसी–को मिलते थे और किसी भी हालत में मिलते थे उन्मुक्त हँसी से मिलते थे । कमलेश्वरजी ने राकेशजी के ठहको के सम्बन्ध में लिखा हैं – ‘‘वह हँसता–तो तारों पर बैठी हुई चिड़ियाँ पंख फड़फड़ाकर उड़ जातीं, और राह चलते ऐसे चौंककर देखते, जैसे किसी को दौरा पड़ गया हो ।’’[106] भीतर से दुःखी होते हुए भी, वे बात–बात पर यार–दोस्तो को ऐसे किस्से सुनाते कि वे भी ठहके लगाने के लिए मजबूर हो जाते । उनके मित्रों का कहना था कि राकेश ऐसे ठकहे लगाते थे ‘जिनके आगे मन का मैल धुल जाए और दिल का कुलष धुल जाए ।’ किन्तु जो उन ठहको के पीछे के राकेशजी को देख पाते उन्हें वे ठहके राकेशजी की पीड़ा का प्रतिबिंब लगता, उनकी आंतरिक पीड़ा को ढँकने का साधन लगता । उनकी जिन्दादिली में तो कोई सन्देह नहीं था, परंतु उन ठहकों से वे अपने को ठगते भी थे । कमलेश्वरजी के शब्दों में – ‘‘वह सिर्फ चाहता है कि सबकी परेशानियाँ वह ओढ़ ले, उसके बारे में कोई बात न की जाय ।... कि वह लोगों को रगेदने के लिए पीछा करता है और उसकी हँसी में जहर बुझा हुआ है... कि वह अपने में मस्त है और ऐसे निश्छल ठकहे लगाता है, जो दुश्मन को भी दोस्त बना देते है ।’’[107]

प्रकृति के प्रति राकेशजी को गहरा लगाव था शिमला, मसूरी, कश्मीर आदि स्थलों के प्रति उन्हें गहरा लगाव और आकर्षक था । अपनी इस रुचि का उल्लेख उनकी डायरी में बार–बार मिल जाता है । कन्याकुमारी के वातावरण से प्रभावित होकर उन्होंने लिखा हैं – ‘‘यह स्थान (कन्याकुमारी) और यहाँ का वातावरण दोनों मुझे इस तरह प्रभावित कर रहे है कि बार–बार इच्छा होती है कि यहाँ एक छोटा–सा घर बना लू... कुछ वैसा ही जैसा कि मैं कल्पना कर रहा हूँ और उसमें रहने लगूं । साल में छः महीने घूमा करूं या अन्यत्र कहीं रहा करूं... जीवन के प्रवाह के बीच और शेष समय यहाँ

आ जाया करूं... जीवन से जो कुछ ग्रहण किया हो उसे अपने में समाकर देखने के लिए, मनन और चिन्तन के लिए ।"[108]

इस प्रकार राकेशजी का स्वभाव जहाँ सरल, आत्मीय, स्नेही, विनोदी, ठहकेदार और रुचियाँ एकदम अदभूत थी वहीं मन उनका बहुत बड़ा था, साफ था । उनमें इन्सानियत थी, ईमानदारी थी और था अपने पहचानने वालों के लिए बहुत सारा प्यार था । अपने समग्र जीवन दौरान उन्होंने अनेक छोटे–बड़े संघर्षो को झेला, बार–बार आर्थिक अभाव सहा । इन सबसे उनका व्यक्तित्व एक टूटे–बिखरे आम आदमी का व्यक्तित्व ही बनकर रह गया । फिर भी आश्चर्य इस बात का होता है कि जो इन्सान अपने भीतर इतना आवेश, विद्रोह, अहं, उतावलापन लिए हुए था, वहीं अपने साहित्य–सर्जन के धरातल पर बड़ा संयमित और अनुशासित था । राकेशजी के व्यक्तित्व को बड़ी आत्मीयता के साथ और उन्हें करीब से जानकर श्री राजेन्द्रपाल ने रेखांकित करते हुए लिखा हैं – "राकेश का व्यक्तित्व अनेक अंतर्द्वन्द्व से ग्रस्त था । उसमें एक ओर अस्थिर चितता, अनिर्णयजनित व्यथा, अकेलापन और आवेश था तो दूसरी ओर स्नेह, आत्मीयता, संवेदनशीलता और सुक्ष्म अंतदृष्टि भी भरपूर थी । वे एक साथ कई ऐसे सीरो पर जी सकते थे । ऐसे व्यक्तित्व कम देखने में आते हैं जो अनेक विरोधाभासों और वैपरीत्यमूलक स्थितियों में जी ले, भीतर से खाली होकर भी बाहर से भरे पूरे दिखायी देते रहें । राकेश अपने इस रूप में ऐसी भूमिका पर दिखाई देते है जहाँ दो विरोधी स्थितियों का मेल हो जाता है । या वे एक दूसरे के नजदीक आने लगती हैं । अनेक विरोधाभासों के बीच राकेश का एक व्यक्तित्व समन्वयवादी भी था ।"[109]

❀ *घर की तलाश :*

राकेशजी के कई बरसों तक खानाबदोश की ज़िन्दगी बिताई । वह एक ऐसा घर और पत्नी चाहते थे जो उन्हें वहाँ बाँध कर रख सके और वे सांसारिक सुख को लूटें । उन्हें एक भरे–पूरे घर की तलाश थी । पहले दो असफल विवाह नें उन्हें 'घर' शब्द से ही दूर कर दिया था । घर की चाहत

और राकेशजी के जीवन की वास्तविक परिस्थितियों का चित्रण करते हुए कमलेश्वरजी ने लिखा हैं –"उसे घर का वह सकून नहीं मिला, जो ज़िन्दगी को एक नया और स्वस्थ अर्थ देता है, जिसे आदमी मरते दम तक अपना कहता है और जीता है, जिसके लिए मौत से भी जूझता है और परेशानियों के बाबजूद सुख से रहता है । उसके सामने 'घर' का नाम लीजिए, तो वह भीतर–ही–भीतर घबरा जाता है, जैसे यह शब्द एक डर की गांठ बनकर उसके मन के भीतरी कोनों में समा गया है । हालाँकि वह कभी भी इस बात को मंजूर नहीं करेंगा, पर बहुत घेरने पर ही वह घर पर मिलने की बात मंजूर करता है, नहीं तो होटलों या रास्ते–राहतों में मिलने की बात ही तय करेगा । उसके लिए घर की महत्ता मिट चुकी है – वह अब घर में नहीं रहता, मकान में रहता है ।"[110]

जीवन से मिली छलनाएँ और विडम्बनाएँ ही थी जो राकेशजी को घर के लिए बैचेन बनाये रखती थी । तीसरे विवाह के बाद अनीताजी ने राकेशजी को वह घर दिया जिनकी उन्हें ताउम्र तलाश थी । स्वयं राकेशजी ने अनीताजी से कहा था – "मुझे घर चाहिए.... अन्ना 'घर' मुझे ज़िन्दगी में और सब कुछ मिला है.. सिर्फ एक घर ही नहीं मिला । मैं कहाँ–कहाँ इसके लिए नहीं भटका.... क्यां क्यां इसके लिए नहीं किया .... लेकिन पता नहीं क्यो 'घर' नाम की चीज मुझसे हंमेश रुसवा रही । दो बार इसे पाने का विश्वास मन में भरा और दोनों ही बार मुझे खुद ही उससे भाग आना पड़ा । मैं नहीं जानता कि क्या मुझे ही घर से 'एलर्जी' है या कि घर को ही मुझसे 'एलर्जी' है । क्या तु मेरे लिए एक ऐसा घर बना सकोगी जो सिर्फ मेरे अनुकूल हो । मैं बहुत ही दुःखी आदमी हूँ । अन्ना, एक बहुत ही थका हुआ आदमी हूँ ।"[111] इन पंक्तियों से स्पष्ट है कि घर के अभाव में राकेशजी कितने टूट गए थे और उनमें घर शब्द से कितनी आत्मीयता थी । 'घर की तलाश' मानो उनकी ज़िन्दगी का मकसद बन गयी थी । उनकी समस्त कृतियों में 'घर की तलाश' अंतर्व्याप्त है । 'आधे–अधूरे में तो यह स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त है । यह अत्युक्ति न होगी कि राकेशजी के संपूर्ण साहित्य का मूल उत्स यही 'घर

की तलाश' है । इस सम्बन्ध में डॉ. इन्द्रनाथ मदान का यह कथन अत्यंत सटीक हैं – ''राकेश का घर अनेक बार टूटा है जिसकी गवाही उसके समस्त साहित्य में मिलती है– वह चाहे नाटक हो उपन्यास या कहानी । राकेश ने वास्तव में एक ही पूरा नाटक लिखा है जो अधूरा है । कालिदास गुप्त कालीन न होकर राकेश – कालीन है । इसी तरह नंद बुद्ध कालीन न होकर राकेश– कालीन है । महेन्द्रनाथ तो सीधे तौर पर समकालीन है । इन सबकी एक समस्या है – घर के माध्यम से व्यक्तित्व की खोज और व्यक्ति के माध्यम से घर की खोज । कालिदास और नंद टूटे घर से बाहर निकलकर महेन्द्रनाथ के रूप में टूटे घर में लौटने के लिए अभिशप्त हैं । यहीं हाल हरबंश और नीलिमां का है ।''[112]

राकेशजी को जीवन के अंतिम कुछ वर्षो में 'घर' प्राप्त हुआ था । अनीताजी ने उन्हें इच्छानुसार घर दिया था । किन्तु थोड़े ही समय मैं नियति के षड़यंत्र ने उन्हें घर से ही हंमेशा के लिए बाहर निकाल दिया ।

❀ *तीन कमिटमेंट्स :*

राकेशजी अपनी पत्नी अनीताजी से हंमेशा यह कहा करते थे कि – ''ज़िन्दगी में पहले नम्बर पर मेरा लेखन है, दूसरे नंबर पर मेरे दोस्त और तीसरे नंबर पर तुम – लेकिन तीनों ही मेरे लिए आवश्यक है ।''[113] यह एक ध्रुव सत्य था । जीवन भर कभी उनका यह क्रम नहीं टूटा ।

यह तो स्पष्ट है कि राकेशजी का पहला कमिटमेंट लेखन था । लेखन उनके व्यवसाय नहीं ज़िन्दगी था । राकेशजी अपने लेखन के प्रति आरंभ से लेकर अंत तक ईमानदार रहे । शायद यही वह कारण है कि वे ज्यादा नहीं लिख सके । डॉ. शरेशचन्द्र इस सम्बन्ध में स्पष्ट करते है – ''अंधेरे बंद कमरे', 'लहरों के राजहंस', 'आधे–अधूरे', 'पैर तले की जमीन', 'स्याह और सफेद', 'काँपता हुआ दरिया', 'नीली रोशनी की बाँहे' आदि रचनाओं के उन्होंने छः छः सात– सात ड्राफट किये थे । किसी भी एक वर्ष में तीन– चार से अधिक कहानियों वे कभी नहीं लिख पाए । इसके पीछे उनकी अक्षमता नहीं,

अपने प्रति और लेखन के प्रति प्रामाणिक बने रहने की चेष्टा थी । फलतः उनकी कई महत्त्वपूर्ण रचनाएँ अधूरी और कुछ अप्रकाशित रहीं अवश्य । लेकिन जो प्रकाश में आई वे अपने परिनिष्ठित रूप में ही आई और राकेश की कठोर साहित्य– साधना का ज्वलन्त प्रमाण बन गई ।"[115]

राकेशजी अपने समग्र जीवन दौरान स्वंतत्र और अपने ढंग से जीने के कायल रहें है । उसी तरह लेखन में भी उनकी मौलिकता और प्रयोगशीलता देखी जा सकती है । उनके साहित्यिक प्रयोग उनकी प्रखर बौद्धिकता और गंभीर चिंतन का प्रमाण है । राकेशजी ने अपनी रचनाओं के शिल्प में नये प्रयोग किये । नाटक की प्रस्तुती, मंचीय आवश्कता और उसके वस्तु विन्यास में नये प्रयोग करके उन्होंने हिन्दी नाटक को एक नयी दिशा प्रदान की । साथ ही नये नाट्य–रूपों की खोज़ जैसे 'बीज–नाटक' और पार्श्व–नाटक' और कहानी के क्षेत्र में अनुभूति संवदेना के उपयुक्त शिल्प की खोज भी उनकी प्रयोगधर्मित को ही स्पष्ट करती है । राकेशजी इस बात से सर्वदा बेफिक्र रहे कि उनकी कृति को कहाँ तक पसंद या स्वीकार किया गया । वे अपनी प्रयोगधर्मिता और अपने चिंतन को साहित्य के माध्यम से प्रस्तुत करते रहे । वे अपनी कृति के स्वयं आलोचक रहे, निष्ठुर आलोचक उनका मानदण्ड उनकी निजी प्रामाणिकता रही । इस दृष्टि से राकेशजी एक पहुँचे हुए साहित्यकार थे ।

सृजनात्मकता राकेशजी के जीवन का मूलाधार थी । या कहें की लेखन उनकी साँस था, उनकी धड़कन था । इसी लेखन को प्राथमिकता देने के लिए वे बार–बार नौकरी छोड़कर सिर्फ लेखन पर निर्भर रहने की बात सोचते रहते थे । कमलेश्वरजी लिखते हैं – "उसके दिलोदिमाग में एक बात सबसे उपर रहती है – हम लेखन के बल पर क्यों नहीं जी सकते ? क्यों नहीं जी सकते ? हमारा यह हक है कि हम लिखकर इज्जत से जी सके... और अपनी इस ईमानदारी से भरी तड़प के लिए वह अपने पर प्रयोग करता है, लड़ता–झगड़ता और नौकरीयों छोड़ता है । जब–जब यह मसला हमार बीच उठा है, राकेश मुझे सबसे ज्यादा गंभीर दिखाई दिया है । यह बात

करते–करते उसकी आँखें में हजार रंग आते–जाते हैं – गुस्से के, नफरत के, विश्वास के और बेबसीभरी परेशानी के... इस बात का सिर्फ आर्थिक पक्ष ही नहीं है, बल्कि इसके साथ ज़िन्दगी के वे सारे अहम सवाल भी जुड़े होते है, जिन्हें हल किये बगैर कोई भी आदमी एक नेक और ईमानदार इन्सान की ज़िन्दगी नहीं जी सकता ।"[116] साथ ही राकेशजी की लेखन प्रक्रिया पर प्रकाश डालते हुए वे आगे लिखते हैं – "उपरी ज़िन्दगी में वह जितना असंगठित और बिखरा हुआ दिखाई देता है, उतनी ही संगठीत और सुव्यवस्थित है उसके लिखने की प्रकिया । जितने मसल–मसलकर वह सिगरेट के टुकड़े जगह–जगह फेंकता है, उतने ही करीने से वह अपने विचारों और अनुभवों को सजाता है । उसके कफ कोट की आस्तीन से चाहे छः अंगुली बाहर निकले रहें, पर कहानी में कलात्मक असंतुलन की कोर नज़र नहीं आ सकती । और सृजन के इसी संतुलन, संवरण, संगठन और अनुशासन के लिए यह आदमी भागता है । कभी कश्मीर, कभी डलहौजी, कभी शिमला और कभी सुनसान वीरानों में ।"[117]

इस तरह स्पष्ट है कि राकेशजी का पहला 'कमिटमेंट' अपने लेखन के प्रति था । अपने लेखन में वे किसी प्रकार का व्याघात नहीं सह सकते थे । उनका लेखन पूर्णतः उनके व्यक्तित्व से ओतप्रोत था ।

दोस्त और दोस्ती राकेशजी के जीवन की एक बड़ी आवश्यकता थी । उनकी शामें अक्सर दोस्तों के बीच गुजरती । दोस्तों की महफिल जमाना और उनके साथ कहकहे लगाना उनके जीवन का अंग बन गया था । उनके तीन 'कमिटमेन्ट्स' में लेखन के बाद और पत्नी के पहले का स्थान दोस्तों का था । 'राकेश अपने दोस्तों के लिए जीते है.... लोगों की यह धारण बन गयी थी । यह राकेशजी के लिए आश्चर्य की बात नहीं है । राकेशजी के मित्रों की एक लम्बी सूची है, किन्तु उन सबके साथ उनके अलग–अलग रिश्ते थे । जिसके साथ राकेशजी के घरेलू सम्बन्ध थे वे मुख्यतया श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क' तथा कौशल्याभाभी, श्री और श्रीमती कमलेश्वर, श्री और श्रीमती जवाहर चौधरी, श्री और श्रीमती बेदी, श्री और श्रीमती ओमप्रकाश, श्री और श्रीमती

नेमिचन्द्र जैन, श्री और श्रीमती भारतभूषण अग्रवाल, राजेन्द्र यादव और मन्नू भण्डारी आदि थे । दोस्तों का एक अन्य ग्रूप था जिनमें रंगमंच और फिल्म संसार से सम्बन्ध रखनेवाले लोग थे । उनमें ओम शिवपुरी और सुधा शिवपुरी, श्यामानंद जालान, सत्यदेव दुबे, राजेन्द्रपाल गुलाटी आदि थे । साथ ही रमेश बक्षी, कृश्नचन्दर, दुष्यन्त कुमार इन्द्रनाथ मदान आदि भी राकेशजी के स्नेही मित्र रहें । इसके आगे भी राकेशजी के दोस्तों की गिनती करें तो एक बहुत लम्बी सूची हो जाती है फिर भी वह अधूरी रह जायेगी ।

जिन मित्रों से वे अधिक आत्मीय थे उनके प्रति ईमानदार भी बहुत थे । उनके सर्वाधिक आत्मीय मित्रों में कमलेश्वरजी का नंबर पहला रहा । राकेशजी स्वयं अनीताजी से कहा करते कि –“अगर ज़िन्दगी में मैंने किसी की ज्यादतियों बर्दाश्त की हैं तो वह तुम्हारी हैं या फिर कमलेश्वर की ।”[118] कमलेश्वरजी इस आत्मीयतावश राकेशजी को पूरा पहचानते थे । वे जानते थे कि कब राकेशजी किस बात से परेशान हो सकते है और तब क्या करना उचित है । दूसरी शादी की असफलता से उत्पन्न परिस्थिति से पीछा छुड़ाने के लिए राकेशजी कमलेश्वरजी के पास पहँच गये, किन्तुं वे जानते थे कि – “राकेश किसी से पूछने पर खुलेगा नहीं । वह गम पीना जानता है और उसे अकेले बरदाश्त करेने की सागर–जैसी क्षमता रखता है ।...लेकिन वही गुरु–गम्भीर सागर एक दिन किनारों को लाँघकर दूर–दूर धरती को भिगो गया..... राकेश की आँखें गीली थी और वह बार–बार चश्मा उतारकर अपनी आँखों को चुराकर पोंछता जा रहा था । मुझे गुस्सा आया, मन में आया कि कहूँ ‘कमबख्त’ ! जी खोलकर रो क्यों नहीं लेता !” ..... मैं चुप ही था, क्योंकि उसका अंह कभी भी यह बरदास्त न करता कि उससे तकलीफों के बारे में कुछ भी पूछा जाय ।”[119] परेशानी के समय में कमलेश्वरजी ने राकेशजी का पूरा साथ निभाया । राकेशजी के अंह, आवेश, आत्मसम्मान आदि के साथ–साथ राकेशजी के गुस्से और रुचियों को भी कमलेश्वरजी ने पहचाना था । एक बार राकेशजी भारतीय डेलीगेशन के लीडर के चुने जाने के प्रश्न पर सरकारी हस्तक्षेप के कारण वे क्रोधित हो उठे । उस समय उनकी सिगरेट

खत्म हो गयी थी । अंतः वे झुँझलाकर 'वाक–आउट' करने को तैयार हो गये । इस प्रसंग को कमलेश्वरजी के शब्दों में देखे तो –"भारतीय डेलीगेशन का अपना लीड़र चुना जा रहा है । कोई साहब कहते हैं –" मिनिस्ट्री की राय है कि अमुक को चुना जाये । राकेश भन्नाता हुआ सिगरेट का पैकेट निकालता है । उसमें सिगरेट नहीं है । एक क्षण वह सिगरेट के लिए झुंझलाता है, फिर वही से बहुत ऊँची आवाज में नाराजी से बोलता है – अगर सरकार ही सब तय करेगी तो हम यहाँ किसलिए है ? हम जो लीड़र चुनेंगे वह लीड़र होगा । अगर इस तरह सरकार को डिक्टेट्स माने जायेंगे तो मैं इसके विरोध में वाक–आउट करता हूँ ।"[120] फिर क्या था कमलेश्वर उन्हें धीरे से शांत करते हुए कहा कि "सिगरेट लाने के लिए वाक–आउट करने की जरूरत नहीं है । वह यों भी आ सकती है । वह हँस देता है – तू नस पकड़ लेता है, पर यहाँ दूसरा मसला भी है ... ।"[121] राकेशजी के इस जवाब से न केवल उनके व्यक्तित्व का स्वभाव का एक पहलू ही उजागर होता है, बल्कि मित्रता पर विश्वास भी व्यक्त होता है ।

कहने की आवश्यकता नहीं कि राकेशजी एक अच्छे दोस्त थे । उनकी दोस्ती दिखावटी नहीं थी । वह ऐसी थी जिस पर उनके दोस्तों को नाज था । सभी समझते थे कि 'राकेश' उसका है – केवल उसका है क्योंकि वे हरेक के भीतर के साथ जुड़े हुए थे । अतः अनीताजी का यह कहना सच है कि – "उनके जितने भी मित्र थे, वे सब राकेश के साथ बिलकुल साथ होकर जिये है और उन लमहों में प्रत्येक दोस्त उसे सिर्फ अपनी निजी संपति ही समझता था ।"[122] जाहिर है कि राकेशजी के दोस्त उनके जीवन का एक बहुत बड़ा हिस्सा थे । वे उन्हें पूरी आत्मीयता और प्यार देते दे । विकट–से–विकट स्थिति में भी राकेशजी की दोस्ती अडिग और सदैव कायम रही ।

दोस्ती की परिभाषा भी राकेशजी की अपनी थी – "सौ फिसदी देना और सौ फिसदी लेना ।" इस मालमें में वे कभी कंजूस नहीं रहे, और न ही उसने किसी दोस्त की कंजूसी बर्दाश्त की । अगर किसी दोस्त के व्यवहार में

उसे इस बात का आभास भी होता तो उसका मन दुःख ने लगता था । 'चन्द सतरें और' में अनीताजी से यह बात प्रमाणित होती है कि वे फालतू खर्च के खिलाफ थे, किन्तुं दोस्त और दोस्ती के नाम पर सब तरह के खर्चा सहन कर लेते थे ।

राकेशजी भावुक मन के व्यक्ति थे । उनके जीवन में कितने ही परिवर्तन आये, किन्तु न तो वे अपनी भावुकता को छोड़ पाये और न उसके सहारे चलने वाली दोस्ती को । उसकी भावुकता और दोस्ती दिखावटी नहीं थी । इसी कारण राकेशजी को सबसे ज्यादा दुःख तब होता था जब उसके किसी दोस्त ने उन्हें गलत समझा हो । दोस्ती के बीच कोई गलतफहेमी उनके संवेदनशील मन को बहुत आहत करती थी । वे अपने दोस्तों को बहुत प्यार करते थे और बदले में प्यार की कामना करते थे । अतः कहने की आवश्यकता नहीं है कि राकेशजी की दोस्ती उनके असंख्य मित्रों की दुर्लभ निधि थी ।

अनीताजी ने राकेशजी की ज़िन्दगी को सजाया–सँवारा साथ ही वह घर भी दिया जिसकी राकेशजी ने ताउम्र कल्पना की थी । अनीताजी राकेशजी के आंतरिक व्यक्तित्व को समझने में बहुत हद तक सफल हुई थी । उसने असली राकेश को पहचाना था – जो मासूम, बेलौस और बेबाक व्यक्ति हैं, जो अत्यंत संवेदनशील और ईमानदार इन्सान हैं । अनीताजी पूरी तरह से राकेशजी के प्रति समर्पित थी । राकेशजी भी अनीताजी के प्रति पूर्ण स्नेह रखते थे । अतः खुद को हलका–सा बुखार होने पर वे अनीताजी के लिए चिंतित हो उठते थे – "सच, मुझे लगता है कि मुझे मौत से डर नहीं लगता... जो ख्याल आता है वह यही कि बहुत–सा काम अभी करने को पड़ा है । अनीता का ख्याल भी आता है । वह अभी बहुत छोटी है ... उसे बीस–तीस साल की ज़िन्दगी मिलनी ही चाहिए ।"[123] अपने अंतिम दिनों में उसे भीतर से यह महसूस हो चुका था कि अनीताजी और उसके बच्चे अब उससे छिने जाते है । अपनी मृत्यु के कुछ दिन पहले बाहर निकलते समय उन्होंने अनीताजी से बेचैन होकर कहा था कि "अब मैं सुरक्षित महसूस करता

हूँ – मुझे लगता है कि मेरी अन्ना और मेरे बच्चे मुझसे छिन जाते है ।"[124] इस तरह स्पष्ट है कि अनीताजी राकेशजी की ज़िन्दगी के साथ सहज रूप से धूल–मिल गयी थी ।

अपने तीनों कमिटमेंट्स राकेशजी ने ताउम्र निभाये । राकेशजी किस कदर ज़िन्दगी और परिवेश से जुड़े थे, उसकी प्रस्तुत राकेशजी के कमिटमेंटस से व्यंजित हो जाता है ।

❀ *आखिरी शाम :*

३ दिसम्बर १६७२ की शाम राकेशजी की आखिरी शाम थी । अचानक हृदय–गति रुक जाने से वे अपने दोस्तों को पत्नी और बच्चों को छोड़कर हंमेशा के लिए चल दिए । राकेशजी की इस अप्रत्याशित और असामायिक मृत्यु को देखकर श्रीकान्त वर्मा की तरह सबको यही लगा कि 'राकेश इस्तीफा देकर कहीं और चले गये हैं ।'

राकेशजी की अम्मा उसका विश्वास और आन्तरिक बल थी । जब अचानक अम्मा का देहान्त हुआ (१६ अगस्त, १६७२) तब राकेशजी पूरी तरह टूट गये थे । उन्हें दिशा देने वाली उनकी माँ थी । जब वही नहीं रही तो राकेशजी खुद को दिशाहीन महसूस करने लगे । माँ के मृत्यु के सदमें से वे कभी उबर नहीं पाये । राकेशजी के मातृप्रेम के सम्बन्ध में कहा जाता था कि वह बीवी का नहीं माँ का आशिक है । यही कारण है कि माँ के देहान्त के बाद चार महीने भी गुजरे नहीं थे कि वे हंमेशा के लिए चले गए ।

कुछ लोगों की ज़िन्दगी सीधी और सपाट होती है तो कुछ लोगों की ज़िन्दगी में अनेक प्रकार के उलट–फेर स्याह सफेद और विरोधभासों के बीच अपने व्यक्तित्व का विकास करता है । राकेशजी के जीवन में आये विविध मोड़ों और उद्वेलनों ने उनके व्यक्तित्व को विरोधाभसों और अंतर्विरोधों से भर दिया ।

राकेशजी के व्यक्तित्व के विभिन्न पहलुओं को जानने के बाद उनका जो मान चित्र बनता है उसमें सीधी रेखाएँ कम है वर्तुल और वक्र रेखाए अधिक हैं । उनमें एक रंग नहीं है विविध रंगो का इन्द्रधनुष हैं । एकरसता नहीं है वैविध्य है । एक ओर राकेशजी के व्यक्तित्व में जीवन की परिस्थिति से उत्पन्न अंह अवेश जीद है तो दूसरी ओर लेखन के प्रति समर्पण और सुघड़ता, अनुशासन और संयम है, सहृदयता और संवेदनशीलता हैं । यदि उनमें स्नेह, आत्मीयता, जिन्दादिली, आत्माभिमान और दोस्ती निभाने का जज़्बा है तो दूसरी ओर उनमें विरोध का स्वर भी तीखा रहा है । डॉ. सुष्मा अग्रवाल के शब्दों में – ''बाहर से कहकहे और ठहकों के बीच जीने वाले तो भीतर पीड़ा का संसार लिए जीने वाले राकेश का व्यक्तित्व सागर का व्यक्तित्व है । सागर जैसे शतशत तरंगो से आहत और पवन के थपेड़ों से उद्येलित होता हुआ भी गम्भीर बना रहता है वैसे ही राकेशजी भी एक मौन के साथ सब कुछ सहते रहे । उनकी 'सहने' की प्रवृति उनकी 'रहनि' को भी व्यक्त करती है । अंतः सलिल व्यक्तित्व के धनी राकेश को कुरेदने से ही नमी पायी जा सकती है । जब भी जिसने भी उन्हें कुरेदा तब–तब उनकी सहृदयता उभरकर सामने आती गयी और जिसने उन्हें बाहर से ही देखकर अनुमान लगाया और कह दिया कि 'वह' तो अंतर्विरोधों से ग्रस्त अव्यवस्थित व्यक्तित्व का स्वामी है, 'तभी कही कुछ छूट गया और उसके लिए वह अपरिभाषित ही रह गया ।''[125]

वस्तुतः राकेश का असली व्यक्तित्व वह नहीं था जो बाहर से आभासित होता था, वरन् वह था जो उसके संपर्क में आने से ही जाना जा सकता था । असली राकेश बाहर नहीं हृदय के तल में छिपा था, उसे बहुत कम लोग देख पाये, जान पाये और न्याय कर पाये । मैं समझती हूँ कि राकेशजी अपने साहित्य, अपनी मान्यताओं और प्रस्तुतियों के माध्यम से अपने व्यक्तित्व को भी विश्लेषित कर गये हैं । फिर भी बहुत कुछ ऐसा बाकी रह जाता है जो अभी तक नहीं कहा जा सकता – अलोचक और मित्र तो क्याँ अनीताजी की लेखनी से भी वह अलिखित ही रह गया हैं ।

२.३ मोहन राकेश का वाङ्मयी व्यक्तित्व

मोहन राकेश हिन्दी साहित्य के ऐसे अद्वितीय साहित्यकारों में से एक है जिन्होंने कहानीकार, उपन्यासकार और नाटककार कें रूप एक समान किर्ती हासिल की हैं । यद्यपि राकेशजी का रचना संसार अधिक फैला हुआ नहीं है, तथापि उसमें एक गहराई अवश्य हैं जो उन्हें सर्वश्रेष्ठ साहित्यकार के पद पर स्थापित करती हैं । तत्कालिन युग की स्थिति और बदलते मूल्यों को लेकर मनुष्य जो अनुभव कर रहा था, उस मानवीय संकट को राकेशजी ने महसूस किया । अपनी युगचेता दृष्टि से राकेशजी ने इसे ही सहानुभूति, संवेदना और यथार्थ के साथ अपने साहित्य में अभिव्यक्त कर दिया हैं । राकेशजी का समग्र साहित्य उनकी नवीनता और मौलिकता का प्रमाण है । इस बात का समर्थन करते हुए सुन्दरलाल कथूरिया लिखते हैं – "राकेश ने अपने जीवन और साहित्य में जिस मानवीय संकट को महसूस किया, उसने उनके साहित्य को अपूर्व क्षमताएँ दीं । राकेश मसीहा था या नहीं यह मैं नहीं जानता । पर उनके साहित्य का स्वर मसीहाई जरूर है । इस अर्थ में नहीं कि उसमें कहीं ज्ञान, प्रवचन था चिन्तन की बाते है, बल्कि इस अर्थ में कि उसमें अस्तित्व सम्बन्धी कुछ मौलिक मुद्दे उठाये गये है ।"[126]

बहुमुखी प्रतिभा के धनी राकेशजी कहानीकार, नाटककार, उपन्यासकार के रूप में तो हिन्दी साहित्य जगत में काफी लोकप्रिय रहे । किन्तु साथ ही एकांकी, ध्वनि नाटक, बीज नाटक, निबंध संस्मरण, डायरी, यात्रावृत्तांत, अनुवाद आदि गद्य विधाओं को भी उन्होंने समृद्ध किया हैं । राकेशजी की रुचि कहानी और नाटक लेखन की ओर ही अधिक रहीं हैं । राकेशजी के पास एक प्रयोगशील व्यक्तित्व था । अपने इस प्रयोगशील व्यक्तित्व के कारण वह अपनी निजी ज़िन्दगी के साथ साहित्य क्षेत्र में भी प्रयोगस्त रहे । राकेशजी ने हिन्दी कहानी और नाटक को परिपाटी एवं रूढ़ियों से मुक्त कर उसे एक सुनिश्चित विकसित परंपरा की ओर आगे बढ़ाने में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है । सन् १९५० ई. से लेकर १९७२ ई. तक के लगभग दो दशकों में

राकेशजी ने अपने साहित्य के माध्यम से हिन्दी साहित्य को समृद्ध करने में अपना महत्त्वपूर्ण सहयोग दिया है ।

❀ *कहानीकार मोहन राकेश :*

राकेशजी ने अपने लेखन का प्रारंभ कहानियों के माध्यम से किया और अंत तक वे इससे जुड़े रहे । नयी कहानी के उद्भव और विकास में राकेशजी की कहानियाँ का अपना विशेष स्थान हैं । उन्होंने कहानी लेखन के माध्यम से नयी कहानी को नयी संवेदना और नये शिल्प के साथ जोड़ा है । इस दृष्टि से नयी कहानी के कहानीकारों में मोहन राकेश का शीर्ष स्थान हैं । साथ ही राजेन्द्र यादव, कमलेश्वर, भीष्म साहनी, निर्मल वर्मा, हरिशंकर परसाई, श्रीकांत वर्मा, अमरकान्त, लक्ष्मीनारायण लाल, मार्कण्डेय, मन्नू भण्डारी, मृदुला गर्ग, कृष्णदेव वैद, रामकुमार महीपसिंह, रघुवीर सहाय आदि के नाम भी महत्त्वपूर्ण हैं ।

राकेशजी के कहानी लेखन का प्रारंभ सन् १९४४ ई. से माना जाता है । राकेशजी की पहली कहानी 'नन्ही' जो उनकी मृत्यु के पश्चात उन्हीं की हस्तलिपी में प्राप्त हुई । जिस पर तरह–तरह से बार–बार 'राकेश' लिखकर देखा गया है । इस कहानी को कमलेश्वरजी ने 'सारिका' के मोहन राकेश सम्बन्धी विशेषांक में प्रकाशित किया । किन्तु राकेशजी की डायरी के अनुसार 'भिक्षु' उनकी प्रथम प्रकाशित कहानी है । इसका प्रकाशन 'सरस्वती' में सन् १९४६ ई. हुआ था ।

राकेशजी की कहानियों के पाँच कहानी–संग्रह कालक्रमानुसार इस प्रकार से प्रकाशित हुए हैं – (१) इन्सान के खंडहर (१९५०), (२) नये बादल (१९५७), (३) जानवर और जानवर (१९५८), (४) एक और ज़िन्दगी (१९६१), (५) फौलाद का आकाश (१९६६) । यह कहानी संग्रह क्रमशः राकेशजी की कहानी–यात्रा के विभिन्न सोपानों को स्पष्ट करते हैं ।

इन कहानी संग्रहो की कहानियों का अलग–अलग स्थितियों और संदर्भो में मूल्यांकन करते हुए राकेशजी ने इन्हें पुनः चार जिल्दों में विभाजित किया ।

इन चार जिल्दों के नाम हैं – 'आज के साये', 'रोयें–रेशे', 'एक–एक दुनिया' और 'मिले–जुले–चेहरे' – इन संग्रहो में अपवादिक रूप से कुछ कहानियों को छोड़कर वही कहानियाँ है जो प्रायः प्रथम संग्रहो में आ चुकी हैं ।

इन कहानियों को ही राकेशजी ने फिर से तीन संग्रहो में समाहित किया । इनमें 'क्वार्टर' में १५ कहानियाँ, 'पहचान' में १६ कहानियाँ और 'वारिस' में २० कहानियाँ संकलित की । इस प्रकार कुल ५४ कहानियाँ इन तीन कहानी–संग्रह में मिलती हैं । 'पहचान' की भूमिका में राकेशजी ने लिखा हैं – "चारो जिल्दों के अलग–अलग समय पर प्रकाशित होने के कारण बाद की जिल्दें आने तक पहले की जिल्दों के संस्करण समाप्त हो गये जिससे उन्हें एक सेट के रूप में प्रस्तुत करने का उद्देश्य पूरा नहीं हुआ । क्योंकि पहले के प्रकाशित अलग–अलग संग्रह भी अब उपलब्ध नहीं थे, इसलिए बहुत से पाठकों के पत्र आने लगे कि अमुक–अमुक कहानियों की तलाश उन्हें कहाँ से करनी चाहिए । मुझे प्रसन्नता है कि पूरी कहानियाँ को एक साथ तीन जिल्दों में प्रकाशित करने की वर्तमान योजना से इस जिज्ञासा का समाधान हो जायेगा ।"[127] राकेशजी अपनी कहानियों को एक सेट के रूप में प्रस्तुत करना चाहते थे । किन्तु यह इच्छा राकेशजी के जीते–जी पूरी नहीं हो पायी । राकेशजी के मृत्यु पश्चात् 'सारिका' के 'मोहन राकेश' स्मृति विशेषांक में अन्य कहानियाँ भी कमलेश्वरजी के सहयोग से प्रकाशित हुई । इनके नाम है : 'बनिया बनाम इश्क', 'भिक्षु', 'लड़ाई', 'कटी हुई पतंगे', 'गुमशुदा', 'लेकिन इस तरह', 'नन्ही', 'मंदिर मंदिर की देवी', 'सतयुग के लोग', 'चाँदनी और स्याहदाग', 'एक घटना', 'अर्धविराम' । यह राकेशजी की वे प्रारंभिक कहानियाँ है जिन्हें राकेशजी ने प्रकाशित होने नहीं किया था । हो सकता है इन रचनाओं से राकेशजी संतुष्ट न रहे हो । किन्तु यहा हमें राकेशजी की प्रथम लिखित कहानी 'नन्ही' और प्रथम प्रकाशित कहानी 'भिक्षु' दोनों मिल जाती हैं । अंतः इस दृष्टि से कमलेश्वरजी द्वारा प्रकाशित राकेशजी की कहानियों का महत्त्व बढ़ जाता है । कमलेश्वरजी ने राकेशजी की इन प्रारंभिक कहानियों के विषय में लिखा हैं – "हिन्दी लेखकों की सर्वप्रथम रचना गुलर के फूल की

तरह होती है – उसे कोई नहीं देख पाता, यहाँ तक कि स्वयं लेखक भी उसे खो या भूल बैठता है ।"[128] इस प्रकार अब तक राकेशजी को जो कहानियाँ सामने आयी है उनकी संख्या ६६ हैं । कालक्रमानुसार प्रकाशित कहानी संग्रहो का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है ।

'इन्सान के खंडहर' (१६५०) राकेशजी का प्रथम कहानी संग्रह है । इसमें राकेशजी की 'इन्सान के खंडहर', 'धुंधलादीप', 'मरुस्थल', 'उर्मिल जीवन', 'सीमाएँ', 'एक अलोचना', 'कंबल', 'दोराहा', 'वासना की छाया में' और 'मिट्टी के रंग' कहानियाँ संग्रहीत हैं । इस संग्रह की कहानियों में शोषित और श्रमिक वर्ग के प्रति सहानुभूति, संस्कार एवं धर्म की ओर व्यंग्य, मनुष्य की एकाकी ज़िन्दगी और आक्रोश आदि को प्रमुख स्वर दिया गया है । यह कहानी संगह राकेशजी कथा–यात्रा का प्रथम पड़ाव है ।

'नये बादल' (१६५८) राकेशजी का दूसरा कहानी संग्रह है । इसमें कुल तेरह कहानियों को स्थान प्राप्त हुआ हैं । 'नये बादल', 'मलबे का मालिक', 'अपरिचित', 'शिकार', 'हवामार्ग', 'उलझते धागे', 'एक पंख युक्त ट्रेजेडी', 'उसकी रोटी' 'सौदा', 'फटा हुआ जूता', 'भूखे' और 'छोटी–सी–चीज़' । इस कहानी संग्रह की कहानियाँ अपने परिवेश से कटे हुए व्यक्ति का बोध, स्त्री–पुरुष के नये सम्बन्ध, देश विभाजन की विभिषिका से उत्पन्न हुई मानवीय त्रासदी, जीवन की कटुता, रिक्तता आदि का सूक्ष्म अंकन करती है ।

'जानवर और जानवर' (१६५८), 'नये बादल' के एक वर्ष पश्चात प्रकाशित होने वाला राकेशजी का तीसरा कहानी संग्रह है । इस कहानी संग्रह में आठ कहानियाँ संग्रहीत हैं – 'रोजगार', 'परमात्मा का कुत्ता', 'मवाली', 'आर्द्रा', 'आखिरी सामान', 'मिस्टर भाटीया', 'क्लेम' और 'जानवर और जानवर' । जीवन की आर्थिक विडम्बना, अकेलापन, अकेलेपन में जीने की व्यक्ति की विवशता, जिजीविषा आदि के साथ राजनीति में चल रहे भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी, अन्याय, सरकारी व्यवस्था का खोखलापन आदि भी इन कहानियों में यथार्थवादी स्वर में अभिव्यक्त हुआ हैं ।

'एक और ज़िन्दगी' (१६६१) कहानी संग्रह राकेशजी का चौथा कहानी संग्रह है । इस कहानी संग्रह में कुल नौ कहानियाँ संग्रहीत हैं – 'सुहागिनें', 'आदमी और दीवार', 'हक हलाल', 'जीनीयस', 'वारिस', 'गुनाह बेलज्जत', 'बस स्टैन्ड की एक रात', 'मिस पाल' और 'एक और ज़िन्दगी' । इस कहानी संग्रह मे राकेशजी ने सम्बन्धों की यंत्रणा झेलते हुए लोगों की स्थिति को यहाँ अधिक स्पष्ट किया है । 'सुहागिनें', 'मिस पाल', 'आखिरी सामान' कहानियों में टूटी और बिखरी हुई नारी का अंकन यथार्थ किन्तु संवेदना के साथ प्रस्तुत किया गया है ।

'फौलाद का आकाश' (१६६६) 'एक और ज़िन्दगी', कहानी संग्रह के पाँच वर्ष बाद प्रकाशित हुआ । इस कहानी संग्रह में नौ कहानीयाँ संग्रहीत हैं । यह राकेशजी का अंतिम कहानी–संग्रह है । इस संग्रह में 'ग्लास टैंक', 'सोया हुआ शहर', 'जंगला', 'चौगान', 'सेफ्टी पीन', 'ज़ख्म', 'एक ठहरा हुआ चाकू' कहानियाँ संग्रहीत है । प्रस्तुत कहानी–संग्रह की प्रायः सभी कहानियाँ शहेरी जीवन की भयावहता प्रस्तुत करती हैं । इस कहानी संग्रह की कहानियों के तथ्य में यथार्थ संवेदना के निरूपण के साथ नये शिल्य प्रयोग से कहानियों की प्रभावोत्पादकता और अधिक बढ़ गयी है ।

राकेशजी की अधिकांश कहानियाँ यथार्थ रूप में मानव सम्बन्धों को निरूपित करनेवाली कहानियाँ हैं । 'परिवेश' में निबंध 'अनूभूति से अभिव्यक्ति तक' में राकेशजी स्पष्ट करते हैं – "जीवन में बहुत कुछ ऐसा है, जो बहुतो से परिचित होता है, और जिसका विश्लेषण यदि उन्हें साहित्य में मिले तो उनके अपने अपने अंतर के आनंद और वेदना, प्रेम और धृणा के प्रभाव फूट पड़ते है । इसलिए साहित्यिक अभिव्यक्ति में कलात्मकता और ईमानदारी के साथ–साथ यह शक्ति भी अपेक्षित है कि वह उस प्रवाहों को छेड़ दे ।"[129] राकेशजी की कहानियाँ पढ़ने के बाद महसूस होता है कि उनकी ज्यादातर कहानियाँ इसी विचार से जुड़ी हुई हैं ।

❀ *उपन्यासकार मोहन राकेश :*

मोहन राकेश की सृजनात्मक प्रतिभा का दूसरा क्षेत्र है उपन्यास । हिन्दी कहानी क्षेत्र के साथ–साथ नयी पीढ़ी के उपन्यासकारों में राकेशजी अपना विशिष्ट एवं महत्त्वपूर्ण स्थन रखते हैं । राकेशजी के उपन्यासों की संख्या यद्यपि तीन ही हैं फिर भी उनके उपन्यासों ने हिन्दी उपन्यास साहित्य को विकासोन्मुख करने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया हैं । स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में राकेशजी के उपन्यासों का निःसंदेह अपना विशिष्ट स्थान हैं ।

राकेशजी के प्रकाशित उपन्यास क्रमशः इस प्रकार से है – 'अंधेरे बन्द कमरे' (१९६१), 'न आनो वाला कल' (१९६८) और 'अंतराल' (१९७२) । इन उपन्यासों में राकेशजी ने तत्कालीन युग–चेतना को स्पष्ट को करने का प्रयास किया है । साथ ही उन्होंने इन उपन्यासों में भोगे हुए यथार्थ के प्रस्कुटन और उसकी निर्मम अनिवार्यता स्वीकृति को स्वर दिया है । राकेशजी के उपन्यासों में मानव हृदय के द्वन्द्व को अधिक सफलता के साथ अभिव्यंजना मिली है । राकेशजी के प्रकाशित उपन्यासों का संक्षिप्त विवेचन इस प्रकार से है – 'अंधेरे बंद कमरे' राकेशजी का पहला बृहत्त उपन्यास है, जिसका प्रकाशन सन् १९६१ ई. में हुआ । यह महानगरीय जीवन की समस्याओं पर आधारित उपन्यास है । राकेशजी ने महानगरीय जीवन को स्वयं भोगा था । उसमें घुटती, तड़पती आत्माओं की दारुण स्थिति के वे प्रत्यक्ष साक्षी रहे है । प्रस्तुत उपन्यास में उसी परिवेश में प्राप्त जीवन के गहरे सत्य को उदघाटित करने का प्रयास उन्होंने किया हैं । प्रस्तुत उपन्यास में राकेशजीने जिस प्रामाणिकता, साहसिकता और मौलिकता का परिचय दिया है वह सराहनीय है ।

राकेशजीने प्रस्तुत उपन्यास में दिल्ली के अभिजात्य वर्ग के जीवन और पति–पत्नी की समस्याओं तथा सम–विषम मानसिक दशाओं का अंकन हरबंश और नीलिमा के पात्रों के माध्यम से किया है । वैवाहिक जीवन के तनाव, प्रेम की असली स्थिति की खोज, साथ रहते हुए अधूरे होने का बोध, नौराश्य, उखड़े और परंपरागत सूक्ष्म भावों से जकड़े व्यक्ति की अंर्तकथा आदि को स्पष्ट स्वर देने का प्रयास प्रस्तुत उपन्यास में हुआ है । प्रस्तुत उपन्यास की

मूल संवदेना पर प्रकाश डालते हुए डॉ. शरेराचन्द्र चूलकीमठ लिखते हैं – ''जैसा आज का संत्रस्त समाज और अस्तव्यस्त व्यक्ति है, वैसी ही उसकी मूल संवदेना है । वास्तव में यह उपन्यास आधुनिक मानव जीवन की विसंगतियों को आधारभूमि बनाकर अपने में कई महत्त्वपूर्ण व्यक्तिगत एवं सामाजिक समस्याओं को समेटे हुए है ।''[130]

आलोचक डॉ. महेन्द्र भटनागर के शब्दों में – '' 'अंधरे बंद कमरे' में ऊँचा उठने की महत्त्वकांक्षा और जीवन की विषम परिस्थितियों की टकराहट के परिणामस्वरूप ज़िन्दगी की स्वस्थ राह से भटककर पति–पत्नी के दाम्पत्य जीवन के टूटने की कथा के माध्यम से वर्तमान जीवन के विविध क्षेत्रों की विभिन्न समस्याओं और स्थितियों तथा जीवन–मूल्यों के विघटन तथा नव–संस्कार का चित्रण है ।''[131] इस कथन के आधार पर कहा जा सकता है कि प्रस्तुत उपन्यास में पात्रों की जीवन दृष्टि, परिवेश मानसिक द्वन्द्व की स्थिति द्वारा राकेशजी ने मनुष्य के भीतरी खोखलापन का सजीव चित्रण प्रस्तुत किया है ।

'न आनेवाला कल' (१९६८) राकेशजी का द्वितीय उपन्यास है । दुर्बल अतीत और अनिश्चित भविष्य का वर्तमान रूप में प्रस्तुतीकरण करनेवाला यह उपन्यास हिन्दी उपन्यास जगत की एक विशिष्ट उपलब्धि के रूप में स्वीकार किया गया है । प्रस्तुत उपन्यास के नायक मनोज द्वारा लेखक ने दो समस्याओं का चित्रण किया है – नौकरी छोड़ने की और पत्नी छोड़ने की । दोनों का सम्बन्ध एक ही से है, वह है बंधनों से मुक्ति । फिर भी यह मुक्ति की कामना मात्र एक विभ्रम बन कर रह जाती है । मुक्ति की आकांक्षा होते हुए भी, उसकी परिवेश प्रसूत नियति इन दोनों को छोड़ने की निरर्थकता को साबित करती है और उसे एक अनिश्चित ज़िन्दगी ढोने के लिए मजबूर करती है । पर वह नौकरी और पत्नी को छोड़ने के लिए आन्तरिक घुटन के कारण दबाव से विवश है । यह विवशता और समस्या दोनों का मोहन राकेश के वैयक्तिक जीवन से गहरा सम्बन्ध है ।

प्रस्तुत उपन्यास में बात नौकरी और पत्नी बदलने की है । मनोज मिशन स्कूल के टीचर पद से त्यागपत्र दे देता है और पत्नी से भी छूटकारा

पा लेता है । किन्तु असल में, मनोज आनेवाले कल की चिंता में वर्तमान को भी जी नहीं पाता । वह वर्तमान को अपना नहीं सकता, सुदूर भविष्य की कल्पना उसके मन को संशय से भर देती हैं । क्योंकि मनुष्य बाहरी गलतियों से छूटकारा पा सकता है किन्तु आंतरिक अपराध–बोध से उबर नहीं पाता । इसी मानसिक द्वन्द्व में पीसने के कारण उन्हें सुख–शान्ति नहीं मिल पाती ।

इस उपन्यास का मूल प्रश्न है बंधनों से मुक्ति का । शोभा और मनोज दोनों के पात्रों में मुक्ति के लिए छटपटाहट है । अतः दोनों का दाम्पत्य जीवन बिखर जाता है । आज के आधुनिक मानव के जीवन के व्यक्तिगत एवं समष्टिगत सत्य को राकेशजी ने यथार्थ दृष्टि और अस्तित्ववादी चिंतन के साथ 'न आने वाला कल' उपन्यास में रेखांकित का प्रयास किया हैं ।

'अंतराल' (१९७२) राकेशजी की तीसरी परिनिष्ठित औपन्यासिक कृति है । प्रस्तुत उपन्यास भी 'अंधरे बंद कमरे' और 'न आने वाला कल' की परंपरा में लिखा गया है । यह उपन्यास स्त्री–पुरुष सम्बन्ध के बीच रहनेवाले अंतराल और अनेक समस्याओं में उलझकर रह जाने की कथा को राकेशजी ने स्वर दिया हैं । 'अंतराल' उपन्यास में प्रमुख दो पात्र कुमार और श्यामा के सम्बन्धों का विश्लेषण किया गया हैं । श्यामा वैधव्य के कारण और कुमार असफल प्रेम के कारण उत्पन्न जीवन की रिक्तता से ग्रसित है, अंतः एक दूसरे की ओर आकर्षित होते है । उनमें एक भावनात्मक सम्बन्ध स्थापित होता है । किन्तु, श्यामा का एक अतीत है जिससे वह बचना चाहती है । इसी वर्तमान और अतीत के अंतराल को प्रस्तुत उपन्यास में सफलता पूर्वक प्रस्तुत किया गया है ।

इस उपन्यास में प्रेम के भावात्मक प्रसंगो का अंकन करते हुए राकेशजी ने पात्रों को प्रेम सम्बन्ध सामाजिक नैतिक मूल्यों की बेधड़क वर्जना करते हुए और अपने भीतर ही नैतिकता स्थापित करते हुए दिखाया है । प्रस्तुत उपन्यास में राकेशजी ने नामहीन सम्बन्धों की सार्थकता सूक्ष्मता से प्रस्तुत की है ।

अंतः में कहा जा सकता है कि राकेशजी की सजग दृष्टि और अनुभव की गहनता ने उनके उपन्यासों को जीवंतता प्रदान की हैं । तीनों ही उपन्यास

मानव सम्बन्धों का विशेष रूप से स्त्री–पुरुष सम्बन्धों के बिखराव को अभिव्यक्ति देते है । पात्रों में अपने अस्तित्व कि खोज की छटपटहाट, एकाकीपन, स्नेह, प्रेम और मानसिक तादात्मयता का अभाव, नैतिक मानदण्डों से प्रतिबद्ध होने की अपेक्षा जीवन के विघटन को उसके यथार्थ के साथ व्यंजित किया है । इस प्रकार राकेशजी ने अपने उपन्यासों में नगर जीवन के वैयक्तिक एंव सामाजिक जीवन को विविध पहलुओं से उजागर करने का सफल प्रयत्न किया है ।

❀ *नाटककार :*

हिन्दी नाटक की अपनी समृद्ध परंपरा रही है । स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक और रंगमंच के विकास क्षेत्र में मोहन राकेश का नाम अग्रगण्य हैं । राकेशजी ने अपने अनूठी नाट्य रचनाओं 'आषाढ़ का एक दिन' (१९५८), 'लहरों के राजहंस' (१९६३), 'आधे–अधूरे' (१९६९), 'पैर तले की जमीन' (१९७५) के द्वारा हिन्दी नाटक और रंगमंच को राष्ट्रीय स्तर पर प्रतिष्ठित किया । राकेशजी का अंतिम नाटक 'पैर तले की जमीन' का प्रकाशन उनके निधन के बाद हुआ । इसे वह अपूर्ण लिखा छोड़ गए थे, जिसे उनके अभिन्न मित्र कमलेश्वरजी ने पूर्ण किया ।

राकेशजी के नाटक हिन्दी नाट्य साहित्य की नवीनतम ऐतिहासिक प्रगति की ओर संकेत है । नये संदर्भो में कथा–तत्त्व का संशोधन आधुनिक शिल्प और अभिनव परिवेश उनके नाटकों की विशेष उपलब्धि है । 'आषाढ़ का एक दिन' ओर 'लहरों के राजहंस' आधुनिक हिन्दी नाटकों के ऐसे नाटकों में से हैं जिसमें ऐतिहासिक विषय वस्तु के परिप्रेक्ष्य में वर्तमान जीवन के अंतर्द्वन्द्व और बाह्य यथार्थ को सहज अभिव्यक्ति मिली है ।

'आषाढ़ का एक दिन' (१९५८) मोहन राकेश का प्रथम नाटक है । प्रस्तुत नाटक ने राकेशजी को हिन्दी संसार में महान नाटककार के रूप में प्रतिष्ठित किया । यह नाटक राकेशजी का पहला नाटक होने पर भी विषय–वस्तु और प्रस्तुतीकरण की दृष्टि से एक उच्चकोटि की रचना है ।

आधुनिक हिन्दी नाटक की श्रेष्ठतम उपलब्धियों में यह अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है । प्रस्तुत नाटक में राकेशजीने महाकवि कालिदास और उसकी प्रेयसी मल्लिका के जीवन सम्बन्धी घटनाओं को आधार रूप में ग्रहण किया है । इतिहास से अपने कथासूत्रों को जोड़कर प्रस्तुत नाटक में आज के आधुनिक जीवन की समस्याओं को प्रस्तुत किया हैं । राकेशजी ने इतिहास के संदर्भ में तत्कालीन युग–चेतना को ही अंकित किया है ।

'आषाढ़ का एक दिन' नाटक में कालिदास, प्रियंगुमंजरी तथा विलोम और मल्लिका के पात्रों द्वारा राकेशजी ने आधुनिक स्त्री–पुरुष के सम्बन्धों की जटिलता को भावुकतापूर्ण परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया है । कालिदास के पात्र द्वारा परिवेश से कटे, बिखरे, विवश आज के व्यक्ति की पीड़ा सफलता के साथ अभिव्यक्त हुई है । कालिदास के माध्यम से आज के साहित्यकारों का अंतःद्वन्द्व प्रस्तुत करना भी राकेशजी का लक्ष्य रहा । स्वयं राकेशजी ने इस बात का स्वीकार करते हुए स्पष्ट किया हैं – ''कालिदास मेरे लिए एक व्यक्ति नहीं, हमारी सृजनात्मक शक्तियों का प्रतीक है, नाटक में वह प्रतीक उस अंतर्द्वन्द्व को संकेतित करने के लिए है जो किसी भी काल में सृजनशील प्रतिभा को आंदोलित करता है । व्यक्ति कालिदास को उस अंतर्द्वन्द्व से गुजरना पड़ा था या नहीं यह बात गौण हो सकती है व्यक्ति कालिदास का यह नाम भी वास्तविक न हो पर हमारी आज तक की सृजनात्मक प्रतिभा के लिए इससे अच्छा दूसरा नाम, दूसरा संकेत मुझे नहीं मिला ।''[132]

इस प्रकार 'आषाढ़ का एक दिन' ऐतिहासिक पूण्ठभूमि पर लिखा गया आधुनिक समस्याओं को प्रस्तुत करने वाला नाटक है, जो राकेशजी के अपूर्व रचना–कौशल का परिचय देता है ।

'लहरों के राजहंस' (१९६३) राकेशजी का दूसरा ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर लिखा गया नाटक है । प्रस्तुत नाटक का आधार अश्वघोष का 'सौन्दरनन्द' है । इस नाटक में भी अतीत के माध्यम से समसामायिक युग के मानव की उलझन और आत्मसंघर्ष को सम्प्रेषित किया है । अतीत के माध्यम से वर्तमान मुखर किया है ।

'लहरों के राजहंस' नाटक में सुन्दरी और नन्द प्रमुख चरित्र हैं । सुन्दरी और नन्द की कथा के माध्यम से दर्शन और भोगवृत्ति का संघर्ष इस नाटक की मूल संवेदना है । यहाँ नन्द एक ओर तो अपनी पत्नी सुन्दरी के मोहन बन्धन में है उससे मुक्त होना नहीं चाहता, तो दूसरी ओर भगवान गौतम बुद्ध का भी उसे आकर्षण है । अंतः वह दो विरोधी जीवन–दर्शन के बीच संघर्ष करता है और अंत में किसी का भी नहीं हो पाता । इस द्वन्द्व के माध्यम से राकेशजी ने द्विधाग्रस्त, शंसयग्रस्त, निश्चय और अनिश्चय के बीच फसे आज के व्यक्ति की स्थिति को स्पष्ट किया है ।

इस प्रकार जटिलता, दुविधा अनिश्चितता और निश्चय–अनिश्चय की स्थिति को स्पष्ट करनेवाला यह नाटक ऐतिहासिक संदर्भ में आधुनिक युग चेतना को सशक्त रूप में निरूपित करता हैं ।

'आषाढ़ का एक दिन' और 'लहरों के राजहंस' नाटकों के लिए राकेशजी ने इतिहास सम्मत प्रख्यात कथानक को लिया हैं । उस माध्यम से युगानुरूप कृतियाँ निर्मित की हैं ।

'आधे–अधूरे' (१९६९) राकेशजी का तीसरा नाटक है । इस नाटक में राकेशजी किसी तरह की ऐतिहासिकता का आधर लिए बिना ही आज के मनुष्य की समस्या, विडंबना को आज की परिवेशगत स्थिति को सहज स्वाभविकता से स्पष्ट किया है । प्रस्तुत नाटक में राकेशजी ने आज के व्यक्ति के अधूरेपन को कई कोणों से प्रस्तुत किया है । आज के मनुष्य की ज़िन्दगी अधूरी और अजनबीपन से भरी है । वह बाहर और भीतर दोनों ओर से अधूरा है, खाली है । अपने लिए पूर्णत्व की वृथा खोज में सभी स्वयं को आधा–अधूरा पाते हैं । पूर्णत्व की खोज में आज का मानव अधिकाधिक अपूर्णत्व की ओर खिंचा जाता है और यही विफलता, क्षोभ मनुष्य को व्यथित करते है । मनुष्य के कटु यथार्थ को राकेशजीने प्रस्तुत नाटक का मुख्य आधार बनाया है । डॉ. गिरीश रस्तोगी ने इस नाटक को ''समकालीन संवेदना का नाटक''[133] कहा है ।

प्रस्तुत नाटक में सावित्री और महेन्द्रनाथ के पात्रों के माध्यम में मध्यवर्गीय जीवन में आनेवाली शुष्क और विनाशकारी रिक्तता को यथार्थ के साथ अभिव्यक्त किया है । परिवार में कुल पाँच सदस्य है पर सभी एक–दूसरे से छिटक जाना चाहते है । इस प्रकार इस नाटक के पात्रों के माध्यम से राकेशजी ने युग की मानसिकता का चित्रण व्यक्ति और परिस्थितियों की टकराहट के साथ बड़ी सार्थकता के साथ किया है । मानवीय सम्बन्धों में आ रहे अनवरत सामायिक बिखराव एवं टूटन को राकेशजी ने प्रस्तुत नाटक में सशक्तता के साथ उमारा है ।

'पैर तले की जमीन' राकेशजी का अंतिम अपूर्ण नाटक है । जिसे उसकी टिप्पणियों के आधार पर कमलेश्वरजीने पूर्ण किया था ।

'पैर तले की जमीन' (१९७५) में मध्यमवर्गीय परिवारों की टूटन, मूल्य विघटन, भौतिकता की चाह में आधा हुआ नैतिक ह्रास को प्रस्तुत किया है । जिससे हमें हमारी पैर तले की जमीन खिसकती नज़र आ रही है । हम ज़िन्दगी की असलीयत को हम छिपाने का प्रयास करते है किन्तु छिपा न सकने की व्यथा में और अधिक उब से भर जाते है । प्रस्तुत नाटक में अयुब और सलमा के जीवन के माध्य से आज के व्यक्ति की इन स्थितियों को वास्तविक धरती पर राकेशजी ने प्रस्तुत किया है ।

इस प्रकार स्पष्ट है कि राकेशजी ने अपने अनुभव से जीवन को जितना जाना पहचाना, समझा और पढ़ा उन सारे अहसासों को पूरी ईमानदारी और मौलिकता के साथ अपने साहित्य में रेखांकित किया हैं । यहीं राकेशजी के नाट्य साहित्य की भी वह महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है, जिसने राकेशजी को एक अलग पहचान दी हैं ।

❀ *एकांकी एवं अन्य नाट्य साहित्य :*

मोहन राकेश ने जिस प्रकार हिन्दी कहानी, नाटक और उपन्यास के क्षेत्र में अपनी मौलिकता से उन्हें उत्कृष्टता प्रदान की, उसी प्रकार एकांकी को भी अपनी कुशल लेखनी से समृद्ध किया है । 'अंडे के छिलके अन्य एकांकी तथा

बीज नाटक (१९७३) संकलन राकेशजी के देहान्त के पश्चात १९७३ में प्रकाशित हुआ । इस संकलन में तीन एकांकी 'अंडे के छिलक', 'सिपाही की माँ', 'प्यालियाँ टूटती है' दो बीज नाटक, 'शायद' और 'हं' तथा एक पार्श्व नाटक 'छतरियाँ' संकलित हैं ।

'रात बीतने तक तथा अन्य ध्वनि नाटक' राकेशजी की मृत्यु के उपरान्त दो वर्ष बाद १९७४ में प्रकाशित हुआ । इस संकलन में कुल आठ ध्वनि नाटक हैं – 'सुबह से पहले', 'कुँवारी धरती', 'दूध और दाँत' – तीन स्वतंत्र ध्वनि नाटक हैं । दो पूर्ण नाटकों का ध्वनि–रूपांन्तर 'रात बीतने तक' और 'आषाढ़ का एक दिन' हैं । 'स्वप्नवासवदतम्' एक कहानी का ध्वनि रूपान्तर है । राकेशजी की बहुचर्चित कहानी 'उसकी रोटी' का भी ध्वनि रूपान्तर है । अन्तिम ध्वनि नाटक 'आखिरी चट्टान तक' यात्रा संस्मण का बड़ा ही सशक्त ध्वनि नाटक है ।

इस प्रकार हिन्दी एकांकी, ध्वनि नाटक और बीज नाटक के क्षेत्र में राकेशजी अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं ।

❀ *निबंध और लेख :*

मोहन राकेश अपनी ज़िन्दगी और लेखन में सदा निर्भीक और स्पष्ट रहे हैं । उन्होंने अपने निबंधों और लेखों में जीवन, साहित्य और रचनाकार के दायित्व सम्बन्धी विचारों को स्पष्ट किया हैं । उनके निबंधो और लेखों की मूल चेतना आधुनिक है । राकेशजी का निबंध साहित्य तीन कृतियों में समाया हुआ हैं । 'परिवेश' (१९६७), 'बकलम खुद' (१९७४) और 'मोहन राकेश : साहित्यिक और सांस्कृतिक दृष्टि' (१९७५) ।

'परिवेश' राकेशजी का पहला संग्रह है । इसमें जो निबंध संकलित है उन्हें राकेशजी ने लेख की संज्ञा दी है । इसमें सेल्फ पोर्ट्रेट है, व्यक्ति चित्र है, संस्मरण है, रेखाचित्र है, निबंध है और व्यंग्य–लेख है । इस संग्रह में राकेशजी के जीवन सम्बन्धी यथार्थ बातें प्रस्तुत है जो राकेशजी के व्यक्तित्व की निश्छलता को अभिव्यक्ति देती हैं । 'परिवेश' में राकेशजी के आठ लेख 'अपने

आप ओर कुछ परिचित चहेरे', 'एक उनींदा शहर', 'यात्रा–परक', 'तिरछे कोण', 'दायरे', 'सम्मेलन प्रश्न, परिसंवाद', 'रचना–दृष्टि', 'समकालिन बिन्दु' संकलित हैं । इन आठ शीर्षकों में २१ निबंधों ने आकार पाया हैं ।

'बकलम खुद' संग्रह में कहानी, नयी कहानी और उसके सन्दर्भ में लिखे गये लेख संकलित हैं । नयी कहानी के सन्दर्भ में हुए प्रयोग और विशेषता की चर्चा तथा रचनाकार की रचनाधर्मिता, अलोचना, अलोचना के मानदण्ड सम्बन्धी जो लेख समय–समय पर 'सारिका' तथा विभिन्न पुस्तकों में प्रकाशित राकेशजी द्वारा लिखित लेखों का संकलन इस निबंध संग्रह में हैं । संपूर्ण कृति को तीन भागों को बाँटा गया हैं – (१) 'बकलम खुद' (२) 'नयी निगाहों के सवाल' और (३) 'कुछ और अस्वीकार' । इन तीन भागों में कुल बाईस निबंध संकलित हैं । इस संग्रह के निंबंधो में नयी कहानी की रचना प्रकिया तथा उसकी उपलब्धियों की चर्चा रहने पर भी वह चर्चा मात्र इस विद्या तक ही सीमित नहीं रह जाती, बल्कि इससे बाहर निकलकर साहित्य और जीवन के यथार्थ सम्बन्धों पर प्रकाश डालती है । यह लेख राकेशजी को मौलिकता एवं तटस्थता के कारण अपना विशेष महत्त्व रखते हैं ।

'मोहन राकेश : साहित्यिक और सांस्कृतिक दृष्टि' संकलन में राकेशजी के मुख्यतः तीन प्रकार के निबंधो को स्थान मिला है । (१) सैद्धांतिक चर्चा विषयक निबंध जो 'साहित्यिक दृष्टि' शीर्षक के अंतर्गत रखे गये है, (२) समीक्षात्मक निबंध जो 'रंगमंच' और 'नाटक' तथा 'प्रारंभिक समीक्षाएँ' शीर्षकों के अंतर्गत संकलित हैं ।(३) सांस्कृतिक दृष्टि के अवबोधक निबंध 'आधुनिकता के तत्त्व बनाम भारतीयता के तत्त्व' शीर्षक से संकलित हैं । यह लेख राकेशजी की गहन अध्ययनशीलता संस्कृति और परम्परा तथा उनके परिज्ञान और साहित्यिक गतिविधियों के प्रति उनकी सजगता को सूचित करते हैं ।

❀ *जीवनी :*

जीवनी लिखना भी एक कला है । मनुष्य को समजने और जानने का सबसे उपयुक्त विषय मनुष्य ही है । राकेशजी की 'समय–सारथी' (१९७२)

नामक जीवनी रचना में बारह व्यक्तियों की जीवनियाँ हैं । इसमें पीछले ढ़ाई हजार वर्षो में विश्व में पैदा हुए बारह महान व्यक्तियो की जीवनियाँ मिलती हैं । यें जीवनियाँ समय–विशेष की प्रमुख मनःस्थितियों का इतिहास भी है और जीवनी भी । ‘‘इस संकलन में दी गयी जीवनियाँ केवल उन व्यक्तियों का इतिहास नहीं एक तरह से पिछले अढ़ाई हजार वर्षो की प्रमुख मनःस्थितियों का भी इतिहास है ।’’[134]

प्रस्तुत संकलन की जीवनियों में धार्मिक व्यक्ति है, दार्शनिक है, सम्राट है, स्वतंत्रता सेनानी है, संत है, भक्त है, साहित्यकार है और राजनेता है । कुछ पूर्व के हैं और कुछ पश्चिम के इनके जीवन–काल में भी समय का अंतराल है । लेकिन लेखक की संशिलष्ट दृष्टि उनमें आंतरिक एकरूपता खोज पायी हैं ।

इस जीवनी साहित्य को राकेशजी ने चार खंड़ों में विभाजीत किया हैं – ‘सुदूर अतीतः सालते प्रश्न’ शीर्षक के अंतर्गत गौतम बुद्ध, सुकरात और अशोक की जीवनियाँ । ‘अंतरालः विद्रोही आस्थाएँ’ शीर्षक में जोन ओफ आर्क, कबीर और मीरा की जीवनियाँ, ‘निकट अतीतः, क्रान्तिकारी दृष्टि’ शीर्षक के अंतर्गत दयानंद सरस्वती, भगतसिंह और वाल्टेयर की जीवनियाँ और ‘वर्तमानः सीधे साक्षात्कार’ शीर्षक में महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरू और मार्टिन लूथर किंग की जीवनियाँ संकलित हैं ।

इन जीवनियों में राकेशजी ने काल, देश, व्यक्ति और घटना की सीमाओं को तोड़कर मानवीय पक्ष को उजागर किया है, साथ ही उसके संदेश को भी हमारे सामने रखने का प्रयत्न किया है । इस दृष्टि से राकेशजी को श्रेष्ठ जीवनीकार के रूप में प्रसिद्धि मिली हैं ।

❀ *डायरी :*

राकेशजी की डायरी भी रचनात्मक साहित्य का एक अन्य रूप है । यद्यपि डायरी लिखना एक जोखिम का काम है, क्योंकि इसमें अपनी सच्चाईयों को बिना परदा किये लिखना पड़ता है । राकेशजी नियमित रूप से डायरी

लिखा करते थे । उनकी डायरी में जीवन की छोटी–से–छोटी घटना और बड़े–से–बड़े संदर्भ और उसके अंश पूरी सच्चाई और ईमानदारी के साथ संकलित हुए है । राकेशजी की साहित्यिक अनुभूतियाँ और प्रेरणाओं का मूल स्त्रोत इस डायरी के माध्यम से जाना जा सकता है । राकेशजी की डायरी में भावुकता के विविध रंग भरे हुए है । राकेशजी की प्रकाशित डायरी के माध्यम से सन् १९४८ ई. से सन् १९६७ ई. के बीच के प्रमुख प्रसंगो का उल्लेख हैं । इस डायरी के आधार पर राकेशजी के संघर्ष भरे जीवन की कथा तथा अकेले क्षणों की कथा यथार्थ और जीवंत रूप में अभिव्यक्त हुई है ।

❀ *अनुवाद :*

मोहन राकेश ने अपनी मौलिक रचनाओं के साथ–साथ संस्कृत एवं अंग्रेजी भाषा से अनुवाद भी किये है । राकेशजी द्वारा अनुदित तीन रचनाएँ उपलब्ध हैं – (१) मुच्छकटिक, (२) शकुंतला (३) एक औरत का चेहरा ।

कालिदास के 'अभिज्ञान शाकुंतल' और शुद्रक के 'मुच्छकटिक' संस्कृत नाटकों को राकेशजी ने उनके मूल रूप में हिन्दी पाठकों के सामने रखने का सार्थक तथा सकल प्रयास किया है । राकेशजी पहले से ही संस्कृत साहित्य से प्रभावित रहे थे । उन्हें संस्कृत का अच्छा ज्ञान रहा था । संस्कृत की नाट्य परंपरा का तो उन्होंने विशेष रुचि एवं जिज्ञासा के साथ अध्ययन किया था । संस्कृत की इन महान प्रतिभाओं की श्रेष्ठ कृतियों को सरल भाषा–शैली में रूपांतरीत करके सामान्य पाठकों के सामने रखना उनका उद्देश्य रहा था और राकेशजी इसमें सफल भी रहे हैं ।

अंग्रेजी के सुप्रसिद्ध उपन्यासकार हेनरी जेम्स की श्रेष्ठ उपन्यास कृति 'दि पोर्ट्रेट ऑफ ए लेडी' का 'एक और का चेहरा' शीर्षक से राकेशजी ने हिन्दी में अनुवाद किया है । हेनरी जेम्स की कृतियों का अनुवाद करना सामान्यतया अत्यन्त कठिन कार्य माना जाता हैं । राकेशजी जैसे प्रतिभा सम्पन्न साहित्यकार के लिए यह चुनौती बनकर उपस्थित हुआ और राकेशजी इन चुनौती में सफल

भी हुए हैं । उन्हों नें अनुवाद की कृत्रिमता से बचकर अनुवाद को रोचक बनाए रखने में सफलता प्राप्त की हैं ।

ग्राहम ग्रीन के उपन्यास 'द एण्ड ऑफ द अफेयर' का अनुवाद 'उस रात के बाद' तथा एडिटा मॉरिस का उपन्यास 'फ्लावर्स ऑफ हिरोशिमा' का 'हिरोशिमा के फूल' शीर्षक से राकेशजी ने हिन्दी में सफलतापूर्वक अनुवाद किये हैं । अकृत्रिमता और अर्थ संप्रेषणियता राकेशजी के अनुवाद की विशेषता है, जो इन अनुवादों में देखने मिलती हैं । राकेशजी के अनुवाद हिन्दी साहित्य की विशेष उपलब्धि हैं ।

❀ *यात्रा–वृत्तांत :*

राकेशजी के जीवन में यात्रा का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है । अपने जीवनकाल में राकेशजी कभी जीविका के लिए तो कभी लेखन के लिए तो कभी मानसिक शांति के लिए यात्रारत रहे हैं । 'आखिरी चट्टान तक' राकेशजी की यात्रा वृत्तांत सम्बन्धी साहित्यिक कृति है । इसका प्रथम प्रकाशन सन् १९५३ ई. में और दूसरा परिष्कृत संस्करण सन् १९६८ में प्रकाशित हुआ । इस वृत्तांत में राकेशजी ने पश्चिमी तट की लंबी यात्रा (गोवा से लेकर कन्याकुमारी तक की यात्रा) का वर्णन किया हैं । यह यात्रा–वृत्तांत बड़ी भावुकता और ईमानदारी के साथ लिखा गया है ।

इस यात्रा वृत्तांत में प्रकृति के मनमोहक वर्णन के साथ जीवन के विविध रंगों और विभिन्न स्तरों को रेंखांकित किया गया हैं । साथ ही यात्रा के विभिन्न साधनों का उपयोग परिस्थितियाँ अलग–अलग लोगों से मुलाकात का वर्णन भी मिलता है । इस प्रकार यह यात्रा–वृत्तांत भावप्रणव बन गया है ।

❀ *विविध :*

उपरोक्त विधाओं के साथ–साथ राकेशजीने बाल–साहित्य और सेल्फ पोट्रेट भी लिखे हैं ।

बाल साहित्य शाश्वत साहित्य है । हर युग में बालक की मूलभूत प्रवृत्तियाँ एक–सी रहती हैं इस दृष्टि से बाल–साहित्य का अपना महत्त्व हैं ।

परंतु बाल–साहित्य लिखना आसान काम नहीं हैं क्योकि इसके लिए बाल मनोविज्ञान की पूर्ण जानकारी आवश्यक हैं । 'बिना हाड–मांस के आदमी' संग्रह में राकेशजी द्वारा बाल–पाठकों के लिए विशेष रूप से लिखी गयी चार कहानियाँ संग्रहीत हैं । इस में रोचक कहानियों द्वारा लेखक ने ईमानदारी का प्रतिपादन किया है, साथ में अप्रामाणिकता स्वार्थ, लालच और बुरे परिणामों को भी मनोरंजक शैली में अंकित किया है ।

'सेल्फ पोट्रेटः आईने के सामने' में राकेशजी ने पंद्रह प्रसिद्ध लेखकों के पोट्रेट का संपादन किया हैं । अन्त में राकेशजी का अपना सेल्फ पोट्रेट भी हैं । 'सारिका' के संपादक पद का कार्यभार संभालते हुए राकेशजी ने जिन लेखकों से सेल्फ पोट्रेट लिखाये उनमें है "राजेन्द्रसिंह बेदी, नागार्जुन, यशपाल कृशनचंदर, अमृता प्रीतम, अमृतलाल नागर, उपेद्रनाथ अश्क, कमलेश्वर, कर्रतुल–ऐन–हैदर, विष्णु प्रभाकर, राजेन्द्र यादव, विमल मित्र, भगवती चरण वर्मा भीष्म साहनी और स्वंय राकेशजी । सभी ने आत्मचरित्र लिखते में पूरी ईमानदारी बरतने की चेष्टा की हैं । अतः ये आत्मचरित लेखकों के आंतरिक व्यक्तित्व को उजागर करने की क्षमता रखते हैं । इन सेल्फ पोट्रेट के माध्यम से राकेशजी ने एक नयी विद्या का सूत्रपात किया हैं । यह संकलन राकेशजी की प्रयोगधर्मिता का एक और ज्वलंत प्रमाण है ।

❀ *रूप और रूपांतर :*

राकेशजी साहित्यकार के रूप में लोकप्रिय रहे हैं । उनकी कृतियाँ साहित्यिक दृष्टि से श्रेष्ठतम सिद्ध हुई हैं । यह इसी बात का प्रमाण है कि राकेशजी की सुप्रसिद्ध कहानी 'उसकी रोटी' का निर्देशन मणि कौल द्वारा फिल्म में रूपांतर हुआ है । प्रस्तुत कहानी को फिल्मी माध्यम से अधिक जानदार और प्रभावी रुप में प्रस्तुत किया गया है ।

राकेशजी की रचनाओं का अनुवाद भारतीय एवं विदेशी भाषाओं में हुए हैं । मुख्य रूप से राकेशजी के नाटकों का मराठी, गुजराती, बंगला, कन्नड, पंजाबी, आसमियाँ, मणिपुरी और अंग्रेजी भाषा में अनुवाद हुआ हैं । राकेशजी

के नाटकों ने भारतीय रंगान्दोलन को विकसित और समृद्ध करने में निश्चित रूप से एक ऐतिहासिक भूमिका का निर्वाह किया है ।

१६-२० फरवरी १६५० ई. को दिल्ली के मेडिकल कॉलेज के विद्यार्थीओं द्वारा रंगमंच के विख्यात अभिनेता निर्देशक रवि वासवानी के निर्देशन में राकेशजी के नाटक 'आधे–अधूरे' का बिन्दु बत्रा द्वारा अंग्रेजी में 'हाफ वे हाऊस' नाम से रंगमंच पर सफलता के साथ प्रस्तुतीकरण हुआ ।

'आधे–अधूरें' नाटक का अमोल पालेकर ने कोंकणी में, गुरुशरण सिंह ने पंजाबी में, कृष्ण मोहन शर्मा ने मणिपुरी में और विजय तेंदुलकर ने मराठी में सफलतापूर्वक अनुवाद किया हैं । 'आधे–अधूरे' नाटक को मूलरूप में तथा अनुदित रूप में सारी सफलता के साथ बार–बार रंगमंच पर प्रस्तुत किया गया है ।

राकेशजी की दूसरी लोकप्रिय नाटय कृति 'आषाढ़ का एक दिन' का हैदराबाद की सुप्रसिद्ध नाट्य संस्था डी. सी. एच. द्वारा बॉब मार्श के निर्देशन में अंग्रेजी में अनुवाद प्रस्तुत है । विदेशी भाषा विश्वविद्यालय टोकियो से डॉ. इन्दुजा अवस्थीने 'लहरों के राजहंस' का जापानी भाषा में अनुवाद किया हैं ।

हाल ही में राकेशजी की कहानियों का 'मिट्टी के रंग' शीर्षक से दूरदर्शन से प्रसारण हुआ । निर्देशक जैगेन्द्र शैली ने राकेशजी की प्रमुख कहानियों का इस श्रेणी में प्रसारण किया है ।

इस विवेचन से स्पष्ट है कि राकेशजी सिर्फ हिन्दी में ही नहीं अन्य भारतीय भाषा एवं विदेशी भाषा में भी लोकप्रिय रहे हैं । यह प्रसिद्धि राकेशजी को साहित्यकार के रूप में एक महत्त्वपूर्ण स्थान पर आसीन करती हैं ।

❀ *सम्मान और उपाधियाँ :*

मोहन राकेश ने साहित्यकार, आलोचक एवं संपादक के रूप में हिन्दी साहित्य की जो सेवा की है उसे भूलाया नहीं जा सकता । राकेशजी मौलिक ढंग के शैलीकार, सैद्धान्तिक चिंतनशील, प्रगतिशील, आत्मसमान से युक्त व्यक्ति थे । शायद यही वें गुण है जिसके लिए राकेशजी को जो सम्मान तथा

उपाधियाँ मिलनी चाहिए थी, वे उन्हें वहीं मिली । सम्मान या ख्याति के लिए उन्होनें कभी अपनी मान्यताओं से समझौता नहीं किया । अपने समग्र जीवनकाल के दौरान वे स्वाभिमानी रहे । यह स्वाभिमान ही उनके लिए सम्मान था । राकेशजी ने कभी सामाजिक सम्मान एवं उपाधियाँ का मोह नहीं रखा । राकेशजी के 'आषाढ़ के एक दिन' नाटक को संगीत अकादमी द्वारा पुरस्कृत किया गया । वैसे देखा जाय तो आज भी राकेशजी के साहित्य की लोकप्रियता उनका विशेष सम्मान है; विशेष उपाधि है ।

राकेशजी बहुमुखी प्रतिभा संपन्न कलाकार थे । उन्होंने कथा–साहित्य के अलावा प्रचलित और कुछ नयी गद्य की विधाओं पर भी लेखनी चलायी हैं । एक सर्जक की प्रतिभा का मापदंड यही हो सकता है कि वह जिस विद्या को भी छूए अपने निशान छोड़ता जाये । राकेशजी ने निबंध, समीक्षाएँ, संस्मरण, रेखांचित्र, डायरी, आत्मकथा और जीवनी से लेकर यात्रा–वृत्तांत तक अपनी लेखनी चलायी है और इन सब रूपों में वे एक सफल गद्यकार के रूप में सामने आते हैं । राकेशजी द्वारा लिखित रूप में जितना भी साहित्य मिलता है उनमे वे एक सहज रचनाकार के रूप में दिखाई देते हैं । सहज अभिव्यंजना, अनुभूति की पकड़ अपने विशेष विचार या अनुभूति को पूरी तरह से मौलिक शैली में अभिव्यक्ति देने में समर्थ राकेशजी भावुक एवं ईमानदार रचनाकार के रूप में हमारे सामने आते है । और उनका साहित्य हिन्दी की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि के रूप में ।

संदर्भ सूची :

1 आधुनिक नाटक का मसीहा : मोहन राकेश, डॉ. गोविंद चातक, पृ.२६

2 मोहन राकेश, रंग, शिल्प और प्रदर्शन, डॉ. जयदेव तनेजा, पृ. १६

3 मोहन राकेश का नारी संसार : श्रीमती मीना पिंपलापुरे, पृ. १

4 परिवेश, मोहन राकेश, पृ. १५७

5 मोहन राकेश की डायरी, मोहन राकेश, पृ. २४१.२४२

6 मोहन राकेश की डायरी, मोहन राकेश, भूमिका से पृ. ६

7 मोहन राकेश, रंग, शिल्प और प्रदर्शन, डॉ. जयदेव तनेजा, पृ. १६

8 मोहन राकेश, रंग, शिल्प और प्रदर्शन, डॉ. जयदेव तनेजा, पृ.१६,२०

9 परिवेश, मोहन राकेश, पृ. ६

10 परिवेश, मोहन राकेश, पृ. ७

11 परिवेश, मोहन राकेश, पृ. २३

12 आईने के सामने, मोहन राकेश, पृ. १८६

13 आईने के सामने, मोहन राकेश, पृ. १८६

14 आईने के सामने, मोहन राकेश, पृ. १६०

15 परिवेश, मोहन राकेश, पृ. ८

16 परिवेश, मोहन राकेश, पृ. ७.८

17 परिवेश, मोहन राकेश, पृ. ८

18 परिवेश, मोहन राकेश, पृ. ६

19 परिवेश, मोहन राकेश, पृ. २३

20 'सारिका' मार्च १६७२, पृ. ६२

21 मोहन राकेश, व्यक्तित्व और कृतित्व, डॉ. सुषमा अग्रवाल, पृ. २१

22 मोहन राकेश की कहानियों में आधुनिक बोध – डॉ. सदन कुमार पाल, पृ. ३०

23 मोहन राकेश, रंग, शिल्प और प्रदर्शन, डॉ. जयदेव तनेजा, पृ. २१

24 परिवेश, मोहन राकेश, पृ. १८

25 मोहन राकेश साहित्य : समग्र मूल्यांकन, डॉ. शरेशचंद्र चुलकीमठ, पृ.१३

26 मोहन राकेश, रंग, शिल्प और प्रदर्शन, डॉ. जयदेव तनेजा, पृ. २०

27 परिवेश, मोहन राकेश, पृ. ३

28 परिवेश, मोहन राकेश, पृ. ३

29 परिवेश, मोहन राकेश, पृ. ४

30 मोहन राकेश और उनके नाटक, गिरीश रस्तोगी, पृ. ३३

31 परिवेश, मोहन राकेश, पृ. १६.१७

32 परिवेश, मोहन राकेश, पृ. १७

33 मोहन राकेश और उनका साहित्य : कविता शनवरे, पृ. ५२.५३

34 'मेरी प्रिय कहानियाँ', भूमिका से, मोहन राकेश, पृ. ६.७

35 परिवेश, मोहन राकेश, पृ. १४.१५

36 परिवेश, मोहन राकेश, पृ. १८

37 परिवेश, मोहन राकेश, पृ. १६

38 परिवेश, मोहन राकेश, पृ. १७.१८

39 परिवेश, मोहन राकेश, पृ. २१.२२

40 परिवेश, मोहन राकेश, पृ. २२

41 मोहन राकेश, व्यक्तित्व और कृतित्व, डॉ. सुषमा अग्रवाल, पृ. २४.२५

42 'सारिका' मार्च १६७२, पृ. ७४

43 मोहन राकेश की कहानियों में आधुनिक बोध, डॉ. सदन कुमार पाल, पृ. ३४

44 'सारिका' मार्च १६६८, पृ. १६

45 मेरा हमदम मेरा दोस्त – कमलेश्वर, पृ. १५

46 मोहन राकेश का साहित्य : समग्र मूल्यांकन, डॉ. शरेशचंद्र चुलकीमठ, पृ.१८

47 मेरा हमदम मेरा दोस्त – कमलेश्वर, पृ. १५
48 मोहन राकेश की डायरी, मोहन राकेश, पृ. ५६
49 'सारिका' मार्च १६७३, पृ. २७
50 नाटककार मोहन राकेश : सं. सुन्दरलाल कथूरिया (लेख : अंतर्विरोधी व्यक्तित्व, राजेन्द्र पाल) पृ. २५
51 मोहन राकेश की डायरी, मोहन राकेश, पृ. ६३
52 मोहन राकेश की डायरी, मोहन राकेश, पृ. १४४
53 नाटककार मोहन राकेश : सं. सुन्दरलाल कथूरिया (लेख : अंतर्विरोधी व्यक्तित्व, राजेन्द्र पाल), पृ. २६
54 मोहन राकेश की डायरी, मोहन राकेश, पृ. ६३
55 'मेरी प्रिय कहानियाँ', भूमिका से, मोहन राकेश, पृ. ७
56 'मेरी प्रिय कहानियाँ', भूमिका से, मोहन राकेश, पृ. ८
57 मोहन राकेश की डायरी, मोहन राकेश, पृ. ३५
58 मोहन राकेश की डायरी, मोहन राकेश, पृ. ७३
59 मोहन राकेश की डायरी, मोहन राकेश, पृ. १२६
60 मोहन राकेश की डायरी, मोहन राकेश, पृ. १२१
61 मेरा हमदम मेरा दोस्त – कमलेश्वर, पृ. १०
62 मेरा हमदम मेरा दोस्त – कमलेश्वर, पृ. ११
63 'मेरी प्रिय कहानियाँ', भूमिका से, मोहन राकेश, पृ. ६,१०
64 मोहन राकेश का साहित्य : समग्र मूल्यांकन, डॉ. शरेशचंद्र चुलकीमठ, पृ.१
65 चंद सतरें और, अनीता राकेश, भूमिका से, डॉ. मदान, पृ. १०
66 मोहन राकेश की डायरी, मोहन राकेश, पृ. २४१.२४२
67 'सारिका' अप्रेल–१६७५, पृ. ८१.८२
68 'मेरी प्रिय कहानियाँ', भूमिका से, मोहन राकेश, पृ. १०
69 मोहन राकेश, व्यक्तित्व और कृतित्व, डॉ. सुषमा अग्रवाल, पृ. ३०

70 मोहन राकेश रंग, शिल्प और प्रदर्शन, डॉ. जयदेव तनेजा, पृ.२२
71 मोहन राकेश की डायरी, मोहन राकेश, पृ. ६७
72 सर्वश्वर दयाल सक्सेना व्यक्ति और साहित्यकार, पृ. १५
73 मोहन राकेश, व्यक्तित्व और कृतित्व, डॉ. सुषमा अग्रवाल, पृ. ३२
74 'सारिका' मार्च १६७३, पृ. ४०
75 गिरधारीलाल वैद, 'सारिका' मार्च १६७३, पृ. २७
76 मेरा हमदम मेरा दोस्त – कमलेश्वर, पृ. १
77 मोहन राकेश साहित्य : समग्र मूल्यांकन, डॉ. शरेशचंद्र चुलकीमठ, पृ. २६
78 मोहन राकेश, व्यक्तित्व और कृतित्व, डॉ. सुषमा अग्रवाल, पृ. ३५
79 चंद सतरें और, अनीता राकेश, पृ. ६३
80 नाटककार मोहन राकेश : सं. सुन्दरलाल कथूरिया (लेख : अंतर्विरोधी व्यक्तित्व, राजेन्द्र पाल), पृ. २२
81 नाटककार मोहन राकेश : डॉ. गिरीश रस्तोगी, पृ. ४३
82 चंद सतरें और, अनीता राकेश, पृ. १०१
83 मोहन राकेश की डायरी, मोहन राकेश, पृ. २४६.२४७
84 मेरा हमदम मेरा दोस्त – कमलेश्वर, पृ. १४
85 मोहन राकेश, व्यक्तित्व और कृतित्व, डॉ. सुषमा अग्रवाल, पृ. ४६
86 मोहन राकेश की डायरी, मोहन राकेश, पृ. ३०३
87 मोहन राकेश की डायरी, मोहन राकेश, पृ. ३०३
88 'सारिका' मार्च १६७३, पृ. ३५
89 मेरा हमदम मेरा दोस्त – कमलेश्वर, पृ. १५
90 मोहन राकेश, व्यक्तित्व और कृतित्व, डॉ. सुषमा अग्रवाल, पृ. ४१
91 मोहन राकेश की डायरी, मोहन राकेश, पृ. ३०२
92 'सारिका' मार्च १६७३, पृ. २७
93 मेरा हमदम मेरा दोस्त – कमलेश्वर, पृ. १७

94 मोहन राकेश की डायरी, मोहन राकेश, पृ. २६८
95 मेरा हमदम मेरा दोस्त – कमलेश्वर, पृ. १७
96 मेरा हमदम मेरा दोस्त – कमलेश्वर, पृ. १६
97 मेरा हमदम मेरा दोस्त – कमलेश्वर, पृ. २०
98 मेरा हमदम मेरा दोस्त – कमलेश्वर, पृ. २०
99 मेरा हमदम मेरा दोस्त – कमलेश्वर, पृ. १२
100 मेरा हमदम मेरा दोस्त – कमलेश्वर, पृ. १३
101 चंद सतरें और, अनीता राकेश, पृ. ६५
102 नाटककार मोहन राकेश : सं. सुन्दरलाल कथूरिया (लेख : अंतर्विरोधी व्यक्तित्व, राजेन्द्र पाल), पृ. २८
103 मोहन राकेश, व्यक्तित्व और कृतित्व, डॉ. सुषमा अग्रवाल, पृ. ५३
104 मोहन राकेश, रंग, शिल्प और प्रदर्शन, डॉ. जयदेव तनेजा, पृ. २०
105 ‘सारिका– मार्च १६७३, पृ. २३
106 मेरा हमदम मेरा दोस्त – कमलेश्वर, पृ. १०
107 मेरा हमदम मेरा दोस्त – कमलेश्वर, पृ. ६
108 मोहन राकेश की डायरी, मोहन राकेश, पृ. २२
109 नाटककार मोहन राकेश : सं. सुन्दरलाल कथूरिया (लेख : अंतर्विरोधी व्यक्तित्व, राजेन्द्र पाल), पृ. २२
110 मेरा हमदम मेरा दोस्त – कमलेश्वर, पृ. १३
111 चंद सतरें और, अनीता राकेश, पृ. ७५
112 चंद सतरें और, अनीता राकेश, (भूमिका से) : डॉ. इन्द्रनाथ मदान, पृ.८
113 सारिका मार्च १६७३, पृ. ३६

115 मोहन राकेश का साहित्य : समग्र मूल्यांकन, डॉ. शरेशचंद्र चुलकीमठ, पृ.५
116 मेरा हमदम मेरा दोस्त – कमलेश्वर, पृ. १५
117 मेरा हमदम मेरा दोस्त – कमलेश्वर, पृ. १८
118 चंद सतरें और, अनीता राकेश, पृ. ८४
119 मेरा हमदम मेरा दोस्त – कमलेश्वर, पृ. ११
120 मेरा हमदम मेरा दोस्त – कमलेश्वर, पृ. १६
121 मेरा हमदम मेरा दोस्त – कमलेश्वर, पृ. २०
122 चंद सतरें और, अनीता राकेश, पृ. १०१
123 मोहन राकेश की डायरी, मोहन राकेश, पृ. २६५
124 चंद सतरें और, अनीता राकेश, पृ. ६४
125 मोहन राकेश, व्यक्तित्व और कृतित्व, डॉ. सुषमा अग्रवाल, पृ. ५६
126 नाटककार मोहन राकेश : सं. सुन्दरलाल कथूरिया, लेख : पृ. ३१
127 पहचान (भूमिका से) मोहन राकेश, पृ. ५
128 एक घटना (भूमिका से) कमलेश्वर, पृ. ५
129 परिवेश : मोहन राकेश, पृ. १८१ (अनुभूति से अभिव्यक्ति तक लेख से)
130 मोहन राकेश का साहित्य : समग्र मूल्यांकन, डॉ. शरेशचंद्र चुलकीमठ, पृ.६१
131 स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य : डॉ. महेन्द्र भटनागर, पृ. २०
132 'लहरों के राजहंस', भूमिका से, मोहन राकेश, पृ. १६
133 मोहन राकेश और उनके नाटक – डॉ. गिरीश रस्तोगी, पृ. ६७
134 समय सारथी भूमिका : दो शब्द – मोहन राकेश

***

तृतीय अध्याय
मोहन श्चकेश की कहानियों में वैयक्तिक चेतना

❀ प्रस्तावना
(१) अकेलापन या एकाकीपन
(२) अपरिचय और अजनबीपन
(३) निर्णय और अनिर्णय का दर्द
(४) व्यर्थताबोध
(५) घुटन
(६) टूटन
(७) तनाव
(८) ऊब
(९) कुंठा और हीनता
(१०) संत्रास
(११) विभाजित व्यक्तित्व
(१२) आत्मनिर्वासन का बोध
❀ निष्कर्ष

तृतीय अध्याय
मोहन श्चकेश की कहानियों में वैयक्तिक चेतना

मोहन राकेश नयी कहानी धारा के शीर्षस्थ कहानीकार माने जाते हैं । राकेशजी की कहानियाँ हिन्दी नयी कहानी की आसन्न कड़ियाँ हैं । राकेशजी की कहानियों की युग चेतना से पूर्णतया परिचित होने के लिए और उनकी मूल–संवेदना को पहचानने के लिए नयी कहानी के आविर्भाव, विकास एवं प्रवृत्तियों पर दृष्टिपात करना आवश्यक है । साथ ही नयी कहानी के आलोक में राकेशजी की कहानियों पर हिन्दी के विद्वान आलोचकों के महत्त्वपूर्ण विचारों के साथ स्वयं राकेशजी के दृष्टिकोण को विश्लेषित करने का यहाँ विनम्र प्रयास किया गया है ।

आधुनिक हिन्दी गद्य साहित्य के क्षेत्र में कहानी का आविर्भाव भी अन्य हिन्दी गद्य विधाओं की तरह भारतेन्दु युग से ही हुआ है । इसे हिन्दी कहानी का प्रारंभिक विकासकाल माना जा सकता है । तत्कालीन कहानीकारों के योगदान से यह विद्या विकास की ओर अग्रसर हुई । चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी', जयशंकर प्रसाद, भगवतीचरण वर्मा, सुदर्शन, विश्वंभरनाथ 'कौशिक' और प्रेमचंदजी जैसे समर्थ कहानीकारों ने हिन्दी कहानी के विकास में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया हैं । समय और स्थिति की माँग सोच की दिशा का निर्धारण करती है । यह बात हिन्दी की अन्य साहित्यिक विधाओं के साथ–साथ हिन्दी कहानी पर भी प्रभावी होती दिखायी देती है । इसी कारण प्रेमचंद युग में हिन्दी कहानी का प्रौढ़ रूप सामने आया । इस युग में पूर्ववर्ती काल की सभी प्रवृत्तियाँ विकासशील रही तथा अनेक युग जीवन से संलग्न नयी प्रवृत्तियों का भी आविर्भाव हुआ । यह युग सामाजिक सक्रियता का युग था । इसलिए प्रेमचंद युगीन गद्य साहित्य समकालीन जीवन की सामाजिक

चेतना से अनुप्रणित रहा । प्रेमचंदोत्तर युग में हिन्दी कहानी साहित्य के क्षेत्र में सामाजिक चेतना के साथ–साथ वैचारिक प्रवृत्ति का योगदान रहा, और हिन्दी कहानी की विकासयात्रा सशक्त बनती चली गयी । जैनेन्द्र, इलाचंद्र जोशी, यशपाल, रांगेयराघव, नागार्जुन, अमृतलाल नागर, उपेन्द्रनाथ 'अश्क' आदि कहानीकार अपनी अलग–अलग विशेषताओं को लेकर हिन्दी कहानी क्षेत्र में आये । अब कहानी व्यापक धरातल को लेकर चलने लगी । इस युग की कहानी की सबसे बड़ी उपलब्धि यह रही की कहानी जीवन के विभिन्न क्षेत्रों को भी अपना विषय बनाने लगी थी ।

स्वातंत्र्योत्तर युगीन हिन्दी कहानी के क्षेत्र में परंपरागत रूपों के विकास के साथ अनेक नवीन आंदोलनों का भी सूत्रपात हुआ । सन् १९५५–५६ में 'नयी कहानी' की चर्चा आरंभ हुई । दिसम्बर १९५७ में प्रयाग के साहित्यकार सम्मेलन में मोहन राकेश, डॉ. शिवप्रसाद सिंह तथा हरिशंकर परसाई ने कहानी पर जो निबंध पढ़े उनमें उन्होंने कहानी के साथ 'नयी' विशेषण जोड़ा । इन लोगों ने दावा किया कि नयी कहानी स्वातंत्र्योत्तर मनुष्य की आकांक्षाओं, समस्याओं और मनःस्थितियों को नये रूप में प्रस्तुत करती है । नया कहानीकार किसी विचारधारा या भावधारा से मुक्त होकर जीवन के प्रत्यक्ष अनुभवों से प्राप्त जीवन सत्य को अंकित करता है । वह प्रत्येक स्थिति और उससे उत्पन्न होने वाली प्रतिक्रिया को जीवन के प्रत्यक्ष अनुभवों से प्राप्त जीवन सत्यों के साथ उजागर करता है । इस बात का समर्थन करते हुए डॉ. सुरेश सिन्हा स्पष्ट करते हैं – ''नयी कहानी का वास्तविक महत्त्व ही इस सत्य में निहित है कि किसी टूटे विश्रृंखलित आरोपित अथवा अविश्वसनीय सत्य की उपलब्धि में उसने अपनी गरिमा को झूठलाया नहीं है वरन् एक व्यापक सामाजिक सत्य एवं यथार्थ के अन्वेषण में अपनी सारी शक्ति लगा दी है ।'[1]

नयी कहानी क्या है इस संबंध में मार्कण्डेयजी का कथन हैं, ''नयी कहानी से हमारा मतलब उन कहानियों से है, जो सच्चे अर्थो में कलात्मक निर्माण हैं, जो जीवन के लिए उपयोगी और महत्त्वपूर्ण होने के साथ ही उसके किसी न किसी नये पहलू पर आधारित हैं या जीवन के नये सत्यों को एकदम

नयी दृष्टि से दिखाने में समर्थ हैं ।... नवीनता इसमें नहीं हैं, कि उसमें किसी अछूते भू–भाग के अजीब से प्राणियों का वर्णन है, बल्कि इसमें (नयापन) है कि साधारण मानवीय जीवन में वह कौन सा विशेष नयापन है जो सामाजिक परिस्थितियों के परिवर्तन के कारण पैदा हो गया है, या बिना किसी परिवर्तन के भी जीवन का कौन सा पहलू है जो साहित्य में अब तक अछूता है ।"[2] कमलेश्वरजी 'नयी कहानी की भूमिका' में लिखते हैं कि – "सृजनात्मक साहित्य अब साहित्य शास्त्र द्वारा नहीं, समाजशास्त्र द्वारा ही सही संदर्भो में विश्लेषित हो सकता है ।"[3] नये कथाकार युग की सामाजिक सक्रियता के आवश्यक पक्ष को उजागर करते हैं । स्वातंत्र्योत्तर कहानीकारों के सामने परिवेशगत, स्थितिगत जो मान्यताएँ थी, वह बिखरी हुई अनुभव होने लगी थी । विभाजन के पश्चात् जिन घटनाओं, परिणामों को साहित्यकार देख और परख रहा या वह सब उसके अंतर्द्वन्द्व को बढ़ानेवाला था । इन सबका निर्भीकता से यथार्थ वर्णन नयी कहानी में हुआ है ।

'प्रत्येक महान ऐतिहासिक युग, नवीन क्रांतियों, भावनाओं एवं विचारों से अद्‌भूत होता है ।' युग की माँग प्राचीनता का विरोध और नवीनता का स्वागत करती है । इस दृष्टि से नयी कहानी पूर्व कहानी से भिन्न एक नये धरातल को लेकर सामने आयी । इस संबंध में कमलेश्वरजी लिखते हैं – "नयी कहानी पहले और मूलरूप में जीवनानुभव है, उसके बाद कहानी है । रास्ता जीवन से साहित्य की ओर गया । इसीलिए उसने जीवन को उसकी समग्रता में रूपायित किया – व्यक्ति को भी उसके यथार्थ परिवेश में अन्वेषित किया । ये व्यक्ति अपने में विलक्षण या अभूतपूर्व नहीं थे, इनकी कहानियाँ भी विलक्षण और अभूतपूर्व नहीं थी, बल्कि वे उन व्यक्तियों की मानवीय परिणति की यथार्थ अभिव्यक्ति थी ।"[4]

इस दृष्टि से नयी कहानी बदलते परिवेश तथा तज्जन्य प्रभाव के कारण बदले जीवन की परिस्थिति के सत्यों को आत्मसात् करती हुई जीवन का यथार्थ निरूपण करती है । 'एक और ज़िन्दगी' की भूमिका में राकेशजी ने लिखा हैं – "हिन्दी की नयी कहानी जिस रूप में विकसित हुई है, उस रूप में उसका

भारतीय जीवन के धरातल से गहरा संबध है । इसीलिए वह केवल 'सोफिस्टकेटिड' पाठ की कहानी न होकर साधारण पाठक की कहानी बन गयी है ।.... कहानी की वर्तमान दिशा व्यक्ति की आंतरिक कुंठाओं की दिशा न होकर एक सामाजिक दिशा है ।"[5]

नयी कहानी विशेष संदर्भो की कहानी है । जिसमें परिवेश के प्रति प्रतिबद्धता है । कथ्य और शिल्प में नवीनता है तथा समय की गति को पकड़ने की क्षमता है ।

जीवन की निकटतम पहचान और उसकी अभिव्यक्ति ही नयी कहानी है । दूसरे शब्दों में कहे तो नयी कहानी की पूरी विचारधारा ही मानव–केन्द्रित है । इसमें निरूपित चरित्र केवल मनुष्य है । इस मनुष्य के यथार्थ को खोजने और उसे यथार्थ के साथ अभिव्यक्ति देने में नया कहानीकार सक्रिय रहा है । नयी कहानी में कथ्य और शिल्प की नवीनता है, तो साथ ही वे सारी गतिविधियाँ भी नयी कहानी में प्रस्तुत हुई हैं जो मनुष्य को विवश कर जीने के लिए बाध्य करती है । इसीलिए नयी कहानी में यथार्थ का स्वर तीखा और तिलमिला देने वाला है । डॉ. नामवर सिंह नयी कहानी के संदर्भ में कहते हैं । नयी कहानी "......दुर्लभ अनुभूति चित्र प्रदान करती है ।"[6]

डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल का नयी कहानी के संदर्भ में अपना निजी स्वतंत्र दृष्टिकोण है डॉ. लाल लिखते हैं – "उपलब्धि का अर्थ–बोध उसकी संपूर्ण व्यापकता में निहित है – जिसमें एक ओर रचना के अनेकानेक तत्त्व मिले रहते हैं और दूसरी ओर एक निश्चित इतिहास चक्र का परिप्रेक्ष्य शामिल रहता है । स्वातंत्रता के बाद की हिन्दी कहानी इसमें इतिहास चक्र है भारतीय स्वतंत्रता का परिप्रेक्ष्य है स्वतत्रता के बाद का नया जीवन, उसकी यथार्थ परिस्थितियाँ संदर्भ है उसके बाद की हिन्दी कहानी .... इसने पहली बार इन्सान को परंपरा, पुराण, संस्कृति और धर्म से अलग कर उसे इन्सान के रूप में देखने का प्रयत्न किया यही है – 'नयी कहानी' का निजत्व और उसका अपना व्यक्तित्व ।"[7]

नयी कहानी की शिल्पगत उपलब्धियाँ भी अनेक हैं । क्योंकि नये कहानीकारों ने कथ्य के साथ शिल्प की ओर भी ध्यान दिया । सक्रिय प्रमुख आग्रह रहा जीवन का । उस अभिव्यक्ति में शिल्प उसके अनुरूप सहज ही स्वयं निर्माण होने लगा । यहाँ शिल्प भी कृत्रिम या ओढ़ा हुआ नहीं लगा क्यों कि शिल्प और कथ्य दोनों ही परस्पर पूरक साबित हुए । यथार्थवादिता, अनुभूति की सच्चाई, सांकेतिकता, अस्तित्ववादी दर्शन का प्रभाव, परिवेश–बोध की विकसित चेतना, सूक्ष्म व्यंजक भाषा आदि नयी कहानी के प्रवृत्तिगत एवं शिल्पगत वैशिष्ट्यों के कारण उसे अलग से पहचाना जा सकता है ।

नयी कहानी के कहानीकारों में राकेशजी का विशिष्ट एवं महत्त्वपूर्ण स्थान हैं । दूधनाथ सिंह का कथन हैं – ‘‘हिन्दी के कहानीकारों में मोहन राकेश शायद सबसे ज्यादा लोकप्रिय कहानीकार है ।’’[8] डॉ. इन्द्रनाथ मदान के विचार से – ‘‘मोहन राकेश, राजेन्द्र यादव और कमलेश्वर ‘नयी कहानी’ के तीन तिलंगे हैं ।’’[9]

हिन्दी नयी कहानी के क्षेत्र में मोहन राकेश का अग्रणी स्थान है । साथ में कमलेश्वर, राजेन्द्र यादव, अमरकान्त, हरिशंकर परसाई, लक्ष्मीनारायण लाल, निर्मल वर्मा, कृष्णबलदेव वैद, रामकुमार, नरेश महेता, रमेश बक्षी, श्रीकांत वर्मा, मन्नू भंडारी, उषा पियंवदा, मृदुला गर्ग, मार्कण्डेय, शिवप्रसाद सिंह, ज्ञान रंजन, रघुवीर सहाय, भैरवप्रसाद गुप्त – आदि के नाम भी यहाँ विशेष उल्लेखनीय हैं ।

इन कहानीकारों ने तत्कालीन युग चेतना को अपनी कहानियों के माध्यम से उजागर करते हुए कहानी के शिल्प को भी एक नया मोड़ दिया । जीवन की संगतियाँ, विसंगतियाँ तथा विद्रूपताओं का अंकन इन कहानीकार की विशेष उपलब्धि हैं । दूसरे शब्दों में कहे तो इन कहानीकारों ने अपनी कहानियों में नयी संवेदना, नये यथार्थ, नया परिवेश, नयी प्रवृत्तियाँ तथा नयी जीवन पद्धतियों को सशक्त अभिव्यक्ति दी हैं । नयी कहानी भोगे हुए यथार्थ का चित्रण करती हुई व्यक्तिगत तथा सामाजिक जीवन के अंतर्विरोधों का अनुभव करते हुए नये मानवीय क्षितिजों को खोजने में सफल रही है ।

नयी कहानी के विशिष्ट हस्ताक्षरों में राकेशजी का नाम और स्थान निर्विवाद है ।

डॉ. कविता शनवरे के अनुसार ‘‘एक कहानीकार के रूप में अपनी सृजन यात्रा का आरंभ करते हुए राकेश ने जिस वैचारिक स्तर का परिचय दिया वह हिन्दी कहानी के लिए एक नयी बात थी । नयी कहानी के नाम से परवर्ती काल में विख्यात हुई कहानी धारा का प्रस्थान बिन्दु राकेश की इन्हीं प्राथमिक रचनाओं में हैं ।’’[10]

डॉ. धनंजय वर्मा के अनुसार – ‘‘रचनात्मक जीवंतता और वैचारिक सक्रियता का जो सिलसिला नयी कहानी में शुरू होता है, मोहन राकेश उसका हिस्सा ही नहीं, निगहबान भी है ।’’ और ‘राकेश में अपने समय की आत्मा को ठीक से अभिव्यक्त कर पाने के लिए एक पुनर्गठन की प्रक्रिया मिलती है । परिस्थितियों के अनुसार तेजी के साथ नया रूप लेते जीवन की धड़कनों को सुनने की तड़प और वह मानवीय संवेदना जिससे लेखक हर घटना और पात्र के साथ एक आत्मीयता स्थापित कर ले – क्रमशः विकसित होती गयी है । जीवन का अधिक समीप अंकन, उसके माध्यम से किसी अंतर्निहित परोक्ष यथार्थ का संकेत, सहज अनुभूति के साथ कई स्तरों पर स्थितिशील और गतिशील वैयक्तिक और सामाजिक यथार्थ की खोज, उसके संदर्भो का उद्‌घाटन और अंततः पूरे युग की कथा–व्यथा अभिव्यक्ति का प्रयत्न उनकी कहानियों का मूल स्वर हैं ।’’[11]

डॉ. रामदरश मिश्रा के विचारानुसार ‘‘नयी कहानी के कहानीकारों में मोहन राकेश का विशेष स्थान है । जिन कहानियों में नयी कहानी की नयी संवेदना और चेतना को उजागर किया और जिन्होंने कहानी के शिल्प को एक नया मोड़ दिया उनमें मोहन राकेश की कहानियों का प्रमुख स्थान है ।’’[12]

राकेशजी ने एक सशक्त कहानीकार के रूप में अपने युग की माँग को पहचाना है और उसकी सशक्त अभिव्यक्ति अपनी कहानियों में की हैं । डॉ. रामदरश मिश्र राकेशजी की कहानियों की विशेषताओं पर दृष्टिक्षेप करते हुए लिखते हैं – ‘‘राकेश की कहानियाँ एक तो ये कहानियाँ आस–पास के विविध

सत्यों के अनुभवों की कहानियाँ हैं । दूसरे इसमें कलात्मक निस्संगता दिखाई पड़ती है । और तीसरे इसमें नयी कहानी की नवीन संरचना का उभार लक्षित होता है । .... राकेश की दृष्टि जीवन की विविध भीतरी–बाहरी वास्तविकता को देखने के लिए शुरू से ही सजग रही है । दृष्टि की सजगता के साथ जुड़ी हुई अनुभव की सघनता और कलात्मक निस्संगता ने इनकी अनेक कहानियों को गहरा प्रभाव प्रदान किया है ।"[13]

राकेशजी की कहानियाँ नयी कहानी के विकास का खूबसूरत नवीन मोड़ है, युग चेतना की सशक्त अभिव्यक्ति होने के कारण यह कहानियाँ तत्कालीन युग की आसन्न कड़ियाँ बनी नज़र आती है । इस संबंध में डॉ. कविता शनवरे का विचार हैं – "राकेश के पास वह अंतर्दृष्टि थी जो मानव व्यक्तित्व के आंतरिक अध्ययन में गहरी पैठती थी । जीवन यात्रा में व्यक्ति विविध व्यक्तियों के संपर्क में आता है । राकेश ने अपनी दृष्टि से उनके भीतर के खोखलेपन को गहराई से देखा, अभिव्यक्त किया । वस्तुतः स्वाधीनता के बाद बदलते जीवन मूल्यों को, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक विघटन को उसमें जीते हुए मनुष्य को संवेदना के साथ राकेश ने स्वीकार कर अभिव्यक्त किया ।"[14]

खंडित होते हुए जीवन, जीवन मूल्य, खंडित होता देश, राजनीति, आर्थिक और सामाजिक धरातल का खंडित होना राकेशजी के रोम–रोम में बसा था । इस खंडित होते हुए जीवन का राकेशजी ने पूर्ण यथार्थ और संवेदना के साथ अपनी कहानियों में अभिव्यक्ति दी हैं । डॉ. धनंजय वर्मा के विचार से – "उनमें युग के सामाजिक यथार्थ और वस्तु–सत्य के संदर्भ में जीवन की बहुत तल्ख प्रतिक्रिया, बदलते हुए विश्वासों को गति देने की चेतना और एक संक्रमणशील दृष्टि मिलती है, लेकिन मूल्यों की इस संक्रांति में भी, विघटन और ध्वंश की गति और टूटते–ढहते विश्वासों, की कगारों पर भी एक आंतरिक मानवीय आस्था और निष्ठा एवं दृष्टि का संकेत भी उनकी कहानियों में मिलता है ।"[15]

राकेशजी ने अपनी कहानियों में परिवेश और उससे उत्पन्न व्यक्ति के मन की संगति, विसंगतियों को ईमानदारी से अभिव्यक्ति दी है । 'एक और ज़िन्दगी' की भूमिका में राकेशजी लिखते हैं – ''हमारा जीवन आज एक बड़े संक्रान्तिकाल में से गुजर रहा है । ज़िन्दगी की नब्ज इतनी तेज है कि उसे हर जगह और हर पल महसूस किया जा सकता है ।.... आज के जीवन में घुटन भी है और उस घुटन के साथ संघर्ष भी है ... सामाजिक स्तर पर उससे लड़ने का प्रयत्न भी किया जाता है । जीवन का यह विराट् क्या भारतीय नहीं है ?''[16] इस कथन के माध्यम से राकेशजी की युगचेता दृष्टि से हमारा परिचय होता है । एक ओर संक्रमण युग की घुटन और दूसरी तरफ भारतीय जनजीवन में आने वाले परिवर्तन ने तत्कालीन मनुष्य पर गहरा प्रभाव डाला था । राकेशजी की कहानियों में तत्कालीन युग–चेतना का निरूपण विभिन्न स्तरों पर हुआ हैं ।

कहानी के संदर्भ में राकेशजी की निजी धारणाएँ है । कहानी की ओर देखने का उनका दृष्टिकोण अलग रहा है । वे कहानी को जीवन के पल–पल बदलते संदर्भो और स्पन्दनों को व्यक्त करने का माध्यम मानते हैं ।

राकेशजी यह भी मानते है कि कहानी युग अभिव्यंजना के साथ–साथ पाठकों से भी जुड़ी हो यह आवश्यक है, क्योंकि पाठक वर्ग का ध्यान जिन–जिन बातों पर आकृष्ट होगा वे समय और परिस्थितियों के समानान्तर चलकर युग जीवन का सही संप्रेषण कर सकेंगा ।

लेखकीय दायित्व के संदर्भ में राकेशजी का निज स्वतंत्र दृष्टिकोण है । इस संदर्भ में वे मानते है कि कहानी लेखक का दायित्व अपने समय के प्रति होना चाहिए । साथ ही यथार्थ, परिस्थितियों एवं परिवेश की पकड़ जितनी गहरी होगी उतना ही कथ्य सजीव होगा । राकेशजी ने परिवेशगत यथार्थ पर अधिक बल दिया है । यह बात उनके साहित्य से पूर्णतः स्पष्ट होती है ।

कहानी के संबंध में राकेशजी की मान्यता हैं कि – ''कहानी की बात किसी भी कोण से उठाई जा सकती है । कहानी का शिल्प एक कोण है, भाषा दूसरा, यथार्थ तीसरा और सांकेतिकता चौथा । कोण और भी है, हर

कोण से विचार कई भूमियों पर किया जा सकता है परंतु किसी भी एक उपलब्धि से कहानी नहीं बनती । कहानी की आंतरिक अन्विति का निर्माण इन सभी उपलब्धियों के सामंजस्य से होती है ।"[17]

राकेशजी के कहानी साहित्य का मूल्यांकन करते हुए डॉ. सुष्मा अग्रवाल लिखती हैं – "राकेश की कहानियाँ परिवेश के यथार्थ को व्यक्त करनेवाली, गंभीर चिंतनपूर्ण, ईमानदार शैली में लिखित मानवीय संबंधों की कहनियाँ है । उनका शिल्प कथ्य के अनुरूप है ।"[18]

राकेशजी के पास वह आंतरिक दृष्टि थी जो मानव स्वभाव, संबंधों और समस्याओं, के भीतर गहराई से उतरकर उसका अध्ययन कर सकती थी । इस दृष्टि से राकेशजी ने अपने युग की बदलती हुई चेतना को विविध संदर्भों में अनुभव किया और उसे ही यथार्थ अभिव्यक्ति दे दी । 'बकलम खुद' में राकेशजी अपने रचनात्मक विचारों की अभिव्यक्ति करते हुए स्पष्ट करते हैं – "उनकी रचना का सीधा संबंध आस–पास जिये जा रहे जीवन के साथ तथा इस जीवन की विडंबनाओं और विभ्रमों को झेलते हुए व्यक्ति के साथ है । उनका लेखक व्यक्ति को भी आस–पास के प्रभावों से अलग एक कटी हुई इकाई के रूप में नहीं देखता, बल्कि संपूर्ण मानसिक, सामाजिक, राजनीतिक परिवेश को उसका अविभाज्य अंग समझता है । व्यक्ति और उसके परिवेश के अंदर से ही संवेदना और व्यंग्य के सूत्र उठाकर वह उन्हें कथा खंड़ों में बुन देता है ।"[19] अतःस्पष्ट है कि राकेशजी ने अपने परिवेश और अपने अनुभवों द्वारा जो भी अनुभव किया, उसे यथार्थ के साथ अपने साहित्य में अभिव्यक्त कर दिया है ।

अपने रचनात्मक दृष्टिकोण को अधिक स्पष्ट करते हुए राकेशजी 'परिवेश' में लिखते हैं – "मेरे लिए अनुभूति का सीधा संबंध मेरे यथार्थ से है और यथार्थ है मेरा समय और परिवेश । व्यक्ति से परिवार, परिवार से राष्ट्र और राष्ट्र से मानव समाज तक का पूरा परिवेश । मैं इनमें से किसी एक से कटकर शेष से जुड़ा नहीं रह सकता – अपने आसपास के संदर्भो से आँख हटाकर दूरके संदर्भो मे नहीं जी सकता । मेरे लिए नयी कहानी की

दृष्टि अपने संदर्भो में रहकर उनके अंदर अपने समय और परिवेश को आंकने की दृष्टि है ।"[20] राकेशजी के इसी रचनात्मक दृष्टिकोण के कारण उनकी कहानियों में युग–चेतना की अभिव्यक्ति सशक्त ढंग से हुई है ।

अब तक यहाँ नयी कहानी की अंतःप्रकृति तथा नयी कहानी और नये कहानीकारों के संबंध में कुछ एक विचार स्पष्ट हो चुके हैं । राकेशजी की कहानियों का नयी कहानी के विकास में महत्त्वपूर्ण स्थान है । राकेशजी ने अपने विभिन्न आलोचनात्मक निबंधों में गंभीर अध्ययन एवं कहानी सृजन के विभिन्न विचारों पर प्रकाश डाला हैं । बदलते युगानुरूप कला की रचना–प्रक्रिया भी बदलती रहती है अतः आलोचना के मानदंड भी बदलते हैं । अतः किसी कृति का मूल्यांकन करने के लिए – "किन्हीं मानदंडो को लेकर किसी की आलोचना करने की बजाय कृति की राह से गुजरकर करना ही सच्ची आलोचना मानी जा सकती है ।"[21] अतः इस दृष्टि से अब यहाँ राकेशजी की कहानियों की आलोचना उनकी कहानियों में अभिव्यक्त युग–चेतना के आधार पर करने का प्रयास किया जा है ।

इस शोध–प्रबंध में राकेशजी की कहानियों में अभिव्यक्त विभिन्न युग–चेतना का विश्लेषण प्रस्तुत किया जा रहा है ।

इस तृतीय अध्याय में राकेशजी की वैयक्तिकता चेतना पर प्रकाश डाला जा रहा है ।

राकेशजी ने व्यक्ति को तत्कालीन समय के परिप्रेक्ष्य में रखकर अपनी कहानियों में रेखांकित करने का प्रयास किया है । राकेशजी की दृष्टि से – 'कहानी व्यक्ति की नहीं पूरे समय की है ।' इस दृष्टि के आधार पर राकेशजी ने अपनी कहानियों के पात्रों के द्वारा मानव को वैशिष्ट्य तथा उसकी गरिमा के साथ प्रस्तुत किया हैं ।

राकेशजी की कहानियों के पात्र मात्र व्यक्ति इकाई के रूप में समाज से कटे हुए नहीं है अपितु समाज को अपने में आत्मसात् करने वाले विराट मनुष्य के रूप में हमारे सामने आते है । लघु मानव की विराट चेतना की यह पहचान राकेशजी की एक अन्यतम उपलब्धि मानी जा सकती है । यही

वह कारण है जिससे राकेशजी की कहानियाँ युगीन संदर्भ में वैयक्तिक चेतना को सशक्त अभिव्यक्ति देने में सफल रही हैं । राकेशजी ने स्वातंत्र्योत्तर युगीन व्यक्ति की विडंबनाओं और मनः स्थितियों को व्यक्त करते हुए, उसकी घुटन, अवसाद, भटकन, परिचय में अपरिचय की स्थिति, अजनबीपन, तनाव, टूटन, एकाकीपन, कुंठा, संत्रास आदि त्रासद अनुभूतियों को अत्यंत संवेदना और गहराई के साथ उद्घाटित किया हैं ।

डॉ. शरेशचंद्र राकेशजी की कहानियों का मूल्यांकन करते हुए लिखते हैं – ''आधुनिक व्यक्ति की जी लेने के बहाने शून्य से टकराने की बेमानी कोशिश, जीवन की यांत्रिकता और एकरसता से उत्पन्न ऊब एवं रिक्तता, अस्तित्व की भयावहता, हीनता की ग्रंथि से उद्भूत कायरता, विपरीत परिस्थितियों के सामने कुछ भी कर न पाने की नपुसंकता और अपनी ही नपुसंकता से आँखें चार करने को विवश व्यक्ति की ट्रेजडी, ज़िन्दगी की भीड में अपने खोए व्यक्तित्व को पा लेने के लिए भटकन, संबंधों की अर्थहीनता, दाम्पत्य जीवन की जडता, अपने को ही पहचान न पाने का अजनबीपन, निरंतर अकेले होते जाने की कचोट इन सबको हम राकेश की कहानियों में पाते हैं ।''[22] राकेशजी ने तत्कालीलन जीवन की विडंबनाओं को झेलते व्यक्तियों की विभिन्न मनःस्थितियों को अपनी कहानियों के चरित्रों के माध्यम से उकेरा है । अतः राकेशजी की कहानियों में वैयक्तिक चेतना की अभिव्यक्ति सशक्तता के साथ हुई है ।

डॉ. वासुदेव शर्मा राकेशजी की वैयक्तिक चेतना को उनकी कहानियों की विशेषता और युगीन संदर्भो की सशक्त अभिव्यक्ति के रूप में स्वीकार करते हुए स्पष्ट कहते हैं – ''मोहन राकेश ने जीवन के नये संदर्भो की तलाश वैयक्तिक जीवन के आधार पर की है । बेकारी, अकेलापन, सूनापन, शारीरिक भोग तथा आर्थिक संघर्ष से संबंधित व्यक्ति का चित्रण किया है । उनके पात्रों में जिजीविषा और नये अस्तित्व की खोज है । 'एक और ज़िन्दगी', 'उसकी रोटी', 'सीमाएँ', 'मिस पाल', आदि कहानियाँ वैयक्तिक चेतना को लेकर चलती हैं ।''[23]

अतः स्पष्ट है कि राकेशजी ने अपने युग के व्यक्तियों की विडंबनाओं और मनःस्थितियों को अपनी कहानियों में सशक्त स्वर दिया है ।

(१) अकेलापन या एकाकीपन :

आधुनिक युग का व्यक्ति अकेलेपन के बोझ को झेलने के लिए अभिशप्त है । इस व्यक्ति का जीवन वर्तमान और भविष्य की दिघाग्रस्त स्थिति से घिरा हुआ है । जीवन के विभिन्न प्रश्न उसे अधिकाधिक अकेला बनाते जा रहे है । प्रस्थापित मूल्यों के विघटन एवं संबंधों की टूटन, बेरोजगारी आदि विषमता के साथ–साथ महानगरीय यांत्रिकता, संवेदनहीनता से गुजरता हुआ वह अकेलेपन की पीड़ा से भीतर से टूट चुका है । नयी कहानी में व्यक्ति के इस एकाकीपन को संवेदना के साथ स्वर मिला है । नयी कहानी के समर्थ आलोचक कमलेश्वरजी ने आधुनिक युग के व्यक्ति के अकेलेपन के मूल कारणों पर प्रकार डालते हुए लिखा हैं – ‘‘हमारे सामान्य जन का अकेलापन, फालतू (सर्प्लस) होने की नियति से उद्भूत है । ‘मिसफिट’ या फालतू (सर्प्लस) होते जाने की यह समस्या नौजवानों या अवकाश प्राप्त लोगों के सामने है ।’’[24]

राकेशजी ने मानव संबंधों, समस्याओं तथा विद्रूपताओं को बड़ी सूक्ष्मता से देखा–परखा हैं । उनकी कहानियाँ जीवन की विभिन्न परिस्थितियों में उत्पन्न एकाकीपन को प्रकाश में लाती है । कहीं–कहीं तो यह एकाकीपन इतना तीव्र हो गया है कि पात्रों में टूटन, शून्यता और विखंडित स्थितियाँ भी उभर आयी है । किन्तु यह अलेकापन मात्र अकेले व्यक्ति का न होकर सामाजिक जीवन के बीच संघर्ष झेलते हुए और टूटते बिखरते व्यक्ति का अकेलापन है । राकेशजी ने स्वयं यह स्वीकार किया है कि – ‘‘मेरी अधिकांश कहानियाँ संबंधों की यंत्रणा को अपने अकेलेपन में झेलते लोगों की कहानियाँ हैं, जिसमें हर इकाई के माध्यम से उसके परिवेश को अंकित करने का प्रयत्न है, यह अकेलापन समाज से कटकर जी रहे व्यक्ति का अकेलापन नहीं, समाज के बीच होने का अकेलापन है ।’’[25]

आधुनिक स्त्री–पुरुषों के जीवन में व्याप्त विसंगत स्थितियों का चित्रण करके राकेशजी ने उन्हें अपनी नियति से जुड़े रहने के लिए विवश और बिखरा हुआ दिखाया हैं । विभिन्न परिस्थितियों ने व्यक्ति को अकेलेपन के बोज से भर दिया है । राकेशजी की अनेक कहानियाँ इस अकेलेपन, शून्यता और उब को अंकित करती है । ऐसी कहानियों में राकेशजी की बहुचर्चित कहानी 'मिस पाल' विशेष उल्लेखनीय है । प्रस्तुत कहानी में राकेशजी ने मिस पाल नामक आधुनिक नौकरीपेशा नारी के अकेलेपन को अत्यंत संवेदनशीलता एवं गहराई से चित्रित किया है ।

'मिस पाल' कहानी की नायिका भददी, काली, मोटी औरत है । उसकी यह कुरूपता उसे समाज और सहकर्मीयों के बीच उपहास का पात्र बनाकर रख देती है । मिस पाल अपनी इस कुरूपता को छूपाने का प्रयत्न करती है, किन्तु यह प्रयत्न उसे और भी कुरूप बना देते हैं । इस कारण उसके सहकर्मी उसे देखकर हर–वक्त मज़ाक करते या फिर उसके रंग–रूप पर कई–न–कई टिप्पणी करते रहते थे । ''क्या बात है मिस पाल, आज रंग बहुत निखर रहा है ।''[26] या फिर ''मिस पाल इस नई कमीज का डिज़ाइन बहुत अच्छा है । आज तो गजब ढ़ा रही हो तुम ।''[27] मिस पाल को यह मज़ाक दिल में चुभ जाता है । अतः जितनी देर वह दफ्तर में रहती, उसका चेहरा गंभीर बना रहता । दफ्तर से छुट्टी मिलने पर इस तरह मेज से उठती जैसे कई घंटे की सजा भोगने के बाद उसे छुट्टी मिली हो । दफ्तर से उठकर वह सीधी अपने घर चली–जाती और अगले दिन सुबह दफ्तर के लिए निलकने तक वहीं रहती ।''[28]

बचपन में माता–पिता और परिवार का प्यार न मिलने के कारण वह दिल्ली जैसे महानगर में अकेली नौकरी करती है । अपने सहयोगियों और अपने आसपास के समाज के लोगों का व्यंग्य सुनकर वह आत्मकेन्द्रित हो जाती है । वह अपने अकेलेपन से दूर रहने के लिए संगीत और चित्रकाम का सहारा लेती है । किन्तु, इससे भी वह अपना एकाकीपन दूर नहीं कर पाती और भीतर ही भीतर खंडित होती चली जाती है । वह इस मनःस्थिति

से गुजरते हुए हर परिस्थिति से पलायन करना चाहती है । अपनी इसी सोच के कारण वह नौकरी छोड़कर कहीं अन्यत्र चली जाना चाहती है । उसे लगता है कि वहाँ (दिल्ली) में नौकरी करते हुए भी वह अकेलापन महसूस करती है । उसे हरदम लगता है कि यहाँ का वातावरण उसके लिए अनुकूल नहीं है । यहाँ उसे हरेक से शिकायत है कि वह घटिया किस्म का आदमी है, जिसके साथ उसका उठता–बैठना नहीं हो सकता । उसका यह भी मानना है कि इन लोगों से उसका कूत्ता पिंकी ज्यादा सभ्य है । वह कहती है – ''मैं इन लोगों से दिल–से नफरत करती हूँ । तुम इन्हें इन्सान समझते हो ? मुझे तो ऐसे लोगों से अपना पिंकी ज्यादा अच्छा लगता है । यह उन सबसे कहीं ज्यादा सभ्य है ।''[29] वह दिल्ली की अपनी नौकरी छोड़कर एक ऐसी जगह चली जाना चाहती है – ''जहाँ यहाँ की ही गन्दगी न हो और लोग इस तरह की छोटी हरकते न करते हों ।''[30]

मिस पाल का सहकर्मी रणजीत जो मिस पाल के प्रति सहानुभूति रखता है, वह उसे समझाने का प्रयास करता है कि उसे नौकरी छोड़कर कहीं और नहीं जाना चाहिए । क्योंकि, इन्सान जहाँ भी चला जाये, उसे अच्छी और बुरी दोनों तरह की चीजें अपने आस–पास मिल ही जाती है । इससे भी मिस पाल की वितृष्णा कम नहीं होती और वह नौकरी छोड़कर दिल्ली से कुल्लू के पास के एक छोटे से गाँव रायसन में आकर बस जाती है । किन्तु इस नये ग्रामीण परिवेश और नये लोगों के बीच भी वह पूर्ववर्ती स्थिति को अपने सामने पाती है । परिणामतः वह यहाँ भी अकेलेपन के साथ अपने दिन–गुजारती है । वह कहीं भी चली जाये यह अकेलापन उसका पीछा नहीं छोड़ता । यहाँ आकर तो यह एकाकीपन अधिक गहरा हो जाता है । मिस पाल के जीवन में इतनी नीरसता आ जाती है कि वह स्वयं के प्रति अत्यंत लापरवाह हो जाती है । रणजीत के रायसन उसके घर आने पर कहानीकार ने जिस सूक्ष्मता के साथ उसके घर का वर्णन किया है इससे मिस पाल की मानसिक स्थिति अधिक स्पष्ट हो जाती है । ''वहाँ भी चारों तरफ वही बिखराव और अव्यवस्था थी जो दिल्ली में उसके घर दिखाई दिया करती थी ।

हर चीज हर दूसरी चीज की जगह काम में लायी जा रही थी । एक कुरसी ऊपर से नीचे तक मेले कपडों से लदी थी । दूसरी पर कुछ रंग बिखरे थे और एक प्लेट रखी थी जिसमें बहुत सी कीलें पड़ी थी ।"[31] और रणजीत के यह कहने पर कि उसके लिए बैठने की जगह बना दे तब "कपड़े –अपड़े हटाकर उसने एक कुरसी खाली कर दी । बाई तरफ एक बड़ी सी मेज थी, पर उस पर भी अभी इतनी चीजें पड़ी थी कि कहीं कुहनी रखने तक की जगह नहीं थी ।"[32] रणजीत को खाना देते समय वह कहती है – "यह सब्जी मैंने परसो बनायी थी । हर रोज तो नहीं बना पाती हूँ । रोज बनाने लगूं तो बस खाना बनाने की ही हो रहूँ । और अम्... अ.... अपने अकेली के लिए रोज बनाने का उत्साह भी तो नहीं होता । कई बार तो मैं सप्ताह भर का खाना एक साथ बना लेती हूँ और फिर निश्चिंत होकर खाती रहती हूँ ।"[33]

रणजीत के साथ बात करते हुए उसके जीवन की पीड़ा और अकेलापन अधिक गहराई से उभरता है । वह रणजीत से बात करते हुए भी अपने अकेलेपन में खोयी सी रहती है । मिस पाल रणजीत के सामने अपने मन की बात रखते हुए कहती है – "मैं बहुत बदकिस्मत हूँ रणजीत । हर लिहाज से मैं बहुत ही बदकिस्मत हूँ ।"[34] तथा "मैं सोचती हूँ रणजीत कि मेरे जीने का कोई भी अर्थ नहीं है ।"[35] वह रणजीत के सामने अपने बिते जीवन की घटनाएँ दोहराकर परेशान हो जाती है । दूसरे दिन रणजीत के आग्रह पर मिस पाल अपने घर के लिए कुछ सामान खरीदने के लिए तथा रणजीत को छोड़ने उसके साथ कुल्लु तक चलती है । कुल्लू में बस स्टैन्ड पर वह रणजीत के लिए टिकट खरीदने के लिए जाती है, तब उसे देखकर आस–पास के सभी लड़के उसके आदमी या औरत होने में संदेह का संकेत करते हुए आपस में खुसर–पुसर करते हैं । सब लोग मिस पाल को देखकर हँसते है । मिस पाल बच्चों की बात सुनकर उनके पुकारती है पर बच्चें भाग जाते है ।

कहानी के अंत में राकेशजी ने मिस पाल की व्यथा को मार्मिक मोड़ दिया है । मिस पाल के जीवन का एकाकीपन, शून्यता बोध, खालीपन का यह

गहरा बिंदु है । वह अपने आस–पास की दुनिया से तो पहले से ही कट चुकी है और अब अतिथि से कट जाने पर मिस पाल फिर से अपने एकांत में लौटने के लिए मजबूर है । अंत का यह वर्णन ''बस चली तो मिस पाल हाथ हिलाने लगी । दोनों खाली डिब्बे वह अपने हाथों में लिए हुए थी ।'' मिस पाल अकेलेपन की भूल–भूलैयाँ में भटकती हुई किन्ही खाली डिब्बों में अपने अस्तित्व को खोजती रह जाती है ।

''चौगान'' कहानी का नायक हैरी विलसन अभारतीय है । वह अपनी पत्नी लिज़ी से संबंध विच्छेदन करके लन्दन से भारत के कुल्लू के पास के एक छोटे से बस्बे में 'साहबजी' बनकर बस जाता है । कुछ वर्ष तो उसने अकेले काट लिए, मगर जब अकेलापन सहना उसे बहुत ही असह्य प्रतीत होने लगा, तब ''उसने अपने आखिरी दिन काटने के लिए बागीचे की बूढ़ी नौकरानी की लड़की सन्तो को घर में रख लिया ।''[36] हैरी सन्तो के माध्यम से अपना अकेलापन दूर करना चाहता था । लेकिन, दोनों की भाषा, उम्र और बौद्धिक स्तर में अधिक असमानता होने के कारण हैरी के लाख चाहने पर भी सन्तो उसके दर्द की गहराई को छू नहीं सकी ।'' वह चाहता था कि सन्तो किसी तरह उसके बराबर की हो जाए, उसकी बात को समझ सके और उसके दर्द की गहराई को नाप सके । परंतु तब कभी वह उसे अपने पीछले जीवन की बातें सुनाने लगता, तो सन्तो सहसा खिलखिलाकर हंस पड़ती और वह आवक् होकर उसके चेहरे की तरफ देखता रह जाता ।''[37]

हैरी विलसन सन्तो के सान्निध्य में अपना अकेलापन और दर्द भूल जाना चाहता था । लेकिन सन्तो इस दर्द को महसूस तक नहीं कर पाती थी, उसे 'साहबजी' के अकेलेपन की बात समज में ही नहीं आती थी । अतः सन्तो उसे देह के सिवा कुछ नहीं दे पाती । अपने अंतिम दिनों में यह अकेलापन उसे और भी खलता है । कभी–कभी वह फटी आँखों से सामने दिवार की तरफ देखता और कभी–कभी आँसूओं से तकिया भीगोता रहता । ''वस्तुतः यह अनुभव के अकेलेपन की कहानी है । यह अकेलापन ओढ़ा हुआ नहीं है, वरन् समाज और सामाजिकों के बीच रहते मनुष्य का अकेलापन है

जिसमें मानवीय संबंधों की सूक्ष्मता जटिलता के स्तरों का स्पर्श करती हुई आदमी को भीतर–ही–भीतर से छीलती दिखाई देती है । 'हैरी विलल्न' मरता तो बाद में है, किन्तु उससे पहले अकेलेपन के क्षणों में वह कितनी ही मौतें अपने भीतर जी चुका होता है ।"[38]

हैरी विलसन की मृत्यु के बाद राकेशजी ने सन्तो के चरित्र को भी अद्‌भूत समर्पण से उभारते हुए उसके जीवन के एकाकीपन और शून्यता को भी सशक्त अभिव्यक्ति दी है । हैरी की मृत्यु के बाद भी सन्तो 'साहबजी' के सामीप्य का अनुभव करती है । रात की नीरवता में चौगान से आने वाली सम्मिश्र आवाजें सुनती रहती है और मन की इच्छाओं को दबाती रहती है । वह हैरी की इच्छानुसार अपना बाकी जीवन बिताने का प्रयत्न करती है वह "दिन भर अकेली कमरें में पड़ी रहती, अकेली ही खाना खाती और अकेली ही सो रहती । उसकी माँ ने उसके पास रहने के लिए आना चाहा था, उसने मना कर दिया था । उसे लगता था कि उसकी माँ उस घर में आ जाएगी तो साहब की नाराजगी बढ़ जाएगी । अपने अकेलेपन में उसका मन बहुत भारी हो जाता, तो वह कई बार रात को भी साहब की कब्र के पास जा बैठती ।"[39] साहब की मृत्यु के बाद निरस एकाकी जीवन का मार सहती हुई सन्तो का सशक्त चित्र राकेशजी ने खिंचा है ।

'एक और ज़िन्दगी' को आलोचकों ने राकेशजी की सशक्त कहानियों में स्थान दिया हैं । प्रस्तुत कहानी में लेखन ने पति–पत्नी के संबंधों के बिखराव से उत्पन्न जीवन का अकेलापन वर्णित किया है । 'एक और ज़िन्दगी के पति–पत्नी प्रकाश और बीना अपने–व्यक्तिगत अहं की टकराहट के कारण तनाव के साथ जीते है । और अंत में परिस्थिति तलाक तक पहुंच जाती है । तलाक के पश्चात् कुछ वर्षो तक तो प्रकाश अकेला ही रहता है, लेकिन जब अकेलापन उसे अधिक यंत्रणा देने लगता है तब वह अपने इस एकाकीपन से उबरने के लिए दूसरी शादी करता है । किन्तु दूसरी पत्नी–निर्मला, मानसिक रूप से विक्षिप्त होने के कारण उसके जीवन की समस्या और अधिक जटिल हो जाती है । दूसरी शादी से उत्पन्न परिस्थिति ने उसे अधिक निराश

और स्वकेन्द्रित बना दिया । अंतः दूसरी शादी से तलाक के पश्चात् प्रकाश अपने मन की शांति के लिए दूर पहाड़ पर घूमने चला जाता है । वहाँ वह अपनी पहली पत्नी बीना और अपने बेटे पलाश से मिलता है । प्रकाश पलाश को मिलकर अपना एकाकीपन और जीवन की व्यर्थता दूर करने का प्रयास करता है । किन्तु पलाश का अपनी माँ बीना से अधिक सांमजस्य होने के कारण पलाश उससे अजनबी सा व्यवहार करता है । किन्तु फिर भी वह पलाश की मौजूदगी से अपने एकाकीपन से उबरने की कोशिश करता है ।

प्रकाश पलाश से मिलकर अपना खालीपन भरता है । किन्तु साथ वह यह भी जानता है कि कोर्ट ने पलाश का अधिकार बीना को दिया है । कुछ दिनों के बाद बीना और पलाश चले जाते है । प्रकाश के जीवन में एक आक्रन्द, वेदना और अकेलापन शेष रह जाता है । कहानी के अंत में प्रकाश इस अकेलेपन को शराब से भूलाने का प्रयत्न करता नज़र आता है ।

'सुहागिनें' कहानी की नायिका मनोरमा एक आधुनिक शिक्षित नारी है । वह अपने पति की जिम्मेदारीयों में हाथ बंटाने के लिए अपने पति और परिवार से दूर अकेली रह कर नौकरी करती है । नौकरी करते हुए भी वह निरंतर अकेलेपन का अनुभव करती रहती है । वह अपने इस अकेलेपन को भरने के लिए अपने पति का सामीप्य चाहती हुई माँ बनने के लिए भी तरसती है । किन्तु पति उसकी इच्छाओं को निरंतर टालने का प्रयास करता है । परिणामतः अंत में आर्थिक रूप से सक्षम इस स्त्री के हाथ में केवल उदासी और अकेलापन ही लगता है ।

एक पत्नी होने के नाते मनोरमा की यह एकाकीपन की स्थिति अधिक यंत्रतापूर्ण बन गयी है क्योंकि "एक बच्चे की लालसा भी पूरी नहीं हो पाती... जैसी की मनोरमा की नियति है । अपने पति से इतना जुड़ी होकर भी वह अलग है.. अलग रहने को अभिशप्त है... बिना किसी वैमनस्य या तनाव के सिर्फ एक गहरे आर्थिक दबाव के कारण अपने पति की इच्छा का सन्मान करते हुए, ओर अलग रहते हुए, मूल संबंधों से कटकर निरंतर अकेली होती जा रही है ।"[40]

'उर्मिल–जीवन' की नीरा विवश परिस्थिति से अपनी अपने अकेलेपन में घुटने के लिए विवश है । नीरा सत्रह बरस की है; उसकी शादी अपनी जीजी की मृत्यु के पश्चात् अपने से दूगनी उम्र के जीजा से हुई है । इस नये संबंध को सहना–नीरा को असंभव लगता है । सुहागरात की सजावट से भरे हुए कमरे में भी नीरा सन्नाटे का अनुभव करती है – ''एक एक चीज में तर्जन है । सजावट का सामान सूनेपन की विडंबना को महत्त्व देता है । वह कमरे में अकेली थी और अकेलापन धीरे–धीरे विश्वमय होता जा रहा था ।''[41] और यह अकेलापन उसके जीवन में गहराता चला जाता है ।

'पाँचवे माले का फ्लैट' कहानी मुंबई महानगर के औपचारिक, एकाकीपन से भरे वातावरण में जी रहे अविनाश की ज़िन्दगी और उसकी समस्याओं का चित्रण करती है । अविनाश जो प्रेमिला उर्फ पम्मी से प्यार करता है और उसकी तस्वीर किताब में छिपाकर लाता है । अपनी आर्थिक विवशता के कारण वह अपने मन की बात पम्मी के सामने नहीं रख पाता । पम्मी के दिल्ली चले जाने के बरसों बाद वह एक बार फिर अविनाश को मुंबई में ही मिल जाती है । किन्तु , इस बार भी अविनाश अपनी उसी विवशता के कारण पम्मी से कुछ कह नहीं पाता । अविनाश अपनी ज़िन्दगी के अकेलेपन को औरत के संपर्क से भुलाना चाहता है; यहाँ तक कि बस में बैठी युवतियों के बाजुओं को मसलने का भाव उसमें अनायास आ जाता है । 'वारिस' कहानी के मास्टरजी और 'फटा हुआ जूता' कहानी का राय भी आर्थिक विवशता के कारण अपने अकेलेपन के साथ रहने के लिए मजबूर है ।

'दोराहा', 'धुंधला दीप' और 'लक्ष्यहीन' तीनों कहानियों के नायक का नाम केसरी है । तीनों कहानियों में व्यक्ति की मनःस्थिति का अंकन ही महत्त्वपूर्ण है; व्यक्ति का नाम महत्त्वहीन बन गया है । यहाँ तीनों कहानी का व्यक्ति केसरी एक ही व्यक्ति का विकसित रूप है । यह व्यक्ति आधुनिक व्यक्ति का प्रतिनिधि है, जो जीवन के 'दोराहे' से गुजरकर स्नेह की तलाश में 'धुंघलादीप' की गलियों में से 'लक्ष्यहीन' जीवन बिताता हुआ अकेलेपन और शून्यता बोध को झेलता है । केसरी के जीवन में आयी श्यामा, पूर्णिमा, सरोज,

मंजुला आदि की उपस्थिति में यह अकेलापन कुछ समय तक हलके से टूटता है; लेकिन यह नारियाँ उसकी ज़िन्दगी से दूर होती जाती है और वह फिर से अकेला होता जाता है । 'लक्ष्यहीन' कहानी के अंत में मंजुला उसे छोड़कर चली जाती है और ''केसरी पैदल चलने लगा । निर्जर और एकान्त । फैली हुई सड़क और दूर–दूर बतियाँ । रोशनी और छाया, रोशनी और छाया, रोशनी और छाया..''[42] केसरी के जीवन के अकेलेपन को राकेशजी ने तीनों कहानियों में उभारा हैं ।

'जंगला' कहानी की फुलकौर अपनी शारीरिक अक्षमता और लंबी बिमारी के कारण एकाकीपन के साथ अपना जीवन बिता रही है । 'आर्द्रा' कहानी की माँ, बचन, 'पहचान' कहानी का शिवजीत अवरोल, तथा 'ग्लास टैंक' कहानी की नीरू, ममा और सुभाष आदि साथ रहते हुए भी एकाकी है । अकेले और विसंगति में जीने के लिए बाध्य है, उनकी मजबूरी पूरे परिवेश में स्पष्ट महसूस की जा सकती है । ज़िन्दगी की यह एकाकी स्थिति उनके लिए बोज बनी हुई है ।

'ज़ख्म कहानी एक ऐसे अकेले व्यक्ति की कहानी है जो अपने तौर पर जीना चाहता है । लेकिन, अपने परिवेश में वह अपने को बिलकुल अकेला पाता है । माँ की ममता और स्त्री के प्यार से वह वंचित है । अतः भीतरी टूटन, तनाव और भीड़ में अकेले जीना उसकी नियति है ।

महानगरीय जीवन में अकेलेपन की छटपटाहट में जीना आम बात बन गयी है । मानवीय सम्बन्ध टूट रहे है । राकेशजी ने इस अकेलेपन की अनुभूति को सशक्त अभिव्यक्ति दी है । दिन–ब–दिन मानवीय सम्बन्धों में बढ़ती स्नेहहीनता इसके मूल में है ।

(२) अपरिचय और अजनबीपन :

अपरिचय या अजनबीपन नयी कहानी का मुख्य विषय है । यहाँ सारे संबंधों से विच्छिन्न व्यक्ति अधिकाधिक अकेला और अजनबी होता चला गया है । इसके पीछे शायद हमारे देश की अतिपरिचय से ऊबी हुई मानसिकता है

और इस अतिशय का परिणाम समयांतर पर अपरिचय की ऐच्छिक मनोदशा के रूप में देखा गया है । इसलिए यह अतिपरिचय की स्थिति कई अंश तक अपरिचय का कारण बनी नज़र आती है । साथ ही तत्कालीन स्थितियों के प्रभाव से व्यक्ति का अधिकाधिक आत्मकेन्द्रित होना, प्रबल अहं, बढ़ती बौद्धिक ओर सामाजिक भिन्नता, महानगरीय, यांत्रिकता आदि बढ़ते अजनबीपन के कारणों में समन्वित हैं । राकेशजी की कहानी 'एक और ज़िन्दगी' के प्रकाश और बीना, 'गुंझल' कहानी के चंदन और कुंतल, 'फौलाद का आकाश' के रवि और मीरा, 'अपरिचित' कहानी के 'मैं' और उसकी पत्नी नलिनी, दीशी और दीशी पत्नी, 'आर्द्रा' कहानी की माँ बचन, 'पहचान' कहानी का बच्चा शिवजीत आदि अजनबीपन की यंत्रणा से ग्रस्त दिखाई पड़ते हैं ।

वैसे देखा जाय तो पति–पत्नी का संबंध एक–दूसरे से इतना गहरा होना चाहिए कि वे वास्तव में दो होते हुए भी एक हो । किन्तु समय की बदलती पृष्ठभूमि में वे ज्यों–त्यों एक–दूसरे से परिचित होने की कोशिश करते है त्यों–त्यों कुछ अधिक अपरिचित होकर एक–दूसरे के समीप से गुजरते है । राकेशजी की कहानियों के पति–पत्नी अतिपरिचय के बीच अपरिचय से ग्रस्त दिखाई पड़ते हैं । यही भाव बोध श्रीकांत वर्मा की इन पंक्तियों में भी व्यक्त हुआ हैं –

"हम एक दूसरे से परिचित
होने की कोशिश में
कुछ अधिक अपरिचित हो
कर गुजर रहे हैं एक
दूसरे के समीप से लगातार ।
प्रत्येक सुबह तुम लगती हो
कुछ और अधिक अजनबी मुझे ।"[43]

'एक–और ज़िन्दगी' राकेशजी की एक महत्त्वपूर्ण कहानी है । कहानी के नायक प्रकाश का विवाह बीना से होता है; पर दोनों पति–पत्नी के रूप में तालमेल नहीं बैठा पाते । फलतः दोनों घीरे–घीरे दूर होकर अजनबीपन के

शिकार बन जाते है । ‘‘ब्याह के कुछ महीने बाद से ही पति–पत्नी अलग रहने लगे थे । ब्याह के साथ जो सूत्र जुड़ना चाहिए था, वह नहीं जुड़ सका था । दोनों अलग जगह काम करते थे और अपना स्वतंत्र ताना–बाना बुनकर जी रहे थे । लोकाचार के नाते साल छःमहीने में कभी–कभी मिल लिया करते थे ।’’[44] पति–पत्नी दोनों पढ़े–लिखे तथा स्वावलंबी होने के कारण दोनों का अहं एक–दूसरे से टकराता रहता था । उनका बच्चा पलाश भी दोनों का मेल नहीं करा पाता और अंततः यह अजनबीपन से भरा रिश्ता तलाक की स्थिति में पहुँच जाता है ।

‘फौलाद का आकाश’ एक व्यस्त पति और भावुक पत्नी के फौलाद की तरह ठंडे औपचारिक संबंधों की कहानी है । अपनी व्यस्तताओं के कारण रवि अपनी पत्नी मीरा से भावनात्मक स्तर पर नहीं केवल शारीरिक स्तर पर ही जुड़ा है । इसलिए मीरा अपने पति रवि के साथ रहते हुए भी अपने आपको उससे अपरिचित और दूर अनुभव करती है । यहाँ तक कि ‘‘अंतरंग से अंतरंग क्षणों में भी अपने को रवि से अलग, बिलकुल अलग पाती थी ।’’[45] रवि पक्का आंकड़ाबाज है, अंतः मीरा की भावुकतापूर्ण बाते उसे पसंद नहीं है । मीरा की बातें सुनकर रवि उसे कहता है ‘‘इतने साल साथ रहकर भी तुममें जरा फर्क नहीं आया ।’’[46] रवि का ऐसा वर्तन मीरा को और भी अजनबीपन से भर देता है – ‘‘रवि के चहेरे का भाव उस फासले को और भी बढ़ा देता था । उस फासले को भरने की कोशिश उसे एक ऐसा झूठ लगता था जो वह दस साल से लगातार अपने से बोल रही थी । रात–दिन एक साथ रहकर भी वह फासला कम होने में नहीं आता था । जिनता ही उसके नज़दीक आती फासले का एहसास उतना ही ज्यादा होता था ।’’[47] ‘फौलाद का आकाश’ कहानी में राकेशजी ने पति–पत्नी के संबंधों में आयी औपचारिकता और अजनबीपन को सार्थक अभिव्यक्ति दी है ।

पति–पत्नी के बीच के प्रेमपूर्ण संबंध आज जटील और बोझिल बनते जा रहे है । ऐसी स्थिति में भी एक दूसरे से जुड़े रहने की उनकी सामाजिक मजबूरी के कारण संबंधों में अपरिचय की स्थिति बढ़ती जा रही है । ‘गुंझल’

कहानी के पति–पत्नी चंदन और कुन्तल साथ रहते हुए भी इसी कारण अजनबीपन और बेगानेपन की स्थिति में जी रहे हैं । कश्मीर से जम्मू तक पति–पत्नी दोनों एक साथ अजनबियों की तरह बैठकर यात्रा ही नहीं करते बल्कि निरंतर दूर होते जाते हैं । यहाँ तक कि बस में लगी ब्रेक के कारण पति–पत्नी के शरीर आपस में छू गये तो कुन्तल अपनी बाँहे सिकोड़ कर पहले से थोड़ा ज्यादा सिमटकर बैठ जाती है । वह सोचती है – ''शरीर से शरीर छूना नहीं चाहिए । एक ही सीट पर साथ–सथ बैठे हुए इतना लंबा सफर सचमुच कितनी बड़ी मजबूरी थी ।''[48] बस के किसी स्टेशन पर रुकने पर साथ खाना खाने की बात और चाय पीने की बात भी सिर्फ सफर तक का संबंध रखने वाले लोगों की तरह ही होती है । जम्मू पहुँचकर दोनों रेस्ट हाउस के एक ही कमरे में रहते हैं । लेकिन यहाँ भी चंदन के साथ कुन्तल का व्यवहार अपरिचित सा रहता है । कहानी के अंत में इस अपरिचय के बढ़ते प्रभाव से दोनों के हंमेशा के अलगाव की सांकेतिक सुचना मिलती है ।

'अपरिचित' कहानी के सभी पात्र एक–दूसरे से निकट रहकर अपरिचय या अजनबीपन का बोझ झेलते हुए दिखाई देते हैं । किन्तु, अजनबी या अपरिचितों के बीच अति निकटता महसूस करते हैं । ट्रेन में सफर के दौरान कथानायक 'मैं' और दीशी की पत्नी मिल जाते हैं । दोनों एक दूसरे से अपरिचित होते हुए भी कुछ ही क्षणों मे आत्मीयता का अनुभव करने लगते हैं । दीशी पत्नी अपने पति और समाज के बीच अपने आपको 'मिसफिट' अनुभव करती है । तो दूसरी ओर 'मैं' भी अपनी पत्नी नलिनी के साथ अजनबीपन से पूर्ण साथ जीवन बिता रहा है क्योंकि वह अपनी पत्नी नलिनी से जुड़कर भी वह कहीं से कट गया है । दीशी पत्नी अपने पति दीशी के साथ तथा 'मैं' अपनी पत्नी नलिनी के साथ रुचि–वैभिन्य के कारण अपरिचय, बेगानापन महसूस करते हैं ।

ट्रेन में सफर के दौरान बहुत से परिचित लोगों के बीच अपने को 'मिसफिट' अनुभव करनेवाली दीशी की पत्नी एक सी रुचियों के कारण कथानायक से खुलकर बाते करती है । दोनों अपरिचित होते हुए भी परिचित

सा अनुभव करते है । यहाँ अपरिचय में अतिपरिचय और अतिपरिचय में अपरिचय की स्थिति के चित्रण से राकेशजी ने मानव संबंधो की सूक्ष्मता और परतों को पूरी जटिलता के साथ चित्रित किया है ।

'पहचान' कहानी का बच्चा शिवजीत अपनी माँ की दूसरी शादी के कारण अचानक शिवजीत सचदेव से शिवजीत अवरोल बन जाता है । बाहर उसका परिचय बदल दिया गया है और वह नये घर में अपनी माँ को नये पति और नये बच्चों के बीच उलझी पाता है । जिससे वह अपनी माँ को भी अजनबी और अपरिचित महसूस करता है; क्योंकि पिता के बाद माँ की आवश्यकता उसे अधिक थी । लेकिन यहाँ माँ के नये संबंधों के कारण शिवजीत माँ से पहले सा जुड़ाव अनुभव न कर पाने के कारण उनसे दूर होता चला जाता है । साथ ही उसके मन में प्रश्न चलता रहता है कि "पापा ?... कौन ? महेन्द्र सचदेव... या डॉ. हरदेव अबरोल ।"[49] माँ की शादी से उत्पन्न मनः स्थिति शिवजीत को अजनबीपन के बाध से भर देती है ।

'मरुस्थल' की इन्दु की यंत्रणा भी माँ–बाप और बच्चों के बीच अपरिचय की स्थिति से उत्पन्न है । इन्दु का पिता–धनपतराय और उसकी माँ नसीम उसे पैसे कमाने का साधन बनाना चाहते है, पर इन्दु पढ़–लिखकर डॉक्टर बनना चाहती है । यहाँ, माँ–बाप दोनों अपने स्वार्थ में पड़कर इन्दु की भावना की परवाह नहीं करते । नसीम गोपालबाबू के साथ इन्दु को ले जाकर अपनी बाकी की ज़िन्दगी आराम से गुजारने का सपना देखती है तो दूसरी तरफ उसका बाप धनपतराय दो सेठों के सामने इन्दु का नृत्य दिखाते हुए इन्दु की 'मार्केट वेल्यू' समझाता है । माँ–बाप की स्वार्थीवृत्ति के कारण इन्दु ज्वरग्रस्त हो जाती है । वह अपनी पहचान ढूँढ़ती हुई बार–बार लेखक से पूछती है – "मैं रंडी हूँ । आप बताइयें में रंडी हूँ ।"[50] इन्दु का यह प्रश्न बच्चों और माँ–बाप के बीच बढ़ते अजनबीपन और अपरिचय को सशक्त अभिव्यक्ति देता है ।

अपने परिवेश से एक अन्य परिवेश में सभ्यता और शिक्षा के लिए भेजे गये बच्चे यशवीर की स्थिति का सूक्ष्म निरूपण 'छोटी–सी–चीज़' कहानी में हुआ है । रोबर्ट्सन पब्लिक स्कूल में जाकर वह तरह–तरह की मानसिक आशंका से गुजरता है । गुड मार्निंग, गुड आफ्टरनून या गुड नाइट कहने में हर बार वह गलती कर जाता है । वहाँ के खान–पान को लेकर भी उसके मन में कई तरह की शंकाएँ है जैसे प्लेट के तीन तरफ कांटे, छुरियाँ और चम्मच रखने का रहस्य भी उसकी समझ में नहीं आ रहा है । अतः यहाँ वह अन्य छात्रों के बीच भी आसानी से घुल–मिल नहीं पाता और अजनबीपन की यंत्रणा को भोगता है । उसका बाल–मानस चर्च में प्रार्थना करते वक्त ऊँगलियों के बीच आँखें खोलकर ईश्वर को खोजने का प्रयास करता है । हाउस मास्टर मिस्टर बर्टन की हमदर्दी अजनबीपन के बीच कुछ राहत दिलाती है ।

अपरिचय, या अजनबीपन की यंत्रणा को राकेशजी ने 'पहचान', 'मरुस्थल' और 'छोटी–सी–चीज़' कहानियों में बाल मनःस्थितियों के साथ मार्मिक अभिव्यक्ति दी हैं । बाल मन भी इस आधुनिक युग की यंत्रणा से प्रभावित हुए बिना नहीं रहा है ।

'आर्द्रा' और 'क्वाटर्स' कहानियाँ संबंधों की व्यर्थता से उत्पन्न अजनबीपन को निरूपित करने वाली कहानियाँ हैं । 'आर्द्रा' दो विभिन्न रुचियों एवं व्यवसाय में रहनेवाले बेटों की 'माँ' की छटपटाहट सशक्त रूप में व्यक्त करती है । 'माँ' बचन छोटे–बेटे बिन्नी की अभाव ग्रस्त ज़िन्दगी से परेशान है और बड़े बेटे की तबियत को लेकर भी । बड़े बेटे लाली के घर जाकर वह स्वयं को अजनबी और मेहमान सा अनुभव करती है । यहाँ, रहकर वह दो–दिनों में ही ऊब जाती है । नगर परिवेश में व्यर्थ संबंधों और अजनबीपन को ढ़ोती ज़िन्दगी का यथार्थ उद्घाटन यहाँ हुआ है । 'क्वार्टर' कहानी के प्रमुख पात्र शंकर और राधा तथा शंकर के पिता, बड़ा भाई नाथभाई, उसकी दोनों बहेने आदि सब घर में एक साथ रहते है । फिर भी उनका व्यवहार अजनबीयों से कम नहीं हैं । यहाँ तक कि शंकर और राधा के बीच में भी परिवार को

लेकर स्थिति इतनी बिगड़ी हुई है कि दोनों के बीच स्नेह के स्थान पर अजनबीपन पनपने लगता है ।

"ग्लास टैंक" कहानी में राकेशजी ने आधुनिक युग की 'इमोश्नल लाइफ' की समस्या का वर्णन किया हैं । निरू के मन में उपस्थित होने वाले मछलियों के संबंध में जो प्रश्न है वे कहीं मानवीय संबंधों के बारे में भी है "कैसे रह पाती हैं ये ? खुले पानी के लिए कभी जी नहीं तरसता ? कभी इन्हें महसूस नहीं होता कि ये सब एक–एक और अकेली हैं । एक दूसरे से कुछ कहना चाहती हैं ? या कभी शीशे से इसलिए टकराती है कि शीशा टूट जाए ? शीशे के और आपस के बंधन से ये मुक्त हो जाए ?"[51] इस कहानी में संबंधों के अजनबीपन का चित्रण प्रतिकात्मक रूप में प्रस्तुत हुआ है ।

(३) निर्णय और अनिर्णय का दर्द :

स्वातंत्र्योत्तर युग में समाज, मूल्य, संस्कृति आदि में आये बदलाव के कारण आदमी–आदमी के बीच अजनबीपन, एकाकीपन बढ़ता चला जा रहा है । सहज स्नेहपूर्ण मानवीय संबंधों की गर्मी एक ठण्ड़ी उदासीनता का रूप लेती जा रही है । संबंधों में बढ़ रही व्यर्थता के बीच सामाजिक रूप से जुड़े रहने की स्थिति ने व्यक्ति को न चाहते हुए भी संबंधों से जुड़े रहने के लिए मजबूर कर रखा है । क्योंकि दो आदमी जिस आसानी से ज़िन्दगी भर के रिश्ते में अपने को बाँध सकते है; उसी आसानी से मुक्त क्यों नहीं हो सकते ? इसलिए कि बंधनों में उन्हें समाज का समर्थन प्राप्त था और मुक्त होने में अपने को अकेला महसूस करते हैं । इस स्थिति या विचारधारा के कारण ही व्यक्ति अपना निर्णय चाह कर भी व्यक्त नहीं कर पाता । फलतः निर्णय और अनिर्णय के दर्द से ग्रस्ति होता दिखाई पड़ता है ।

'सुहागिनें' कहानी की मनोरमा पति और बच्चे के सान्निध्य की कल्पना करती है । किन्तु, मनोरमा का पति सुशील उसे अलग शहर में नौकरी करने तथा परिवार की आर्थिक स्थिति सुधाने में सहयोगी बनने के लिए बाध्य करता है । मनोरमा की चाह है कि वह नौकरी छोड़कर घर गृहस्थी संभाले ।

लेकिन, उसका दायित्व उसे एसा करने से रोकता है । उसका मन बच्चे की किलकारियाँ सुनने के लिए तड़प जाता है । वह अपनी नौकरानी काशी को पति से दूर होकर भी बच्चों के कारण उनसे जुड़ी हुई महसूस करती है और खुद को खाली । वह अपने इस खालीपन का बोध अपने पति को कराना चाहती है लेकिन वह चाह कर भी यह निर्णय उसे नहीं लिख पाती ''लिख दे कि यहाँ अकेली रहकर उसे डर लगता है और वह उसके पास चली जाना चाहती है । और... और भी जो इतना कुछ वह महसूस करती है, क्या वह सब उसे लिख पायेगी ?''[53] मनोरमा अपनी इच्छा पूरी नहीं कर पाती अतः उसे न तो मानसिक शांति मिल पाती है और न आर्थिक सुख । मनोरमा इस अनिर्णय की स्थिति से पीड़ा का अनुभव करती है ।

'गुंझल' कहानी में पति–पत्नी के बीच निर्णय का प्रश्न निरंतर चलता है । कुन्तल और चंदन एक साथ रहते हुए भी संबंध हीनता का जीवन जी रहे हैं । न चाहते हुए भी वह साथ है मुक्त नहीं हो पा रहे । घिसटती ज़िन्दगी में दर्द और अनिर्णय की स्थिति को दोनों ढोते हुए दिखाई देते हैं । चंदन अपनी पत्नी कुन्तल से अपने जीवन की समस्याओं को लेकर कुछ निर्णयात्मक स्थिति पर पहोंचने की बात सोचता है, क्योंकि कोई भी इन्सान अपना पूरा जीवन इस तरह दुविधा में रहकर नहीं काट सकता । पर कुन्तल कुछ कहना नहीं चाहती, वह कहती है – ''हमनें आपसे कह दिया है, हम अपने लिए न तो कुछ चाहते है और न ही इस विषय में हमें कोई बात करनी है ।''[54]

कुन्तल और चंदन के संबंधो बीच एक अबूझ पहेली सी है । जिसको सुलझा न पाने के कारण दोनों के बीच तनाव बढ़ता जाता है । चंदन इस स्थिति को लेकर सोचता है कि – ''क्या आगे के लिए वह उसे संभालकर ठीक दिशा दे सकता था ? और यदि नहीं तो आनेवाले कल की रूपरेखा क्या होने जा रही थी ।''[55] कहानी के अंत में एक–दूसरे से अलग रहने के निर्णय की ओर तो संकेत कर दिया है । किन्तु पति–पत्नी का रिश्ता बना रहता कि दोनों एक–दूसरे से हंमेशा के लिए अलग हो रहे है यह निर्णय

अनिर्णय की स्थिति कुन्दन और चंदन के लिए अंतः संघर्ष उत्पन्न करने के लिए बराबर बनी रहती है ।

'फौलाद का आकाश' कहानी की मीरा में पति की मानसिकता के कारण असमंजस है । वह सही गलत का निर्णय नहीं कर पाती है । कभी उसे लगता है कि वह इस जीवन के लिए जिम्मेदार है और कभी उसे ऐसा लगता है कि सारा दोष रवि का है । 'आखिरी सामान' की मिसेज़ बेला भण्डेरी का पति मि. सुशील भण्डेरी अपनी बारह सौ रुपये की नौकरी पाने की लालच में उसे एक अन्य पद अधिकारी को कुछ समय के लिए सौंपना चाहता है । किन्तु, मिसेज़ भण्डेरी अपने अस्तित्व की रक्षा में सफल रहती है । इस घटना के फल स्वरूप मि. भण्डेरी उच्च पदाधिकारी के प्रतिशोध का शिकार बन जाते है और उन्हें जेल जाना पड़ता है । इस स्थिति को लेकर मिसेज़ भण्डेरी निर्णय नहीं कर पाती कि "क्या इसकी वजह वही है"[56] अतः अकेलापन और दर्द अनुभव करती है ।

'ग्लास टैंक' कहानी का संपूर्ण कथानक आधुनिक युग की समस्या चुनाव के निर्णय और अनिर्णय के दर्द को अभिव्यक्त करता है । यह कहानी नीरू और उसकी ममा के अनिर्णय से उत्पन्न अवसाद और घुटन भरे जीवन की कहानी है । प्रस्तुत कहानी में नारी मन की उहापोह निरूपित है । कहानी की ममा और नीरू पुरुष संबंधों की पीड़ा के बीच जिन्दा है । 'ग्लास टैंक' की ममा सुभाष के पिता शम्भुनाथ से तो नहीं जुड़ पाई पर उसके बेटे के साथ अवश्य जुड़ गयी है । नीरू की ममा घर में हर समय सुभाष की बातें करती रहती है और बातें करते करते वह सब कुछ भूल जाती है । सुभाष को देखकर ममा उसके पिता शम्भुनाथ की स्मृति और अनुराग को तथा अनिर्णय के दर्द से उत्पन्न पीड़ा को सहती नज़र आती है । पति की शम्भुनाथ और सुभाष की बात को लेकर नाराजगी को भी वह अच्छी तरह जानती है । अतः भीतर ही भीतर घुटती रहती है । दूसरी और ममा की सुभाष के लिए कही गयी बातों से नीरू सुभाष के प्रति आकर्षित होती है । किन्तु, नीरू भी सुभाष के विषय में कोई निर्णय नहीं कर पाती । फलतः चुनाव के अनिर्णय का दर्द

उसके हृदय को भी आंदोलित करता है । ममा सुभाष को देखकर अपने बिते हुए दिनों को याद करके पीड़ा से झुलस सी जाती है और उसी भावुकता में अपनी बेटी नीरू से कहती है ‘‘और जैसी भी होना... अपनी ममा जैसी कभी न होना ।’’[57] इस कहानी में नीरू और उसकी ममा के अनिर्णय का दर्द नारी मन की विभिन्न स्थितियों के साथ निरूपित हुआ हैं ।

‘धुंधलादीप’, ‘लक्ष्यहीन’, ‘दोराहा’ कहानियों का नायक केसरी जीवन में आये कई व्यक्तियों से जुड़ा होने पर भी अनिर्णय की स्थिति में एकान्त और अवसंगति की स्थिति में है । केसरी अनिर्णय की स्थिति में दिशाहीन जीवन व्यतीत करता है । आज के मनुष्य की समस्या यह है कि वह अपने परिवेश के साथ खुद को एडजस्ट नहीं कर पाता । अतः वह अपने माहौल से खुद को संपृक्त करना चाहता है परंतु साथ ही समझौता नहीं कर पाता और उससे दूर जाने की इच्छा रखते हुए भी हुए नहीं जा पाता । वह To be or not to be की घुटन के कारण निर्णय अनिर्णय की स्थिति में छटपटाता रहता है । ‘आदमी और दीवार’ कहानी का सता अपने परिवेश में एडजेस्ट नहीं कर पाता और इसी विडंबना के बीच परिवार के साथ खुद को अकेला पाता है ।

(४) व्यर्थताबोध :

राकेशजी ने अपनी कहानियों में जीवन के तमाम यथार्थ रूपों को निरूपित करने का प्रयास किया हैं । आज के युग की ज़िन्दगी दिन–प्रतिदिन जटिल से जटिलतर होती जा रही है । फलतः परिस्थितियों के दबाव के कारण व्यक्ति किसी–न–किसी कारण से अपने आपको फालतू, अकेला और व्यर्थता के साथ समय बिताता हुआ महसूस करता है । व्यक्ति की फालतू या व्यर्थ होने की यह समस्या को राकेशजी ने की ‘पहचान’, ‘मिस पाल’, ‘सुहागिनें’, ‘फौलाद का आकाश’, ‘वारिस’, ‘मंदी’ आदि कहानियों में सशक्त अभिव्यक्त मिली हैं ।

जीवन की सार्थकता की तलाश से उत्पन्न व्यर्थताबोध को ‘गुमशुदा’ कहानी में सशक्तता से रेखांकित किया गया है । आज के वैज्ञानिक और भौतिक समृध्दि के युग में आदमी सार्थकता नहीं ढूँढ़ पा रहा है । ‘गुमशुदा’

कहानी के नायक के पास पैसा और सभी भौतिक उपलब्धियाँ मौजूद है, फिर भी ज़िन्दगी के कुछ सवालात उसे 'गुमशुदा' बना देता है । वह कहता है – ''मेरी समझ में नहीं आता कि मैं क्यों जी रहा हूँ । मेरे पास अच्छी नौकरी है, अच्छा सजा हुआ घर है, सुन्दर पत्नी है जो मुझसे काफी प्रेम करती है, काम करने के लिए नौकर है, सब कुछ है, मगर फिर भी मुझे ज़िन्दगी काफी फीकी फीकी और अर्थहीन सी लगती है । मेरी कुछ समझ में नहीं आता कि मैं क्यों जी रहा हूँ ?''[58] वह अपनी व्यर्थता और खालीपन भरने के लिए कभी पिक्चर, काफी हाउस, गार्डन आदि जगहों पर घूमता रहता है । फिर भी व्यर्थता के सवाल से मुक्त नहीं हो पाता और व्यर्थता से भरी ज़िन्दगी जीता नज़र आता है ।

'खाली' कहानी की तोषी अपने जीवन की एकरसता और खालीपन के कारण व्यर्थताबोध का शिकार है । तोषी अपने पति जुगल और अपनी बेटी के साथ रहती है । तोषी जुगल की आदतों और स्वभाव के कारण अपने आपको अकेला और फालतू अनुभव करती है । 'सुहागिनें' कहानी की प्रिन्सिपल मनोरमा पति और बच्चे के साथ रहना चाहती है । किन्तु मनोरमा का पति सुशील उसकी संवेदनाओं को समझ नहीं पाता । मनोरमा अपने खालीपन और इच्छापूर्ति के अभाव में अपने आपको सिर्फ पैसे कमाना का साधन समझते हुए अपने आपको निरर्थक अनुभव करती है ।

'मिस पाल' कहानी की नायिका कुरूप है । उसकी यह कुरूपता उसके लिए अभिशाप बन गयी है । अपनी इस कुरूपता को छिपाने के लिए वह प्रयत्नशील रहती है और वह अपने को सँवाने का प्रयत्न भी करती है । लेकिन, उसके सहकर्मी उसको लेकर हंमेशा मज़ाक करते है । जिससे परेशान होकर वह अपनी दिल्ली की नौकरी छोड़कर कूल्लु के पास के छटे से गाँव रायसन जैसे एकांत स्थान पर जाने का विचार कर लेती है । मिस पाल को लगता है कि वह दिल्ली में अपने दिन व्यर्थ ही बिता रही है । वह कहती है – ''मेरी समझ में नहीं आता कि इस तरह की ज़िन्दगी जीने का आखिर मतलब ही क्या है ? सुबह उठती हूँ दफ्तर चली जाती हूँ । वहा सात–आठ

घंटे खराब करके घर आती हूं, खाना खाती हुँ और सो जाती हूँ । यह सारा का सारा सिलसिला मुझे बेमानी लगता है ।"[59]

मिस पाल इस नयी जगह जाकर जीवन की सार्थकता खोजने का प्रयत्न करती है । लेकिन, यहाँ भी लोग उसकी कुरूपता का मज़ाक उड़ाते है । अतः यहाँ भी उसके जीवन में कोई उल्लास नहीं रहता । उसका अकेली घर को ठीक करने का मन नहीं करता । दरवाजे के लिए बने परदे लगाना तो क्या उसे बेग से निकाले भी नहीं है । यहाँ तक कि घर में खाने–पीने की चीज है कि नहीं इस ओर भी उसका ध्यान नहीं है । उसका अकेली खाना बनाने का भी मन नहीं होता, वह रणजीत के सामने स्वीकार करते हुए कहती है – "और अम–अ... अपने अकेली के लिए रोज बनाने का उत्साह भी नहीं होता । कई बार मैं सप्ताह भर का खाना एक साथ बना लेती हूँ और फिर निश्चिंत होकर खाती हूँ ।"[60] मिस पाल की खाने के प्रति, घर के प्रति, अपने प्रति यह लापरवाही उसके जीवन के प्रति उत्पन्न व्यर्थता बोध के कारण ही है ।

व्यक्ति का स्वयं को फालतूपाना या असंगत होने की स्थिति उसमें अंतर्द्वन्द्व को पैदा करती है । 'पहचान' कहानी का शिवजीत माँ के नये संबंध के कारण शिवजीत सचदेव से शिवजीत अवरोल बना दिया जाता है । डॉ. अवरोल के घर में वह अपनी माँ को मिसेज़ अवरोल के रूप में देखता है । शिवजीत डॉ. अवरोल के चार बच्चों के साथ अपने आपको नहीं जोड़ पाता है । अतः डॉ. अवरोल और उसके सामने घूर कर देखने वाले उनके चार बच्चों के बीच वह अपने आपको फालतू और व्यर्थ महसूस करता है । "सुखदेव अवरोल उससे तीन–साल बड़ा है... जब भी उसे अकेला पाता है, उसे घूर कर देखता है । बाकी तीनों... नीना, मीना और बसन्त उससे अलग–अलग बड़े भाई से खुसर–पुसर बातें करते हैं । साथ खेलने के लिए बुलाते है, जैसे किसी महमान को साथ खाना खाने के लिए कह रहे हों । वह चाहे भी तो उनके साथ नहीं घुल–मिल सकता । और वह चाहता भी

नहीं ।"[61] इस विडंबनापूर्ण स्थिति ने शिवजीत के भीतर तक अवसाद भर दिया है ।

जीवन में यह फालतू और व्यर्थ होने का अहसास किन्हीं ठोस कारणों से है । इसके कारणों में से एक यह भी है कि संयुक्त परिवार में बड़े–बूढ़े के हाथ कुछ नहीं रहता । फलतः आज बुजुर्गो की हालत बदतर से बदतर होती चली गयी है । घर में उसकी उपस्थिति फालतू से बढ़कर कुछ नहीं रहती । 'क्वार्टर' कहानी के शंकर के पापा इसी फालतू और व्यर्थ जीवन जीने के लिए मजबूर है । उसकी स्थिति घर में नहीं के बराबर है । उसके होने–न–होने से घर में किसी को कोई फर्क ही नहीं पड़ता । उसका कमरा पेशाबघर के पास का है । वहाँ कोई झाँकता भी नहीं है । अपनी स्थिति को स्पष्ट करते हुए वह कहते हैं – "पेशाबघर के बाहर डाल रखा है मुझे रोज मुझसे पूछ लीजिए कि कितनी बार फलश चलता है दिन में । यहीं डायरी रखने के लिए लिटा रखा है मुझे यहाँ ।"[62] बोलते–बोलते उनकी आँखों से आँसू बहते लगते है । यहाँ तक कि वह एक मिनट किसी–से बात करने के लिए भी तरस जाते है । अगर गुसलखाने से निकलकर आता व्यक्ति उसके सामने से निकलते हुए जरा भी मुसकरा देता है, तो वह चारपाई पर उसके लिए जगह छोड़ते हुए कहते हैं – "आइए, बैठिए, एक मिनट । तशरीफ रखिए । सेहत कैसी है ?"[63] बड़े शहरों में आवास की समस्या के साथ–साथ संवेदनाहीन जीवन ने व्यक्ति के इस फालतूपन को अधिक बढ़ा दिया है ।

'आर्द्रा' कहानी की माँ बचन अपने छोटे बेटे बिन्नी के साथ रहती है । किन्तु, जब उसे पता चलता है कि उसका बड़ा बेटा लाली बीमार है तो वह लाली की चिंता के कारण उसके पास उसके घर रहने के लिए आती है । लाली के घर आकर वह स्वयं को फालतू अजनबी, महेमान सा अनुभव करती है । उस घर में उसका होना–न–होना कुछ अर्थ नहीं रखता था । क्योंकि दिन–भर उसके करने के लिए वहाँ कोई काम नहीं होता । लाली की पत्नी कुसुम जिस शिष्टता और कोमलता से बात करती थी, उससे उसे लगता था कि उस घर में वह सिर्फ महमान है । वह सोचती है – "काम करने के

लिए नौकर है, और देख–लाल के लिए कुसुम है, फिर घर में उसका होना किसलिए है ?"[64] बचन लाली के घर में रहते हुए व्यर्थता बोध का अनुभव करती है ।

'पाँचवे माले का फ्लैट' कहानी का अविनाश आर्थिक अभाव और जीवन के एकाकीपन के कारण मित्रों के बीच भी अपने आपको अजनबी महसूस करता है । प्रेमिला और सरला से मिलने के बाद वह अपने अकेलेपन को दूर करने के लिए किसी मित्र के यहाँ जाना चाहता है पर वह अनुभव करता है – "सभी जगह बेगानापन महसूस होगा । पूरी देखकर कहेगा, "आओ – आओ । और दस मिनट न आने तो हम लोग खाना खाकर घूमने निकल गए होते ।" भटनागर शायद अन्दर से आँखे मलता हुआ निकले और कहता "अरे, तुम इस वक्त ? खेरियत तो है ?"[65] दिन–प्रतिदिन खत्म हो रहे आत्मीयभाव ने अविनाश जैसे व्यक्ति में एकाकी और फालतूपन के एहसास को और भी गहरा दिया है ।

भारत की बेरोजगार युवा पीढ़ी को भी इस फालतूपन ने ग्रस लिया है । शिक्षा के प्रचार–प्रसार से काफी संख्या में लोग पढ़–लिख गए, किन्तु नौकरी के और आर्थिक स्त्रोत के अभाव ने उनके जीवन में व्यर्थता बोध का भाव भर दिया है । 'पांचवे माले का फ्लैट' का अविनाश, 'फटा–हुआ जूता' का राय, 'वारिस' कहानी के मास्टरजी इसी कारण से व्यर्थताबोध के शिकार है ।

'मंदी' कहानी का बूढ़ा अर्थ के अभाव में फालतूपन को झेलता दिखाई देता है ।

फालतूपन या व्यर्थताबोध राकेशजी की कहानियों में अपने युगीन सत्यों के साथ सीधे ही व्यख्यायित हो गया है ।

(५) घुटन :

राकेशजी की कहानियों के पात्रों की घुटन का संबंध जीवन, परिवेशगत विषमता, आर्थिक दबाव, असंतोष आदि कारणों से है । 'एक और ज़िन्दगी'

कहानी के प्रकाश के जीवन में यह घुटन सर्वत्र व्याप्त है । प्रकाश अपने समकक्ष पढ़ी–लिखी बीना से विवाह करता है । किन्तु “ब्याह के कुछ महीने बाद से ही पति–पत्नी अलग रहने लगे थे । ब्याह के साथ जो सूत्र जुडना चाहिए था, वह जुड़ नहीं सका था । दोनों अलग–अलग जगह काम करते थे और अपना–अपना स्वतंत्र ताना–बाना बुनकर जी रहे थे ।”[66] अंततः यह शादी विच्छेद का रूप धारण कर लेती है । इस घटना के बाद प्रकाश अपने अकेलेपन को ढाई साल तक झेलता है । वह अपने अकेलेपन को भरने के लिए तथा एक और ज़िन्दगी प्रारंभ करने के हेतु दूसरे विवाह के लिए प्रेरित होता है । प्रकाश अपने मित्र की बहन निर्मला से शादी करके अपने जीवन को फिर से भरने का प्रयास करता है । किन्तु, यह प्रयत्न उसके लिए काफी करुणाजनक साबित होता है । निर्मला मानसिक रूप से विक्षिप्त होने के कारण उसकी ज़िन्दगी में यातना भर देती है । वह भीतर ही भीतर घुटने लगता है – “उसे लगता है जैसे वह जी न रहा हो, अंदर ही अंदर घुट रहा हो । क्या यहीं वह ज़िन्दगी थी, जिसे पाने के लिए उसने इतने साल संघर्ष किया था ।”[67]

‘जानवर और जानवर’ कहानी के सभी पात्रों में व्यक्ति जीवन की विडंबनाओं से उभरने वाली घुटन का चित्रण बड़ी समर्थता के साथ हुआ है । अनीता, मणि नानवती, पोल, जोन, पीटर आदि सभी पात्र एक घुटन भरे वातावरण में जी रहे हैं । अपनी विवशताओं के कारण कोई भी फादर फिशर के अन्याय के खिलाफ न बोलकर चुपचाप उसे सहते रहने के लिए विवश है “एक दिन सुबह बेचलर्स डाइनिंग–रूम में सुना गया कि रात को फादर फिशर ने बेबी को गोली मार दी है । जोन अपनी चुंधियाई आँखों को मेज पर स्थिर किए चुपचाप आमलेट खाता रहा । नानवती का छुरी वाला हाथ जरा जरा काँपने लगा । एक बार सहमी नज़र से जोन और पीटर को देखकर वह अपनी नज़रें प्लेट पर गडाए रही । पीटर स्लाइस का टुकड़ा काटने में इस तरह व्यस्त हो रहा जैसे बहुत महत्त्वपूर्ण काम कर रहा हो ।”[68] पादरी के सामने कुछ न बोल पाने की विवशता ने सभी पात्रों के भीतर घुटन भर दी

है । फादर फिशर ने बिना किसी कारण और सैली और पाल को नौकरी से निकाल दिया है । इस पर भी कोई टिप्पणी नहीं करता । सभी ड़रते है कि कहीं उन्होंने इस बात पर जरा भी टिप्पणी की तो वे भी निकाल दिये जायेंगे । सैली के निकाल देने के बाद जोन कहता है ''मुझे लगता है कि इसके बाद अब मेरी बारी आएगी ।''[69] फादर फिशर अधिकारों के साये में अनाचार फैल रहा है और आर्थिक विवशता के कारण सभी पात्र इसे सहते हुए घुटन तथा व्यक्गित अन्तर्द्वन्द्वअनुभव कर रहे हैं ।

'हक हलाल' कहानी में पंडित की पत्नी जीवन की परिस्थितियों की विसंगतियों से उत्पन्न घुटन में जीने के लिए लाचार है । अखबार बेचने वाले बूढ़े पंडित की नवयुवती पत्नी परिस्थितियों से भागती है; परंतु अंततः उसे उसी घुटन में वापस लौटना पड़ता है । लौटने के बाद वह परिस्थिति को और भी घुटन भरी पाती है, क्योंकि उसकी छोटी बहन सपत्नी की भूमिका में होती है । आर्थिक विपन्नता के कारण न चाहते हुए भी पंडित के साथ रहना उसकी मजबूरी बन जाती है । 'फौलाद का आकाश' कहानी की नायिका मीरा की घुटन भी परिस्थिति जन्य है ।

'उर्मिल जीवन' कहानी में जीवन की मजबूरी से उत्पन्न पीड़ा और घुटन को सशक्त अभिव्यक्ति मिली है । नीरा जब सात साल की बच्ची थी तब उसकी दीदी का विवाह हुआ था । दस–साल के बाद नीरा की दीदी की मृत्यु हो जाती है । पिता की मृत्यु पहले ही हो चुकी थीं सो माता ने आर्थिक और सामाजिक कारणों से मजबूर होकर नीरा का विवाह दो बच्चों के बाप अपने बड़े दामाद से कर दिया । विवाह के बाद नीरा का स्थान आज वह है जो एक महीने पहले उसकी दीदी का हुआ करता था । ''दस साल पहले एक अपिरिचत व्यक्ति को जीजा के रूप में देखा था आज उसी को पति के रूप में पहचानना है ।''[70] नीरा को एक महीने पहले की स्मृति हो आती है – ''जब आशा जीजी की चिता से चिनगारियाँ निकली थीं । चिनगारियों की ओट में कितना रोई थी वह ?''[71] और ''वैसी ही आग के चारों ओर जीजा ने

उसके साथ फेरे लिए । उसे लगा जैसे बहन की चिता के चारों ओर धूम रही है ।''

इस नये संबंध की कल्पना और व्याख्या के विषय में सोचकर नीरा का देह काँपने लगता है । नीरा यह शादी नहीं चाहती थी क्योंकि बचपन से ही उस व्यक्ति से जो उसके जीजा के रूप में सामने आया था उससे उसे बहुत चिढ़ थी । बरसों पहले भी जब जीजा ने उसे 'आओ नीरा रानी कहकर' उठाया था, तब ''दो मोटे मोटे होंठ, नाक के लम्बे बाल और विचित्र सी गंध । नीरा हिचकिचाई, पीछे हटी और फिर उसने उस व्यक्ति के गाल पर एक थप्पड़ लगा दिया ।''[72] किन्तु, बदली परिस्थिति में नीरा घरवालों के सामने बेबस हो चुकी थी और आज उसकी शादी उसी व्यक्ति से हो चुकी थी जिसे वह बिल–कुल भी पसंद नहीं करती थी । सुहागरात में उसके सामने वही बड़े होंठ, नाक के लम्बे बाल और विचित्र गंध वाला व्यक्ति आया पर वह चाह कर भी उसे थप्पड़ नहीं मार सकी ''नीरा हिचकिचाई । चाहा बाँहे झटक दे और जोर से तमाचा लगाए, जिससे सारा वातावरण झन्ना उठे... मगर हाथ नहीं उठ सका । आज वह नासमझ बालिका नहीं, समझदार नवयुवती है ।''[73] नीरा के जीवन की घुटन और पीड़ा को राकेशजी ने सशक्त अभिव्यक्ति दी है ।

'ग्लास टैंक' कहानी के सभी पात्र एक अदृश्य घुटन का शिकार है । जिनकी भौतिक आवश्यकताएँ तो शायद पूरी हो गयी है, परंतु 'इमोश्नल लाइफ' अधूरी रह गयी है । शोभा, नीरू, ममा, पिता, सुभाष सभी घुटन के शिकार है । कहानी का वातावरण ही 'ग्लास टैंक' जैसा है जहाँ सब साथ रहकर भी एक अजनबीपन को सहने के लिए अभिशिप्त है । 'ग्लास टैंक' कहानी आधुनिक मनुष्य की घुटन को सांकेतिक रूप में अभिव्यक्त करती है ।

(६) टूटन :

राकेशजी की कहानियो में संबंधों की कटुता और समाज की विषमता के कारण एकाकीपन और अजनबीपन का बोध इतना बढ़ गया है कि कुछ एक

कहानियों में पात्रों की टूटन और विखंडित स्थितियाँ भी सामने आयी है । 'भूखे' एक सुन्दर और आकर्षक अंग्रेजी महिला एलवीना बार्कर की कहानी है; जो भारतीय चित्रकार सत्यपाल से विवाह करके उसके साथ भारत आयी है । एलवीना फ्रांस में सत्यपाल को अपनी जमापूँजी देकर चित्रकला का अध्ययन पूरा कराती है । विवाह के बाद दोनों भारत आकर रहने का निश्चय करते है । यहाँ आकर उनके जीवन का संघर्ष शुरू हो जाता है । यह संघर्ष एलवीना और सत्यपाल को मुम्बई से दिल्ली तक लाता है । इस दौरान सत्यपाल को टी.बी. हो जाती है । एलवीना अपना सबकुछ बेचकर उसे शिमला लाती है । यहाँ आकर वह सत्यपाल और अपने बच्चे की देखभाल अकेली करती है । सत्यपाल की मृत्यु के बाद एक अजनबी शहर में अजनबियों के बीच वह पैसे के अभाव में परिस्थितियों से जूझती है । वह सत्यपाल के चित्रों को बेचना चाहती है पर उसे खरीदार नहीं मिलते, बल्कि उसे देखकर पुरुषों की वासना की लार अवश्य टपकती है । वह इन सबके बीच भी अपना चरित्र बचाएँ रखती है । किन्तु, जब वह अपने बच्चे की छोटी–छोटी इच्छाएँ भी पूरी नहीं कर पाती तो भीतरी टूटन का अनुभव करती हुई अंदर ही अंदर छील जाती है । ''एलवीन का लड़का सड़क पर मुँह फैलाए खड़ा था । एलवीन ने एक नज़र ऊपर जाती हुई लड़कियों पर डाली और बालरूम की रोशनी से चमकती हुई पर्देदार खिड़कियों पर से फिसलती हुई उसकी दृष्टि हमसे मिली, फिर बच्चे के कन्धे पर हाथ रखकर पुचकारती हुई वह आगे चल दी ।''[74]

बाहरी और आंतरिक परिस्थितियों के कारण व्यक्ति भीतर से तो कहीं न कहीं टूटना ही रहता है । किन्तु कुछ लोगों की विशिष्ट मानसिकता यह रहती है कि वह अपनी भीतरी टूटन को अंदर ही दबा के रखता है । और बाहरी दुनिया में दिखावा से उसे भरने का प्रयास करता है । 'मिस्टर भाटिया', 'जीनियस', 'गुनाह बेलज्जत' आदि कहानियों के पात्र बाहरी दुनिया में इस टूटन का अस्वीकार करने का दिखावा करने में प्रयत्नशील बने हुए है, फिर भी भीतर से कहीं–न–कहीं टूटा हुआ अनुभव करते हैं ।

'मिस्टर भाटिया' कहानी के मि. भाटिया बेरोजगारी के शिकार है । अतः उसकी आर्थिक स्थिति कुछ खास अच्छी नहीं है । ''उसके पास सवत्व के रूप में सिर्फ दो चीजें थीं एक अपना शरीर और दूसरे किराये का फ्लैट । था तो वह एक ही कमरा, मगर भाटिया उसके लिए फ्लैट से कम शब्द का प्रयोग नहीं करता था । बम्बई में जगह की किल्लत सदा ही रहती है, उन दिनों और भी ज्यादा थी । भाटिया किसी–न–किसी को अपने फ्लैट में 'पेईंग गेस्ट' बनाकर रख लिया करता था ।''[75] वह अपने खाने से ज्यादा लैटर पैड़ को महत्त्व देता है । मि. भाटीया जीवन में 'शोर्टकट' को अपनाकर कम समय में बड़ा आदमी बनने का सपना देखता है । इसी सिलसिले में वह रेसकोर्ष जाकर अपना भाग्य भी आजमाता रहता है । इसी दौरान उसकी मुलाकात कैप्टन केशव और उनकी बहन लीना के साथ होती है । कैप्टन केशव से मिलकर वह रेस कार्ड निकालने का प्लान करता है । वह कथानायक को बताता है कि ''हम लोग रेस कार्ड निकाल रहे हैं । कैप्टन कैशव और मैं । कैप्टन केशव का पैसा लगेगा और मेरा दिमाग । उन्हें मेरे कैल्क्युलेशन पर बहुत विश्वास है । तुम भी देख लेना, जिस घोड़े पर पैंसिल रख दूँगा, वही जीतेगा ।''[76]

कैप्टन केशव से मिलकर उसे (मि. भाटिया) को लगता है कि बड़ा आदमी बनने की उसकी इच्छा अब जलदी ही पूरी होंगी । वह 'रेस कार्ड' और लीना के चक्कर में पड़कर उधार के पैसे लेकर खर्च करता है । किन्तु, कैप्टन केशव का तबादला हो जाने पर उसके सारे सपने चुर–चुर होकर बिखर जाते हैं । इस निराशा की हालत में वह कथानायक 'मैं' से कहता है कि ''मुझे आत्महत्या कर लेनी चाहिए ।''[77] और ''यही समझ लो कि मैं कुचला गया, मारा गया और दफना दिया गया ।''[78] उधार लिये पैसे वापस करने के लिए उसे अपना फ्लैट पाँच हजार रुपये में बेचना पड़ता है । अंत में उसे बेरोजगारी और आर्थिक संकट में अपनी किताबें भी सस्ते दामों पर बेचनी पड़ती है । लेकिन वह इस भीतरी टूटन को किसी के सामने आने नहीं देता । ''तीन हजार रुपये मेरी रोज की आमदनी होगी ।'' यह कहनेवाला मि.

भाटिया अंत में एक साधारण सी लड़की के साथ शादी करने के लिए तैयार हो जाता है; क्योंकि वह दहेज में तीन हजार रूपयें लायेंगी जिन्हें वह फिर से रेस में लगा सकेगा ।

मि. भाटिया एक ऐसा व्यक्ति है जो आर्थिक अभाव में जीना नहीं चाहता और अच्छी आर्थिक स्थिति करने की उद्दाम लालसा रखता है । पार पाने के लिए 'शोर्टकट' को अपनाकर अपने सपनों को पूरा करना चाहता है । किन्तु उसके विचार व्यर्थ और काल्पनिक होने के कारण उसे सफलता नहीं मिलती । फिर भी वह अपनी जिजीविषा बनाए रखता है और फिर से उसी 'शोर्टकट' पर चलने की तैयारी दिखाता है । पर वास्तविकता तो यहीं है कि वह भीतर से टूट चुका है । फिर भी इस टूटन का अस्वीकार करके यथार्थ से नज़र चुराने का प्रयास करता है । " 'शोर्टकट' को अपनाकर अनायास आर्थिक स्थिति को सुधारने की मध्यवर्गीय मानसिकता 'मिस्टर भाटिया' में है । आर्थिक सम्पन्नता से परिपूर्ण जीवन जीने का उसका मध्यवर्गीय सपना उसकी स्थिति को और अधिक विपन्न बना देता है । वह मिस्टर भाटिया से भाटिया की विडंबनापूर्ण स्थिति में पहुँच जाता है ।"[79]

'जीनियस' एक ऐसे व्यक्ति की कहानी है जो हर दृष्टि से साधारण है, किन्तु वह खुद को 'अदना इन्सान' कहकर भी स्वयं को अन्य लोगों से असाधारण साबित करता है । यहाँ तक कि वह शेक्सपियर, टाल्सटाय तथा गोर्की और टैगोर आदि को हेय समझता है । उसके विचार से "शेक्सपियर सिर्फ एक वर्ड था, और अगर मार्लोवाली कहानी सच है, तो इस बात में ही संदेह है कि शेक्सपियर शेक्सपियर था । टॉल्सटाय, गोर्की और चेखव जैसे लेखकों को मैं अच्छे कोपीइस्ट समझता हूँ ।"[80] उनकी दृष्टि में जीनियस एक 'फिनोमेना' होता है एक प्रकाश होता है, जिसे केवल महसूस किया जा सकता है । उनका कहना है कि "मैं एक फिनोमेना से परिचित हूँ । मेरा उसका हर रोज़ का साथ है, और मैं अपने को उसके सामने बहुत तुच्छ बहुत हीन अनुभव करता हूँ ।"[81] वह आगे कहता है "उसमें सचमुच वह चीज है जो

दूसरे को ऊँचा उठा सकती है । मैं तब उसका रेडिएशन देखा करता हूँ । उसके अंदर की हलचल महसूस कर सकता हूँ । जिस तरह अभी–अभी वह कबूतर पँख फड़फड़ा रहा था, उसी तरह उसकी आत्मा में हर समय एक फड़फड़ाहट, एक छटपटाहट–भरी रहती है । उस छटपटाहट में ऐसा कुछ है जो यदि बाहर आ जाए, तो चाहे ज़िन्दगी का नक्शा बदल दे । मगर उसे उस चीज को बाहर लाने का मोह नहीं है । उसकी दृष्टि में अपने को बाहर व्यक्त करने की चेष्टा करना व्यवसाय बुद्धि है, बनियापन है । और इसलिए मैं उसका इतना सम्मान करता हूँ । मैं उससे बहुत छोटा हूँ बहुत बहुत छोटा हूँ परंतु मुझे गर्व है कि मुझे उससे स्नेह मिलता है ।"[82]

वह जीनियस फिनोमेना की तुलना स्वयं से करते हुए कहता है "मैंने जीवन में बहुत भूख देखी है – हरवक्त की भूख – और अपनी भूख से प्रायः मैं व्याकूल हो जाता हूँ । परन्तु जब उसे देखता हूँ मैं शर्मिन्दा हो जाता हूँ, भूख उसने भी देखी है, और मुझसे कहीं ज्यादा भूख देखी है – परन्तु मैंने कभी उसे जरा भी विचलित या व्याकुल होते नहीं देखा । वह कठिन से कठिन अवसर पर भी मुस्कराता रहता है ।"[83] अंत में वह इस फिनोमेना को अपना इनरसेल्फ कहता हुआ स्वयं को ही 'जीनियस' सिद्ध कर देता है । वास्तव में यह कहानी भूख से पीड़ित परिस्थितियों से निरंतर जूझ रहे ऐसे व्यक्ति की है जो स्वयं को श्रेष्ठ साबित करने के प्रयास से भीतर की टूटन और जकड़न को बाहरी दिखावे से भरने का प्रयत्न करता दिखाई देता है ।

'गुनाह बेलज्जत' सुन्दरसिंह और उसकी पत्नी भागवन्ती के जीवन के भीतरी टूटन की कहानी है । सरदार सुन्दरसिंह नपुसंक पुरुष है । वह अपना पौरुषत्व अपनी पत्नी भागवन्ती के सामने प्रतिष्ठित करने की कोशिश करता है । किन्तु उसके लाख चाहने पर भी वह भागवन्ती को यह विश्वास नहीं दिला पाता कि उसने कभी शहर की पेशावर लड़की सुन्दरी को अपने घर बुलाकर उसने अपने अरमान पूरे करने का प्रयास किया था । भागवन्ती सुन्दरसिंह की बात सुनकर कहती है – "रहने दो सरदारजी मन के लड़डू मत फोड़ो । उसे आप ही के पास आना था । जाओ जाकर रोटी खा लो ।

और नहीं खानी है तो बती बुझाकर सो रहो । सारी उम्र बीत गयी आपको सपने देखते ।''[84] सुन्दरसिंह अपनी बात की स्वीकृति कराने के लिए जेल–जाने को भी तैयार हो जाता है । सुन्दरसिंह को पौरुषत्व की स्वीकृीत न तो सुन्दरी से मिलती है और न अपनी पत्नी भागवन्ती से । इस घटना के बाद वह भीतरी टूटन का अनुभव करता हुआ आत्मदूत्कार करता है ।

'चौगान' कहानी का हैरी विलसन पत्नी लिज़ी से विवाह संबंधों की असफलता के कारण तलाक लेकर लन्दन से भारत लौट आता है । वह पुनः अपना जीवन नये सिरे से शुरू करना चाहता है । इस नये परिवेश में वह अपने से कम उम्र की लड़की (सन्तो) को पैसे के बल पर अपने साथ रखता है । उसके एकाकीपन को सन्तो देह के स्तर पर भरने का प्रयास करती है । किन्तु हैरी विलसन संबंधो में आत्मीयता के अभाव में टूटता है । 'रोज़गार' कहानी की मिस दारूवाला अपने और अपने भाई जमशेद के निर्वाह के लिए 'कोलगर्ल' बनने के लिए मजबूर है । उसकी यह आर्थिक विवशता उसे जमशेद की बहन से 'टैक्सी' बनाकर रख देती है । अपनी बिमारी के कारण कई दिन अस्पताल में रहने के पश्चात् जब वह होटेल में अपने भाई को मिलने आती है । किन्तु अपने भाई को यहाँ न पाकर आत्मीय रिश्ते के अभाव में मानसिक गुत्थियों में उलझकर टूटती बिखरती नज़र आती है ।

(७) तनाव :

स्वातंत्र्योत्तर युग की सामाजिक, वैयक्तिक राजनैतिक, आर्थिक आदि परिस्थितियों ने मनुष्य को तनाव के बीच जीने को बाध्य कर दिया है । दूसरे शब्दों में कहे तो तनाव आधुनिक मनुष्य के जीवन के साथ अभिन्न रूप से जुड़ गया है । क्योंकि अभाव, एकाकीपन, भीतरी टूटन, ऊब, निर्णय–अनिर्णय का दर्द, हीनता, कुंठा, संत्रास आदि स्थितियों से तनाव उपस्थित हो रहा है । साथ ही आज शिक्षा के प्रचार–प्रसार के कारण व्यक्ति अपने कर्तव्यों और अधिकारों के प्रति भी जागरूक एवं सचेत है । वह अपनी महत्त्वकांक्षा को भी

लिए हुए है । आधुनिक बुद्धिजीवियों का दुर्भाग्य यह भी है कि वह समझौता या समर्पण करना नहीं चाहता है ।

साथ ही ''पुराने मूल्यों की टूटन और बिखराव नयी मान्यताओं की अस्वीकृति, रुग्ण सेक्स, बदलते स्त्री–पुरुष संबंध, बुजुर्गो के पुराण पंथी संस्कार आदि को सहज रूप में स्वीकार न कर पाने की अक्षमता के कारण आज व्यक्ति एक अजीब–सी विकट स्थिति में है । इसके अतिरिक्त आर्थिक विपन्नता और निरंतर बिगड़ते पारिवारिक संबंध तनाव के मूल कारण है ।''[85] राकेशजी की कहानियों में तनावग्रस्त व्यक्तियों की दशाओं एवं तनावपूर्ण परिस्थितियों का सूक्ष्मता से अंकन हुआ हैं ।

आलोचकों ने राकेशजी की कहानियों का विवेचन करते हुए स्पष्ट किया है कि उनकी कहानियों के ज्यादात्तर पात्रों के चेहरे पर तनाव की लकीरें हैं । उनका घर टूट चुका है । उसका व्यक्तित्व घर की खोज में है और व्यक्ति की खोज घर में है । 'एक और ज़िन्दगी' के पति–पत्नी प्रकाश और बीना तनाव के साथ जीते हैं । दोनों ही शिक्षित और बौद्धिक है अतः अपने–अपने अस्तित्व और महत्त्वकांक्षा को लेकर एक–दूसरे से समझौता नहीं कर पाते है । फलतः दोनों के अहं की टकराहट से यह संबंध विच्छेदन की स्थिति तक पहोंच जाता है । कुछ सालों बाद परिस्थिति उन्हें शिमला की पहाड़ी पर फिर से एक दूसरे के सामने लाती है । प्रकाश और बीना पलाश के कारण एक दूसरे से मिलने के लिए मजबूर है । प्रकाश न छूटी हुई ज़िन्दगी को छोड़ पाता है और न चुनी हुई ज़िन्दगी को अपना पाता है । परिणामतः अकेलेपन और भटकाव की स्थिति से गुजरता हुआ तनाव से क्षत–विक्षत होता रहता है । 'फौलाद का आकाश' कहानी में मीरा और रवि के बीच तनाव है । यह तनाव रिश्ते के बीच से समाप्त हो रही संवेदना और बढ़ती हुई औपचारिकता के कारण पैदा हुआ है । मीरा भावुक एवं संवेदनशील है जबकि रवि पक्का आंकड़ाबाज है । फलतः मीरा रवि को अपने से दूर महसूस करती है उसे लगता है कि उसके और रवि के बीच मात्र औपचारिक शारीरिक संबंध ही रह गये है । मीरा की यह सोच उसके जीवन में तनाव भर देता है । 'गुंझल'

कहानी में चंदन और कुन्तल के बीच सामंजस्य की कमी और कुन्तल का अहं पति–पत्नी के बीच तनाव भर देता है ।

'आखिरी सामान' कहानी की मिसेज़ बेला भण्डारी अपने महत्त्वकांक्षी कैरियरिस्ट पति की मानसिक उत्पीड़न का शिकार है । पति अपनी पदोन्नति के लिए अपनी पत्नी को अपने उच्चाधिकारी को सौंपने के लिए तैयार हो जाता है ताकि वह उच्चपद पा सके । किन्तु मिसेज़ भण्डारी उच्चाधिकारी की कामुकता से स्वयं की रक्षा करने में सफल हो जाती है । इस घटना के बाद पति–पत्नी के बीच असामन्जस्य और तनाव बढ़ता जाता है । ''वे कई–बार रात को घर आते ही नहीं । सुबह नास्ते के समय भी उनमें बातचीत नहीं होती । किसी चाय पार्टी पर उन्हें साथ जाना पड़ता तो भी सारा समय वह खिंचाव बना रहता ।''[86] पति की गिरफ्तारी के बाद उनकी मुक्ति का उपाय खोजती हुई वह अपने घर का सामान नीलाम करवाती है । इस समय उसकी मानसिक पीड़ा और तनाव और गहरा गया है । पति की मानसिकता के कारण सामने आयी परिस्थितियों ने मिसेज़ बेला भण्डारी के जीवन में तनाव, दर्द और बिखराव भर दिया है ।

'जानवर और जानवर' कहानी के सभी पात्र पादरी के आतंक के कारण अपने भविष्य की चिंता में तनाव महसूस करते है ।

'क्वार्टर' कहानी पति शंकर और पत्नी राधा के बीच के तनाव को मुखरित करती है । यह तनाव पति–पत्नी के बीच मिसेज़ शर्मा और सरोज जैसी किसी तीसरी व्यक्ति के कारण पैदा हुआ है । 'अर्ध–विराम' कहानी के पति पत्नी भी तीसरे व्यक्ति की उपस्थिति के कारण तनाव अनुभव करते हैं ।

'मिस पाल' कहानी की मिस पाल अपने मोटापे और कुरूपता के कारण निरंतर तनाव में जीती है । वह अपने दफ्तर के साथियों के बीच रहते हुए मानसिक तनाव की स्थिति में ऊब और अकेलापन महसूस करती है । क्योंकि उसके सहकर्मी उसके पीछे हंमेशा ही कोई न कोई टिप्पणी करते रहते है । वह अपने दफ्तर के इस तनावपूर्ण वातावरण से इतनी त्रस्त हो चुकी है । अतः अपनी नौकरी छोड़कर कुल्लू के पास के एक छोटे से गाँव में आकर

बस जाती है । 'सीमाएँ' कहानी की उमा भी अपनी कुरूपता के कारण सभी के बीच तनाव और खिंचाव महसूस करती है ।

(८) ऊब :

घुटन, टूटन, तनाव आदि स्थितियों में अलावा राकेशजी की कहानियों में व्यक्ति के जीवन में व्याप्त हो रही ऊब के चित्रण भी मिल जाते है । ऊब का प्रमुख कारण आज का यांत्रिक जीवन है । जहाँ उत्साह, गतिशीलता समाप्त हो चुके है । फलतः जीवन में एकरसता और निषक्रियता से ऊब अधिक फैली हुई नज़र आती है । 'खाली' कहानी की नायिका तोषी जीवन की एकरसता और खालीपन से ऊब चुकी है । उसी घर में, उसी चीजों के साथ तथा अपने पति जुगल के शंकाशील स्वभाव के कारण वह ऊब अनुभव करती है – ''लगातार कुछ नहीं था । 'लगातार' थी सिर्फ यह ज़िन्दगी जो आठ साल से जुगल के साथ जी जा रही थी । साथ रहकर सब कुछ से, यहाँ तक कि एक दूसरे से भी खाली होते जाने की ज़िन्दगी ।''[87]

जुगल सुबह से शाम तक दफ्तर के कागजातों मे उलझा रहता था है । जुगल का शक्की स्वभाव तोषी के शरीर से ही उलझा रहता है । साथ ही बाहरी की दुनिया से सिर्फ एक दो लोगों से जुड़ा हुआ होना – आदि कारणों से तोषी ऊब गयी है । ''जुगल के साथ रहते हुए उसकी ज़िन्दगी बाहर की दुनिया से उत्तरोत्तर कटती गई थी । जुगल को उसके मायके के लोग से चिढ़ थी, अपने घर के लोगों से चिढ़ थी, पास पड़ोस के लोगों से चिढ़ थी, हर आने जाने वाले से चिढ़ थी । कभी–कभी तो लगता था कि उस आदमी को सिवाय अपने, हरएक से चिढ़ है, बल्कि अपने आप से भी चिढ़ है ।''[88] तोषी जुगल के साथ जीये जा रहे एकरस जीवन से ऊबी हुई है । और वह खुद भी चिढ़ती रहती है – ''तोषी को फिर वहीं चिढ़ हो रही थी । वह समझ नहीं पा रही थी किस चीज से । अपने से कमरे के कोने–कोने में लदे सामान से ? खिड़की से कमरे में फैल आई धूप से ? ।''[89] तोषी घर की यांत्रिक दिनचर्या और खालीपन से ऊब चुकी है । फलतः जीवन मे से

‘‘संबंधों की गर्मी रीत गयी है और चिड़चिड़ापन जीवन का पर्याय बन गया है ।’’[90]

‘मिस पाल’ कहानी की मिस पाल भी अपने दिल्ली के जीवन की यांत्रिकता से ऊब गयी है । वह रणजीत से कहती है – ‘‘मुझे लगता है, मैं खामखाह यहाँ अपनी ज़िन्दगी बरबाद कर रही हूँ । मेरी समझ में नहीं आता कि इस तरह की ज़िन्दगी जीने का आखिर मतलब ही क्या है ? सुबह उठती हूं, दफ्तर चली जाती हूँ । वहाँ सात–आठ घंटे खराब करके घर आती हूं; खाना–खाती हूँ और सो जाती हूँ । यह सारा का सारा सिलसिला मुझे बिलकुल बेमानी लगता है ।’’[91]

आधुनिक जीवन में बढ़ रही यांत्रिकता और एकरसता ने जीवन में ऊब भर दी है । हर एक व्यक्ति इस ऊब से दूर रहना चाहता है किन्तु जीवन कुछ इस तरह ढल गया है कि ऊब के साथ जीना आज के व्यक्ति की नियति बन गया है ।

(६) कुंठा और हीनता :

राकेशजी की कहानियों में कुछ एक ऐसे पात्र भी है तो अपनी कुरूपता, भद्दीशक्ल, मोटापा, और शारीरिक मर्यादाओं के कारण उपेक्षितों का जीवन बिताने के लिए मजबूर है । जिसके परिणाम स्वरूप यह व्यक्ति–कुंठा और हीनता से ग्रस्त होकर हताशा, एकाकीपन, अजनबीपन, उदासी, निराशा के साथ जीते नज़र आते है । ऐसे पात्रों में जीवन का कोई भी चिन्ह शेष नहीं दिखाई देता है । इनका व्यवहार इनके भीतर की रिक्तता, स्पष्ट कर देता है । ‘मिस पाल’, ‘सीमाएँ’, ‘पहचान’, ‘गुनाह बेलज्जत’ आदि कहानियों के पात्र इसी कोटि के हैं ।

‘मिस पाल’ कहानी की मिस पाल अपने मोटापे और कुरूपता के कारण समाज के लोगों के बीच उपहास का पात्र बन गयी है । उसको सहसा देखकर यह तय करना मुश्किल हो जाता है कि वह औरत है या मर्द । कुरूपता और मोटापे से उसके भीतर कुंठा और हीनता उत्पन्न हो गयी है ।

यह हीनता और कुंठा उसे सहज–जीवन नहीं बिताने देती । मिस पाल स्वयं को सजाने–सँवारने का प्रयत्न करती है, लेकिन इससे लोगों का ध्यान उसकी ओर अधिक आकर्षित होता है । ‘‘वह शायद अपने मोटापे की क्षतिपूर्ति के लिए ही बाल छोटे कटवाती थी, बगैर बाँह की कमीज़ें पहनती थी और बनाव सिंगार से चिढ़ होने पर भी रोज़ काफी समय मेक–अप पर खर्च करती थी ।’’[92] लेकिन दफ्तर के लोग उसकी किसी न किसी बात को लेकर टिप्पणी कर देता ‘‘क्या बात है मिस पाल, आज रंग बहुत निखर रहा है । आजकल मिस पाल पहले से स्लिम भी तो हो रही है ।’’[93] या फिर ‘‘मिस पाल इस नयी कमीज़ का डिज़ाइन बहुत अच्छा है । आज तो गजब ढा रही हो तुम !’’

मिस पाल अपनी कुरूपता के कारण उत्पन्न हीनता से हर समय पलायन करना चाहती है । दफ्तर के साथियों के उपहास से तंग आकर वह दिल्ली की नौकरी से इस्तीफा देकर कुल्लू के पास के छोटे से गाँव रायसन में आकर रहने लगती है । लेकिन यहाँ आकर भी उसके बाह्य देखाव को लेकर लोग मज़ाक उड़ाते है । यहाँ तक कि बच्चे भी उस पर हँसते है ।

मिस पाल के जीवन की हीनता ग्रंथि की डोर बार–बार चेतना के स्तर पर पहुँच जाती है । वह रणजीत से कहती है ‘‘होशियारपुर में उसने भृगुसंहिता से अपनी कुंडली निकलवाई थी । उस कुंडली के फल के अनुसार इस जन्म में उस पर यह शाप है कि उसे कोई सुख नहीं मिल सकता – न धन का, न ख्याति का, न प्यार का ।’’[94]

‘मिस पाल’ कहानी में एक मोटी भद्दी स्त्री के मन की संवेदना और उसके जीवन की विडंबनाओं को राकेशजी ने सशक्त ढंग से प्रस्तुत किया है । वह जीवन की सार्थकता को भी अपनी इसी हीनता ग्रंथि के कारण ही नहीं ढूँढ़ पाती, और अंततः उसकी यह स्थिति उसे व्यथा ही देकर जाती है ।

‘सीमाएँ’ हीन भावना से ग्रस्त एक लड़की उमा की कहानी है । वह वयःसंधि से गुजरती हुई नवयुवती है, जो अपने असुन्दर होने की हीन भावना से ग्रस्त है । सुंदर से सुंदर और अच्छे से अच्छे गहने और वस्त्र भी उस

पर नहीं सुहाते । यह हीनता उस पर हंमेशा हाबी होती दिखाई देती है । वह अपनी सहेली रक्षा के साथ विवाहोत्सव में जाने की तैयरी में बनाव श्रृंगार करती है; किन्तु इससे उमा की कुंठा अधिक बढ़ जाती है । वह अपनी सहेली रक्षा से हंमेशा अपनी तुलना करती है जिससे उसके मन में हीनता का भाव अधिक बढ़ जाता है । क्योंकि उसे लगता हे ''कीमती से कीमती कपड़े उसके अंगो को छूकर जैसे मुरझा जाते थे । रक्षा सवेरे साधारण खादी के कपड़े पहनकर आयी थी, फिर भी बहुत सुन्दर लग रही थी । उमा खिड़की से हटकर शीशे के सामने चली गयी । मन में फिर वही झुझलाहट उठी । आज वह इतने लोगों के बीच जाकर कैसी लगेगी ?''[95] अपने इसी भाव के कारण अब वह रक्षा के साथ विवाह में जाना नहीं चाहती और सोचती है कि – ''माँ ने सुबह मना कर दिया होता तो कितना अच्छा था ? अब भी यदि वह रक्षा से ज्वर या सिरदर्द का बहाना कर दे... ।''[96] उमा अपनी कुंठा का भाव छूपाने के लिए अपने मन को तरह–तरह से सहारा दे रही है ।

उमा की माँ ने विवाह में पहनने के लिए नया सफेद साटिन का सूट लाकर दिया । उमा ने उसे शरीर से लगाकर देखा । उसे बिलकुल अच्छा नहीं लगा । उसे लगा कि उससे उसके अंगो का भद्दापन और व्यक्त हो गया है । वह मन ही मन सोचती है – ''यदि उसकी कमर कुछ पतली और नीचे का हिस्सा जरा भारी होता तो ठीक था । यदि उसकी होश में ही उसका पुनर्जन्म हो जाए और उसे रक्षा जैसा शरीर मिले, तो वह इस सूट में कितनी अच्छी लगे ।''[97] माँ उसे प्रसाधन के लिए पाउडर, क्रीम, लिपस्टिक, नेलपालिश आदि कई चीजे देती है । उमा ने उन्हें कई बार सुंघा पर अपने शरीर पर उनके प्रयोग की कल्पना नहीं की । किन्तु जब माँ ने कहा तो वह मना नहीं कर सकी । वह यह सोचकर प्रसाधनों का प्रयोग करने लगी कि अगर अच्छा नहीं लगा तो पल भर में तौलिये से पोंछ देगी । किन्तु जैसे ही उमा लिपस्टिक और पफ पावडर को अपने चेहरे पर लगाती है सीढ़ियो पर पैरों की खट–खट सुनाई देती है और ''इससे पहले कि वह तौलिये से मुंह छिपा पाती, रक्षा दरवाजा खोलकर कमरे में आ गयी । उमा के लिए अपना

आप भारी हो गया । उमा को इस प्रकार तैयार हुआ देखकर रक्षा के मुस्कुराहट भरे शब्द ''तैयार हो गयी, परी रानी ?''[98] उसे चुभती हुई चोट जैसे लगे ।

अपनी इसी स्थिति के साथ ब्याहवाले घर में पहुँची उमा की स्थिति को राकेशजी ने अधिक सूक्ष्मता के साथ रेखांकित किया है । यहाँ सब के बीच आकर भी उमा खुद को सबसे दूर अनुभव करती है । यहाँ तक कि कोई उसकी तरफ देखता भी है तो उसे अपनी हीनता का अनुभव होता है । ''उसके सामने जो दो स्त्रीयां बैठी थी, वे उसी की ओर देखकर कोई बात कर रही थीं । उमा को लगा कि वे उसीकी बात कर रही हैं – शायद उसके कपड़ों की आलोचना कर रही है ।''[99] ब्याह के आनंदपूर्ण वातावरण में भी उमा उदास है । वह हँसती भी है तो बेमन और बेमतलब क्योंकि ''वहा इतने अपरिचित लोगों की उपस्थिति, चहल–पहल और सजावट, सब कुछ उसे बेगाना लग रहा था । यदि सहसा उसे सुनसान अँधेरे जंगल में पहुँचा दिया जाता, जहाँ चारों और बिलकुल नीरवता होती तो उसे निश्चय ही अब से अच्छा लगता । परंतु वहाँ उस चुलबुलाहट, छेड़छाड़ और दौड़–धूप में उसकी तबीयत उखड़ रही थी..... ।''[100]

उमा विवाहोत्सव पूरा होने से पहले ही सिरदर्द का बहाना करके घर आ जाना चाहती थी, लेकिन रक्षा ने उसे वही रोक दिया । सरला को दुल्हिन के वेश में देखकर वह उसे बस देखती रह गयी । सरला उसकी और देखकर मुसकराई तो वह उसके होठों की सलवटें देखती रह गयी । वह उत्तर में यूँ ही मुसकरा दी हालांकी अपनी वह व्यर्थ मुसकराहट उसके हृदय में चुभ सी गयी । ''उमा के हृदय में वह चुभता हुआ अनुभव उसी तरह था, जैसे कोई काँटा अंदर टूटकर रह गया हो । वह अपनी स्थिति का निर्णय नहीं कर पा रही थी ।''[101]

विवाहोत्सव से निकलकर वह मंदिर के उत्सव में जाती है । वहाँ वह स्त्रीयों की पंक्ति में खड़ी हो जाती है । उमा अनुभव करती हे कि एक युवक लगातार उसकी और देखता जा रहा है । भीड़ का फायदा उठाकर वह युवक

उसको स्पर्श करता है तो वह अपूर्व आनंद का अनुभव करती है । इस समय उमा अनुभव करती है कि वह बिलकुल अनाकर्षक नहीं है उसमें भी रक्षा और सरला की तरह कुछ बात अवश्य है । यह असाधारण क्षण उसको बिलकुल नयी–सी अनुभूति में छोड़ जाते है । उमा अपनी कुंठा और हीनता को भूलाकर खिलखिलाकर हँसना चाहती है । किन्तु कुछ ही क्षणों के बाद जब वह होश में आती है तो अनुभव करती है कि उसके गले की जंजीर उसके गले में नहीं है । वह युवक उसे चुराकर ले गया है । इस घटना से उमा के मन में हीनता और कुंठा का भाव और सुदृढ़ हो जाता है । ‘‘इस कहानी में यह अंत ‘एन्टीक्लाइमेक्स’ जैसा है । उमा की जंजीर नहीं, बल्कि उसके सारे सपने और भावनाओं पर डाका पड़ता है । असुन्दर होने की हीन भावना सुदृढ़ हो जाती है कि उसके रूप पर कोई भी आकर्षित नहीं होगा ।’’[102]

‘पहचान’ कहानी का शिवजीत हार्निया की बिमारी के कारण कमर में पेटी बाँधे रहता है । इस बिमारी के कारण डॉक्टर अवरोल के घर में तथा स्कूल में हीनता का अनुभव करता है । ‘‘... मसाने पर पेशाब का दबाव । पर अभी पेशाब रोके रहेगा । घर आकर करेगा । यह घर अवरोल अंकल का है । उनके बच्चों में से कोई देख लेगा कि उसने हार्निया की पेटी बाँध रखी है तो ? ।’’[103] वह स्कूल में भी इसी वजह से पेशाब रोके रहता था, क्योंकि वह सोचता है ‘‘अगर लड़कों ने उसकी पेटी देख ली तो ? घर आते ही दौड़ता हुआ बाथरूम जाता था ।’’[104] शिवजीत जब कभी अपने पापा को मिलने दिल्ली जाता है तब भी वह अपना पेशाब रोके रहता है । उसे डर है कि कहीं आंटी को पेटी का पता चल गया तो ? शिवजीत अपनी हार्निया की बिमारी के कारण हीनता का शिकार है ।

शिवजीत की परेशानी उस स्थिति पर पहुँचकर अधिक बढ़ जाती है जब उसकी माँ डॉक्टर अवरोल के साथ विवाह कर लेती है । नये वातावरण और डॉ. अवरोल के बच्चों के बीच अपनी हीनता के कारण वह अजनबी बन जाता है । यहाँ आकर वह अपनी बिमारी से उत्पन्न होनेवाली स्थिति के विषय में ही सोचता रहता है – ‘‘अब चाहे जो हो जाए, वह रात को

बिस्तर में पेशाब नहीं निकाल देगा । अवरोल अंकल और उनके बच्चों के सामने कभी पेटी नहीं बदलेगा । मम्मी से कह देगा कि किसी को उसकी पेटी की बात न बतलाए... ।''[105] साथ ही मम्मी के नये रिश्ते के कारण वह शिवजीत सचदेव से शिवजीत अवरोल बना दिया जाता है । पहचान बदल जाने के कारण स्कूल के आध्यापकों और सहपाठियों की उपेक्षा का शिकार बनता नज़र आता है । यह परिस्थिति भी शिवजीत की हीनता और कुंठा में बढ़ावा करने वाली साबित होती है । क्योंकि... उसकी मम्मी ने कहा था – ''अवरोल अंकल नहीं ... अब से वे पापा हे तुम्हारे ।''[106] उसके सहपाठी भी उससे पूछते हैं – ''क्यों शिवजीत डॉक्टर अवरोल एम.बी.बी.एस. क्या लगते है तुम्हारे ?''[107] मिस मैथ्यु ने शिवजीत सचदेव की जगह शिवजीत अवरोल नाम लिया, तो सारी क्लास में एक झिनझिनाहट दौड़ गयी थी । ''मिस मैथ्यु की जबान सचदेव बोलते बोलते अटककर अवरोल कह पाई थी । वह जानता था उस दिन से उसे इस नाम से बुलाया जाएगा मगर उस वक्त उसे कुछ ऐसा लगा जैसे भरी क्लास में उसकी नेकर उतारकर उसे नंगा खड़ा कर दिया गया है ।''[108] पति–पत्नी के टूटते–संबंध और फिर बनते नये संबंध बच्चों पर पड़ने वाला प्रभाव उनमें हीनता और कुंठा का भाव भर देता है । इस स्थिति को राकेशजी ने 'पहचान' कहानी में यथार्थ के साथ निरूपित किया है ।

'गुनाह बेलज्जत' कहानी का सुन्दरसिंह नपुसंक पुरुष है । सरदार सुन्दरसिंह की पत्नी भागवन्ती उसकी इस मर्यादा के कारण उसे लताड़ती है । सुन्दरसिंह अपनी इस हीनता को दूर करने के लिए पेशावर लड़की सुन्दरी को भागवन्ती की गैर हाजरी में अपने घर बुलाता है । किन्तु सुन्दरी के साथ भी वह अपनी शारीरिक कमी के कारण अपने अरमान पूरा करने में सफल नहीं होता । उसने सोचा था कि उस दिन सुन्दरी के साथ वह अपने चालीस बरस के सारे अरमान निकाल देगा किन्तु ''अढ़ाई घंटे में अपने अरमान निकालने की भूमिका भी तैयार नहीं कर पाता ।''[109] साढ़े बारह बजे हरजीतकौर सुन्दरी को लेने आती है तब सुन्दरसिंह उनसे अनुरोध करता है कि वह

सुन्दरी को दुगने पैसे देकर कुछ देर और उसे अपने पास रखना चाहता है । ''मगर सुन्दरी ने एक मितलाहट भरी नज़र से उसकी तरफ देखा, जैसे वह इन्सान न होकर एक चलता–फिरता दवाईखाना हो, और बेरुखी से सीढ़ियों की तरफ चली गई ।''[110]

सुन्दरसिंह भागवन्ती को यह विश्वास दिलाना चाहता है कि उसने एक बार सुन्दरी को अपने घर बुलाकर अपना अरमान पुरा करना चाहा था । किन्तु भागवन्ती सुन्दरसिंह के स्त्रौण पुरुषत्व को पहचानती हुई उस पर विश्वास नहीं करती । भागवन्ती का कथन है कि ''रहने दो सरदारजी; मन के लड्डू मत फोड़ो । उसे आप ही के पास आना था । जाओ जाकर रोटी खा लो । और नहीं खानी है तो बती बुझाकर सो रहो । सारी उम्र बीत गई आपको सपने देखते ।''[111] सुन्दरसिंह को अपने पुरुषत्व की स्वीकृति न तो सुन्दरी से मिलती है और न ही भागवन्ती से । इससे वह आयने के सामने खड़ा होकर आत्मदूत्कार करता हुआ कहता है – ''सुन्दरसिंह तू गधा है, तू बैंगन है, तू आमरूद है'' कहकर उसने दो तीन बार अपने मुंह पर चपत मारी और पगड़ी लपेटने लगा । पगड़ी लपेटकर उसने फिर एक बार अपने मुंह पर चपत मारी । ''सुन्दरसिंह तू शलगम है शलगम । तू होटल छोड़ और ठेला चला ।''[112] सुन्दरसिंह की शारीरिक कमी ने उसे उपहासपूर्ण स्थिति में पहुँचा दिया है ।

(१०) संत्रास :

संत्रास के बीच जीना स्वातंत्र्योत्तर युग के व्यक्ति की नियति है । यह संत्रस जैविक मृत्यु का है लेकिन मृत्यु से भी एक और दारुण संत्रास है । इसका विश्लेषण करते हुए कमलेश्वर कहते हैं – ''आज का मनुष्य आसन्न संकट और अपनी संश्लिष्ट परिस्थितियों की ओर अभिमुख है । उसके अस्तित्व के लिए केवल अणु युद्ध और मृत्यु का खतरा नहीं है यह मौत तो बड़ी बेकार और क्रूरता से भरी अर्द्ध प्राकृतिक मौत है । इससे भी बड़ी और बेकार मौत एक और है – वह आदमी के अपने विचारों, जीवन स्त्रोतों,

स्वाधीनता, निर्णय शक्ति और जीवन तंतुओं की मौत है । भयावहता तो इसी मौत की है । संत्रास और यातना भी इसी मौत के कारण हैं ।"[113]

राकेशजी ने अपने जीवन का लंबा समय बड़े शहरों में गुजारा था । अतः दिल्ली और मुम्बई जैसे महानगरों की विद्रूपता को उन्होंने अति निकटता से देखा और भोगा था । इन महानगरों में व्यक्ति को अपना अस्तित्व बनाये रखने के लिए संत्रास को झेलना पड़ता है । यह संत्रास 'एक ठहरा हुआ चाकू' 'ज़ख्म' 'पांचवें माले का फ्लैट' आदि कहानियों में रेखांकित हुआ मिलता है ।

'एक ठहरा हुआ चाकू' कहानी शहेरी जीवन की गुंडागर्दी और असुरक्षा के बीच एक सामान्य व्यक्ति की संत्रस्त ज़िन्दगी को सशक्त अभिव्यक्ति देती है । कथानायक सुभाष बाशी अपनी प्रेयसी को मिलकर घर लौटते समय रास्ते में बर्फ खरीदने के लिए स्कूटर को बीच में रोक कर उतरता है । उसके वापस आने तक उस स्कूटर पर नत्थासिंह नामक एक गुण्डा बैठ जाता है । बाशी के विरोध करने पर कि यह स्कूटर अभी खाली नहीं है, वह लड़ने पर आमादा हो जाता है और बात आगे बढ़ती है तब वह चाकू निकाल लेता है । नत्यासिंह के हाथ में खुला चाकू देखकर बाशी भयभीत होकर घर की ओर भागता है । वह अपने रीपोर्टर मित्र महेन्द्र को इस घटना के विषय में बताता है । वह बाशी को गुण्डे नत्थासिंह के विरुद्ध पुलिस में रीपोर्ट लिखाने की और अन्य कार्यवाही करने की सलाह देता है । बाशी अपने मित्र की बात मानकर पुलिस में रीपोर्ट तो दर्ज करवा देता है किन्तु जब वह सुनता है कि उस गुण्डे के खिलाफ कोई गवाही देने के लिए तैयार नहीं है । तब वह पहले से भी अधिक भयभीत हो जाता है । उसे पता चलता है कि उस गुण्डे से सभी डरते है, और "उस आदमी का मुख्य धंधा लड़कियों की दलाली करना है – कि ऊँचे सरकारी और राजनैतिक हलके के अमुक–अमुक व्यक्तियों को वह लड़कियाँ सप्लाई करता है – कि उसकी कितनी भी रीपोर्ट की जाएँ, कभी उसके खिलाफ कार्यवाही नहीं की जाती ।"[114]

घटना स्थल पर जाकर पूछताछ करने पर जिस–जिस से पूछा गया सबने सिर हिलाकर मना कर दिया कि ‘‘वह उस आदमी के बारे में कुछ नहीं जानता’’[115] और बाशी को मेडिकल स्टोर का ईन्चार्ज दबी आवाज में बताता है ‘‘नत्थासिंह को यहाँ कौन नहीं जानता ? अभी कुछ ही दिन पहले उसके आदमियों ने पिछली गली में एक पानवाले का कत्ल किया है । वे तीन–चार भाई हैं, और इस इलाके के माने हुए गुण्डे हैं । खैरियत समझिए कि आपकी जान बच गई, वरना हममें से तो किसी को इसकी उम्मीद नहीं रही थी ।’’[116]

यह सब देख सुन कर बाशी महसूस करता है कि यहाँ सभी गुण्डो से डरते है, पुलिस, मंत्री, अधिकारी कोई भी उसकी रक्षा नहीं करेंगा । वह निरंतर असुरक्षा और भय का अनुभव करता है । यहाँ तक कि नत्थासिंह का भय उसे सोने भी नहीं देता । ‘‘महेन्द्र के सो जाने ले बाद काफी देर साथ के कमरे से आती साँसो की आवाज सुनता रहा था । उस आवाज में उतनी सुरक्षा का अहसास उसे पहले कभी नहीं हुआ था ।... तब वह करवट बदलकर अपने हाथ पैरों का होना महसूस करता और फिर से सांसों का शब्द सुनने लगता ... ।’’[117] दूसरे दिन बाशी अपने मित्र महेन्द्र के साथ पुलिस स्टेशन में नत्थासिंह की पहचान के लिए जाता है । यहाँ पुलिस स्टेशन में भी वह अपने आपको बहुत असुरक्षित और अनेक प्रकार की मानसिक गुत्थियों में उलझा नज़र आता है । बाशी की मनःस्थिति के चित्रण द्वारा राकेशजी ने उसकी असुरक्षा के भाव की सशक्त अभिव्यक्ति की है – ‘‘कोई चीज हलक में चुभ रही थी – एक नोक की तरह । वह बार–बार थूक निगलकर उस चुभन को मिटा लेना चाहता । कभी–कभी उसे लगता कि किसी हाथ से उसका गला दबोच रखा है और यह चुभन गले पर कसते नाखूनों की है । तब वह जैसे अपने को उन हाथों से छुड़ाने के लिए छटपटाने लगता । उसे अपने अंदर से एक हौलनाक सी आवाज़ सुनाई देती – अपनी तेज चलती सांसों की आवाज । रात तब दिन में और कमरा सड़क में घुल–मिल जाता और वह अपने को फूली सांस और अकड़ी पिण्डलियों से बेतहाशा सकड़ पर

भागते पाता ।"[118] नत्थासिंह की पहचान के बाद घर लौटने समय वह सोचता है – "अब मैं इस इलाके में नहीं रह पाऊँगा और वह घर छोड़ देना पड़ा, तो और कहाँ रहुँगा ? नौकरी तो अब तक मिली नहीं ।"[119] बाशी की यह मनःस्थिति भयावह संत्रास को अधिक स्पष्ट कर देती है । बड़े शहरों की ज़िन्दगी कितनी तनाव और दहशत भरी होती जा रही है इसका जीवंत चित्रण 'एक ठहरा हुआ चाकू' कहानी में मिलता है ।

एक ठहरा हुआ चाकू राकेशजी की महत्त्वपूर्ण कहानियों में अपना विशिष्ट स्थान रखती है । क्योंकि यह कहानी स्वयं राकेशजी ने अपने जीवन में घटित एक भयावह घटना के आधार पर लिखी है । अचानक एक गुण्डे के साथ भिड़ जाने के कारण मृत्यु भय से त्रस्त "कथानायक बाशी का जो तनाव है, वह स्वयं राकेश का तनाव है । जिस भय से वह पीड़ित है, वही भय लेखक का भी है । लेकिन कहानी में वह इस रूप में अभिव्यक्त हुआ है कि वह भय मात्र व्यक्ति का, मात्र कहानीकार का न होकर आज के नगर जीवन में रहने वाले हर सामान्य व्यक्ति का हो गया है, जिससे वह सदा आतंकित रहा है । अनुभूति सत्य की सार्थकता उसको व्यापक रूप प्रदान करने में है, इस बात का प्रमाण प्रस्तुत कहानी ही है । व्यक्ति निरंतर जिस अस्तित्व की भयावहता को झेलता है, उसके परिवेश का अंकन इसमें हुआ है ।"[120]

'ज़ख्म' कहानी का नायक महानगरीय परिवेश में अकेलेपन के बोझ से दबा हुआ है । वह कभी नौकरी करता है तो कभी बेकारी झेलता है । वह अपने अकेलेपन को दूर करने के लिए शादी करना चाहता है । वह छोटी–छोटी बातों को लेकर झगड़ा करने की आदत से मजबूर है । अतः किसी लड़की के प्रेम में जान लेने और देने तक पहुँच कर भी बात शादी तक नहीं पहुच पाती । वह बिना किसी प्रस्तावना के सब बाते कहने की क्षमता रखता है । जब वह नौकरी में होता है तो कहता है – "नहीं मैं तुम लोगों की तरह नहीं जी सकता... मैं अपने वक्त का हिस्सा नहीं, उसका

निगहबान हूँ । मैं जीता नहीं, देखता हूँ... क्योंकि जीना अपने में बहुत घटिया चीज है ।"[121]

पर जब कभी लम्बी बेकारी के दौर से गुजरना पड़ता है और कई–कई दिन शराब छूने को न मिलती, तो वह भूलभूलैया में खोए आदमी की तरह कहता, "मुझे समझ आ रहा है कि मैं बिलकुल कट गया हूँ... हर चीज से बहुत दूर हो गया हूँ ।"[122] 'ज़ख्म' कहानी का नायक सामाजिक व्यवस्था से त्रस्त होकर परिवेश से निरंतर कटता रहता है । जिसके परिणाम स्वरूप वह अपने को बेकार और अकेला अनुभव करता है ।

'ज़ख्म' कहानी जीवन की जड़ता, विवशता, बेकारी की अवस्था में भविष्य हीनता और अकेलेपन से उत्पन्न संत्रास को अंकित करती है ।

'पांचवें माले का फ्लैट' कहानी में राकेशजी ने मुम्बई जैसे महानगरों में औपचारिकता और अभाव के बीच जीते लोगों के जीवन की गुत्थियों पर प्रकाश डाला है । 'पाँचवें माले का फ्लैट' कहानी का अविनाश फ्लैट में पाँचवें माले पर रहता है । उसकी आर्थिक स्थिति अच्छी जगह पर रहने की नहीं है । एक बार वह अपने मित्र की बहने सरला और प्रेमिला को अपने घर लाता है । अविनाश का फ्लैट देखकर दोनों अविनाश की मजबूरी का मज़ाक उड़ाती है । महानगरों में अविनाश जैसे कितने ही लोग रहते है जो अपनी इच्छा पूरी नहीं कर पाते और मानसिक संत्रास झेलते हुए मजबूरी में जीते है ।

'पाँचवें माले का फ्लैट' महानगरीय संत्रास को झेलते हुए टूटे हुए पुरुष की कहानी है ।

आर्थिक अभाव और जीवन के अधूरेपन के साथ टूटती इच्छाओं के बीच जीवन यापन करने की मजबूरी से उत्पन्न संत्रास 'फटा हुआ जूता' कहानी में रेखांकित हुआ है । 'फटा हुआ जूता' कहानी का राय आर्थिक विपन्नता के कारण अपनी इच्छाओं को पूरा नहीं कर पाता । इनाम में प्राप्त हुए तीस रुपये से वह अपने फटे हुए जूते की जगह नये जूता खरीदने के लिए बाजार में जाता है । बाजार में जाकर जूता, नेकटाई, साबुदानी, रूमाल, बरसाती, पेन्ट–शर्ट का कपड़ा अनेक चीजों का भाव पूछता है, देखता है किन्तु

खरीदता कुछ भी नहीं है । क्योंकि वह हर चीज की जरूरत महसूस करता है खरीदने की इच्छा भी रखता है पर पैसे की कमी के कारण युक्ति करता है कि जहाँ दाम ठीक थे वहाँ चीज अच्छी नहीं थी और जहाँ चीज अच्छी थी वहाँ दाम ठीक नहीं थे । अंत में वह होटेल में जाता है । यहाँ उसकी दृष्टि 'मेनू' की कीमतों और उसके सामने बैठी 'जेनी डिसूजा' के शरीर की गोलाइयो पर घूम कर ही यथावत रह जाती है । वह न जूता खरीद पाता है और न कुछ और । राय के चरित्र के माध्यम से आर्थिक विपन्नता से उत्पन्न संत्रास को यथार्थ अभिव्यक्त मिली है ।

'वारिस' कहानी के मास्टरजी दो बच्चों को टयुशन देकर अपने जीवन का निर्वाह करने के लिए मजबूर है । परीक्षा के बाद टयुशन समाप्त हो जाने की संभावना से उत्पन्न होने वाले आर्थिक संकट और एकाकीपन से ग्रस्त होकर वह पहाड़ी की गुफाओं में चले जाने का निर्णय कर लेते है – ''उन्होंने निश्चय कर लिया था कि वह कुछ दिन जाकर गरुड़ चट्टी में रहेंगे, फिर उससे आगे घने पहाड़ो पर चले जाएँगे, जहाँ से फिर कभी लैटकर नहीं आएँगे ।''[123]

'उलझते धागे' कहानी के रीक्षा चलानेवाले लोग रोजी रोटी के अभाव में बेहद निराशा की हालत से गुजरते हुए संत्रास झेल रहे हैं । 'लड़ाई' कहानी का कथानायक 'मैं' नौकरी के छूटने से उत्पन्न भविष्य हीनता को लेकर संत्रस्त है ।

(११) विभाजित व्यक्तित्व :

परिस्थितियों की जटिलता ने मानव मन की संवेदना को भी संश्लिष्ट बनाया है । आज व्यक्ति समग्र न रहकर विभाजित हो गए हैं । मनुष्य एक साथ एकाधिक स्तरों पर जीने के लिए विवश है 'मिस्टर भाटीया' कहानी का मि. भाटिया बेकारी की हालत में परिस्थितियों से उलझ कर भीतर से टूट गया है, किन्तु दूसरे लोगों के सामने वह अपने आपको ठीक ठाक दिखाने का प्रयास करता है । 'जिनीयस' कहानी का अपने आपको जिनीयस समझने वाला

व्यक्ति अंदर और बाहर दोनों तरफ अलग–अलग व्यक्तित्व को लेकर जीता है । 'ज़ख्म' कहानी का वह भी अपनी भीतरी टूटन को अपने अहं से भरने का प्रयास करता दिखाई देता है ।

आज की व्यवस्था में व्यक्ति दोहरी ज़िन्दगी जीने के लिए अभिशप्त है । किसी व्यक्ति को व्यक्तिगत तौर पर पसंद न करने पर भी हमे उससे केवल इसलिए संबंध बनाए रखना पड़ता है कि हमें उससे कोई काम पड़ सकता है । मन में हम उसके प्रति अच्छी धारणा नहीं रखते लेकिन बातचीत उससे बिलकुल विपरीत ढंग से करते हैं । राकेशजी की 'जानवर और जानवर' कहानी के पादरी के प्रति वहाँ काम करने वालों का व्यवहार कुछ इसी प्रकार का ही है । वह पादरी के सामने कुछ और ही प्रकार का वर्तन करते है और उसके पीछे कुछ और –

"फिरपू चटनी की बोतल रखने के बहाने जॉन के कान के पास फुसफुसाया, पादरी आ रहा है !"

सबकी नज़रें प्लेटों पर जम गई । पादरी लबादा पहने, बाइबल लिए, जिरजे की तरफ जा रहा था । वह खिड़की के पास से गुजरा तो तीनों अपनी–अपनी कुरसी से आधा–आधा उठ गए ।

"गुड मार्निंग, कादर !"

"गुड मार्निंग माई सन्ज !"

"आज अच्छा सुहाना दिन है !"

"परमात्मा का शुक्र करना चाहिए !"

पादरी खट्टी की बाड़ से आगे निकल गया तो जॉन बोला, "यह अपने को पादरी कहता है । सबेरे परमात्मा से संसार भर का चरित्र सुधारने के लिए प्रार्थना करेगा और रात को..... हरामज़ादा !"[124]

इसी तरह 'सेफ्टी पिन' कहानी के 'मैं' की मिसेज़ सक्सेना के उपन्यास में कोई दिलचस्पी नहीं है किन्तु वह उसे प्रकट न करके अपनी उत्सुकता ही दिखाता है ।

(१२) आत्मनिर्वासन का बोध :

आधुनिकीकरण के प्रभाव से औपचारिकता और एकाकीपन के बीच जीवन व्यतीत करता मनुष्य मानवीय संवेदना और मूल्यों से निरंतर कटता जा रहा है । अपने परिवेश में निरंतर खंडित होता व्यक्ति सबसे कटकर आत्मनिर्वासन की स्थिति में जीता है । 'ज़ख्म' कहानी का 'वह' अमानवीय दौडधूप के बावजूद जीने के लिए कोई निश्चित धरातल नहीं ढूंढ़ पाता । वह बाहर भीतर से 'ज़ख्मी' होकर भी जिन्दा है । उसकी बेकार असंतुष्ट ज़िन्दगी उसे अवसंगति, फालतू और भविष्यहीनता के त्रास का बोध कराकर आत्मनिर्वासन की स्थिति में लाती है ।

'दोराहा', 'धुंधलादीप', 'लक्ष्यहीन' कहानियों के नायक केसरी के जीवन में पूर्णिमा, श्यामा, राधा, सरोज, मंजुला जैसी नवयुवतियाँ आती हैं । इन सबके संपर्क में आकर केसरी का जीवन दुविधाजनक स्थिति में पहुँच जाता है । अंत में उसका जीवन निर्जर, एकान्त और लक्ष्यहीन सा हो जाता है । उसकी ज़िन्दगी की विविध स्थितियों से पैदा हुई परिस्थितियाँ उसे नितान्त अकेला बनाकर आत्मनिर्वासन की स्थिति में पहुँचा देती है ।

'मिस पाल' कहानी की मिस पाल अपने परिवेश से उत्पन्न जीवन के व्यर्थता बोध से खिन्न होकर दिल्ली की नौकरी छोड़कर किसी एकान्त स्थान पर चली जाना चाहती है । ''जहाँ यहाँ की–ही गन्दगी न हो और लोग इस तरह की छोटी हरकते न करता हों ।''[125] जीवन की सार्थकता की तलाश में वह दिल्ली से कुल्लू के पास के एक छोटे से गाँव में पहुँच जाती है । लेकिन यहाँ भी उसे अकेलेपन और अजनबीपन से छूटकारा नहीं मिल पाता । अंततः वह भीतरी टूटन और अवसाद से टूट कर आत्मनिर्वासन की स्थिति ने पहुँची नज़र आती है ।

'मन्दी' कहानी का 'बूढ़ा' और 'वारिस' कहानी के मास्टरजी आर्थिक अभाव और अकेलेपन से संत्रस्त होकर आत्मनिर्वासन की स्थिति में पहुँचे नज़र आते हैं ।

डॉ. अवघेश चंद्र गुप्त के अनुसार ''आधुनिक व्यक्ति परिवार से अलग होकर आत्मनिर्वासन की स्थिति को भोगने के लिए अभिशप्त है । वह वेदना उस समय और भी गंभीर हो जाती है जबकि परिवार के मध्य रहना चाहकर भी मनुष्य आत्मनिर्वासन की स्थिति को भोगता है ।''[126] राकेशजी की कहानियों के पात्रों में भी इस स्थिति को लेकर आत्मनिर्वासन की स्थिति में पहुँचे दिखाई देते हैं । 'अपरिचय' कहानी की नायिका इसी स्थिति से गुजरती है । वह कहती है ''मैं बहुत से परिचित लोगों के बीच अपने को अपरिचित, बेगाना और अनमोल अनुभव करती हूँ । मुझे लगता है कि मुझमें ही कुछ कमी है । मैं इतनी बड़ी होकर भी कुछ नहीं जान समझ पाई, जो लोग छुटपन में ही सीख जाते हैं ।''[127]

'गुमशुदा' कहानी में भी एक ऐसे व्यक्ति का चित्र है जो अपने भरे पूरे परिवार में भी अपने को निरर्थक और अकेला महसूस करता है । वह कई तरह के काम करता है, लेकिन थोड़े दिनों में हर काम से उक्ता जाता है । दफ्तर से निकलने के बाद समय गुजारना उसके लिए मुश्किल हो जाता है । इसलिए वह हंमेशा किसी ऐसे व्यक्ति की तलाश में रहता है जो उससे बात करे और उसका समय कट जाय । वह कहता है – ''सब कुछ है, मगर फिर भी मुझे ज़िन्दगी फीकी फीकी और अर्थहीन–सी लगती है । मेरी कुछ समझ में नहीं आता कि मैं क्यों जी रहा हूँ ।''[128]

वस्तुतः व्यक्ति अपने आसपास के त्रासाद वातावरण से और कभी–कभी अपनी मानसिकता के कारण निराशा, एकाकीपन और घुटन में जीते है । कभी–कभी व्यक्ति की मानसिकता ही ऐसी बन जाती है कि वे चाहे भी तो इस आत्मनिर्वासन की स्थिति से बाहर नहीं निकल पाता । 'गुमशुदा' कहानी का व्यक्ति तथा 'मिस पाल' कहानी की मिस पाल इसी तरह की स्थिति से छुटकारा पाना ही नहीं चाहते । ये पात्र अधिक आत्मपरक तथा वैयक्तिक है । जो अपने स्वयं के व्यक्तित्व में ही जैसे खोये से रहते हैं ।

अंततः कहा जा सकता है कि राकेशजी की कहानियाँ तत्कालीन व्यक्ति की घुटन, एकाकीपन, अजनबीपन, भीतरी टूटन, आत्मनिर्वासन बोध, आदि का

यथार्थ निरूपण वैयक्तिक चेतना के माध्यम से करती है । किन्तु फिर भी अपने अस्तित्व को बनाएँ रखने की ललक और जिजीविषा राकेशजी की कहानियों के पात्रों में बहुत गहरे रूप में उभर कर सामने आयी है । ‘‘राकेश की कहानियों के पात्र अपनी तरह जीवित रहने की आकांक्षा करते है । उनमें जिजीविषा है । वे जीवित रहना चाहते हैं ।’’[129] राकेशजी की कहानियों के पात्र जीवन की विभिन्न परिस्थितियों से जूझते और बिखरत दिखाई देते हैं । किन्तु कुछ एक पात्रों को छोड़कर फिर भी उनमें एक स्वस्थ दृष्टि है । जो राकेशजी के कई चिन्तन और विचारधारा के मन्थन का परिणाम हैं । राकेशजी की यह दृष्टि उनकी कहानियों में नयी दिशाएँ दिखाती है, जिनमें आधुनिक जीवन के संत्रास, पीड़ा, एकाकीपन, घुटन, भय आदि समस्या उभरकर सामने आयी है । परंतु साथ ही राकेशजी की कहानियों के पात्र परंपरा, मूल्यों और स्वस्थ जीवन दर्शन से कटे हुए नहीं है । राकेशजी की वैयक्तिक चेतना की यही विशेषता है । इस दृष्टि से राकेशजी की कहानियों में अभिव्यक्त वैयक्तिक चेतना उनकी कहानियों में निरूपित युग–चेतना का एक महत्त्वपूर्ण पहलू है ।

अकेलापन, तनाव, घुटन, व्यर्थताबोध, औपचारिकता आदि के शिकार राकेशजी की कहानियों के पात्र सामाजिक, वैयक्तिक, आर्थिक परिस्थितियों से बिखर कर टूट गये हैं । किन्तु अपने अस्तित्व बनाए रखने की ललक और जिजीविषा बहुत गहरे रूप में उभर कर सामने आयी हैं । ‘ज़ख्म’ कहानी का नायक बेकारी और आर्थिक अभाव में निरंतर जीवन से संघर्ष करता दिखाई देता है । तनाव और संघर्ष में रहते हुए भी वह जीवन में आस्था प्रकट करता है, जीवन से निराश नहीं होता – ‘‘इतना तुम्हें बता दूँ, कि मुझे कम से कम बीस साल और जीना है । तुम्हारे या दूसरे लोगों के बारे में मैं नहीं कह सकता... पर अपने बारे में कह सकता हूँ कि मुझे जरूर जीना है ।’’[130]

स्वयं के अस्तित्व को महत्त्वपूर्ण समझने कि प्रवृत्ति भी राकेशजी की कहानियों के पात्रों में स्पष्ट हैं । वैयक्तिक चेतना का विकास होने से वह अपने स्थान को बनाए रखना चाहते है । ‘धुंधला दीप’ कहानी में भी यही

स्तर विद्यमान है । राधा और केसरी दोनों ही अपने ढंग से जीवन जीने में विश्वास करते हैं । राधा और केसरी यह मानते है कि हर व्यक्ति को अपना जीवन स्वयं के अनुसार जीने का अधिकार हैं । राकेशजी की कहानियों में यही स्वर विद्यमान है । राकेशजी की कहानियों के सभी पात्र अपने अपने ढंग से जीवन जीने में विश्वास करते हैं । वह नहीं चाहते कि उनके जीवन में कोई हस्तक्षेप करे, वे वैयक्तिक स्वतंत्रता में विश्वास रखते हैं ।

संदर्भ सूची :

1 नयी कहानी की मूल संवेदना, डॉ. सुरेश सिन्हा, पृ. ३६

2 हंसा जाई अकेला – भूमिका से, मार्कण्डेय

3 नयी कहानी की भूमिका से – कमलेश्वर

4 नयी कहानी की भूमिका से – कमलेश्वर

5 'एक और ज़िन्दगी' भूमिका से, मोहन राकेश

6 कहानी नयी कहानी – नामवरसिंह, पृ. ६८

7 नयी कहानी संदर्भ और प्रकृति, डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल, पे. २११

8 विवेक के रंग, सं. देवीशंकर अवस्थी, (अनुभव का अपनापन) लेख से – दूधनाथ सिंह, पृ. ३७३

9 हिन्दी कहानी परख और पहचान, डॉ.. इन्द्रनाथ मदान, पृ. २३५

10 मोहन राकेश और उनका साहित्य – डॉ. कविता शनवरे, पृ. ३०

11 नयी कहानी संदर्भ और प्रकृति – सं. डॉ. देवीशंकर अवस्थी, लेख (कुछ नये कहानीकारों की कहानियाँ – डॉ.. धनंजय वर्मा), पृ.. १६०

12 नयी कहानी संदर्भ और प्रकृति – सं. डॉ. देवीशंकर अवस्थी, लेख (कुछ नये कहानीकारों की कहानियाँ – डॉ.. धनंजय वर्मा), पृ.. १६०–१६१

13 हिन्दी कहानी की अंतरंग पहचान – डॉ. रामदरम मिश्र, पृ. १२४

14 हिन्दी कहानी की अंतरंग पहचान – डॉ. रामदरम मिश्र, पृ. १२०

15 मोहन राकेश और उनका साहित्य – डॉ. कविता शनवरे, पृ. ३६

16 नयी कहानी संदर्भ और प्रकृति – सं. डॉ. देवीशंकर अवस्थी, लेख (कुछ नये कहानीकारों की कहानियाँ – डॉ.. धनंजय वर्मा), पृ.. १६१

17 'एक और ज़िन्दगी', भूमिका से, मोहन राकेश

18 'एक और ज़िन्दगी', भूमिका से, मोहन राकेश

19 मोहन राकेश व्यक्तित्व और कृतित्व – सुष्मा अग्रवाल, पृ.

20 'बकलम खुद', मोहन राकेश, पृ. ११८

21 'परिवेश', मोहन राकेश, पृ. २०३

22 'मोहन राकेश का साहित्य' : समग्र मूल्यांकन, डॉ. शरेशचंद्र चुलकीमठ, पृ. ७४
23 साठोतरी हिन्दी कहानी : मूल्यों की तलाश, डॉ. वासुदेव शार्मा, पृ. ७७
24 नयी कहानी की भूमिका, कमलेश्वर, पृ. १७
25 'मेरी प्रिय कहानियाँ', मोहन राकेश, क्लैप पर उद्धत
26 मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'मिस पाल' पृ. ११
27 मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'मिस पाल' पृ. ११
28 मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'मिस पाल' पृ. ११
29 मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'मिस पाल' पृ. १३
30 मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'मिस पाल' पृ. १२
31 मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'मिस पाल' पृ. १४
32 मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'मिस पाल' पृ. १४-१५
33 मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'मिस पाल' पृ. १७
34 मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'मिस पाल' पृ. २१
35 मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'मिस पाल' पृ. २२
36 मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'मिस पाल' पृ. १६६
37 मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'मिस पाल' पृ. १६६
38 मोहन राकेश व्यक्तित्व और कृतित्व – डॉ. सुष्मा अग्रवाल, पृ. २३७
39 मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'मिस पाल' पृ. २००
40 हिन्दी कहानी – समाजशास्त्रीय दृष्टि – रघुवीर सिन्हा, पृ. ६४
41 मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'मिस पाल' पृ. १८१
42 मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'मिस पाल' पृ. ८७
43 नयी कहानी – संदर्भ और प्रकृति – सं. डॉ. देवीशंकर अवस्थी, पृ. १५८
44 मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'मिस पाल' पृ. २७८

45 मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'मिस पाल' 'फौलाद का आकाश' पृ.११७
46 मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'फौलाद का आकाश', पृ. ११७
47 मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'फौलाद का आकाश', पृ. ११७
48 मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'गुंझल', पृ. ११७
49 मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'पहचान', पृ. २७३
50 मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'मरुस्थल', पृ. १०१
51 मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'ग्लास टैंक', पृ. ५३
52 'अंतराल' 'मोहन राकेश', पृ. २००
53 मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'सुहागिनें', पृ. १६२
54 मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'गुंझल', पृ. ३८२
55 मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'गुंझल', पृ. ३८३
56 मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'आखिरी सामान', पृ. १७७
57 मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'ग्लास टैंक', पृ. ६२-६३
58 मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'गुमशुदा', पृ. ४६४
59 मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'मिस पाल', पृ. १२
60 मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'मिस पाल', पृ. १७
61 मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'पहचान', पृ. २७३
62 मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'क्वार्टर', पृ. १२६
63 मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'क्वार्टर', पृ. १२६
64 मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'आर्द्रा', पृ. ४७
65 मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'पाँचवे माले का फ्लैट', पृ. २६७
66 मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'एक और ज़िन्दगी', पृ. २७८
67 मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'एक और ज़िन्दगी', पृ. २८२
68 मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'जानवर और जानवर', पृ. ३६८
69 मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'जानवर और जानवर', पृ. ३७२

70 मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'उर्मिल जीवन', पृ. १८१

71 मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'उर्मिल जीवन', पृ. १८२

72 मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'उर्मिल जीवन', पृ. १८३

73 मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'उर्मिल जीवन', पृ. १८४

74 मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'भूखे', पृ. १०८

75 मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'मिस्टर भाटीया', पृ. ३३७

76 मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'मिस्टर भाटीया', पृ. ३४०

77 मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'मिस्टर भाटीया', पृ. ३४२

78 मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'मिस्टर भाटीया', पृ. ३४३

79 मोहन राकेश की कहानियों में आधुनिक बोध – डॉ. सदनकुमार पाल, पृ. ५७

80 मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'जीनियस', पृ. ४०८

81 मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'जीनियस', पृ. ४०६

82 मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'जीनियस', पृ. ४०६

83 मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'जीनियस', पृ. २५६

84 मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'गुनाह बेलज्जत', पृ. ४०६

85 मोहन राकेश का साहित्य : समग्र मूल्यांकन, डॉ. शरेशचंद्र चुलकीमठ, पृ. ४८

86 मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'आखिरी सामान', पृ. ११७

87 मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'खाली', पृ. ३१

88 मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'खाली', पृ. ३०

89 मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'खाली', पृ. २७

90 मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'खाली', पृ. ३१

91 मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'मिस पाल', पृ. १२

92 मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'मिस पाल', पृ. ११

93 मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'मिस पाल', पृ. ११

94 मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'मिस पाल', पृ. २३

95 मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, ‘सीमाएँ’, पृ. ३४
96 मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, ‘सीमाएँ’, पृ. ३४-३५
97 मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, ‘सीमाएँ’, पृ. ३५
98 मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, ‘सीमाएँ’, पृ. ३५
99 मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, ‘सीमाएँ’, पृ. ३७
100 मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, ‘सीमाएँ’, पृ. ३७
101 मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, ‘सीमाएँ’, पृ. ३८
102 मोहन राकेश की कहानियों में आधुनिक बोध – डॉ. सदनकुमार पाल, पृ. ८१
103 मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, ‘पहचान’, पृ. २७२
104 मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, ‘पहचान’, पृ. २७२
105 मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, ‘पहचान’, पृ. २७३
106 मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, ‘पहचान’, पृ. २७२
107 मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, ‘पहचान’, पृ. २७२
108 मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, ‘पहचान’, पृ. २७०
109 मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, ‘गुनाह बेलज्जत’, पृ. २५४
110 मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, ‘गुनाह बेलज्जत’, पृ. २५४
111 मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, ‘गुनाह बेलज्जत’, पृ. २५६
112 मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, ‘गुनाह बेलज्जत’, पृ. २५४
113 नयी कहानी की भूमिका, ‘कमलेश्वर’, पृ. १७५
114 मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, ‘एक ठहरा हुआ चाकू’, पृ. १४७
115 मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, ‘एक ठहरा हुआ चाकू’, पृ. १४५
116 मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, ‘एक ठहरा हुआ चाकू’, पृ. १४७
117 मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, ‘एक ठहरा हुआ चाकू’, पृ. १४७
118 मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, ‘एक ठहरा हुआ चाकू’, पृ. १५०
119 मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, ‘एक ठहरा हुआ चाकू’, पृ. १५०

120 मोहन राकेश का साहित्य – समग्र मूल्यांकन, डॉ. शरेशचंद्र चुलकीमठ, पृ.. ८०–६१
121 मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, ‘ज़ख्म’, पृ. ४१५
122 मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, ‘ज़ख्म’, पृ. ४२३
123 मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, ‘वारिस’, पृ. ४१६
124 मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, ‘जानवर और जानवर’, पृ. ३६६
125 मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, ‘मिस पाल’, पृ. १२
126 स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक – विचार तत्त्व, डॉ. अवघेश चन्द्र गुप्त, पृ.८६
127 मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, ‘अपरिचित’, पृ. ६३
128 मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, ‘गुमशुदा’, पृ. ४६४
129 हिन्दी कहानी में जीवन मूल्य – डॉ. रमेशचंद्र लवानिया, पृ. २२८
130 मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, ‘ज़ख्म’, पृ. ४१८

***

चतुर्थ - अध्याय
मोहन राकेश की कहानियों में सामाजिक चेतना

४.१ प्रस्तावना
४.२ पति–पत्नी के संबंधों की समस्या
- *अस्तित्व बनाएँ रखने की ललक और अहं*
- *व्यावसायिक व्यस्तता और महत्त्वकांक्षा*
- *भिन्न मानसिकता*
- *प्रेम एवं यौन संबंधों का प्रभाव*
- *आयुभेद*
- *पति–पत्नी के बीच तीसरे व्यक्ति के आने से*
- *पारिवारिक बोझ के कारण*
- *नारी की बदलती भूमिका*

४.३ पारिवारिक विघटन
४.४ देश विभाजन की घटना और पारिवारिक विघटन
४.५ बच्चों की समस्या
४.६ मूल्य विघटन
४.७ देश विभाजन और बदलती परिस्थिति में मूल्य विघटन
४.८ मानवीयता और नवीन मूल्यों की खोज
४.६ प्रेम और यौन संबंधों की समस्या
४.१० *नारी पर अत्याचार और शोषण की समस्या*
४.११ *निष्कर्ष*

चतुर्थ - अध्याय
मोहन श्चकेश की कहानियों में सामाजिक चेतना

४.१ प्रस्तावना :

प्रसिद्ध साहित्यक आलोचक अमृतराय कहानी की सामाजिकता के संदर्भ में कहते हैं – ''किस्सा कहने सुनने की आदिम भूख में से ही कहानी का जन्म हुआ है । और अपने इस जन्मजात गुण या स्वभाव की रक्षा करके ही वह जीवित रह सकती है । क्योंकि कहानी सामाजिक विधा है, जन्म से ही । एक आदमी कहानी कहता है, दूसरा आदमी सुनता है; वही दूसरा आदमी समाज है और यही कहानी की सामाजिकता का आधार है ।''[1] समाज के बिना मनुष्य का अस्तित्व नहीं है तथा समाज की बुनियाद ही मनुष्य है । समाज और मनुष्य एक दूसरे के पूरक है । मनुष्य सामाजिक और विचारशील प्राणी है । वह अपनी अनेकानेक आवश्यकताओं की पूर्ति समाज द्वारा करता है, वही अपनी भावनाओं और संवेगों को भी संप्रेषित करने के लिए समाज का आधार ही ढूँढ़ता है । समाज के संदर्भ से हटकर मानवीय संबंधों की व्याख्या निरर्थक और असंभव है ।

स्वातंत्र्योत्तर सामाजिक परिवेश कई विघटनों एवं निर्माण की सीढ़ियों को पार करता हुआ दिखाई पड़ता है । इसके पीछे कारण अनंत रहे है फिर भी मूलतः देश विभाजन, बदलती राजनैतिक चेतना, देश की भौगोलिक सीमाओं का विघटन, आर्थिक दुष्चक्र, बेकारी, औद्योगीकरण, तकनीकीकरण, महानगरों में जन संख्या की वृद्धि, नारी जागृति और शिक्षा का बढ़ता प्रभाव आदि कारण प्रमुख रहे हैं । इसके परिणाम स्वरूप समाज में बिखराव आने से व्यापक परिवर्तन हुआ । जैसे कि संयुक्त परिवार का टूटना, दाम्पत्य जीवन एवं वैयक्तिक जीवन

धारा में अनेक परिवर्तन आदि देखे जा सकते हैं । इस विश्रृंखला के कारण मानवीय मूल्यों में भी काफी बदलाव होता दिखाई देता हैं ।

सन् ५० के आसपास की कहानियाँ जिसे 'नयी कहानी' के नाम से जाना जाता है, इसी संदर्भ को विषय बनाकर लिखी गयी है । इस कहानी ने पारिवारिक विघटन, स्त्री–पुरुष के बनते–बिगड़ते संबंध, अर्थ का बढ़ता प्रभाव, व्यक्ति में निराशा, कुंठा, असुरक्षा, मानसिक तनाव, अविश्वास, दायित्वहीनता आदि को सशक्त स्वर द्वारा उभारा हैं । ''नयी कहानी में पारिवारिक विघटन तो है ही सामाजिक जीवन से बिगड़ते संबंधों को भी विविध कोणों से प्रस्तुत किया है । स्त्री–पुरुष के बिगड़ते संबंध बिखरने लगे, उस बिखराव का सामाजिक आयामों सहित चित्रण भी नयी कहानी की देन है । इन संबंधों की टकराहट के कारण अनेक है । जिसमें अर्थाभाव, स्त्री की जीविकोपार्जन में सहयोग देने की भूमिका, नौकरी के कारण बदलती हुई मानसिकता का यथार्थ चित्रण उसके विभिन्न परिणामों के साथ चित्रित हुआ है । इसमें टूटते हुए पुरुष की तरह बिखरती नारी का भी चित्रण है ।''[2]

'नयी कहानी' के नाम से जानी जाने वाली यह कहानियाँ तत्कालीन युग–चेतना को स्पष्ट करनेवाली कहानियाँ है । क्योंकि इस युग के साहित्यकार ने अपने युग को अति निकट से पहचाना है तथा अपने युग की समस्याओं को सशक्त स्वर में मुखरित किया हैं ।

''जागरूक कथाकार की हर कहानी उसके सामाजिक संघर्ष की दिशा में एक कदम होती है और यही दिशा उसकी हर छोटी से छोटी कहानी को बृहत्तर अर्थवता प्रदान करती है ।''[3] राकेशजी की कहानियों के संदर्भ में इस कथन की सत्यता पूरी तरह से प्रमाणित होती है । राकेशजी ने समसामयिक युग की सत्य कड़वाहट का कभी प्रत्यक्ष तो कभी परोक्ष रूप से अपनी कहानियों में चित्रण किया हैं । युगीन स्थितियों में जो परिवर्तन देखे जा रहे थे इस परिवर्तन को उन्होंने अपने समस्त कथा साहित्य में स्पष्ट रूप से उभारने का प्रयत्न किया हैं । राकेशजी ने मानवीय संबंधों में आये परिवर्तन, सामाजिक मूल्यों का विघटन तथा स्थापित नैतिक बोध की निरर्थकता, पारिवारिक संदर्भो में

स्त्री और पुरुष के बदलते संबंध आदि को अपनी कहानियों में सशक्त अभिव्यक्ति दी है ।

मोहन राकेश युगचेता कहानीकार के रूप में हमारे सामने आते हैं । वह अपने परिवेश के प्रति गहरी जागरूकता लिए हुए हैं । जो उनके साहित्य को सहज ही सामाजिकता से संलग्न कर देता है । डॉ. धनंजय वर्मा के शब्दों में ''इनकी कहानियों में युग के सामाजिक यथार्थ और वस्तु सत्य के संदर्भ में जीवन की बहुत तल्ख प्रतिक्रिया, बदलते हुए विश्वासों को गति देती चेतना और एक संक्रमणशील दृष्टि मिलती है, लेकिन मूल्यों की इस संक्रांति में भी विघटन और ध्वंश की गति और टूटते ढहते विश्वासों की कगारों पर भी एक आंतरिक मानवीय आस्था और निष्ठा एवं दृष्टि का संकेत भी उनकी कहानियों में मिलता है ।''[4]

मध्यवर्गीय समाज की अनेक समस्याओं को राकेशजी ने अपने समग्र साहित्य में प्रस्तुत किया है । उन्होंने अधिकतर नगरीय जीवन को अपने साहित्य का आधार बनाया है । साथ ही बहुत सीमित स्तर पर ग्राम बोध भी प्राप्त होता है । दाम्पत्य एवं पारिवारिक समस्याओं को राकेशजी ने अपने साहित्य में विस्तृत फलक प्रदान किया हैं । साथ ही अन्य महत्त्वपूर्ण पहलुओं पर भी राकेशजी की दृष्टि बराबर रही हैं । ''राकेशजी की कहानियाँ कहानी क्षेत्र में आये नवीन मोड़ का प्रतिनिधित्व करती है । इसमें जीवन के माध्यम से कहानी और कहानी के माध्यम से जीवन की खोज की गयी है । आज की स्थितियाँ किस प्रकार और किन स्तरों पर कहानीकार को छूती है, इसका आँकलन वस्तुतः समाज के नैतिक और आध्यात्मिक रूप से परिचय प्राप्त करता है । राकेशजी की कहानियाँ समाज के परिप्रेक्ष्य में उनकी जीवन संचेतना को व्यक्त करती है ।''[5]

राकेशजी ने अपनी कहानियों में भोगे हुए यथार्थ के प्रस्फुटन और उसकी निर्मम अनिवार्य स्वीकृति को स्वर दिया हैं । अतः राकेशजी की कहानियाँ तत्कालीन समाज की आसन्न कड़ियाँ बनी नज़र आती हैं । उनकी कहानियों में निम्नांकित महत्त्वपूर्ण सामाजिक पहलू दृष्टिगोचर होते हैं ।

४.२ पति–पत्नी के संबंधों की समस्या :

पति–पत्नी का रिश्ता तन–मन से जुड़ा एक संपूर्ण खूबसूरत व पूरक रिश्ता है । यदि दोनों का सुखद साथ ज़िन्दगी व परिवार को आनंद से भर देता है तो उसे सफल दाम्पत्य जीवन कहा या माना जाता है । सफल दाम्पत्य जीवन खूबसूरत फूलों की सेज के समान है, किन्तु जब पति–पत्नी के बीच कभी–कभी कुछ कारणों से वैमनस्य बढ़ने लगता है तब–तब यह फूल गिरने लगते है, मुरझाने लगते है । और कभी–कभी तो सुन्दर फूलों की जगह कैक्टस उगे नज़र आने लगते है । फिर उसकी चुभन दाम्पत्य संबंधों को खोखला बनाकर टूटने की कगार पर पहुँचा देती है ।

हमारी पारंपरिक मान्यता है कि शादियाँ स्वर्ग में तय होती है । पति–पत्नी तब तक साथ निभाते है, जब तक किसी एक का स्वर्ग से बुलावा न आ जाए । फिर कहाँ हो जाती है भूल–चूक कि कल तक जहाँ खुशियों की वर्षा हो रही थी वहाँ मायूसी के बादल गहरा जाते हैं । साथ ही ज़िन्दगी के कदम शिथिल हों जाते है और तब ‘अब और नहीं’ की सोच जन्म जन्मांतर तक साथ रहने का वादा बन जाता है सिर्फ ‘तेरा–मेरा इरादा ।’ कैसे आ जाती है रिश्तों मे दरारे ? ऐसा क्याँ हो जाता है कि एक अनचाहा तूफान सब–कुछ तितर–बितर कर देता है । जहाँ भावना, संवेदना, सुख–दुःख सब बेमानी हो जाती है । राकेशजी ने अपनी कहानियों में इसी तथ्य को प्रकाश में लाने की कोशिश की हैं ।

भारतीय समाज में विवाह सामाजिक रूप से अनिवार्य संस्थान है, वहीं धार्मिक दृष्टि से एक पवित्र बंधन माना गया है । किन्तु आधुनिक समय के बदलते संदर्भो में संबंध मान्यताओं के आधार पर नहीं जीवन की स्थितियों के अनुसार जिये जा रहे है । बदलते समय प्रवाह में आज देखे तो नैतिक मूल्यों की परवाह किये बिना स्त्री–पुरुष मनमाने ढंग से स्वतंत्र जीवन जीने लगे है । जिसके परिणाम स्वरूप वैवाहिक संस्थान की अनिवार्यता को प्रश्नचिन्हों के कटघरे में खड़ा कर दिया है । क्योंकि जहाँ पर पारस्परिक विश्वास न हो, सम सुख–दुःखभागी दृष्टिकोण न हो, समर्पण और त्याग न स्वीकारा जाता हो

“वहाँ विवाह, मीनिंगलैस सी रस्म तो होगा ही । आज विवाह एक समझौता है पति का पत्नी से, पत्नी का पति से । इस संधिपत्र पद हस्ताक्षर करके निर्वाह करना दोनों का दायित्व है ।”[6]

आज आधुनिक परिवार में पति–पत्नी के बीच संबंध हीनता और अन्तः संघर्ष का स्वरूप बहुतायन से देखने को मिल रहा है । पति–पत्नी अतिपरिचय और अतिनिकटता के सूत्र में बंधकर भी अजनबीपन और मेहमानगीरी की सूत्रता के निर्वाह की नियति से अभिशप्त है । दोनों एक–दूसरे के होने में नहीं, न होने के बोध से टूटते हैं । उनके बीच अगर कहीं संबंध के खुश्क पर्दे की झलक है तो कायिक स्तर पर लेकिन अंदर से सभी संबंध–सूत्र नष्ट हो चुके है ।

मोहन राकेश की कहानियाँ विषम जीवन की गंभीर भूमिका का सफल निर्वाह करने में सक्षम रही है । राकेशजी ने अपनी कहानियों के माध्यम से सार्थक अनुभवों और पैनी दृष्टि से पति–पत्नी के संबंध विषयक समस्याओं को विशेषरूप से पहचान कर उसे रेखांकित किया हैं । पति–पत्नी के संबंधों को लेकर लिखी गयी राकेशजी की कहानियों में उनके संबंधो की विडंबनाओं को अलग–अलग स्तरों पर पकड़ने का प्रयत्न किया है और उन्हें इसमें पर्याप्त सफलता भी मिली हैं ।

राकेशजी ने अपने अधिकांश साहित्य में मध्यवर्गीय शिक्षित पति–पत्नी के संबंधों में आये बिखराव को उभारा है । राकेशजी की कहानियाँ पति–पत्नी के संबंधों में आये उतार–चढ़ाव को साफ–सूथरे ढ़ंग से स्पष्ट करने में सफल रही हैं । ‘एक और ज़िन्दगी’ के प्रकाश और बीना, ‘गुंझल’ कहानी के चंदन और कुन्तल, ‘आखिरी सामान’ के सुशील और बेला, ‘फौलाद का आकाश’ के रवि और मीरा, ‘खाली’ कहानी के जुगल और तोषी, ‘अपरिचित’ कहानी के दीशी और दीशी पत्नी तथा कथानायक ‘मैं’ और उसकी पत्नी नलिनी, ‘क्वार्टर’ कहानी के शंकर और राधा, ‘सुहागिनें’ कहानी के सुशील और मनोरमा, ‘गुनाह बेलज्जत’ के सुन्दरसिंह और भागवन्ती आदि पति–पत्नी के ऐसे जोड़े है

जहाँ माधुर्य के स्थान पर टूटन, निराशा, औपचारिकता को साफ देखा जा सकता हैं ।

राकेशजी की जिन कहानियों में पति–पत्नी के दाम्पत्य संबंधों के ऊब भरे निराशापूर्ण जीवन का निरूपण हुआ है वे शिक्षित और बौद्धिक हैं । वैसे देखा जाय तो ऐसे व्यक्तियों का दाम्पत्य जीवन सुखमय होना चाहिए, लेकिन ऐसे पति–पत्नी के बीच कभी–कभी अहंकार का टकराव, महत्त्वकांक्षा, व्यक्तिगत अस्तित्व बनाएँ रखने की ललक, पत्नी की बदलती व्यावसायिक भूमिका, पति–पत्नी के बीच किसी तीसरे व्यक्ति की उपस्थिति से या संदेह आदि कारणों से टकराहट होती रहती है । फलतः दोनों का वैवाहिक जीवन अभिशाप बन जाता है । राकेशजी ने पति–पत्नी के वैवाहिक जीवन से संबंधित इन स्थितियों के कारणों को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है जो पति–पत्नी के बीच अलगाव पैदा कर रहे है । ''मोहन राकेश की मूलभूत मान्यता है कि विवाह नाम की संस्था अनेक दबावों के कारण टूट रही है । इसमें बड़े कारण पति–पत्नी के बीच उभरता वैमनस्य और आर्थिक स्वतंत्रता की मांग, विषम संतुलन और पारस्परिक असामंजस्य ही रहा है, जो विवाह के इन दो 'यूनिटों' को एक दूसरे से अलग कर रहा हैं ।''[7]

पति–पत्नी के बनते–बिगड़ते संबंधों को राकेशजी ने मुख्य रूप से निम्नांकित कारणों के साथ जोड़कर प्रस्तुत किया है ।

❀ *अस्तित्व बनाएँ रखने की ललक और अहं :*

आधुनिक समाज में स्त्री–पुरुष की बौद्धिकता ज्यों–ज्यों बढ़ती चली जा रही है, त्यों–त्यों उसका अहंभाव और अस्तित्व बोध तीव्र से तीव्रत्तर और व्यापक से व्यापकत्तर रूप ग्रहण करता चला जा रहा है । यह भावना पति–पत्नी के बीच एक तनाव की स्थिति निर्मित कर देती है । 'एक और ज़िन्दगी' राकेशजी की इस समस्या को प्रस्तुत करनेवाली सफल कहानी है । इस कहानी में असफल–दाम्पत्य संबंध का कारण पति–पत्नी का अहं और समान व्यक्तित्व की टकराहट है, जिसे राकेशजी ने सूक्ष्मता से विश्लेषित किया हैं ।

कहानी का नायक प्रकाश अपनी मर्जी से बीना के साथ विवाह करता है । कुछ ही दिनों बाद यह बंधन दोनों के लिए परेशानी का कारण बन जाता है । क्योंकि दोनों समान रूप से शिक्षित होने के कारण नौकरी में भी बराबर का दर्जा रखनेवाले थे । अतः दोनों अपनी–अपनी अतृप्तियों के लिए असंतुष्ट रहते थे और अपने अहं की तृष्टि के लिए परेशान । दोनों यह भी समझ रहे थे कि शायद संबंध की शुरुआत ही गलत हुई है । दोनों के बीच एक–दूसरे के प्रति 'अण्डरस्टेडिंग' का विकास नहीं हो पाता जो प्रणय संबंधों को जोड़े रखता हैं । परिणामतः "ब्याह के कुछ ही महीने बाद से ही पति–पत्नी अलग रहने लगे थे । ब्याह के साथ जो सूत्र जुड़ना चाहिए था, वह जुड़ नहीं सका था । दोनों अलग–अलग जगह काम करते थे और अपना–अपना स्वतंत्र ताना–बाना बुनकर जी रहे थे । लोकाचार के नाते साल छः महीने में कभी एक बार मिल लिया करते थे ।"[8]

प्रकाश की बीना के प्रति अधिकार की भावना है तो बीना में आधुनिक नारी की तरह अपना स्वतंत्र अस्तित्व बनाएँ रखने की ललक । इस कहानी में पति–पत्नी के संबंध विच्छेदन का कारण दोनों का अहं तथा समान व्यक्तित्व की टकराहट है । "पति स्वभाव से ही और विरासत में प्राप्त संस्कारों के कारण अहम्वादी होता है और जहाँ पत्नी भी अहंवादी हो वहाँ एक दूसरे के अहं आपस में टकराने लगते हैं और निर्वाह मुश्किल हो जाता है ।"[9] प्रकाश और बीना का बच्चा पलाश भी दोनों को जोड़ नहीं पाता ।

डॉ. रघुवीर सिन्हा, प्रकाश और बीना के संबंध के टूटने के कारण को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं – "वे एक दूसरे की भावना का भी आदर नहीं करते, एक–दूसरे के विचारों आकांक्षाओं के लिए स्थान नहीं बना पाते, और उस 'अण्डरस्टेडिंग' का अपने अंदर विकास नहीं कर पाते जो प्रणय सबंधों को बांधती है । उनके संबंध नाजुक होते हैं, जो एक ही झटके में टूट जाते हैं । दोनों अपने–अपने संसार में रहते हैं, और एक दूसरे के बारे में नहीं सोच पाते । दोनों अपने व्यक्तित्व के बारे में इतने सचेत है कि दूसरे पक्ष के बारे में सोच पाना उनकी सीमा और सामर्थ्य से परे है । और अपने ही मनोनीत

स्वतंत्रता अधिकारों के लिए वे अतिरिक्त चेष्टा करते रहते हैं । अपने संबंधों की मधुरता बनाए रखने की आवश्यकता से बड़ी उन्हें यह बात लगती है, और ज़िन्दगी के आधारभूत स्तर पर वे छले जाते हैं.... लगातार और निर्मम रूप से ।"[10]

प्रकाश और बीना दोनों अपने–अपने संसार में रहते है और सिर्फ अपने व्यक्तित्व के बारे में सचेत हैं । बच्चे की पहली वर्ष गांठ पर प्रकाश और बीना के संबंध और भी लड़खड़ाने लगते है । बीना अपने बेटे पलाश की पहली वर्षगांठ अपने माता–पिता के घर मनाने का आयोजन करती है । प्रकाश भी अपने घर पर पलाश के जन्मदिन की पार्टी का आयोजन करता है । वह पलाश और बीना को अपने घर बुलाता है । पर बीना पलाश को लेकर एक घंटे के लिए भी वहाँ आना स्वीकार नहीं करती । क्योंकि बीना का अहं प्रकाश के घर जाने में आड़े आता है । अतः प्रकाश अपने घर आये महमानों को चाय पिलाकर विदा कर देता है । प्रकाश भी अपने अहं और जिद को लेकर पलाश के लिये खरीदे उपहार नौकर के हाथ बीना के पास भेज देता है । प्रकाश और बीना में भरा अहं बच्चे के लिए भी समझौता नहीं करने देता । अतः "बच्चे की पहली वर्षगांठ थी उस दिन – वही उसके जीवन की भी सबसे बड़ी गांठ बन गई थी..... ।"[11]

प्रकाश और बीना दोनों ही अपनी बात पर अड़े रहते हैं । अतः दोनों के बीच का संबंध टूटता नज़र आता है । क्योंकि "व्यक्तिवादी भावना का प्रभाव व्यक्ति के जीवन पर पड़ता है । स्वयं को अत्याधिक महत्त्व देने के कारण उसके जीवन में दरार पड़ने लगती है, जो संबंध विच्छेदन और पारिवारिक कटुता को जन्म देती है । वैयक्तिक सता की चेतना ने स्त्री–पुरुष संबंधो को बहुत प्रभावित किया है । पुरुष स्वयं को सतावान मानता रहा है । लेकिन स्त्री शिक्षा और आर्थिक स्वतंत्रता ने स्त्री को स्वतंत्र अस्तित्व प्रदान किया है । आज स्त्री और पुरुष दोनों ही त्याग करना और एक–दूसरे के आगे झुकना नहीं चाहते, जिससे उनके संबंध तनावपूर्ण हो जाते है ।"[12]

दोनों के बीच ऐसी स्थिति बन जाती है कि अब कुछ और संभव ही नहीं रहता । ''एक अनिवार्य अलगाव और बाद में 'कोर्ट' द्वारा स्वीकृत तलाक के सीवा उनके बीच का सेतु उनका बच्चा भी इससे उन्हें नहीं बचा पाता ।''[13] प्रकाश पति और पिता का अधिकार चाहता है । इस पर बीना का कहना है कि – ''अगर आपके पास पिता का दिल होता तो आप पार्टी में न आते ? यह तो आकस्मिक घटना है कि आप इसके पिता है ।''[14] बीना किसी भी हालत में पलाश का अधिकार प्रकाश को सौंपने के लिए तैयार नहीं होती । प्रकाश सोचता है कि बच्चे के लिए फिजूल की भावुकता में कुछ नहीं रखा । संबंध विच्छेदन के बाद फिर से ब्याह कर लिया जाए, तो घर में और बच्चे आ जाएँगे । ''मन में इतना ही सोच लेना होगा कि इस बच्चे के साथ कोई दुर्घटना हो गई थी ...।''[15]

तलाक के ढ़ाई साल बाद प्रकाश एक और ज़िन्दगी प्रारंभ करने के विषय में सोचता है । उसका मानना है कि जब एक विवाह सफल नहीं हुआ तो जरूरी नहीं कि दूसरा भी सफल न हो । लेकिन वह पहले की भूल दोहराना नहीं चाहता था, इसलिए उसकी आशंका ने उसे बहुत सतर्क कर दिया था । अतः अब वह सोचता है कि वह – ''किसी ऐसी ही लड़की के साथ जीवन बिता सकता है जो हर लिहाज से बीना के उलट हो ।''[16]

प्रकाश अपने मित्र जुनेजा की बहन निर्मला को अपनी दूसरी पत्नी के रूप में चुनता है और अपने नये जीवन की शुरुआत करता है । कुछ ही दिनों में प्रकाश के सामने निर्मला का मानसिक विक्षिप्त रूप आता है । निर्मला का यह रूप प्रकाश द्वारा प्रारंभ की गयी नयी ज़िन्दगी के प्रयत्न को काफी करुणाजनक प्रमाणित कर देता है । निर्मला के साथ रहते हुए उसे लगता है कि – ''वह जी न रहा हो, सिर्फ अंदर ही घुट रहा हो । क्या यही वह ज़िन्दगी थी जिसे पाने के लिए उसने इतने साल अपने से संघर्ष किया था ?''[17] निर्मला के साथ उसका घर में रहना दुर्भर हो गया था । निर्मला के विषय में सोचकर वह शून्य सा घिर आता और भौंचक्का सा सड़क के किनारे

खड़ा रह जाता । उसका किसी से मिलने या कहीं भी आने–जाने को मन न होता ।

इस घुटन भरी ज़िन्दगी से पीछे छुड़ाने के लिए वह पहाड़ पर घूमने चला जाता है । यहाँ प्रकाश बीना और पलाश को मिलकर सारी बातें भूल जाता है । वह फिर से बीना और पलाश की ओर झुकता हुआ यह सोचने के लिए विवश हो जाता है कि – ‘‘कितने ही इन्सान हैं जिनकी ज़िन्दगी कहीं न कहीं, किसी न किसी दोराहे से गलत दिशा की तरह भटक जाती है । क्या उचित यह नहीं कि इन्सान उस रास्ते को बदलकर अपने को सही दिशा में ले आए ? आखिर आदमी के पास एक ही तो ज़िन्दगी होती है – प्रयोग के लिए भी और जीने के लिए भी ।’’[18]

प्रकाश और बीना पलाश के कारण एक दूसरे से फिर मिलते है, लेकिन दोनों का अहं अब भी अपनी–अपनी जगह कायम है । ऐसा नहीं कि बीना की ज़िन्दगी में भी कोई दर्द नहीं है । ‘‘बीना का चेहरा पहले से कुछ साँवला हो गया है और उसकी आँखों के नीचे स्याह दायरे उभर आए हैं । वह पहले से काफी दुबली भी लग रही थी ।’’[19] लेकिन फिर भी दोनों अपने दुःखों को एक–दूसरे से बाँटते नहीं हैं । अंत में अपनी–अपनी राहों पर जाते दिखाई देते है । ‘‘अपनी अपनी मान्यताओं पर डटे रहने के कारण दोनों में कोई आत्मीय संवाद भी नहीं हो पाता । शिक्षिता, कामकाजी व महत्त्वकांक्षी स्त्रीयों में पति की इच्छाओं के आगे न झुकने की प्रकृति है । उससे दोनों के अहं की सीधी टकराहट होती है ।’’[20]

कहानी के अंत में प्रकाश को निर्मला से भी तलाक मिल जाता है । वह अपने पहले और दूसरे विवाह की असफलता से अंदर–ही–अंदर घुटकर रह जाता है । प्रकाश बीना से अलग होकर भी गलत चुनाव का शिकार होता है । क्योंकि निर्मला का चुनाव भी बाद में गलत प्रमाणित होता है । ‘‘परंतु प्रश्न यह है कि क्या आज के समाज में व्यक्ति के पास चुनाव के विकल्प वास्तव में है ? प्रकाश अपने बच्चे पलाश से जुड़ा है और संबंध विच्छेदन के बाद बीना और पलाश के अभाव में जीवन की रिक्तता में अकेला रह जाता

है । 'बीयर की बोतलों' में वह अपने अकेलेन को दूर करने का प्रयत्न करता है । बीना और निर्मला से अलग वह अपने लिए शराब की बोतलों में संबंध तलाशता है ।''[21]

अस्तित्व बनाएँ रखने की ललक, अहं और अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति की इच्छा व्यक्ति में बढ़ती जा रही है । प्रत्येक व्यक्ति अपनी स्वतंत्रता के साथ जीना चाहता है । पति–पत्नी के संबंधों में इसी कारण से स्थायित्व नहीं आ पाता । 'गुंझल' कहानी के पति–पत्नी चंदन और कुन्तल के बीच ऊपरी तोरे से देखने पर तो सब कुछ शांत और स्वाभाविक दिखाई देता है, पर भीतर अलगाव और उलझन से भरा है । कुन्तल के मन में अपने जीवन के विषय में कई आशाएँ है जिन्हें वह साकार करना चाहती है । किन्तु वह अपने पति चंदन के साथ रहते हुए अपने आपको अपनी आशाओं के विपरित एक निश्चित ढ़र्रे पर चलता महसूस करती है । चंदन के साथ चल कर वह अपनी आकांक्षा पूरी नहीं कर सकती थी । अतः अपने अस्तित्व को कुचला हुआ अनुभव करती है । ''क्या उसने कभी सोचा था कि उसे जीवन में अपने ही अंदर के संघर्ष से इस तरह पिसना पड़ेगा ? कहाँ युनिवर्सिटी के वे दिन, जीने का वह उत्साह और मन की बड़ी–बड़ी आकांक्षाएँ, और कहाँ आज की यह घिसटती छटपटाती ज़िन्दगी । क्या उसके अंतर्द्वन्द्व को उसके अतिरिक्त और कोई भी समझ सकता था ?''[22]

कुन्तल के मन में स्वतंत्र जीवन जीने की अपेक्षाएँ है जिसे वह शादी के बाद भी बरकरार रखना चाहती है । किन्तु चंदन के साथ और इस समय कि जब चंदन बेकार झेल रहा है । कुन्तल चंदन के साथ बड़ी मुश्किल से जीवन के दिन गुजार रही है । किन्तु अब वह फैंसला ले चूकी है कि अब इस तरह वह नहीं रह सकती । इस समय उसके मन में केवल एक ही लक्ष्य था और वह यह कि ''जल्दी अपने 'क्वार्टर' में वापस पहुँच जाए – वहाँ, जहाँ चारों ओर से दरवाजे बंद करके कुछ देर आँखे मूंदकर पड़ी रह सके ।''[23] वह चंदन से अलग हो जाने का निश्चय कर लेती है । चंदन कुन्तल से बाते साफ कर लेना चहता है । किन्तु कुन्तल अपने अहं के कारण कुछ भी

कहना–सुनना नहीं चाहती । चंदन पूरी कोशिश करता है कि दोनों के बीच आगे के भविष्य को लेकर स्पष्ट बात हो जाय, ताकि आगे चलकर कुछ निर्णय किया जा सके । और अगर कुन्तल चाहे तो उसके पिताजी के सामने सारी बात साफ कर दी जाये । कुन्तल इसे भी स्वीकार नहीं करती । उनका मानना है कि ‘‘हमें किसी के सामने कोई बात नहीं करनी है । हम लोग बच्चे तो हैं नहीं जो किसी तीसरे आदमी के सामने बैठकर बात करेंगे । और पिताजी के सामने तो हम कभी भी कोई बात नहीं करेंगे ।’’[24]

कुन्तल और चंदन कश्मीर से जम्मू तक न चाहते हुए भी यात्रा करते हुए साथ बैठने के लिए अभिशिप्त है । पूरे दिन की यात्रा में वे कुछ औपचारिक वाक्यो का ही आदान–प्रदान करते है । चंदन के चाय और खाने के लिए कहने पर कुन्तल चाह कर भी अपने अहं के कारण मना कर देती है । ‘‘कुन्तल ने सिर हलाकर मना कर दिया । उसका सिर हल्का दर्द कर रहा था और उसका मन था कि चाय की एक प्याली पी लें, चाहे कैसी भी हो । मगर उस मनःस्थिति में वह अपने को ‘हां’ कहने के लिए तैयार नहीं कर सकी ।’’[25] कुन्तल की जीद और अहं दोनों की ज़िन्दगी को टूटने की कगार पर लाकर खड़ा कर देता है । चंदन सोचता है ‘‘अब आगे जीवन का रूप क्या होने जा रहा था ? क्या आगे के लिए वह उसे संभालकर ठीक दिशा दे सकता था ? और यदि नहीं तो आने वाले कल की रूपरेखा क्या होने जा रही थी । क्या एक लड़की का सोचने का ढंग और उसके अंदर का हठ ही उसके जीवन की हर चीज़ को तोड़ने के लिए कुछ भी नहीं कर सकता था ?’’[26]

कहानी का शीर्षक ‘गुंझल’ यहाँ पति–पत्नी के बीच की मानसिक उलझन का प्रतीक है । ‘गुंझल’ शब्द चंदन के दिमाग में बार–बार आता है । कुन्तल और चंदन के बीच संबंध इस तरह उलझन में है जो न टूट पाता है न खुल पाता है । चंदन यह चाहता है कि सारी बाते साफ हो जाय । पर कुन्तल का अहं और जीद कोई बात स्पष्ट नहीं होने देता । कहानी के अंत में कुन्तल की यह जीद ही चंदन के लिए उत्तर बन जाती है – ‘‘तो इसका

मतलब है कि हम लोगों का संबंध आज से और इसी समय से समाप्त हो जाता है ।"[27]

प्रस्तुत कहानी में राकेशजी ने पति–पत्नी संबंध की जटिलता को यथार्थ शैली में अभिव्यक्ति दी है । यहाँ 'गुंझल' न केवल दो पात्रों के बीच की उलझन है, अपितु आधुनिक संबंधों के बीच की वह उलझन है जो अहं, जीद और अपने व्यक्तित्व को बनाएँ रखने की ललक से उत्पन्न हुई है जो न खुलती है और न टूटती है ।

❀ *व्यावसायिक व्यस्तता और महत्त्वकांक्षा :*

बदलते हुए समय की बदलती परिस्थितियों के साथ–साथ ही मनुष्य की इच्छाओं और आवश्यकताओं में भी परिवर्तन हो रहा है । आज के युग में पैसे का महत्त्व अधिक बढ़ता जा रहा है । पैसे और प्रतिष्ठा पाने की महत्त्वकांक्षा व्यक्ति में अधिक बलवती होती जा रही है । आज के समय में स्त्री और पुरुष में यह भावना समान रूप से मिलती है जिससे उनके संबंधों में तनाव, बिखराव और असांमजस्य की स्थितियाँ पैदा हो गयी है । "मोहन राकेश के साहित्य में भी संबंधों में तनाव का बहुत बड़ा कारण पात्रों का महत्त्वकांक्षी होना है । महत्त्वकांक्षा का दबाव इतना अधिक है कि परिवार में पति–पत्नी का संबंध गौण हो गया है । इसके लिए यदि उन्हें घर भी छोड़ना पड़े तो वे इसके लिए भी तैयार है । वे अपनी इच्छाओं का दमन करना स्वीकार नहीं करते । मुख्यतः मध्यमवर्गीय व्यक्ति में महत्त्वकांक्षा इतनी अधिक होती है कि वह हंमेशा असंतुष्ट रहता है । एक लक्ष्य प्राप्त के बाद दूसरे को पाने की उनकी इच्छा उनमें कुण्ठित भावनाएँ पैदा करती रहती है ।"[28]

'फौलाद का आकाश', 'आखिरी सामान', 'गुंझल', 'एक और ज़िन्दगी', 'अपरिचित' आदि जैसी कहानियों में राकेशजी ने महत्त्वकांक्षा और व्यावसायिक व्यस्तताओं के कारण उत्पन्न आज की ज़िन्दगी की कड़वी छटपटाहट को यथार्थ रूप में रेखांकित किया हैं ।

'फौलाद का आकाश' कहानी के रवि और मीरा एक दूसरे को पसंद करते है । लेकिन विवाह के बाद रवि अपनी महत्त्वकांक्षा पूरी करने के लिए तथा समाज में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान बनाने के लिए अपने व्यवसाय के प्रति सर्वस्व समर्पण कर देता है । रवि का पूरा समय अपने काम और अपनी आकांक्षाओं के लिए ही रह जाता है । रवि का यह व्यवहार उनके दाम्पत्य जीवन को विषाक्त कर देता है । ब्याह से पहले मीरा रवि के साथ घुल–मिल जाने की जो बात सोचती थी, उसका आभास भी अब उसे अपने में नहीं मिलता । मीरा यह महसूस करती है कि अब पहले की बात नहीं रही है क्योंकि रवि साधारण प्राध्यापक से एक बड़े कारखाने का लेबर–एडवाइज़र बन गया है । रवि अपनी दिन–ब–दिन बढ़ती व्यस्तताओं के कारण अपनी पत्नी मीरा से भावनात्मक रूप से भी दूर होता जा रहा है । मीरा को लगता है कि – ''जब रवि बोलता है तो उसकी बातों में शब्द कम और आंकड़े ज्यादा होते । आंकड़े, आंकड़े, आंकड़े ! क्या बिना आंकड़ो के रवि कोई बात सोच ही नहीं सकता था ? मीरा को लगता था कि उससे प्यार करते वक्त भी वह मन ही मन चुम्बनों की गिनती करता रहता होगा ...।''[29] पति–पत्नी के संबंधों में से भावनात्मक जैसे गायब हो गयी है और अगर कही है तो सिर्फ मीरा की ओर से ।

'फौलाद का आकाश' कहानी का पति रवि सिर्फ 'केरियरिस्ट' व्यावसायिक स्वार्थी बन गया है । जिसे सिर्फ अपने आपसे ही मतलब है । मीरा की इच्छाओं और भावनाओं के लिए उसके पास कोई समय नहीं है और इस दिशा में सोचने की वह जरूरीयात भी महसूस नहीं करता । रवि के लिए मीरा सिर्फ घर संभालने के लिए, खाना बनाने के लिए और शारीरिक भूख मिटाने का साधन मात्र है । रवि मीरा से सिर्फ कायिक स्तर पर ही जुड़ा हुआ है । मीरा की इच्छा अपना बच्चा पाने की है, किन्तु रवि हर बार मीरा को बच्चे से दूर ही रखना चाहता है, क्योंकि उसका व्यवसाय ही उसके लिए सब कुछ है, मीरा की अन्य इच्छा या मीरा की बच्चा पाने की इच्छा का उसकी दृष्टि में कोई महत्त्व नहीं है । रवि और मीरा के बीच की यह स्थिति

उनके वैवाहिक जीवन में औपचारिकता तथा स्नेहपूर्ण संबंधों की जगह अलगाव ही भर देता है । इसी वजह से मीरा अंतरंग से अंतरंग क्षणों में भी रवि को अपने से कोसों दूर महसूस करती है । रवि जब कहता है कि “मेरे साथ अपनी ज़िन्दगी तुम्हें बहुत रूखी लगती है न ? मैं बहुत बुरा हूँ, हूँ न ? तुम्हें मैं बहुत दुःखी करता हूँ नहीं ? पर अब तो तुम्हें सहने की आदत हो गई है, नहीं ?”[30] कहते हुए मीरा के उत्तर की प्रतिक्षा किये बिना ही उसके शरीर की गोलाईयों को मसलने लगता, उसके दांत जगह–जगह उसके माँस को काटने लगते और मंजिल दर मंजिल शारीरिक निकटता की हदें पार होती जाती । रवि मीरा से जिस प्रकार प्यार का ढोंग रचता है इससे मीरा अनुभव करती है कि वह सिर्फ स्वार्थी है ।

रवि की फैकटरी में चल रही स्ट्राइक को खत्म कराने के लिए मिल मालिकों और मजदूरों के झगड़े को दूर करने के लिए मिनिस्टर राजकृष्ण आता है । जो रवि और मीरा का कॉलेज का मित्र रह चुका है । रवि चाहता है कि मीरा राजकृष्ण को मिलने सरकिट हाउस में चली जाय । मीरा राजकृष्ण को मिलने सरकिट हाउस जाती है । यहाँ मीरा राजकृष्ण की वासना का शिकार होती है । रवि की फैकटरी की हड़ताल टूटती है । रवि को अपना काम हो जाने की खुशी है । सरकिट हाउस का चपरासी मीरा का रूमाल और पर्स देने आता है । रवि सबकुछ देखकर–जानकर भी अनजान बन जाता है । क्योंकि प्लांट में हड़ताल टूट जाने से उसका कैरियर अधिक उज्जवल बन गया है । अतः वह राजकृष्ण और मीरा के विषय में कोई बात भी नहीं करता । घर में राजकृष्ण से मिलने के बाद मीरा की स्थिति को देखकर भी रवि उसे कुछ नहीं पूछता ।

सिर्फ अपने कैरियर के विषय में सोचने वाला रवि मीरा की पीड़ा, अकेलापन और घुटन कुछ भी महसूस नहीं करता । महत्त्वकांक्षा से पूर्ण उसके आत्मकेन्द्रित व्यक्तित्व के कारण रवि और मीरा के बीच टूटते रिश्ते का मार्मिक अंकन प्रस्तुत कहानी में हुआ है ।

कई बार कैरियर प्रारंभ करने से पूर्व ही व्यक्ति की कुछ महत्त्वकांक्षाएँ होती है । जैसे उसे अपनी ज़िन्दगी में एक विशेष सीमा तक ऊँचा उठना है और समाज में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान बनाना है । लैकिन विपरीत संजोग और माहौल मिलने के कारण वह अपनी इच्छाओं के जहाज को डूबता हुआ अनुभव करता है । तब वह अपनी समग्र ताकात लगाकर अपनी महत्त्वकांक्षा को पूरा करने का प्रयत्न अवश्य करता दिखाई देता है । फिर चाहे उसके लिए उसे अपना सबकुछ ही क्यों दाव पर न लगा देना पड़े । 'आखिरी सामान' राकेशजी की इसी तथ्य को प्रस्तुत करनेवाली एक अन्य महत्त्वपूर्ण कहानी है । प्रस्तुत कहानी का पात्र मि. सुशील भण्डारी कुछ ऐसा ही पात्र है जो अपना कैरियर बनाने के लिए कुछ भी करने के लिए तैयार है ।

'आखिरी सामान' के मि. भण्डारी की महत्त्वकांक्षा उच्चवर्ग के अनुरूप अपनी जीवन शैली बनाने की तथा बहुत ठाठ से जीने की है । मि. भण्डारी एक्साइज़ और टैक्सेशन विभाग में इन्स्पेकटर है । सिर्फ वेतन के पैसे से उसे अपनी महत्त्वकांक्षा पूर्ण होती नज़र नहीं आती है । उन्हें अपने घर को बढ़िया तरीके से सजाने की चाहत है । वह चाह रहा है कि अपने मित्र सुधीर, जिसके पिता–मिनस्ट्री से संबंध रखते है, इसलिए वह बहुत शीघ्र उन्नति कर रहा है, के घर की तरह मूल्यवान वस्तुओं से अपने घर को सजाये । लेकिन सुधीर के घर जैसे पर्दो और गालीचों के लिए हजारों रुपये चाहिए । इसी वजह से मि. भण्डारी सुधीर के सामने अपने को छोटा महसूस करते हैं । ''सुधीर के साथ अपने संबंध को लेकर मिस्टर भण्डारी के मन में एक छाया घिरी रहती थी, क्योंकि शायद वे दोस्त होकर भी बराबर नहीं थे, बड़े–छोटे थे । मिस्टर भण्डारी, जिन्हें अपनी योग्यता और प्रतिभा के नाते बड़ा होना चाहिए था, छोटे थे और सुधीर जिसे छोटा होना चाहिए था, बड़ा था । मिस्टर भण्डारी सुधीर की उपस्थिति में अपनी हद से बाहर खर्च करते थे । अपने घर को सजाने की भी उन्हें बहुत चाह थी । वे प्रायः कहा करते थे कि ''सुधीर के पास पैसे है, पर अच्छी चीज पहचानने वाली आंख नहीं है । गांठ है, टेस्ट नहीं । यदि वे उससे एक चौथाई भी खर्च कर सकें, तो अपने

घर को इस तरह सजाकर रखें कि देखने वाले की आंखें पथरा जाए ।''[31] अतः जहाँ तक बन पड़ता, वे घर के लिए नित नई चीजें ले आया करते थे ।

मि. भण्डारी अपनी इच्छाओं की पूर्ति करने के लिए रिश्वत लेने लगते है । अपने पद का फायदा उठाकर वे अपनी महत्त्वकांक्षा पूरी करने में लग जाते है । फिर क्या था घर के लिए नित–नयी चीज आया करती थी, कभी सोफा–सेट, कभी नये परदों के लिए कापड़, रेफिजरेटर और कई–कई चीजें । घर में जितना सामान आ सकता था उससे कहीं अधिक सामान ले आया गया । ''उनका ड्राइंग रूम अब अफसर तबक्के में सबसे ज्यादा सजे हुए ड्राइंग रूम्ज़ में गिना जाता था ।''[32]

अपनी इच्छापूर्ति की चाहत में मि. भण्डारी ने अपने विचारों को भी पूर्णतः बदल दिया था । ''पहले दिनों में मिस्टर भण्डारी नौकरी छोड़कर सारा समय राजनीतिक कार्यो में लगा देने की बात किया करते थे । कॉलेज के दिनों के आदर्श गाहे–बगाहे उन्हें कुरुदने लगते थे । मगर धीरे–धीरे उनकी फिलोसोफी बदल गयी थी । अब वे कहते थे कि इन्सान नीचे से दुनिया में कुछ नहीं कर सकता, कुछ करने के लिए आवश्यक है कि इन्सान पहले कुछ करने की स्थिति में पहुँच जाए । किस रास्ते से वह वहाँ पहुँचता है, इसका महत्त्व नहीं है । नीचे की सतह से आदर्श की कोई आवाज नहीं है । आदर्श की आवाज उपर की सतह से ही सुनी जा सकती है । मगर ज्यों ज्यों वे उपर उठ रहे थे । सतह भी ऊँची उठती जाती थी ।''[33]

मि. भण्डारी बारह सौ रुपये की नौकरी पाने के मनसूबे से अपनी पत्नी बेला भण्डारी को भी अपने उच्चाधिकारी को सौंपने के लिए तैयार हो जाते है । किन्तु मिसेज़ भण्डारी अपनी रक्षा करने में सफल रहती है । मिस्टर भण्डारी की बारह सौ रुपये की नौकरी पाने की इच्छा अधूरी रह जाती है । फलतः वह मिसेज़ भण्डारी पर खफा रहते है । दोनों के बीच दूरी बढ़ने लगती है । मि. भण्डारी के इस व्यवहार से मिसेज़ भण्डारी भीतर–ही–भीतर घुटन अनुभव करती हुई टूटती है । दूसरी तरफ उच्चाधिकारी बदला लेने की

चाहत से मि. भण्डारी को फँसा कर उसे जेल भेज देता है । मिसेज़ भण्डारी अपने पति को छुडाने के लिए पैसों का इन्तजाम करते हुए घर की एक–एक चीज नीलाम कराने के लिए मजबूर हो जाती है । जिस घर को बड़ी चाहत से सजाया था उसे ही बिखेरने के लिए लाचार सी नज़र आती है ।

मि. भण्डारी की महत्त्वकांक्षा की उड़ान उसके घर को तीतर–बितर करके रख देती है । 'आखिरी सामान' कहानी में राकेशजी ने बढ़ती महत्त्वकांक्षा को पति–पत्नी के बीच की दरार के रूप में प्रस्तुत किया है । साथ ही यहाँ राकेशजी ने व्यक्ति को सावधान भी किया है ।

पति–पत्नी के संबंधों में तनाव का बहुत बड़ा कारण उसका महत्त्वकांक्षी होना है । क्योंकि कभी–कभी तो व्यक्ति अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए घर, बच्चें, रिश्ते सभी छोड़ने के लिए तैयार दिखाई देता है । व्यक्ति के लिए अपनी महत्त्वकांक्षा ही सबकुछ हो जाती है या कहे कि महत्त्वकांक्षा का दबाव इतना बढ़ जाता है कि उनके सामने बाकी सब गौण हो गया है । राकेशजी के साहित्य के पात्रों में यह भावना सशक्त रूप में उभर कर आयी है ।

'एक और ज़िन्दगी' की नायिका बीना अपनी स्वतंत्रता की महत्त्वकांक्षी है । वह अपने जीवन में सिर्फ प्रकाश की पत्नी बनकर ही रहना नहीं चाहती । इसी कारण वह प्रकाश के अनुरूप अपने आपको नहीं ढाल पाती । उसे अपने दर्जे और स्वतंत्रता का बहुत मान है । अतः एक साल का बच्चा होने पर भी वह संबंध विच्छेद करके अलग होने का फैंसला कर लेती है ।

'अपरिचित' कहानी की नलिनी भी महत्त्वकांक्षी स्त्री है । वह चाहती है कि शादी के बाद पूरे घर और अपने पति पर उसका शासन हो । वह अपनी इच्छाओं के आधार पर सब को चलाना चाहती है । नलिनी के इसी व्यक्तित्व के लिए कथानायक 'मैं' का कहना है ''वह एक भरा–पूरा घर चाहती थी, जिसमें उसका शासन हो । वह अपने से स्वतंत्र अपने पति के मानसिक जीवन की कल्पना नहीं करती थी । मैं उसकी कोई भी महत्त्वकांक्षा पूरी करने में सहायक नहीं हो सकता ।''[34] पत्नी की यह महत्त्वकांक्षा शादी के पहले दिन से ही दोनों के बीच एक अलगाव पैदा कर देता है । नलिनी का पति 'मैं'

नलिनी की इच्छाओं के अनुरूप नहीं जी सकता अतः वह दूसरी जगह काम करने चला जाता है ।

'गुंझल' कहानी में चंदन और कुन्तल के बीच तनाव का कारण कुन्तल की महत्त्वकांक्षा है । विवाह से पहले वह अपने स्वतंत्र व्यक्ति के साथ जीने की इच्छा रखती थी । उसकी कई आशाएँ हैं जिन्हें वह साकार करना चाहती है । लेकिन शादी के बाद उसका जीवन विपरीत एक निश्चित ढरें पर चलता है जिसे वह पसंद नहीं करती । अपनी महत्त्वकांक्षा की पूर्ति के लिए वह अपने पति से अलग होना चाहती है – "क्या उसने कभी सोचा था कि उसे जीवन में अपने ही अंदर के संघर्ष से इस तरह पिसना पड़ेगा ? कहाँ युनिवर्सिटी के वे दिन, जीने का वह उत्साह और मन की बड़ी–बड़ी आकांक्षाएँ, और कहा आज की यह घिसटती छटपटाती ज़िन्दगी । क्या उसके अन्तर्द्वन्द्व को उसके अतिरिक्त और कोई भी समझ सकता था ?"[35] "कई बार विवाह से पूर्व व्यक्ति की कुछ अपेक्षाएँ होती है जिन्हें वह अपनी ज़िन्दगी में पूरी करना चाहता है । लेकिन जब इच्छा के विपरीत माहौल मिलता है तो उसे घुटन महसूस होती है ।"[36] 'खाली' कहानी की तोषी शादी से पहले भरी हुई दुनिया में जीने की महत्त्वकांक्षा रखती थी । किन्तु विवाह के बाद वास्तविकता कुछ अलग ही रूप में सामने आयी । तोषी का पति जुगल स्वभाव से विचित्र है अतः बाहरी दुनिया से जैसे उसका संबंध ही कट गया है । साथ ही जुगल अपनी व्यावसायिक व्यस्तताओं के कारण सुबह से शाम तक दफ्तर के कागजों में उलझा रहता है । तोषी को जुगल के साथ विवाह के बाद की ज़िन्दगी अपनी महत्त्वकांक्षा के विरुद्ध 'लगातार' खाली होती हुई लगती है । अतः पति–पत्नी के संबंध में चिड़–चिड़ापन और असामंजस्य की स्थिति पैदा हो गयी है ।

'गुनाह बेलज्जत' कहानी के पति सरदार सुन्दरसिंह की इच्छा सुंदर पत्नी पाने की थी । किन्तु भागवन्ती के रूप में उसे जो पत्नी मिली है जिसकी सूरत से भी वह नफरत करता है । साथ ही सुन्दरसिंह की इच्छा भी बड़ा आदमी बनने की थी जिसे वह अपनी मेहनत और नशीब से पूरा करता है ।

वह एक सामान्य ठेला चलाने वाला व्यक्ति था अब होटल का मालिक बन गया है । ''कुछ बरस पहले चाय और शरबत का सामान ठेला गाड़ी में रखकर गली–गली घूमा करता था तो उसके दिल ने शहादत दी थी, एक दिन वह अपना बहुत बड़ा होटल खोलेगा और कई–कई बैरे और खानसामे उसकी नीचे काम करेंगे ।''[37] सालों की महनत के बाद वह अपना यह सपना पूरा कर लेता है । लेकिन उसकी एक और महत्त्वकांक्षा पूरी नहीं हो सकती थी । ''उसे महसूस होता था उसके बाहर की चीज ही नहीं बदली वह अन्दर से भी पूरी तरह बदल गया है । केवल एक चीज नहीं बदली थी और वह थी उसकी बीबी, जिसकी सूरत से उसे नफरत थी । उसके पास जाकर सुन्दरसिंह के दिल की सारी उमंगे ठंड़ी पड़ जाती थी ।''[38] सुन्दरसिंह की व्यावसायिक रूप से ऊँचा उठने की आकांक्षा तो पूरी हो जाती है किन्तु भागवन्ती को लेकर उसकी दूसरी आकांक्षा पूरी नहीं हो पाती । अतः भागवन्ती और सुन्दरसिंह के बीच दूरी और खिंचाव बराबर बना रहता है ।

व्यक्ति की महत्त्वकांक्षा जीवन में बहुत कुछ पा लेने की होती है । लेकिन उसे सफलता ही मिले यह जरूरी नहीं है । लेकिन जहाँ सफलता नहीं मिलती वहाँ तनाव और छटपटाहट अवश्य रहती है । कभी–कभी यह स्थिति व्यक्ति को कुंठित भी बना देती है और वह समाज के बीच भी समाज से अलग अपने आपको कटा हुआ महसूस करता है । मोहन राकेश के कहानी साहित्य में ऐसे पात्र है जिसमें इच्छित जीवन जीने की आकांक्षा बलवती है । अपनी महत्त्वकांक्षा के लिए वे अपने सारे प्रयत्न करते दिखाई दते है । अपनी महत्त्वकांक्षा पूरी करने की दौड़ उसे स्वार्थी, आत्मकेन्द्रित बना देती है । फलतः उसके संबंध प्रमावित रहते है । विशेष रूप से पति–पत्नी के बीच के संवेदनशील और कोमल संबंध । राकेशजी ने अपनी कहानियों में व्यक्ति की प्रबल महत्त्वकांक्षा से प्रभावित होते दाम्पत्य सम्बन्ध का सूक्ष्म विवेचन किया हैं ।

❀ *भिन्न मानसिकता :*

पति–पत्नी के बीच उद्देश्यों की, अभिरुचियों की, स्वभाव की तथा व्यक्तिगत आकांक्षाओं में एकता होनी चाहिए । इनके अभाव में पति–पत्नी के बीच असामंजस्य, कलह और लड़ाई झगड़े होने लगते है । राकेशजी की कहानियों में कई ऐसे पात्र है जो अपनी स्वाभाविक भिन्नता के कारण पति–पत्नी के रूप में सामंजस्य नहीं साध पाते । दोनों ही अपने अस्तित्व को अधिकाधिक महत्त्व देते है । वे सामने वाले को अपने अनुसार बदलने की कोशिश करते हैं किन्तु खुद उनके विचारों के अनुसार बदलने की कोशिश नहीं करते । यही कारण है कि पति–पत्नी का संबंध में बिखराव की स्थिति पर पहुँच जाता है या तो टूट जाता है ।

राकेशजी के साहित्य में पति–पत्नी के संबंधों में बढ़ते तनाव और अजनबीपन का एक प्रमुख कारण दोनों की भिन्न प्रकृति है । इसे कहानीकार ने अपनी कहानियों मे विभिन्न कोणों से उठाने का प्रयास किया है । इस दृष्टि से राकेशजी की 'अपरिचित' कहानी अपना विशेष स्थान रखती है । 'अपरिचित' कहानी में यह समस्या दो दंपतियों के माध्यम से सशक्त रूप में सामने आयी है । यह चरित्र है दीशी और दीशी पत्नी तथा कथानायक 'मैं' और उसकी पत्नी नलिनी ।

'अपरिचित' कहानी का पति दीशी चाहता है कि उसकी पत्नी गुमसुम न रहे, लोगों से मिले, हँसे बोले और सभी से घुलमिल जाये । क्लब और पार्टीयों में उसके साथ जायें यह सब दीशी अपनी पत्नी के लिए चाहता था । क्योंकि दीशी को क्लब, संगीत, सोसायटी के बीच रहना, पार्टीयों में जाना सबके साथ बातचीत करना बहुत अच्छा लगता है । लेकिन उसकी पत्नी एकांतप्रिय है । अतः दीशी के साथ पार्टीयों में और क्लब में जाने से उसका दम घुटता है । वह मौन रहकर स्पर्श की भाषा से ही अपनी बात कहना चाहती है । बरसात में भिगना, पर्वतों पर घूमना, बच्चों के साथ घुलमिल जाना उसे अच्छा लगता है । वह आदर्श पत्नी बनी रहना चाहती है, क्योंकि वह संस्कारों का आदर्श करती है ।

दीशी समाज और सोसायटी के बीच, पार्टीयों में जाना, खुले व्यक्तित्व के साथ लोगों से मिलना आदि पसंद करता है । जबकि दीशी पत्नी का स्वभाव अंतर्मुखी है, उसे कृत्रिमता पसंद नहीं । अतः वह अपरिचित लोगों के बीच अपने को 'मिसफिट' महसूस करती है । वह कहती है – ''मैं बहुत से परिचित लोगों के बीच अपने को अपरिचित, बेगाना और अनमेल अनुभव करती हूँ । मुझे लगता है कि मुझमें ही कुछ कमी है । मैं इतनी बड़ी होकर भी वह कुछ नहीं जान समझ पाई, जो लोग छुटपन में ही सीख जाते हैं । दीशी का कहना है कि मैं सामाजिक दृष्टि से बिलकुल मिसफिट हूँ ।''[39]

प्रस्तुत कहानी में पति–पत्नी का दूसरा जोड़ा कथानायक 'मैं' और उसकी पत्नी नलिनी है । नलिनी आधुनिक एवं स्वतंत्र विचारोंवाली है । कॉलेज में लेक्चरर है अतः अपनी आदत की वजह से वह घर में भी कुछ ज्यादा ही बोलती है । उसे समाज में मिले महत्त्वपूर्ण दर्जे से गर्व है । साथ ही वह अपने पति को भी अपनी इच्छा के अनुकूल चलाना चाहती है । लेकिन उसका पति 'मैं' आदिम संस्कारों के बीच रहना पसंद करते है, अतः अपने आप में ही बंध रहता है । उसे ज्यादा बात करना पसंद नहीं है, वह एकांत को पसंद करता है । लेकिन नलिनी उसे असामाजिक कहती है ।

नलिनी उनमुक्त स्वभाव की स्त्री है जबकि कथानायक 'मैं' का व्यक्तित्व अपने आप में सीमित है । नलिनी चाहती है कि उसका पति उसकी तरह खुलकर बात करे किन्तु 'मैं' अपनी आदते नहीं बदल सकता । नलिनी अपने स्वभाव के अनुसार अपने पति को बदलना चाहता है । किन्तु – ''परिस्थिति सुधरने की जगह बिगड़ती गयी थी । वह जो कुछ चाहती थी वह मैं नहीं कर पाता था और जो कुछ मैं चाहता था, वह उससे नहीं होता था । इससे हममें अक्सर खच्–खच् होने लगती थी और कई बार दीवारों से सिर टकराने की नौबत आ जाती थी ।''[40]

दीशी पत्नी दीशी की विदेश जाने की इच्छा को अपने गहने बेचकर पूरी करती है । लेकिन वह उसकी भावनाओं की कद्र तक नहीं करता । वह दीशी को खुश–रखने का भरसक प्रयास करती है वह इस संबंध'मैं से कहती है –

''मैं हजार चाहती हूँ कि उन्हें खुश दिखाई दूँ और इनके सामने कोई न कोई बात करती रहूँ, लेकिन मेरी सारी कोशिशें बेकार चली जाती हैं । इन्हें फिर गुस्सा आ जाता है और मैं रो देती हूँ । इन्हें मेरा रोना बहुत बुरा लगता है ।''[41]

दीशी अपनी पत्नी को अपनी प्रकृति से भिन्न पाकर विदेश चला जाता है तो दूसरी तरफ कथानायक 'मैं' भी अपनी पत्नी से अलग रहकर अपना जीवन निर्वाह कर रहा है । किन्तु जब कथानायक 'मैं' और दीशी पत्नी ट्रेन में मिलते है तब दोनों एक दूसरे से खुलकर बाते करते हैं । कारण, दोनों के बीच एक सी रुचियों का आभास सा है ।

इस कहानी में ऐसे पति–पत्नी है जहाँ पति स्वतंत्र और खुले विचारों का है लेकिन पत्नी एकान्तप्रिय और कम बोलने वाली । पति चाहता है कि पत्नी उसके साथ क्लब में जायें, लोगों से मिले । किन्तु पत्नी अपने संस्कारों के कारण यह नहीं कर पाती । जिससे पति अपनी पत्नी को निम्न स्तर का मानता है । तो दूसरी ओर पत्नी खुले विचारों से युक्त समाज में अपना महत्त्वपूर्ण दर्जा रखते वाली, महत्त्वकांक्षा से पूर्ण है तो पति कम बोलने वाला और आदिम विचारों का निर्वाह करनेवाला है । जिसे पत्नी असामाजिक कहती है । इस प्रकार 'अपरिचित' कहानी पति–पत्नी के रूप में ऐसे व्यक्तियों को प्रस्तुत करती है, जिसकी वैचारिक एवं स्वभाविक धारणाएँ अलग–अलग है । इसलिए पति–पत्नी जैसा घनिष्ठ सामाजिक रिश्ता होने के बावजूद भी दोनों के बीच अपरिचय की स्थिति बनी रहती है । दाम्पत्य जीवन में जो समरसता आनी चाहिए वह नहीं आ पाती । असल में यह कहानी बेमेल रुचियों के कारण जीवन में आयी रिक्तता, कटुता और बासीपन की कहानी है । ''रुचि वैभिन्नय स्त्री–पुरुष को किस सीमा तक और किस तरह अलगाव के बिंदुओं की ओर ले जाता है तथा उसमें नारी अपने को कितना रिक्त, विवश और टूटा हुआ अनुभव करती है, पुरुष किस तरह किसी भी बहाने उससे अलग होकर नयी मूलवता खोजता है व स्थिति की जटिलता किस तरह अपरिचय और अजनबीपन के बीच एक नये परिचय की अगरबती जलाकर बुझा देती है

आदि सबकुछ कहानी का कथ्य है । एक ओर मानव संबंधों की सूक्ष्मता पूरी जटिलता के साथ यहाँ है और दूसरी ओर मानवीय वृत्ति की सहज निश्छलता से प्रेरित अपरिचय में परिचय की तलाश । यह स्थिति इसे बदलते मूल्यों के साये में विकसित नये मानव संबंधों की कहानी प्रमाणित करती है । न कुछ से बहुत कुछ देने वाली यह राकेश की उल्लेख्य कहानी है ।''[42]

'सुहागिनें' कहानी का पति सुशील अपनी पत्नी मनोरमा से अर्थोपार्जन में सहायता चाहता है । ताकि उसके भाई–बहन पढ़ सके और घर खर्च में भी मदद मिलती रहे । मनोरमा एक सहज स्वभाव की स्त्री है, अतः वह चाहती है कि वह नौकरी छोड़कर सिर्फ घर गृहस्थी और बच्चों को संभाले । साथ ही वह अपना बच्चा चाहती है । जिसको वह अपने शरीर में महसूस कर सके । किन्तु सुशील स्वभाव से प्रेकटीकल आदमी है अतः वह मनोरमा के विचारों से, भावनाओं से सहमत नहीं होता । किन्तु मनोरमा ''कल्पना में अपने को एक छोटे बच्चे को अपने में लिए हुए देखती और पुलकित हो उठती । उसे आश्चर्य होता कि क्या सचमुच एक हिलती डुलती काया उसके शरीर के अंदर से जन्म ले सकती है । कितनी ही बार वह सुशील से कहती थी कि वह इस आश्चर्य को अपने अन्दर अनुभव करके देखना चाहती है मगर सुशील इसके हक में नहीं था । वह नहीं चाहता था कि अभी कुछ साल वे एक बच्चे को घर में आने दें । उससे एक तो उसका फिगर खराब होने का डर था, फिर उसकी नौकरी का भी सवाल था । सुशील नहीं चाहता था कि वह नैकरी छोड़कर बस घर गृहस्थी के लायक ही हो रहे ।''[43] मनोरमा की स्त्री सहज भावनाओं के लिए भी सुशील के पास कोई संवेदना नहीं है । वह मनोरमा की संवेदना की कद्र नहीं करता । फलतः मनोरमा सुशील से एक दूरी अनुभव करने लगती है ।

'आखिरी सामान' के मि. भण्डारी अपनी महत्त्वकांक्षा को पूर्ण करने के लिए अयोग्य मार्ग का सहारा लेने से नहीं हिच–किचाते । उनके लिए कैरियर और पैसा ही सब कुछ है । रिश्ते, संवेदना आदि से वह कोसों दूर हो गये है । यहाँ तक कि वह अपनी पत्नी को भी कैरियर के लिए इस्तमाल करना

चाहते है । किन्तु बेला इन सब बातों को ठीक नहीं समझती । पार्टीयों में मि. भण्डारी के साथ जाना शराब पीना आदि भी उसे अच्छा नहीं लगता । वह अपने पति का साथ अवश्य देती दिखाई देती है किन्तु फिर भी वह मि. भण्डारी की सोच को अपने संस्कारों के कारण अपना नहीं पाती है । अतः पति–पत्नी के बीच एक तनाव और खिंचाव बराबर बना रहता है ।

'फौलाद का आकाश' कहानी का पति रवि एक साधारण लेक्चरर से अब स्टील प्लान्ट में लेबर–एडवाइज़र बन गया है । इस पद पर पहुँचते पहुँचते उसके स्वभाव में भी काफी परिवर्तन आ गया है । उसमें से संवेदनशीलता और भावुकता दूर हो गयी है । इनकी जगह आंकोड़ो ने ले ली है । किन्तु मीरा में अब भी वही भावुकता है । मीरा जब भावुकता में रवि को कुछ कह देती है तो रवि का जवाब होता है ''इतने साल साथ रहकर भी तुममें जरा फर्क नहीं आया ।''[44] यह सुनकर मीरा की आँखें छलछला आती और वह अपने को उससे बहुत दूर महसूस करती है । रवि के चेहरे का भाव उस फासले को ओर भी बढ़ा देता था । उस फासले को भरने की कोशिश उसे एक ऐसा झूठ लगता था जो वह दस साल से लगातार अपने से बोल रही थी । ''रात–दिन साथ रहकर भी वह फासला कम होने में नहीं आता था । जितना ही वह उससे नजदीक आती, फासले का अहसास उतना ही ज्यादा होता था ।''[45]

जहाँ पति–पत्नी एक दूसरे की भावनाएँ, वैचारिकता और संवेदनाएँ नहीं महसूस कर सकते वहाँ पति–पत्नी के बीच के फाँसले बढने ही नज़र आते हैं । 'सुहागिनें', 'आखिरी सामान', 'फौलाद का आकाश' आदि कहानियों में असामंजस्य इसी कारण से उत्पन्न है ।

कभी–कभी शिक्षित पति भी अपनी शिक्षित और आधुनिका पत्नी के साथ वैचारिक सामंजस्य स्थापित नहीं कर पाता । 'एक और ज़िन्दगी' कहानी के पति–पत्नी बीना और प्रकाश दोनों एक समान पढ़े लिखे और नौकरी में भी समान दर्जे के है । दोनों अपनी मर्जी से विवाह करते है । प्रकाश बीना को सिर्फ पत्नी के परंपरागत रूप में देखना ही स्वीकार करता है जो उनकी

घर गृहस्थी और बच्चे संभाले । किन्तु बीना आधुनिक और स्वतंत्र व्यक्तित्व को मानने वाली है । अतः अपने को सिर्फ घर गृहस्थी के लायक बनाकर रहना नहीं चाहती । किन्तु प्रकाश ऐसी लड़की को पत्नी के रूप में चाहता था जो हर लिहाज से उस पर निर्भर हो । जिसकी कमजोरियाँ एक पुरुष के आश्रय की अपेक्षा रखती हों । किन्तु ''बीना में बहुत अहंकार था, वह उसके बराबर पढ़ी लिखी थी, उससे ज्यादा कमाती थी । उसे अपनी स्वतंत्रता का बहुत मान था ।''[46] प्रकाश बीना को अनुरूप ढालने का प्रयत्न करता है किन्तु बीना अपने आपको बदलना नहीं चाहती । अतः धीरे-धीरे दोनों में दूरी पैदा होने लगती है और यह स्थिति तलाक तक पहुँच जाती है ।

'चौगान' कहानी का हैरी विल्सन सख्त स्वभाव का आदमी है । हैरी के इस स्वभाव के कारण उसकी पत्नी लिज़ी उसे संबंध विच्छेदन कर लेती है । लिज़ी उसके इस स्वभाव सहन नहीं कर पाती । ''लिज़ी ने उसके तीन बच्चों की माँ होकर भी उससे संबंध विच्छेद कर लिया था । उसने कहा था कि वह उसे नहीं चाहती, किसी और को चाहती है.... और इस तरह की ज़िन्दगी ढोना उसके लिए संभव नहीं है । वह स्वभाव का सख्त आदमी था और लिज़ी को उससे काफी शिकायत रहती थी । पहले कुछ साल-लिज़ी सब कुछ सहती हुई भी खामोश रही थी मगर जब वह बोल पड़ी तो ज़िन्दगी को फिर पुरानी सतह पर ले जाना संभव नहीं हुआ ।''[47] हैरी का सख्त स्वभाव पति-पत्नी के बीच वैमनस्य पैदा कर देता है, उनके संबंध को इतना कटु बना देता है कि लिजी हैरी से स्वतंत्र हो जाने का निर्णय कर लेती है ।

'खाली' कहानी के जुगल और तोषी के दाम्पत्य संबंधों में आयी रिक्तता और उब का कारण है जुगल का स्वभाव । जुगल का स्वभाव चिड़चिड़ा, हर काम में अधुरापन देखनेवाला तथा निरंतर संदेहवृत्ति वाला है । तोषी उसकी झिकझिक से तंग आ गयी है । साथ ही जुगल को हर चीज से, हर रिश्ते से नफरत है अतः उसने सभी मित्रों और रिश्तेदारों से नाता तोड़ दिया है । ''जुगल को उसके मायके के लोगों से चिढ़ थी, अपने घर के लोगों से चिढ़ थी, पास पड़ोस के लोगों से चिढ़ थी, हर आने-जाने वाले से चिढ़ थी ।

कभी–कभी तो लगता था कि उस आदमी को सिवाय अपने, हरएक से चिढ़ है, बल्कि अपने आप से भी चिढ़ है । वह सुबह दफ्तर जाता था, तो दफ्तर के लोगों पर बड़बड़ाता हुआ । शाम को घर आता था, तो घर के लोगों पर बड़बड़ाता हुआ । ज़िन्दगी की हर चीज उसकी नज़र से किसी वजह से गलत थी ।”[48]

जुगल और तोषी को पत्र लिखने वाले केवल तीन ही व्यक्ति है । एक ओर बहन, एक भाइ और एक मित्र । इन तीनों के अलावा किसी से पत्र व्यवहार भी नहीं होता था । तोषी को लगता है कि ये लोग भी उसे जबरदस्ती पत्र लिखते हैं, नहीं तो शायद उनकी ओर से भी रिश्ते टूट जाते ।

तोषी एक भरापूरा जीवन जीना चाहती है लेकिन जुगल के स्वभाव के कारण वह अपने को विवश अनुभव करती है । तोषी जुगल के शक्की स्वभाव से तंग आ गयी है । बीस साल की उम्र में तोषी की शादी जुगल से हुई थी । आज विवाह के आठ साल के बाद उसमें बूढ़ापे के चिन्ह दिखाई दे रहे है । जुगल को तोषी का कुछ भी अच्छा नहीं लगता । तोषी की साड़ी की ऊँचाई और ब्लाउज की ऊँचाई पर भी वो टिप्पणी करता रहता है । तोषी का स्वतंत्र व्यक्तित्व ही नहीं है या कहे तो वह जुगल से पूरी तरह दब चुकी है । वह खुद भी ऐसा कुछ करना चाहती है जिसके कारण जुगल को परेशानी हो ।

दोनों के दाम्पत्य संबंध की स्थिति यह है कि एक–दूसरे को परेशान करने में ही उन्हें संतोष मिलता है । तोषी घर की सब चीजें उलट–पलट कर देती है ताकि जुगल को परेशानी हो । और स्वयं को भी घर से दूर करने की बात सोच लेती है । लेकिन जब उसे लगता है कि उसके घर से चले जाने से शायद जुगल प्रसन्न हो जायेगा । यह सोचते ही उसके कदम रुक जाते है, क्योंकि वह कोई भी काम ऐसा नहीं करना चाहती जिससे जुगल प्रसन्न हो । तोषी और जुगल की ज़िन्दगी एक–दूसरे से खाली होती निरर्थक ज़िन्दगी बन गयी है । यहाँ पति–पत्नी के सुकोमल सहज संबंध की गर्मी रीत गई है और चिड़चिड़ापन, खालीपन ज़िन्दगी का यथार्थ बन गया है ।

इन कहानियों में राकेशजी ने पति–पत्नी के संबंधों को कटु बनानेवाले एक प्रमुख–कारण स्वाभाविक भिन्नता को सशक्त रूप से अभिव्यक्ति दी है । जहाँ पति–पत्नी एक–दूसरे के अनुकूल अपने को नहीं ढाल पाते वहाँ वैमनस्य और दूरी बढ़ती जाती है । दूसरे शब्दों में कहे तो जहाँ पति–पत्नी में स्वाभाविक एवं वैचारिक वैषम्य है और वे एक दूसरे को अपने रंग में नहीं रंग पाते वहाँ दाम्पत्य संबंध बिगड़ने लगते है ।

❀ *प्रेम एवं यौन संबंधों का प्रभाव :*

पति–पत्नी के दाम्पत्य संबंधो में बनते, बिगड़ते रिश्तों में यौन एवं प्रेम का अधिक प्राबल्य रहता है । पति–पत्नी के बीच के सामंजस्य का बहुत बड़ा आधार दोनों के बीच प्रेम एवं यौन संबंधों की संतुष्टि है । किन्तु जहाँ पति–पत्नी के बीच इस संबंध में कमी है वहाँ दोनों के बीच अलगाव और असामंजस्य ज्यादा है ।

'गुजाह बेलज्जत' कहानी की समस्या परिवेशगत लगते हुए भी प्रेम या सेक्स के कारण ही है । अतृप्त यौन आकांक्षा सरदार सुन्दरसिंह और उसकी पत्नी भागवन्ती के बीच दूरी और तनाव का मुख्य कारण है । सुन्दरसिंह अपनी पत्नी से प्रेम नहीं करता क्योंकि वह सुन्दर नहीं है । साथ ही भागवन्ती भी अपने पति की मर्यादा को जानती है । अतः पति–पत्नी एक–दूसरे के प्रति उपेक्षित व्यवहार करते है । फलतः सुन्दरसिंह और भागवन्ती के बीच का संबंध सिर्फ दिखावा मात्र बन गया है ।

भागवन्ती की गैरमौजूदगी में सुन्दरसिंह पेशेवर लड़की सुन्दरी को अपने घर बुलाकर अपने बरसों के अरमान पूरे करने की कोशिश करता है । यद्यपि अपनी शारीरिक कमियों के कारण सुन्दरसिंह को इसमें भी कामयाबी नहीं मिलती । एक दिन जब वह सुनता है कि सुन्दरी और उसके साथी पकड़े गये है और सुन्दरी उन सबके नाम बता रही है जिसके साथ उनके शारीरिक संबंध रहे थे । सुन्दरसिंह इस बात से घबराकर सुन्दरी के घर आने की बात

भागवन्ती को बताता है । तब भी भागवन्ती पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता । वह सुन्दरसिंह की ओर उपेक्षापूर्ण दृष्टि से देखती है ।

सरदार सुन्दरसिंह और भागवन्ती के बीच काम एवं प्रेम संबंधों का अभाव दोनों को मात्र औपचारिक संबंध में बाँध कर रख देता है ।

'फौलाद का आकाश' के मीरा और रवि के बीच प्रेम का निरंतर अभाव आ गया है । दोनों के बीच प्रेम के स्थान पर मात्र शारीरिक संबंध ही रह गये है और संवेदना के स्थान पर मात्र औपचारिकता ही बाकी है । अगर कहीं भावना का थोड़ा सा पुट है भी तो सिर्फ मीरा की ओर से ही । क्योंकि रवि मीरा से सिर्फ कायिक स्तर पर ही जुड़ा हुआ है । शायद इसलिए ही रवि के साथ गुजारे अंतरंग से अंतरंग क्षणों में भी मीरा अलगाव महसूस करती है । रवि की व्यस्त ज़िन्दगी ने रवि को बहुत आत्मकेन्द्रित और रूखा बना दिया है । कुछ क्षणों के लिए जब रवि मीरा के साथ होता है तब मीरा इसे भी मात्र शारीरिक लगाव ही मानती है उसमें प्रेम का अभाव ही महसूस करती है – "उसके हाथ मीरा के शरीर की गोलाइयों के मसले लगते है । और मंजिल दर मंजिल शारीरिक निकटता की हदें पार होती जाती है । आखिर जब पसीना पसीना होकर वह अलग हो जाता है तब मीरा को लगता है जैसे अब भी लिखते लिखते हाथ थक जाने से उसने हाथ हटा दिया है ।"[49]

'खाली' कहानी का जुगल भी अपनी पत्नी तोषी से मात्र शारीरिक रूप से ही जुड़ा है । तोषी की शिकायत है कि जुगल उसके शरीर से ही उलझा रहता है और "उसके शब्द भी शब्द नहीं रह जाते थे – झपट्टा मारने से पहले जानवर के गले से निकलती आवाजों का रूप ले लेते थे ।"[50] रात को बिस्तर में साथ होते हुए भी दोनों भावनात्मक और संवेदनात्मक रूप से दूर ही होते हैं ।

'सुहागिनें' कहानी में मनोरमा और सुशील के संबंध नाम मात्र के लिए पति–पत्नी का है । शहरों की दूरी के साथ–साथ दोनों के संबंधों में भी काफी दूरी आने लगी है । मनोरमा सुशील की इच्छा से अपने परिवार और

पति से दूर नौकरी करने के लिए लाचार है । सुशील की इच्छा मनोरमा के माध्यम से पारिवारिक जिम्मेदारी के लिए आर्थिक सहयोग की है । किन्तु साथ सुशील यह भूल जाता है कि मनोरमा को पति के प्यार की भी जरूरत है । उसकी भी कुछ इच्छायें हैं । सुशील सिर्फ मनोरमा की नौकरी को ही महत्त्व देता है उसकी इच्छाओं और भावनाओं के लिए उसके पास कोई जगह ही नहीं है । फलतः पति–पत्नी के संबंधों में प्रेम के स्थान पर औपचारिकता बढ़ने लगी है । महीने में एकादबार दोनों एक–दूसरे को चिठ्ठी लिखते हैं । उसे पढ़कर मनोरमा दूरी के एहसास को दूर नहीं कर पाती – ‘‘मनोरमा काफी देर चिठ्ठी हाथ में लिए बैठी रही । उसे पढ़कर मधुर आलिंगन और अनेकानेक चुम्बनों का कुछ भी स्पर्श महसूस नहीं हुआ था । ऐसा लगा था जैसे वह एक चश्मे से पानी पीने के लिए झुकी हो और उसके होठ गीले रेत से छूकर रह गए हों ।’’[51] मनोरमा जब सुशील को चिठ्ठी लिखती है तब भी वह महसूस करती है – ‘‘यह चिठ्ठी उन चिठ्ठीयों से खास अलग नहीं, जो वह दफ्तर में बैठकर क्लर्क को डिक्टेड़ कराया करती है ।’’[52] यहाँ पति–पत्नी के बीच शहेरों की दूरी से उत्नन्न शारीरिक और प्रेमपूर्ण संबंधों की कमी से एकाकीपन और नीरसता छा गयी है ।

‘सुहागिनें’ कहानी की मनोरमा की नौकरानी काशी अपने पति के पठानकौट चले जाने पर अकेली नौकरी करके अपने तथा अपने बच्चों का गुजारा करती है । काशी के पति ने वहाँ दूसरी स्त्री रख ली है । फिर भी काशी अपने पति से जुड़ी रहती है क्योंकि साल दो साल में जब भी अयोध्या ठेका देने के लिए आता तब काशी के साथ उसके शारीरिक संबंध बनते थे । यद्यपि अयोध्या की तरफ से काशी को प्रेम की जगह फटकार ही मिलती है । फिर भी शारीरिक संबंध और बच्चे होने के कारण काशी अपने पति से जुड़ाव महसूस करती है । इसके विपरित मनोरमा अपने पति से अलगाव महसूस करती है ।

'खाली', 'फौलाद का आकाश', 'सुहागिनें' आदि कहानियों में प्रेम एवं काम के अभाव से पति–पत्नी के संबंधों के बीच अचेतन मन में उभरने वाले द्वंद्व को राकेशजी ने अभिव्यक्ति दी है ।

प्रेम एवं काम दोनों दाम्पत्य संबंध को काफी प्रभावित करता हैं । कभी–कभी सामाजिक बंधनो के कारण पति–पत्नी कायिक स्तर पर तो जुड़े दिखाई देते है किन्तु दोनों के बीच प्रेम का अभाव साथ रहते हुए भी दूरी को बरकरार बनाए रखता है । 'फौलदा का अकाश' और 'खाली' कहानी के पति–पत्नी शारीरिक स्तर से तो एक–दूसरे से जुड़े हुए है किन्तु उनके संबंधों में प्रेम के अभाव में संवेदना और भावनात्मक जुड़ाव नहीं है । 'सुहागिनें' कहानी की मनोरमा तो शारीरिक एवं भावनात्मक प्रेम दोनों ओर से अपने आपको सुशील से दूर महसूस करती है । 'गुनाह बेलज्जत' के सुन्दरसिंह और भागवन्ती तो अपनी–अपनी कमियों के कारण किसी भी रूप में एक दूसरे से नहीं जुड़ पाये है । प्रेम और काम के अभाव में संबंधों में बढ़ती रिक्तता को राकेशजी ने अपना सशक्त स्वर दिया है ।

❀ *आयुभेद :*

आयु की असमानता पति–पत्नी के बीच के असामंजस्य का एक अन्य कारण है । 'हक हलाल', 'उर्मिल जीवन', 'नन्ही' जैसी कहानियो में राकेशजी ने आयु भेद के कारण पति–पत्नी को बनते बिगड़ते संबंधों पर प्रकाश डाला है ।

'हक हलाल' के पंडितजी जिसकी उम्र चालीस के आसपास है । यह पंडित अखबार बेचता है, साथ में गाय पालता है, तम्बाकू पीता है, कभी–कभी पत्थर पर भी सोता रहता है पर पत्नी का बड़ा शौकीन है । पंडित अपने से आधी आयु की लड़की को अपनी बिरादरी से डेढ़ सौ रुपया देकर ब्याह लाता है । एक दिन पंडित की यह पत्नी घर छोड़कर भाग जाती है । क्योंकि पंडित और उसकी पत्नी में आयुभेद के कारण कोई साम्य नहीं है । कोई मेल नहीं है । कथा लेखक 'मैं' पंडितजी की उम्र का विश्लेषण करते हुए स्पष्ट करता हैं – ''उसकी उम्र पैंतीस चालीस से अधिक नहीं है । गालों की

झुरियों, निकले हुए घुटनों और भरी–भरी चाल के बावजूद उसके चेहरे में कुछ ऐसा था जिससे यह आभास होता था । परंतु फिर मैंने टूटे हुए चश्मे के पीछे उसकी आंखों को देखा, और मुझे लगा कि वर्षो को गिनती करने का कोई अर्थ नहीं, उसकी निश्चित उम्र बूढ़ापे की ही है ।''[53] और उसकी पत्नी के विषय में कथानायक 'मैं' का अनुमान है ''उसकी उम्र अठारह से पचीस से बीच कुछ भी हो सकती थी । शरीर की रेखाओं को देखकर उसे केवल युवा कहा जा सकता था । उसने अपनी कमीज़ कुहनियों से और सलवार पिंडलियों से ऊपर तक उठा रखी थी । गोरे माँस के उन स्वस्थ युवा पिंडो में निर्माण का कुछ ऐसा कौशल था कि एक क्षण के लिए तो कोई भी अपने को भूला रह जाता ।''[54]

पंडित के अत्याचार और शोषण तथा पंडित की ढलती उम्र के कारण आयी कमजोरियों से तंग आकर पंडित की पत्नी उसके घर से भाग जाती है । पत्नी के घर से भाग जाने पर पंडित उसके पिता को डेढ सौ रुपया वापस करने के लिए धमकाता है, डराता है और पत्नी के बदले साली को ले आता है । वह पत्नी के घर से भागने की पुलीस में रीपोर्ट कर देता है । पुलीस पंडित को ढूँढ़ने में सफल होती है । पत्नी के लौट आने पर उसका बाप उसे खूब पिटता है । वह मार खाकर भी चुप रहती है, और पंडित के साथ रहने की मजबूरी में घुटती रहती है । ''उसकी आँखें पहले से लाल रहती है और वह चलती चलती रुककर अकारण पत्थरों को ठोकर लगाने लगती है ।''[55]

'हक हलाल' कहानी में राकेशजी ने पहाड़ी इलाके के एक अनोखे दाम्पत्य जीवन पर प्रकाश डाला है । जहाँ पैसे देकर विवाह किया जाता है । ऐसे विवाह ज्यादातर अनमेल ही हुआ करते है । प्रस्तत कहानी के पंडित और उसकी पत्नी के बीच आयु का बहुत बड़ा अंतर है । जिसकी वजह से पंडित की पत्नी के जीवन में एक घुटन, हताशा, निराशा और संबंध ढोने की लाचारी दिखाई देती है ।

'हक हलाल' के पति–पत्नी का रिश्ता दोनों की उम्र में ज्यादा अंतर होने के कारण दुःखमय बन गया है । उम्र में अत्याधिक अंतर होने के बावजूद भी मध्यवर्गीय और निम्नवर्गीय नारी को विवशता के साथ ऐसे विवाह को निभाना ही पड़ता है । सामाजिक मान्यता और गरीबी के कारण विवश होकर ऐसे विवाह के बंधन में बंधना पड़ता है । राकेशजी ने अपनी कहानी 'उर्मिल जीवन' में नीरा के चरित्र के माध्यम से अनमेल विवाह से उत्पन्न विवश नारी की मनःस्थिति को अंकित किया है । हमारे समाज में आज भी ऐसे विवाह को ज्यादा वरीयता दी जाती है जो माँ–बाप की मर्जी से हो । कभी–कभी यह भी नहीं देखा जाता कि लड़का लड़की दोनों में कोई तालमेल है कि नहीं ? और विवाह कर दिया जाता है । फिर चाहे–न–चाहे उन्हें रिश्ते को निभाना ही पड़ता है ।

अनमेल विवाह से प्रारंभ हुए दाम्पत्य जीवन की एक करुणापूर्ण कहानी है – 'उर्मिल जीवन' हमारे समाज में एक परंपरा सी बन गयी है कि – बहन के निधन के उपरांत उसके पति यानी जीजा के साथ साली का विवाह कर दिया जाता है । क्योंकि उस पुरुष का घर संसार बच्चे सब पहले की तरह संभल जायें । ऐसे विवाह लड़की के माता–पिता अपने कर्ज के रूप में कर देते है । यहाँ लड़की के माता–पिता सिर्फ अपने और समाज के विषय में ही सोचते है । अतः लड़की की मंजूरी का तो कोई सवाल ही नहीं उठता । जाहीर है कि ऐसे विवाह में पति–पत्नी की उम्र में अंतर तो होगा ही साथ ही लड़की की इच्छा की परवाह किये बिना सिर्फ सामाजिक दबाव में इस संबंध को जोड़ा जाता है, और ऐसे विवाह को निभाने की मजबूरी लड़की को अंदर से तोड़कर रख देती है ।

'उर्मिल जीवन' की नीरा जब सात साल की थी तब उसकी दीदी का विवाह हुआ था । तब वह बिलकुल बच्ची थी और शादी का अर्थ भी नहीं समझती थी । दस साल बाद जब नीरा की दीदी की मृत्यु हो गयी तो दो बच्चियों के बाप दीदी के पति के जिसे नीरा जीजा के रूप में जानती थी... नीरा का विवाह कर दिया गया । नीरा यह शादी करना नहीं चाहती थी ।

दस बरस पहले एक अपरिचित व्यक्ति को जीजा के रूप मे पहचाना था तब ''आ, नीरा रानी, तुझे खिलाने देंगे''[56] कहते हुए जीजा ने उसे दोनों बाहों से पकड़ लिया और पास खींचा था तब ''दो मोटे मोटे होंठ नाक के लम्बे बाल और विचित्र सी गंध । नीरा हिचकिचाई, पीछे हटी और फिर उसने उस व्यक्ति के गाल पर थप्पड़ लगा दिया ।''[57]

किन्तु आज परिस्थिति बदल चुकी है । नीरा अब बच्ची नहीं समझदार नवयुवती है और उसकी बचपन की चंचलता का स्थान गंभीरता ने ले लिया है । जिस घर में वह अपनी दीदी को जीजाजी की पत्नी के रूप में देखा करती थी आज स्वयं वह जीजाजी की पत्नी के रूप में दीदी के स्थान पर आ गयी है । बहन की चीत्ता के साथ नीरा के अरमान भी जल चुके है । ''उसे लगा जैसे जीवन तत्त्व ही निःशेष हो रहा है । आज की रात जीवन में घातक कटुता घोल देगी ।''[58] क्योंकि जिस कमरे में दीदी की सुहागरात हुई थी और जीजी के प्राण निकले थे । आज उसी करे में दीदी के पति और उसके जीजा के साथ उसकी सुहागरात होने वाली है ।

नीरा की बाहों में मांसलता है और गालों पर गुलाबीपन है दूसरी और जीजा के गाल चिपक गये है । बाँहे सूखकर पतली हड्डियाँ जैसी हो गयी है । रूखे से मुँह में बड़े–बड़े दांत और आँखें, साथ ही शरीर की वह विचित्र गंध जिससे नीरा को नफरत थी । सुहागरात में यही जीजा जो अब उसके पति है निकट आये । वह उसे आज भी थप्पड़ लगाकर दूर करना चाहती है । किन्तु आज वह ऐसा नहीं कर सकती क्योंकि ''आज वह नासमझ बालिका नहीं, समझदार नवयुवती है ।''[59] नीरा की इच्छा विरुद्ध का यह अनमेल विवाह नीरा के लिए कैद बन गया है ।

'नन्ही' कहानी में आयुभेद से हुए बेमेल विवाह से एक नवयौवना की भावनाओं के टूटने का हृदयस्पर्शी चित्रण हुआ है । यह नवयुवती ब्याह कर पहली बार ससुराल में आती है तो उसका सत्कार भी ठीक से नहीं होता क्यों कि यह उसके पति का दूसरा विवाह है । और जब उसके पति की लड़की उसे 'माँ' कहकर पुकारती है तब उसका दिल घबरा सा जाता है – ''एक

नन्ही सी बच्ची उसी को कहती माँ । कल तक 'बेटी' सुनने का अभ्यास था उसे । इतना परिचित था यह शब्द इतना कि उसे यह इना बदला हुआ संबोधन अच्छा नहीं लगा । कितना अंतर था, कल तक बेटी और आज माँ ।''[60] वह एकाएक 'माँ' के संबोधन को नहीं स्वीकार पाती और तीव्र ज्वर से ग्रस्त हो जाती है ।

इन कहानियों में राकेशजी ने आयुभेद के कारण हुए बेमेल विवाह का परिणाम बताया है ।

❀ *पति–पत्नी के बीच तीसरे व्यक्ति के आने से :*

वैवाहिक संबंधों में तनाव का एक कारण पति–पत्नी के बीच किसी तीसरे व्यक्ति की उपस्थिति है । 'क्वार्टर' कहानी के शंकर और राधा के बीच बढ़ते तनाव और दूरी का कारण मिसेज़ शार्म और मिसेज़ लल्ला हैं । शंकर दिल्ली में पांच कमरों के क्वार्टर में रहता है जहाँ उनके परिवार ने डेरा डाल रखा है । शंकर की पत्नी राधा आध्यापिका है । शंकर और उसकी पत्नी राधा की एक बच्ची भी है, किन्तु शंकर का झुकाव पड़ोसी रवि शर्मा की पत्नी मिसेज़ रवि शर्मा (सरोज) की ओर है । क्योंकि सब के रहते हुए भी मिसेज़ शर्मा के बाहर जाने पर शंकर को कमरा और भी खाली लगता है । सरोज के साड़ी ढके ब्लाउज का उतार–चढ़ाव और चंचल आँखें उसे खींचती है । वह सदा राधा की तुलना मिसेज़ शर्मा और मिसेज़ लल्ला से करता रहता है । शंकर और राधा के बीच बढ़ती दूरी का कारण मिसेज़ लल्ला और मिसेज़ शर्मा जैसी स्त्रीयों की ओर शंकर का अत्याधिक झुकाव है ।

मिसेज़ शर्मा शंकर और राधा की हर बात को जानना और उसमें राय देना अपना अधिकार समझती है । वह शंकर के घर में होने वाले हर कार्य की खबर बराबर रखती है । यहाँ तक कि शंकर के घर में अगर एक बरतन भी छनकता है तो उसकी खबरदारी रखना वह अपना फर्ज समझती है । राधा को मिसेज़ शर्मा की अपने घर में दखल अंदाजी की आदत से परेशान है । अतः ''मिसेज़ शर्मा जिस बात से भी शुरुआत करें राधा को उसे

तुरत दबा देना होता है । उसे लगता है कि उसे जबरदस्ती की सहानुभूति दी जा रही है । जिसे वह किसी भी तरह झेल नहीं सकती । क्यों यह स्त्री उसे अपनी ज़िन्दगी अपने ढंग से जीने के लिए अकेली नहीं रहने देती । क्यों उसके घर उसके घर के हर कोने में हर कमरे में यह अपनी उदारता लिए आ दाखिल होती है । क्यों यह अपने घर की जरूरतों तक सीमित नहीं रखती ?''[61]

शंकर का झुकाव मिसेज़ शर्मा और मिसेज़ लल्ला की ओर आवश्यकता से अधिक है । अतः राधा का आक्रोश पति और उसकी प्रेमिकाओं पर फूटता है । जिससे पति–पत्नी का यह संबंध टूटने की स्थिति में पहुँच गया है । राधा मायके जाने को तैयार हो जाती है और शंकर से स्पष्ट कहती है – ''मेरे सामने बैठे हुए तुम्हारी आँखे ब्लाउज के अंदर घुशी रहती है ।''[62] और ''मर्दो के बीच बैठने का यह तरीका है उनका कि जंधे आधी कुरसी के बाहर निकलकर हैले–हौले हिलती रहें, किसी की नज़र अपनी नाभि पर पड़ती देखें, तो मुस्करा दे, पिछवाड़े के पास हर वक्त साड़ी के बल ठीक करती रहें और पसीना पोंछने के बहाने बार–बार छातियों के बीच उंगली से... ।''[63]

सरोज के पति मिस्टर शर्मा शंकर के कोलीग है । वह शंकर का सरोज की ओर झुकाव देखकर भी उसे अनदेखा करते है । मगर इस विषय में वह शंकर को अपनी जानकारी का इशारा जरूर कर देते है । सरोज मिस्टर शर्मा के लिए भी तभी कोफी बनाती है जब शंकर आ जाये, वह शंकर को स्पष्ट कहते हैं – ''हमारे लिए भी अच्छा काफी तभी बनता है जब आपको पीनी होती है, रवि शर्मा का यह मज़ाक केवल मज़ाक नहीं होता ।''[64]

'मरुस्थल' कहानी के धनपतराय और सकीना के बीच गोपाल के आने से तनाव देखा जा सकता है । गोपाल सकीना को शहर में ले जाकर सुखी भविष्य के सपने दिखाता है और सकीना अपने पति को छोड़कर उसके साथ जाने को तैयार हो जाती है । यहाँ तक कि गोपाल सकीना को अपनी बेटी इन्दु को साथ लेकर आने के लिए भी उकसाता है । इस बात का पता जब

धनपतराय को चलता है तब सकीना और धनपतराय के संबंध में बदलाव आ जाता है ।

'ग्लास टैंक' में नीरू की ममा युवक सुभाष के पिता डॉक्टर शम्भुनाथ से शायद कुछ कारणों से सामाजिक रूप से नहीं जुड़ पायी किन्तु शम्भुनाथ की मृत्यु के बाद वह उसके बेटे सुभाष के साथ भावनात्मक रूप से अवश्य जुड़ गयी है । ममा को सुभाष में निरंतर रुचि है । उसने उसको बचपन से जाना है । वह हंमेशा सुभाष की बातों में खोयी रहती है । नीरू का यह सवाल कि सुभाष हम लोगों का क्याँ लगता है ? सुभाष के प्रति ममा की करुणापूर्ण और सहानुभूति पूर्ण दृष्टि का आभास इन पंक्तियों में है – ''वह तुम लोगों का वह लगता है जो और कोई नहीं लगता ।''[65] ममा सुभाष की चिट्ठी के लिए व्यग्र रहती थी भीतर से छिली–सी रहती थी । वर्षो बाद सुभाष के आगमन पर ममा का उनकी ओर बराबर देखते जाना नीरू की दृष्टि में ऐसा है – ''जैसे आँखों से ही उसके माथे के ज़ख्म को सहला देना चाहती हो ।''[66]

इस रिश्ते ने पति–पत्नी के संबंधों में एक दूरी पैदा कर दी है । अतः 'ग्लास–टैंक' की मच्छलियों के संबंधों की तरह ही पति–पत्नी के संबंधों की स्थिति है क्योंकि यहाँ भौतिक आवश्यकता तो शायद पूरी हो जाती है परंतु इमोश्नल लाइफ अधूरी रहती है ।

'सुहागिनें' कहानी की हेड़ मिस्ट्रेस मनोरमा की नौकरानी काशी और उसके पति के बीच किसी और स्त्री के आने से काशी का जीवन विकट बन गया है । काशी का पति उस दूसरी स्त्री के साथ पठानकोट में रहता है । काशी के प्रति उसका लगाव नहीं है । काशी के तीन बच्चे हैं फिर भी अजुध्या काशी को खर्च के लिए एक पैसा भी नहीं भेजता था । साल में सिर्फ एक बार अजुध्या सेव के पेड़ो का ठेका उठाने के लिए आता था । तब भी वह काशी को मार–पीट कर उसके बचाये पैसे ले लेता था और शारीरिक संबंध बनाकर एक और बच्चा दे जाता ।

'गुंझल' कहानी के पति–पत्नी चंदन और कुन्तल के बीच बढ़ती दूरी का कारण संभवतः चन्दन के मित्र की बहन स्नेह का आना है ।

❀ *पति–पत्नी के बीच बच्चे का अभाव :*

संतानोत्पति का पति–पत्नी के जीवन में विशेष महत्त्व है । नारी के लिए माँ बनना एक मधुर व गौरवमयी अनुभूति है, वही पुरुष के लिए पिता बनना उसके पुरुषत्व की सार्थकता है । किन्तु आज के पति–पत्नी की आधुनिक सोच घर बसाने को तो सही मानती है पर किसी न किसी वजह से वह बच्चे से दूर रहना चाहते हैं । वे भौतिक सुख सुविधाओं को जुटाने और आजाद ज़िन्दगी जीने की राह पर चल पड़े है, लेकिन इसके परिणाम की गंभीरता नहीं सोचते ।

राकेशजी की कुछेक कहानियों में दाम्पत्य संबंधों में आ रहे बिखराव का एक मुख्य कारण बच्चे की कमी है । संतान नारी की भावनात्मक आवश्यकता है और ऐसी नारी जो अपने पति से दूर रहकर आर्थिक समस्याओं से जूझ रही हो । अगर यह स्त्री संवेदनशील और भावप्रणव है तो उसके लिए बच्चा नितांत आवश्यक है । या फिर पति अपने कामकाज से फुरसद न निकाल पा रहा हो तो ऐसी हालत में पति–पत्नी के संबंध को बनाएँ रखने के लिए एक बच्चे का होना परम आवश्यक बन जाता है । 'सुहागिनें' कहानी की मनोरमा और काशी दोनों अपने पतियों से दूर होकर भी 'सुहागिनों' के मिथ्या–एहसास को निरंतर ढोती चली जा रही है । किन्तु मनोरमा एक ऐसा अभिशप्त जीवन जी रही है जहाँ वह आपने पति से प्रेम तो करती है लेकिन जब वह अपने पति सुशील से बच्चे की इच्छा रखती है तो वह उसे नकार देता है । क्योंकि सुशील के लिए मनोरमा की नौकरी की सबसे ज्यादा एहेमियत है । उसका मानना है कि अगर बच्चा आ गया तो मनोरमा की नौकरी पर फर्क पड़ेगा । किन्तु मनोरमा एक बच्चे के लिए बेताब है – ''वह कल्पना में अपने को एक छोटे से बच्चे को अपने में लिए हुए देखती और पुलकित हो उठती । उसे आश्चर्य होता कि क्या सचमुच एक हिलती–डुलती काया उसके शरीर के अंदर से जन्म ले सकती है । कितनी ही बार वह सुशील से कहती थी कि वह आश्चर्य को अपने अंदर अनुभव करना चाहती है । मगर सुशील उसके हक में नहीं था । वह नहीं चाहता था कि अभी कुछ साल वे एक बच्चे को घर

में आने दें । उससे एक तो उसका फिगर खराब होने का डर था, फिर उसकी नौकरी का भी सवाल था ।''[67] किन्तु मनोरमा के मानस की अतल गहराई में छूपी मातृत्व कामना लावा बनकर फूटती है । उसे हर पल हर संदर्भ में और हर अकेली स्थिति में मातृत्व की कामना से उत्पन्न अतृप्ति मारती रहती है । अपनी नौकरानी काशी के बच्चों के प्रति मनोरमा का अनुराग उसकी मातृत्व कामना को ही सांकेतिक करता है ।

कभी–कभी पति–पत्नी के बीच स्नेह न होने पर भी बच्चों के पालन पोषण और कर्तव्य के कारण यह संबंध बने रहते है । 'सुहागिनें' कहानी की काशी पति से दूर है किन्तु बच्चों के साथ रहते हुए वह इस बात को लेकर दुःखी नहीं है । क्योंकि वह अपने बच्चों के साथ गहरे भावनात्मक रूप से जुड़ी है ।

'फौलाद का आकाश' कहानी के पति रवि की पत्नी मीरा भी अपने खालीपन को भरने के लिए बच्चा चाहती है । किन्तु रवि अपनी व्यस्तता और महत्त्वकांक्षा के कारण बच्चा नहीं चाहता । रवि की व्यस्ता और मीरा की बच्चे की इच्छा ने दोनों के बीच एक दूरी पैदा कर दी है । क्योंकि जब स्त्री को घर मे अकेले समय काटना होता है तब उसके लिए किसी बच्चे का होना अनिवार्य हो जाता है । किन्तु रवि इस बात को समझता नहीं है परिणाम स्वरूप मीरा को दो तीन बार गर्भपात करवाना पड़ता है । अपने जीवन में एक बच्चे की कमी मीरा को सालती है और उसके न होने से उसका जीवन और भी एकाकी हो जाता है ।

'अर्धविराम' कहानी में बच्चों का होस्टेल में रहना पति–पत्नी के संबंधों में तनाव को जन्म देता है । तारा और मदन के बीच बढ़ते तनाव का कारण बच्चों की गैरहाजरी है । 'भूखे' कहानी की ऐलवीना का मातृत्व उसे हर क्षण संयमित रहने की प्रेरणा देता है । पति की मृत्यु के बाद मातृत्व का बोझ आर्थिक दबाव एवं पुरुष समाज की वासनात्मक दृष्टि से जूझने के लिए एलवीना का मातृत्व उसे संयमित रखता दिखाई देता है ।

'पहचान' और 'एक और ज़िन्दगी' राकेशजी की ऐसी कहानियाँ है जहाँ पति–पत्नी का संबंध बच्चों के होते हुए भी नहीं निभता और वे ऐसी स्थिति में अपनी इच्छानुसार जीवन जीने के लिए स्वतंत्र दिखायी देते है ।

❀ *पारिवारिक बोझ के कारण :*

पति–पत्नी के संबंधों पर पारिवारिक जिम्मेदारी या बोझ का भी सीधा प्रभाव देखा जाता है । पति–पत्नी के बीच पारिवारिक जिम्मेदारी और परिवार के लोगों का हस्तक्षेप तनाव का कारण बन जाता है । 'क्वार्टर' कहानी के पति–पत्नी शंकर और राधा के बीच बढ़ते तनाव और दूरी का कारण यह भी है । शंकर स्कूल में नौकरी करता है । स्कूल की ओर से मिले पाँच कमरे के क्वार्टर का उपभोग करने के लिए उसका पूरा परिवार यहाँ आ पहुँचा है । ढेर सारे लोगों के घर में होने के कारण सारा बोझ शंकर पर आ जाता है । यद्यपि राधा भी शंकर को आर्थिक रूप से सहकार दे रही है । फिर भी दोनों मिलकर साथ रहने वाले सभी लोगों की व्यक्तिगत आकांक्षा की पूर्ति नहीं कर पाते । फलतः परिवार के सदस्यों के बीच कलह होता रहता है । ननदे राधा पर कई तरह के ताने कसती रहती है । क्वार्टर के पाँच कमरों में ऐसा कोई कमरा नहीं जहाँ वह कुछ देर के लिए अकेली रह सके ।

शंकर के बड़े भाई नाथभाई, शंकर के पिता, दोनों बहनें, भतीजे गुन्नु और पुन्नु तो वहाँ पहले से ही डेरा डाले हुए है उसका छोटा भाई मुकुंद भी आ गया है । इन सब में अपना अपना अहं प्रबल है अतः परिवार में एकसूत्रता नहीं रहती । जिसके कारण परिवार के लोगों के बीच भी तनाव बना रहता है, जिसका सीधा असर शंकर और राधा के संबंधों पर पड़ता है । राधा को यह क्वार्टर घर नहीं मुसाफिरखाना लगने लगता है और साथ ही वह शंकर को भी बदला हुआ पाती है । अतः राधा शंकर को छोड़कर जाने का निश्चय कर लेती है । शंकर के लिए यह परेशानी है कि वह किसी से कुछ नहीं कह सकता । कुटुंब का बढ़ता भार शंकर की स्थिति को विकट बना देता है । शंकर की स्थिति है – ''हाई वोल्टेज के बीच लड़खड़ाती खंभों

की रोशनी । मार्केट की सड़क पर मरियल चाल से चलता एक आदमी । सामने की तरफ एक नयी खड़ी होती इमारत के सीखचे । ढेरों इँटें, गारा और सीमेन्ट ।"[68]

'सुहागिनें' कहानी की मनोरमा अपने पति की पारिवारिक जिम्मेदारी में हाथ बँटाने के लिए नौकरी कर रही है । मनोरमा का पति सुशील अपनी बहन की शादी के लिए दहेज जुटाने के लिए और अपने छोटे भाईयों को आगे पढ़ाने के लिए विशेष चिंतित है । वह मनोरमा पर भी इस काम में मदद करने के लिए दबाव डालता है । मनोरमा अपने पति की इच्छावश एक छोटे शहर में अपने पति और परिवार से दूर नौकरी करने के लिए बाध्य है । वह अपनी इच्छाओं का भी दमन करती रहती है; यहाँ तक कि अपनी मातृत्व भावना का भी । क्योंकि जब भी मनोरमा ने सुशील के सामने बच्चे का प्रस्ताव रखा तब तब सुशील ने पारिवारिक दायित्व को आगे करते हुए उसके प्रस्ताव को ना मंजूर कर दिया । बढ़ती आर्थिक जिम्मेदारी या पारिवारिक बोझ के कारण पति–पत्नी में दूरियाँ निरंतर बढ़ती रहती है । यहाँ तक कि अब सुशील की चिट्ठियाँ भी उसे अपनत्व का अहसास नहीं करा पाती और वह अपनी जिम्मेदारी निभाते हुए भी पति से कटती और अकेली होती नज़र आती है ।

❀ *नारी की बदलती भूमिका :*

प्राचीनकाल में नारी पूर्णरूपेण पुरुष पर आश्रित थी । न उसका स्वतंत्र व्यक्तित्व था और न उसकी अलग अस्मिता । घर की चार दिवारों में ही उसका संपूर्ण विश्व बंद होकर रह गया था । इसी कारण एक लम्बे अर्से तक वह या तो पुरुष के हाथों की कठपुतली बनी रही या उसके लिए शारीरिक संतुष्टि का साधन । लेकिन युग के बदलते परिवेश ने नारी को स्वतंत्र व्यक्तित्व, आत्मनिर्भरता और अस्तित्वबोध की ओर जागृत कर दिया है । आज स्त्री पुरुष दोनों समाज में बराबरी के दर्जे पर है । आज स्त्री भी पुरुष की तरह आर्थिक सुरक्षा के लिए प्रयत्नशील होती जा रही है । समाज के हर क्षेत्र में उसने अपना महत्त्वपूर्ण स्थान बना लिया है । अपने इसी अस्तित्व बोध

और आर्थिकरूप से स्वतंत्र होने के कारण उसने अपने पति के सामने एक चुनौती पैदा कर दी है । क्योंकि ऐसी स्थिति में पुरुषों को मिला उच्च दर्जा समानता में बदल जाता है और पुरुषों के लिए स्त्री को समान स्वीकार पाना मुश्किल हो जाता है । फलतः उसके अहं को चोट लगती है और दोनों के रिश्ते में एक खिंचाव आ जाता है ।

अपनी अधिकांश कहानियों के स्त्री पात्रों को राकेशजी ने मुख्यतः आधुनिक दिखाया है । जो अपने कर्तव्यों के साथ–साथ अपने अधिकारों के प्रति भी जागरूक है । बीना, कुन्तल, मनोरमा, एलवीना जैसी राकेशजी की कहानियों की नायिकाएँ अपने पैरों पर खड़ी होना जानती है और यह भी जानती है कि उसे जीवन में क्या चाहिए । वे उसे पाने की वह हर संभव कोशिश करती नज़र आती है । 'एक और ज़िन्दगी' कहानी की बीना अपने पति प्रकाश के समान पढ़ी लिखी है और उसके बराबर अपना दर्जा रखती है । उसे अपने अस्तित्व का पूरा बोध है । प्रकाश बीना के इस स्वतंत्र रूप को स्वीकार नहीं कर पाता क्योंकि बीना उसके पुरुष के अहंकार को साथ लेकर चलनेवाले व्यक्तित्व पर भारी पड़ती थी । प्रकाश की इच्छा एक ऐसी पत्नी की थी जो उसके आश्रय की अपेक्षा रखती हो । किन्तु बीना अपने अस्तित्व के प्रति सचेत और आर्थिकरूप से आत्मनिर्भर होने के कारण प्रकाश के अनुरूप नहीं बन पाती । और दोनों के बीच निरंतर तनाव की स्थिति बनी रहती है । अंत में यह अनबन प्रकाश और बीना को तलाक की स्थिति पर पहुँचा देती हैं । " 'एक और ज़िन्दगी' की बीना एक आधुनिक नारी का प्रतिनिधित्व करती है । वह अपनी बुद्धि, अपनी क्षमता के प्रति पूर्ण आत्मविश्वास रखती है, और जहाँ प्रकाश से आगे वैवाहिक संबंध बनाये रख पाना संभव नहीं रहता, वह दृढ़ता से एक ही झटके में सारे संबंधों को तोड़ देती है । यों, यह टूटना उसे बाद में बराबर सालता है, अंदर ही अंदर पर वह उसे कभी व्यक्त नहीं करती, प्रकाश से बाद में साक्षात्कार होने पर भी नहीं । और, न पहले की नारी के समान वह कोई आत्मनिवेदन ही कर पाती

है । 'एक और ज़िन्दगी' इस तरह बहुत बारीकी से नारी की बदलती हुई भूमिका को भी चित्रित करती है ।''[69]

'गुँझल' कहानी की कुन्तल शिक्षित और अपने व्यक्तित्व के प्रति जागरूक है । साथ ही वह अपना आर्थिक बोझ वहन करने में भी सक्षम है । उसका पति चंदन बेरोजगारी में दिन गुजार रहा है । तब वह उसके साथ अभावपूर्ण जीवन बिताने की जगह अपनी मर्जी से जीवन बिताने का फैंसला करती दिखाई देती है । अतः कहानी के अंत में चंदन से अलग रहने का फैंसला करती नज़र आती है । 'क्वार्टर' कहानी के शंकर की पत्नी राधा आध्यापिका है । अतः आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर है । अतः जब वह परिवार की झिकझिक और शंकर के लंपट स्वभाव से तंग आ जाती है, तब वह शंकर और उसके परिवार से दूर अपने मायके जाकर रहने का निश्चय कर लेती है । 'अपरिचित' कहानी की नलिनी अपनी इच्छाओं के अनुसार ज़िन्दगी जीती नज़र आती है । वह अपने पति और अपने घर को अपने तरीके से चलाना चाहती है । वह पति के लिए स्वयं को बदलना पसंद नहीं करती बल्कि चाहती है कि पति उसकी इच्छानुसार हो जाये । इससे पति–पत्नी के संबंध में दरारे आ गयी है ।

'सुहागिनें' कहानी की मनोरमा शिक्षित और नौकरी पैशा नारी है । वह अपनी मर्जी से नहीं बल्कि अपने पति सुशील की इच्छा से नौकरी करती है । वह अपने कर्तव्यों के आगे अपनी इच्छाओं का भी दमन करती दिखाई देती है । कहानी के अंत में वह अपनी नौकरानी काशी के बच्चों से जुड़ती और अपने परिवर से कटती नज़र आती है । ''जीविकोपार्जन स्वयं करने पर भी नारी अपने प्रकृतिदत गुणों पर निर्भर है । यह स्थिति नारी के सम्मान और अस्तित्व को संदिग्ध कर सकती थी । मनोरमा में संबंध के निर्वाह के साथ–साथ स्वतंत्र अस्तित्व की क्षमता के स्पष्ट संकेत मिलते हैं ।''[70]

अस्तित्वबोध, आर्थिक स्वतंत्रता और बदलते परिवेश ने नारी को एक नयी भूमिका प्रदान की है । आज नारी सिर्फ पुरुष की आश्रिता नहीं रह गयी है उसका अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व है । अतः जहाँ पति पत्नी दोनों नौकरी पेशा

और आर्थिकरूप से आत्मनिर्भर है वहाँ दोनों में अपने–अपने व्यक्तित्व को लेकर टकराहट होती है, कहीं–कहीं तो संबंधों में बिखराव की स्थिति को भी देखा जा सकता है । राकेशजी की कुछेक कहानियों में जहाँ पत्नी शिक्षित होते हुए भी आर्थिकरूप से आत्मनिर्भर न होने की स्थिति में है जैसे 'फौलाद का आकाश' की मीरा, 'आखिरी सामान' की मिसेज़ बेला भंडारी, 'खाली' कहानी की तोषी 'उसकी रोटी' की बालो आदि जैसी स्त्रीयाँ जो घुटन और झुंझलाहट महसूस करते हुए भी अपने पति और परिवार से बंधी रहती दिखाई देती है ।

राकेशजी ने लगभग २० के करीब कहानियों में दाम्पत्य संबंधों की समस्याओं को विविध कोणों से प्रस्तुत किया हैं । दाम्पत्य संबंधों में जो जो विकृतियाँ आयी है उसकी सहज अभिव्यक्ति राकेशजी की कहानियों में मिलती है । 'एक और ज़िन्दगी', 'खाली', 'सुहागिनें', 'ग्लास टैंक', 'गुनाह बेलज्जत', 'आखिरी सामान', 'फौलाद का आकाश', 'उसकी रोटी', 'अपरिचित', 'चौगान' आदि ऐसी ही कहानियाँ हैं । जिसमें कहानीकार ने स्त्री–पुरुष के आपसी संबंधों की बखियाँ उघेड़ कर रख दी है, और दाम्पत्य संबंधों की जिस स्थिति को प्रस्तुत किया है वह विवाह संस्था की उपादेयता पर प्रश्नार्थ चिन्ह लगा देती है ।

राकेशजी ने अपनी कहानियों में के पति–पत्नी के वैवाहिक संबंधों के तनावपूर्ण संदर्भो को पूरे परिवेश के साथ प्रस्तुत किया है । इन कहानियों में पति–पत्नी के टूटते संबंधों में उन मानवीय संबंधों के यथार्थ को प्रकट किया है जिन पर आज के सामाजिक, आर्थिक और नैतिक मूल्यों के विघटन का गहरा प्रभाव पड़ रहा है । यें कहानियाँ पति–पत्नी संबंधों के नये संदर्भ और नये आयाम प्रस्तुत करने में समर्थ रही हैं ।

अगर प्रेमचंदजी के द्वारा घोषित साहित्यकार के दायित्व की दृष्टि से देखा जाए तो राकेशजी की कहानियों में जहां एक तरफ तद्‌युगीन समाज का सरस एवं जीवंत दस्तावेज छिपा है तो साथ ही भविष्य के संदर्भ में गर्भित चेतावनी भी है । उन्होंने दाम्पत्य संबंध की समस्याओं को सूक्ष्मता से उजागर

करते हुए इस परंपरागत धारणा का खंडन किया है कि भारतीय समाज की वैवाहिक इकाई में सब–कुछ अच्छा ठीक–ठाक और आदर्शमय ही है । युगों से खंडित गलीच होते हुए नासूरमय दाम्पत्य संबंधों को अपनी कहानियों में दिखाकर उन्होंने हमारे समाज पर बहुत बड़ा उपकार किया है ।

अगर वक्त रहने उनके द्वारा दर्शाये कारणों का उपचार नहीं किया गया तो वह पिलपिलाता नासूर ग्रैंगीन का रूप ले लेगा और भारतीय समाज की नींव रूपी संस्थान जो स्त्री पुरुष के संबंधों को वैधानिक बनाती है चरमराकर ढह जाएगी ।

४.३ पारिवारिक विघटन :

आजादी से पूर्व संयुक्त परिवार में आपसी विश्वास, आस्था और समर्पण के आधार पर मानवीय संबंधों का निर्वाह होता था । किन्तु स्वातंत्र्योत्तर काल के बदलते जीवन मूल्यों और परिस्थितियों ने व्यक्ति, समाज और परंपरागत पारिवारिक संरचना को पूर्णतः प्रभावित कर दिया है । फलतः सामाजिक व्यवस्था बड़ी तेजी से परिवर्तन की ओर अग्रसर होती दिखाई दी और पारिवारिक इकाई टूटती नज़र आने लगी । परंपरागत सामाजिक मूल्यों का विघटन, स्त्री शिक्षा का बढ़ता प्रभाव और स्वावलंबन, यांत्रिकीकरण, महानगरीय ज़िन्दगी का प्रभाव महत्त्वकांक्षा की बढ़ती आकांक्षा, व्यावसायिक व्यस्तता, गाँवो से रोजगार की तलाश में शहर का भटकाव, रोजगार की समस्या अस्तित्व रक्षा का प्रश्न, बढ़ते अर्थ के अभाव और प्रभाव ने मानवीय संबंधों में परिवर्तन लाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी ।

इस बदलती परिस्थितियों का प्रभाव तत्कालीन साहित्य पर भी देखा जाता है । अतः इस कथाकाल की अधिकांश कहानियाँ नये संबंधों के बनने की कहानियाँ नहीं, संबंधों के टूटने की कहानियाँ हैं । सारे संबंधों से टूटा व्यक्ति अधिक से अधिक अकेला और अजनबी होता दिखाई देता है । साथ ही पीछली पीढ़ी के प्रति अविश्वास, घृणा और आपस में अपरिचय, अनिश्चय आदि यथार्थ भी ‘नयी कहानी’ के माध्यम से बार–बार सामने आने लगे ।

राकेशजी की कहानियाँ युग विषम के जीवन की गंभीर भूमिका निर्वाह करने में सक्षम है । साथ ही अपनी कहानियों के माध्यम से राकेशजी ने अपने सार्थक अनुभवों की अभिव्यक्ति भी सशक्त रूप में की है । ''राकेश के कथा साहित्य में चित्रित पारिवारिक और वैयक्तिक विघटन हमें अपने ही पड़ोस के किसी परिवार और व्यक्ति का विघटन मालूम पड़ता है ।''[71] राकेशजी ने अपनी कुछेक कहानियों में पारिवारिक विघटन की स्थितियों को यथार्थ रंग देकर प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया है ।

राकेशजी ने पारिवारिक विघटन का मुख्य कारण पति–पत्नी के बीच असामंजस्य की स्थिति या एक–दूसरे के बीच अण्डरस्टेंडिग के अभाव को माना है । आज की बदलती हुई स्थिति में पति–पत्नी का अपना–अपना व्यक्तित्व है, मान्यताएँ है और दोनों ही अपने –अपने व्यक्तित्व को अधिक से अधिक महत्त्व देते हैं । अतः विवाह के बाद जो एकसूत्रता आनी चाहिए वह नहीं आ पाती । जीद अहं आदि के कारण पति–पत्नी के बीच औपचारिकता इतनी बढ़ जाती है कि एक ही घर की छत के नीचे दोनों अजनबी बन जाते हैं । दोनों के बीच का प्रबल अहं निरंतर दूरी बढ़ाता रहता है । वे कभी एक दूसरे को समझने की कोशिश ही नहीं करते । परिणाम स्वरूप उनके संबंध या तो सिर्फ होने मात्र के रूप में रह जाते है या फिर उनका विच्छेद हो जाता है । 'एक और ज़िन्दगी', 'चौगान', 'गुंझल', 'पहचान', 'सुहागिनें' आदि कहानियों में राकेशजी ने पति–पत्नी के बीच बढ़ रहे फाँसले की स्थितियाँ जो पारिवारिक विघटन की ओर बढ़ती जा रही है इसे यहाँ यथार्थ अभिव्यक्ति दी है ।

'एक और ज़िन्दगी' कहानी के प्रकाश और बीना दोनों समान रूप से पढ़े–लिखे, समझदार और आर्थिक रूप से स्वतंत्र व्यक्तित्व वाले हैं । दोनों अपनी मर्जी से विवाह करते हैं । किन्तु दोनों ही अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व को अधिक महत्त्व देने के पक्षघर होने के कारण दोनों के बीच सामंजस्य का अभाव निरंतर बना रहता है । दोनों के बीच छोटी–छोटी बातों को लेकर तनाव की स्थिति बनी रहती है और वे एक–दूसरे से कटने लगते है । क्योंकि बीना समझती थी कि इस तरह जान–बूझकर उसे फँसा दिया गया है

और प्रकाश सोचता था कि अनजाने में ही उससे कसूर हो गया है । अतः ‘‘ब्याह के कुछ महीने बाद से ही पति–पत्नी दोनों अलग–अलग रहने लगे थे । ब्याह के साथ जो सूत्र जुड़ना चाहिए था, वह जुड़ नहीं सका था । दोनों अलग–अलग जगह काम करते थे और अपना अपना स्वतंत्र ताना–बाना बुनकर जी रहे थे ।’’[72]

बीना और प्रकाश के बीच छोटी–छोटी बाते अहं की दीवार से टकराकर तूफान का रूप ले लेती है । जिसमें सबकुछ तितर–बितर हो जाता है । और दोनों को अलग–अलग छोर पर ला पटकता है, जहाँ से वो सिर्फ एक–दूसरे की खामियाँ ही देख पाते है, और एक दूसरे का दिल दुःखाने का कोई भी मौका नहीं चूकते हैं । यह शादी धीरे–धीरे टूटने की कगार पर पहुँच जाती है । बच्चे की प्रथम वर्षगाँठ पर उपस्थित परिस्थिति ने दोनों के जीवन की गाँठ को तोड़ दिया । उनका बच्चा पलाश भी उस गांठ को जोड़ नहीं पाता और वे एक–दूसरे से तलाक लेकर अलग हो जाते है ।

‘एक और ज़िन्दगी’ में पति–पत्नी के संबंध विच्छेदन का कारण दोनों का अहं तथा समान दर्जा और समान व्यक्तित्व की टकराहट है । प्रस्तुत कहानी का मूल्यांकन करते हुए डॉ. रघुवीर सिन्हा स्पष्ट कहते हैं – ‘‘पति स्वभाव से ही और विरासत में प्राप्त संस्कारों के कारण अहम्‌वादी होता है और जहाँ पत्नी भी अहम्‌वादी हो वहाँ एक–दूसरे के अहं आपस में टकराने लगते है और निर्वाह मुश्किल हो जाता है ।’’[73] राकेशजी स्वयं स्वीकार करते है कि संबंधों के बनने और बिगड़ने की स्थिति में पति–पत्नी दोनों जिम्मेदार होते है । जहाँ व्यक्ति अपने सामने वाले से ज्यादा चाहने की इच्छा रखता है और खुद कुछ देना नहीं चाहता वहाँ पति–पत्नी के बीच तनाव और दूरी बनती नज़र आने लगती है क्योंकि ‘‘कोई भी संबंध एक पक्षीय नहीं होता । संबंध वही है जिसमें व्यक्ति उतना दे जितना दूसरा इच्छा से ग्रहण कर ले और उतना ही माँगे जितना देने में दूसरे को बाधा न हो ।’’[74] किन्तु ‘एक और ज़िन्दगी’ के पति–पत्नी के बीच इस बात का निरंतर अभाव ही है क्यों कि वे एक–दूसरे को कुछ भी देना नहीं चाहते और न ही एक–दूसरे के लिए

बदलने का प्रयत्न भी करते दिखाई देते है । दोनों को विवाह के प्रारंभ से ही लगने लगा था कि संबंध की शुरुआत ही गलत ढंग से हुई है । फलतः दोनों अपने अहं की संतुष्टि और स्वतंत्रता को बरकरार रखने के लिए अलग हो जाते है ।

प्रथम विवाह के विच्छेदन के बाद प्रकाश दूसरी शादी करने का निर्णय कर लेता है । वह अपने लिए इस बार ऐसी लड़की का चुनाव करना चाहता है जो बीना से स्वभाव में और हर तरह से अलग हो । बीना समान पढ़ी–लिखी और आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर थी जो हर दृष्टि से प्रकार पर भारी पड़ती थी । अतः प्रकाश इस बार ऐसी लड़की चुनता है जो हर लिहाज से उस पर निर्भर रहे और जिसकी कमजोरियों एक पुरुष के आश्रय की अपेक्षा रखती हो । लेकिन प्रकाश की दूसरी शादी भी असफल साबित होती है । उसकी दूसरी पत्नी निर्मला मानसिक रूप से विक्षिप्त होती है । वह उससे परेशान होकर इस संबंध को भी तोड़ने की बात सोचता है ।

दूसरी शादी से मिली असफलता से टूटा प्रकाश अपनी स्थिति से भागकर पहाड़ पर घूमने चला जाता है । वहाँ पर फिर से बीना और प्रकाश की मुलाकात होती है । उनका बच्चा पलाश दोनों के बीच का माध्यम बनता है । किन्तु दोनों के दृष्टिकोण अपनी–अपनी जगह कायम होने के कारण दोनों एक–दूसरे से खुलकर बात भी नहीं करते । कहानी के अंत में दोनों ही अपनी मर्जी से स्वतंत्र जीवन जीते दिखाई देते हैं । “ ‘एक और ज़िन्दगी’ इस प्रकार आधुनिक संदर्भो में टूटते संबंधों और बदलते नारी–पुरुष या पति–पत्नी की भूमिकाओं और विघटित हो रहे नैतिक मूल्यों की त्रासदी की कहानी है ।”[75]

‘एक और ज़िन्दगी’ की तरह राकेशजी की एक अन्य कहानी ‘पहचान’ में भी पति–पत्नी साथ न निभने के कारण अलग–अलग रहने का निर्णय कर लेते है । पति–पत्नी के तलाक के बाद उनका बच्चा शिवजीत अपनी माँ के साथ रहता है । माँ का संपूर्ण वात्सल्य उसे मिलता है । किन्तु कुछ समय बाद जब शिवजीत की माँ ने डॉक्टर अवरोल से विवाह करने के विषय फैंसला

किया तब शिवजीत प्रश्न बनकर सामने आया । क्योंकि शिवजीत के पिता ने उसको अपने पास रखना चाहा है । लेकिन शिवजीत की माँ उसे हर हालत में अपने पास रखने का निर्णय सुना देती है । बाद में वह डॉक्टर अवरोल से विवाह कर लेती है । अतः शिवजीत को भी उसके साथ डॉक्टर अवरोल के घर रहने के लिए जाना पड़ता है । पर डॉक्टर अवरोल के चार बच्चों के साथ और मम्मी के बदले स्वरूप को देखकर शिवजीत अपना महत्त्व कम हुआ महसूस करता है । और धीरे–धीरे वह अपनी माँ से भी कटना नज़र आता है ।

यह सच है कि जब पति–पत्नी की आपस में नहीं बनती तब विवाह संबंध उनके लिए बोझ बनने लगता है । अंत में पति–पत्नी तलाक लेकर इस बंधन से आजाद हो जाते है; लेकिन तलाक या संबंध विच्छेद करने का फैंसला करते समय वे अपने बच्चों के बारे में नहीं सोचते । जिन्हें माता–पिता के अलगाव का सबसे बड़ा सदमा लगा हुआ होता है । प्रस्तुत कहानी में माता–पिता में बच्चे शिवजीत को लेकर खिंचातानी अवश्य होती है, किन्तु अंत में हम देखते है कि अपनी माँ के साथ रहते हुए भी वह बेहद अकेलापन महसूस करता है ।

मैरिज काउंसलर और मनोवैज्ञानिकों के अनुभव यह स्पष्ट करते है कि अधिकतर यह देखने में आया है कि एक नन्हा शिशु रिश्तों की दिशा बदल देता है । माता–पिता को जोड़ने का सेतु बन जाता है । बच्चे रिश्तों का समीकरण बदलने में सफल रहते है । किन्तु 'पहचान' और 'एक और ज़िन्दगी' राकेशजी की ऐसी कहानियाँ है जहाँ बच्चें अपने माता–पिता के बीच जुड़ने का सेतु नहीं बन पाता हैं । वे अपने अहं की संतुष्टि और अस्तित्व की रक्षा में बच्चों की भावनाओं की भी कोई परवाह न करते हुए अलग होते दिखाई देते हैं ।

राकेशजी की कहानी 'चौगान' में पति हैरी और पत्नी लिज़ी के संबंध विच्छेदन का मुख्य कारण हैरी का सख्त स्वभाव है । हैरी के इस प्रकार के स्वभाव के कारण लिज़ी उसके साथ का विवाह संबंध कायम नहीं रख पाती ।

''लिज़ी ने उसके तीन बच्चों की माँ होकर भी उससे संबंध विच्छेद कर लिया था । उसने कहा था कि वह उसे नहीं चाहती, किसी और को चाहती है... और इस तरह की ज़िन्दगी ढोना उसके लिए संभव नहीं है । वह स्वभाव का सख्त आदमी था और लिज़ी को उससे काफी शिकायत रहती थी । पहले कुछ साल लिज़ी सब कुछ सहती हुई भी खामोश रही थी मगर जब वह बोल पड़ी तो ज़िन्दगी को पुरानी सतह पर ले जाना संभव नहीं हुआ ।''[76]

हैरी विल्सन पत्नी लिज़ी से संबंध विच्छेदन करके हिन्दुस्तान के एक छोटे से कस्बे में 'साहब' बनकर रहने लगता है । हिन्दुस्तान आकर कुछ वर्षो तक तो वह अकेला रहता है, किन्तु जब घर–परिवार की दूरी से उत्पन्न अकेलापन उसे अधिक सताने लगता है तब वह अपने अकेलेपन को काटने के लिए अपनी नौकरानी की सत्रह वर्ष की लड़की सन्तो को अपने घर में रख लेता है । किन्तु फिर भी हैरी के मन का अकेलापन दूर नहीं हो पाता । अपने इस खालीपन को भरने की उसकी सभी कोशिशें बेकार रहती है और जीवन के अंत तक वह अपनी पत्नी लिज़ी और बच्चों को याद करता हुआ अपने भीतर कितने ही अकेलेपन के क्षणों में मरता रहता है । कहानी के अंत में परिवार से दूर अपने आपको असहाय और अन्य सामाजिकों के बीच भी अकेलेपन को अनुभव करता मर जाता है । दाम्पत्य संबंधों की टूटन और पीड़ा लन्दन से हिन्दुस्तान तक हैरी विल्सन का पीछा नहीं छोड़ती ।

'गुंझल' कहानी में चन्दन और कुन्तल के संबंध विघटन का मुख्य कारण दोनों के बीच सामंजस्य का अभाव है । चन्दन की बहुत कोशिशों के बाद भी दोनों के बीच कोई स्पष्ट बात नहीं हो पाती । और न आगे के जीवन के बारे में निर्णय ही हो पाता है । कुन्तल का अहम्वादी स्वभाव चंदन की हर बात को बीच में ही, काट देता है । वह चंदन की बातों का कुछ भी उत्तर देना नहीं चाहती । चंदन के यह कहने पर कि यदि कुन्तल चाहे तो उसके पिता के सामने जाकर सारी बात साफ कर दी जायें । कुन्तल इस प्रस्ताव को भी स्वीकार नहीं करती । उसका कहना है– ''हमें किसी के सामने कोई बात नहीं करनी है..... हम लोग बच्चे तो है नहीं जो किसी तीसरे आदमी के

सामने बैठकर बात करेंगे ।... और पिताजी के सामने तो हम कभी कोई बात नहीं करेंगे ।"[77] कुन्तल के अहंवादी स्वभाव के कारण दोनों के बीच जो सामंजस्य स्थापित होना चाहिए था नहीं हो पाता । साथ ही चन्दन की बेरोजगारी कुन्तल की महेच्छाओं के रास्ते में रुकावट बनी नज़र आती है । कहानी के अंत में चंदन के प्रयत्न असफल से नज़र आते है और दोनों के संबंध के विघटन की सुचना मिलती है ।

'सुहागिनें' कहानी में पति–पत्नी की बदली भूमिका से उत्पन्न परिस्थिति से दोनों के बीच अलगाव की दिवारें बनती नज़र आती हैं । मनोरमा अपने पति सुशील की इच्छा या कहे तो दबाव के कारण अपने पति सुशील और उसके परिवार से दूर रहकर नौकरी करती है । मनोरमा का पति सुशील अपने छोटे संयुक्त परिवार के बोझ का निर्वाह करता हुआ परिवार के साथ रहता है । वह अपनी बहन की शादी के लिए दहेज जुटाने के लिए विशेष रूप से चिंतीत है । वह मनोरमा पर भी अर्थोपार्जक के लिए दबाव डालता है । मनोरमा अपने पति के प्रति प्रेम के कारण अपनी भावनाओं का दमन करके भी इस स्थिति में उसे मदद करने के लिए बचनबद्ध दिखाई देती है । यहाँ तक कि उसे अपनी मातृत्व की भावना का भी दमन करना पड़ता है । मनोरमा सुहागिन होते हुए भी अपने परिवार और बच्चे के साथ रहने की चाहत पूरी नहीं कर पाती । वह दूर और अकेली रहती है और धीरे–धीरे वह अपने पति और परिवार से भी दूर जाती नज़र आती है । " 'सुहागिनें' एक रूप में टूटते परिवार की प्रतीक कहानी है... समयान्तर में पति–पत्नी की भूमिका बदलती चली गयी है.... पूर्ण स्वाभिमान और आधार प्रदान करने के स्थान पर वह अब पत्नी से आर्थिक भार वहन करने में हाथ बँटाने की अपेक्षा करने लगी है । पत्नी की भूमिका भी बदलती जा रही है । पूर्ण आश्रिता होने के स्थान पर अब वह संगी साथी के रूप में पति के साथ बराबरी का दर्जा रखने लगी है । आर्थिक सहयोग के कारण उसका सामाजिक दर्जा भी सहज ऊँचा उठ गया है । पर साथ ही अंतर्मन की समस्यएँ जटील

होती चली गई है.... कहीं–कहीं वे पारस्परिक अंर्तविरोध का रूप लेती है तो कहीं दमित भावनाओं का ।''[78]

'आखिरी सामान' एक ऐसे परिवार की कहानी है जहाँ पति–पत्नी दोनों शिक्षित और समाज अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखनेवाले है । मि. सुशील भण्डारी की पत्नी मिसेज़ बेला भण्डारी एक स्वरूपवान और आकर्षक स्त्री है । लोग उसके रूप पर मुग्ध हो जाते है । मिस्टर भण्डारी को भी उस पर गर्व है । मिस्टर भण्डारी एक्साइज़ और टैक्सेशन विभाग में इंस्पेक्टर के पद पर कार्यरत है । लेकिन वह इस पद से उन्नति पाने की लालसा में अपनी पत्नी को अपने उच्चाधिकारी की वासना का शिकार बनाकर अपनी महत्त्वकांक्षा की पूर्ति करना चाहते है । मिसेज़ बेला भण्डारी अपनी रक्षा करने में सफल रहती है और इसके परिणाम स्वरूप अधिकारी रुष्ट होकर बदला लेने की चाहत में मि. भण्डारी के खिलाफ जाल बिछाते हुए उसे जेल भेज देती है । इस स्थिति से मि. भण्डारी को बचाने के लिए मिसेज़ भण्डारी अपने घर की हर वस्तु नीलाम करा देती है । यहाँ राकेशजी ने स्पष्ट किया है कि जब पति अपनी महत्त्वकांक्षा पर काबू न करके अपनी पत्नी को आगे कर देता है । किन्तु विपरित स्थिति में उसे खुद जेल जाना पड़ता है । अंततः घर की तमाम वस्तु नीलाम हो जाती है और परिवार विघटन की स्थिति तक पहुँचा जाता है ।

समयांतर के साथ–साथ जहाँ एक ओर परंपरा से चले आ रहे संयुक्त परिवारों का विघटन हुआ है वहीं दूसरी और सामाजिक पारिवारिक संबंधों के परंपराबद्ध स्वरूप में भी महद्अंश में परिवर्तन देखा गया है । परिस्थितियों से उत्पन्न प्रभाव ने व्यक्ति को अधिक से अधिक आत्मकेन्द्रित बना दिया है । फलतः पिता–पुत्र, पति–पत्नी, भाई–बहन, माँ–बेटा जैसे अतिनिकटतम संबंधों में भी एक अजनबीपन और बेरूखी पूर्ण व्यवहार समाता जा रहा है । राकेशजी की सूक्ष्म दृष्टि ने समाज में फैल रहे परिवर्तन को अपनी सूक्ष्म दृष्टि से देखा और परखा हैं – ''स्वातंत्र्योत्तर भारतीय समाज में संबंधों के स्तर पर पनपनेवाली यथार्थता को राकेश की कहानियों में अभिव्यक्ति मिली हैं । इनमें

संबंधों के परिवर्तन का, उनकी मर्यादाओं के ह्रास का अत्यंत सूक्ष्म चित्रण हुआ है ।"[79]

मोहन राकेश की कहानियों में सामाजिक, पारिवारिक विघटन के सशक्त चित्रण 'आर्द्रा', 'क्वार्टर', 'रोजगार' आदि कहानियों में हुए हैं । इन कहानियों में राकेशजी ने निकटतम संबंधों के ह्रास को यथार्थ अभिव्यक्ति दी है । 'आर्द्रा' कहानी राकेशजी की माँ–बेटे जैसे आत्मीय रिश्ते के बदलाव को सशक्त रूप से अभिव्यक्त करनेवाली कहानी है । 'आर्द्रा' कहानी की माँ बचन अपने दोनों बेटों बिन्नी और लाली के बीच सेतु बनी हुई है । दोनों भाईयों में तनिक भी प्रेम नहीं है । अतः दोनों अलग–अलग शहर में रहते है । लाली बचन का बड़ा बेटा है और वकील होने के कारण आर्थिक दृष्टि से संपन्न है । बिन्नी लाली का छोटा भाई है । बिन्नी बेरोजगार है और मुम्बई की गन्दी बस्ती में रहता है । बिन्नी अपनी आजीविका के लिए कुछ टयुशन पढ़ाकर पैसे लाता है, जिससे वह माँ बचन तथा अपना निर्वाह करता है । वह माँ से बच्चे की तरह लाड़ करता है । बचन बिन्नी के साथ गहराई से जुड़ी हुई है और उसके भविष्य के लिए विशेष चिंता करती रहती है ।

बचन के चरित्र में माँ का निर्मल रूप सामने आता है । वह बिन्नी के साथ रहते हुए लाली की चिन्ता करती रहती है, लाली और उसके बच्चों की याद बचन को सताती रहती है । बिन्नी के घर लाली का पत्र आता है तब बचन उस पत्र में लिखे समाचार को सुनने के लिए आतुर हो जाती है, पर रात को जब वह बिन्नी को लाली के कार्ड़ के बारे में बताती है तब वह अपने भाई के पत्र के बारे में जरा भी जिज्ञासा प्रकट नहीं करता । माँ को इस बात से नाराज हुआ देखकर वह आधे मिनट में उस पर सरसरी नज़र डालकर पूरा पत्र पढ़ लेता है । और जैसे किसी अजनबी के विषय में बात करता है वैसे बता देता है कि भैया की तबीयत ठीक नहीं है उसे बल्ड प्रेशर हो गया है । इस पर बचन की चिंता देखकर वह उसी लापरवाही से कहता है – "भैया का बल्ड प्रेशर कोई नई बिमारी तो है नहीं.."[80]

लाली की खराब तबियत की चिंता बचन को सताती है और वह बिन्नी को छोड़कर लाली के पास खिंची चली जाती है । पर यहाँ वह देखती है कि लाली की व्यस्त ज़िन्दगी में उसके लिए कोई स्थान नहीं है । यहाँ तक कि अपनी पुत्रवधू कुसुम के व्यवहार पर भी वह दुःखी हो जाती है । बचन लाली के घर को अपना मानकर कुछ काम करना चाहती है, लेकिन कुसुम उसे मना कर देती है । ऐसी स्थिति में बचन को अपनी उपस्थिति खलने लगती है । क्योंकि ''कुसुम जिस शिष्टता और कोमलता से बात करती थी, उससे बचन को लगता था कि वह उस घर में केवल महेमान है । दिन भर उसके करने के लिए वहाँ कोई काम नहीं होता था । खाना बनाने के लिए एक नौकर था, ऊपर का काम करने के लिए दूसरा । उनके काम की देखभाल के लिए कुसुम थी । बचन जब भी कोई काम करने के लिए कहती तो कुसुम झट उसे मना कर देती ।''[81]

लाली के घर रहते हुए बचन को बिन्नी की चिन्ता सताती है । क्योंकि उसे यहाँ आए पन्द्रह दिन हो गए थे, फिर भी अब–तक बिन्नी की चिट्ठी नहीं आयी है । बचन लाली को इस संबंध में पूछती है । लाली का बिन्नी के संबंध में ख्याल है – ''चिट्ठी उसकी आज भी नहीं आयी । न जाने इस लड़के को क्या हो गया है ।''[82] और कुछ दिनों बाद बचन के फिर से पूछने पर चिढ़कर कहता है – ''मैं अब उससे कोई गिला नहीं करता, इस लड़के का घरवालों से जैसे कोई रिश्ता ही नहीं है । यहाँ रहकर बी.ए. कर लेता तो कुछ बन–बन जाता । मगर हर बात में चलना तो उसे अपनी ही मर्जी से है । अब साहब ज़िन्दगी भर यहाँ–वहाँ रहेंगे और आवारागर्दी किया करेंगे ।''[83] लाली की बिन्नी के विषय में यह बात सुनकर बचन की आँखें भर जाती है । लाली से कुछ भी पूछने में उसका स्वर थोड़ा दब जाता है । उसे लगता है – ''वह बेटा बड़ा होते–होते इतना बड़ा हो गया था कि वह अपने आपको उससे छोटी महसूस करने लगी थी ।''[84] और अंत में बचन बिन्नी के पास जा कर रहने का निर्णय कर लेती है ।

'आर्द्रा' कहानी में माँ का एक निश्छल रूप अभिव्यक्त हुआ है । पुत्रों की और से तो उपेक्षा भाव नहीं है । फिर भी लाली की साधनसम्पन्न व्यवस्थित ज़िन्दगी में वह अपना कोई स्थान न होने की पीड़ा से दुःखी है । तो दूसरी ओर बेरोजगार अव्यवस्थित ज़िन्दगी व्यतीत करने वाले दूसरे बेटे बिन्नी की ज़िन्दगी को लेकर परेशान है । यहाँ बचन की ममता दोनों पुत्रों में विभाजित है । जिससे वह बोझ पीड़ा और अनाम उदासी अनुभव कर रही है । " 'आर्द्रा' नक्षत्र अषाढ़ मास में उदित होता है, जो समस्त सृष्टि का जीवन स्त्रोत है । ममतामयी माँ की व्यथा और वात्सल्य इस कथानक का प्राण है । मातृत्व हंमेशा दीन, अरक्षित, असहाय और भावना निर्भर की ओर ही बार–बार झुकता है । माँ बचन बेकार बेटे बिन्नी के लिए तड़पती है । मातृत्व दोनों बेटों के लिए आकुल है । परंतु बिन्नी से दूर रहकर वह उसके लिए बेचैन रहती है । बेटे का आवारा या महान होना माँ के लिए कोई मायने नहीं रखता । वह बेटे के जीवनाकाश पर सदा करुणा और क्षमाशील नक्षत्र की तरह छा जाने में ही अपनी जीवन की सार्थकता का अनुभव करती है ।"[85]

" 'आर्द्रा' कहानी में माँ का आदर्शरूप ही चित्रित हुआ है । माँ का मन वहाँ जहाँ उसकी सार्थकता है, वहाँ के लिए भी बैचेन है, तो जहाँ माँ की कोई सार्थकता नहीं, वहाँ के लिए भी माँ तड़पती है । इसीलिए माँ अपने यथार्थ में भी आदर्श छिपाये हुए है, लेकिन लाली में माँ के प्रति एक उदासीनता का भाव है । संयुक्त परिवार के टूटने, रोजगार की तलाश में परिवार के सदस्यों के अलग–अलग स्थलों पर रहने और उनकी मजबूरी तथा आधुनिक चिन्तन ने जीवन मूल्यों में परिवर्तन उपस्थित कर दिया है । 'आर्द्रा' कहानी की संवेदना व्यापक स्तर पर इस परिवर्तित मानसिकता को सजगता के साथ अभिव्यक्त करती है ।"[86] प्रस्तुत कहानी में राकेशजी ने भाई–भाई के बीच टूट रहे संबंधो का यथार्थ चित्रण करते हुए माँ के आदर्श रूप का चित्रण किया है ।

'क्वार्टर' कहानी राकेशजी की एक ऐसी कहानी है जो शुद्ध परिवार समस्याओं को लेकर लिखी गयी है । 'क्वार्टर' कहानी का नायक शंकर अपने परिवार की जिम्मेदारियाँ निभा रहा है । पूरे परिवार की जिम्मेदारी व्यक्ति को कैसा अकला और बेचारा बना देती है, यह कहानी इसका जीवंत दस्तावेज है । शंकर दिल्ली जैसे महानगर में पाँच सौ रुपये की नौकरी करता है । स्कूल से मिले पाँच कमरों वाले क्वार्टर का उपभोग करने के लिए उसके वृद्ध रिटायर्ड पिता, बड़ा बेरोजगार भाई नाथभाई, छोटा भाई मुकुंद, भतीजे पुन्नु और गुन्नु तथा 'क्वार्टर' बड़ा होने के बहाने से छुट्टी बिताने के लिए उसकी दो बहने भी यदा–कदा आ ही जाती है । शंकर और उसकी पत्नी राधा पर इन सभी की जिम्मेदारी है । इन सबके राशन–पानी की व्यवस्था की जिम्मेदारी तो शंकर पर है ही साथ ही उसे अपने भाई और भतीजों के लिए नौकरी का भी बंदोबस्त करना है । जिसके लिए शंकर को परेशानी उठानी पड़ रही है ।

शंकर के पिता रिटायर्ड है अतः वह अपना समय बिताने के लिए दिनभर शंकर से मिलने वाले लोगों से बात करने के लिए तैयार रहते है । जिससे शंकर को बहुत कोफ्त होती है । सब लोग मिलकर शंकर की पत्नी राधा पर टीका–टीप्पणी करते रहते है । क्योंकि घर के सभी सदस्यों को लगता है कि विवाह के बाद राधा के बहकावे में आकर ही शंकर अपने परिवार के सदस्यों के प्रति लापरवाह होता जा रहा है । इससे राधा और शंकर की बहनों के बीच एक खिंचाव–सा बना रह रहता है और राधा हर वक्त की इस चिकचिक से तंग आकर वह अपने भाई के घर जाने के लिए तैयार हो जाती है । घर में निरंतर बढ़ रहे परिवार की संख्या की ओर संकेत करते हुए राधा घर के संबंध में शंकर को कहती है कि जितने जितने लोग आकर पड़े रहते है यहाँ, जिससे यह घर घर नहीं, मुसाफिरखाना लग रहा है ।

शंकर के घर में सब लोग सचमुच में मुसाफिरखाने के मुसाफिरों की तरह ही रहते हैं क्योंकि साथ रहते हुए भी उनमें कहीं स्नेह और आत्मीयता नहीं है । शंकर के पिता को इस बात की शिकायत है कि उसकी ठिक से देखभाल नहीं हो रही । इस घर में जैसे उसका कोई महत्त्व ही नहीं है ।

वह शिकायत करते हुए कहते हैं – ''पेशाबघर के बाहर डाल रखा है मुझे । रोज मुझसे पूछ लिजिए कि कितनी बार फ्लश चलता है दिन मे । यहीं डायरी रखने के लिए लिटा रखा है, मुझे यहाँ ।''[87] और बोलते–बोलते उनकी आँखों से आँसू बहने लगते है ।

शंकर पर परिवार का बोझा है और साथ ही शंकर का स्वभाव भी लंपट होने के कारण पति–पत्नी में भी निरंतर दूरी बनी रहती है । पति–पत्नी के बीच आया खिंचाव तथा परिवार की जिम्मेदारी से हुइ शंकर की स्थिति का वर्णन राकेशजी ने सांकेतिक रूप से करते हुए बहुत कुछ कह दिया है – ''हाई वॉल्टेज और लो वॉल्टेज के बीच लड़खड़ाती खंभो की रोशनी । मार्केट की सड़क पर मरियल चाल चलता आदमी । सामने की तरफ नई खड़ी होती इमारत के सीखचे । ढेरों, इ टे, गारा और सीमेन्ट ।''[88]

यह स्पष्ट है कि परिवेश के दबाव से सामाजिक, नैतिक, आर्थिक और धार्मिक धाराओं में मूल्यगत परिवर्तन हो रहा है । औद्योगिक विकास, महानगरीयकरण, आर्थिक परिस्थितियों के दबाव, शिक्षा के बढ़ते प्रभाव, रोजगार की विकट समस्या आदि परिस्थितियों से मानवीय संबंधों में एक आश्चर्यजनक परिवर्तन हुआ । ''परिवार का परंपरागत ढाँचा प्रेमचंद युग में ही टूटने लगा था लेकिन '५० के बाद तो टूटने का सिलसिला परिवार के संबंधों को अनेक स्तरों पर गहरे और जटिल रूप में दिखाई देने लगा । संबंधों का रागात्मक और रक्तीय आधार समाप्त हो गया । संबंध आत्मीय न होकर औपचारिक अधिक हो गये और उनके निर्वाह में व्यक्ति अपने को प्रशन्नता की अपेक्षा अभिशप्त अधिक समझने लगा ।''[८९]

'एक और ज़िन्दगी', 'पहचान', 'गुंझल' आदि राकेशजी की ऐसी कहानियाँ है जहाँ पति–पत्नी के बीच जब नहीं निभती तो वह अलग–अलग रहने के लिए स्वतंत्र हो जाते है । जबकि दूसरे पक्ष की ओर देखे तो 'अपरिचित', 'गुनाह बेलज्जत', 'खाली', 'फौलाद का आकाश', 'आखिरी सामान', 'सुहागिनें' आदि ऐसी कहानियाँ भी है जहाँ पति–पत्नी के बीच संबंध मात्र नाम मात्र का रह गया है । फिर भी वे एक–दूसरे के साथ रहने के लिए अभिशिप्त दिखाई

देते हैं । 'अपरिचित' कहानी पति–पत्नी के बीच स्वभावगत और वैचारिक असामंजस्य है । अतः कथानायक 'मैं' और उसकी पत्नी नलिनी के बीच उपरी सतह पर सबकुछ ठीक है पर सतह के नीचे जीवन कितनी–कितनी उलझनों और गांठो से भरा है । कथानायक 'मैं' पाँच सालों में मंजिल–दर–मंजिल विवाहित जीवन से गुजरता जा रहा था रोज यहीं सोचता है कि "शायद आने वाला कल ज़िन्दगी के इस ढाँचे को बदल देगा ।"[90] कहानी का दूसरा जोड़ा दीशी और दीशी पत्नी में भी स्वभावगत वैषम्य है । अतः दीशी पत्नी को छोड़कर विदेश चला जाता है और यहाँ तक कि पत्नी की उसके प्रति की भावनाओं की जरा भी कद्र नहीं करता । राकेशजी की कहानियों को देखकर यह कहा जा सकता है कि राकेशजी की वैचारिक मान्यता है कि जहाँ पति–पत्नी दोनों ज्यादा अहंवादी हो और दोनों ही आर्थिकरूप से स्वतंत्र हो वहाँ संबंधों के विघटन की संभावना अधिक होती है । लेकिन जब दोनों में से किसी एक का व्यक्तित्व न हो या दोनों का ही न हो वहाँ संबंध निभ जाते है । इन कहानियों से राकेशजी की यह विचारधारा स्पष्ट हो जाती है ।

'गुनाह बेलज्जत' में सुन्दरसिंह और भागवन्ती के संबंध सिर्फ ढोते रहने वाला ही है । 'खाली' कहानी के तोषी और जुगल के बीच संबंधों में सहज भावना और प्रेम का स्थान शंका ऊब और चिड़–चिड़ेपन ने ले लिया है । अतः दोनों एक–दूसरे को परेशान करने का कोई भी मौका न चुकते हुए परेशान करते रहते है । फिर भी सामाजिक और व्यक्तित्व मर्यादाओं के कारण एक दूसरे के साथ रहने के लिए मजबूर है । 'फौलाद का आकाश' कहानी के मीरा और रवि के बीच भी आत्मीयता का अभाव नज़र आता है । अगर कुछ अंश में है तो भी सिर्फ मीरा की ओर से ही । क्योंकि रवि मीरा से मात्र शारीरिक रूप से ही जुड़ा हुआ है ।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि राकेशजी की कहानियों में ऐसी स्थितियाँ भी नज़र आती है जब व्यक्ति व्यक्तिगत स्वतंत्र की चाह को दबाकर भी सामाजिक या व्यक्तिगत मर्यादा के कारण साथ रहने के लिए विवश दिखाई देता है । इसके पीछे का कारण यह भी है आज भी हमारे समाज में

पति–पत्नी का अलग रहना अच्छा नहीं माना जाता है । इसलिए वे कभी–कभी इसी मजबूरी के कारण साथ–साथ रहते है ।

राकेशजी ने अपनी कहानियों में व्यक्ति को झकझोर देनेवाली सामाजिक कटु सच्चाई को उकेरा है । क्योंकि ''मानवीय रिश्तों में उनकी दिलचस्पी किसी तरह की आरोपित सैद्धांतिक या चालू नारों से आक्रन्त नहीं है और इसलिए अपने सीमित परिवेश में भी सहज और सहानुभूतिपूर्ण रह सकी है । इसी से उनकी रचनाओं में ज़िन्दगी की जो तस्वीर है उसमें एक तरह की ईमानदार तलाश अधिक है । किसी निष्कर्ष का मसीहाई अंदाज नहीं है ।''[91]

४.४ देश विभाजन की घटना और पारिवारिक विघटन :

राकेशजी ने देश की आजादी के साथ मिली दाह और ताप का स्वयं अनुभव किया था । देश–विभाजन से आये संकट और पारिवारिक विघटन की स्थिति को लेकर राकेशजी ने 'कंबल', 'मलबे का मालिक', 'क्लेम' जैसी कहानियों में तत्कालीन स्थिति का यथार्थ वर्णन किया है । इस बात से सभी परिचित है कि विभाजन तो देश का हुआ था, पर साथ ही लोगों के दिल के बीच भी एक विभाजन रेखा खिंची गयी । परिणाम स्वरूप लोगों के घर विभाजन होना कोई आश्चर्यजनक बात नहीं थी । यह बड़ी दारुण स्थिति थी जिसे भोगने के लिए तत्कालीन व्यक्ति विवश था । तत्कालीन साहित्यकार भी इससे अछूता नहीं था । ''देश में एक नया परिवेश बना एक नयी लहर दौड़ी और इसे गहरे तक अनुभव किया कलाकारों ने कथाकारों ने । परिणामतः तत्प्रभावी साहित्य की सर्जना हुई । राकेश इसके एक खास अंग बने और सच्चाई को अपने कथा साहित्य के माध्यम से चित्रित करने में अग्रणी रहे ।''[92]

'मलबे का मालिक' राकेशजी की भारत विभाजन की विभिषिका को लेकर लिखी गयी चर्चास्पद कहानी है । यह एक ऐसे व्यक्ति की कहानी है जिसका परिवार हिन्दू–मुस्लिम दंगो की भेंट चढ़ चुका है । गनी के पुत्र का पूरा परिवार एक हिन्दू पहलवान के स्वार्थ के कारण मारा गया है । इस बात से

गनी पूरी तरह अनजान है कि रक्खे पहलवान ने मकान की लालच में इस मकान में रहनेवाले गनी के पुत्र के पूरे परिवार को क्रूरता से मार डाला है । गनी पाकिस्तान से आकर जब अपने मकान की जगह सिर्फ मलबे का ढेर देखता है तो उसका हृदय चित्कार कर उठता है । वह अपने परिवार को याद करते हुए आँसू बहाता हुआ अपने परिवार का सदा के लिए हुआ विरह झेलने के लिए विवश दिखाई पड़ता है ।

'क्लेम' कहानी भारत विभाजन के साथ हुए परिवार विघटन की एक अन्य करुण कहानी है । 'क्लेम' कहानी का साधुसिंह विभाजन के पश्चात् पाकिस्तान से भारत आया है । उसका घर पश्चिमी पाकिस्तान में पतोकी में था । उस मकान का वह नौ रुपया किराया देता था । उस मकान का उसे बहुत मोह था अतः उसने अपने घर के आँगन में आम का पेड़ लगा रखा था । जिन दिनों वहाँ दंगे शुरू हुए, दंगाइयों ने उसके घर का दरवाजा तोड़ दिया । दंगाइयों से बचने के लिए पति–पत्नी दोनों पीछवाड़े की तरफ से कूद ने के लिए भागे । किन्तु नशीब ने दोनों का साथ नहीं दिया । साधुसिंह तो कूद गया पर उसकी पत्नी हीरा दंगाइयों के हाथों पकड़ी गयी । पति–पत्नी दोनों एक दूसरे से दूर हो गये । साधुसिंह अँधेरे की शरण लेता हुआ खेतों में छिपता हुआ, रेल की पट्टरियों से मार्ग खोजता हुआ हिन्दुस्तान पहुँच गया । उसकी प्यारी पत्नी कहाँ है उसकी खबर भी उसे नहीं है । फिर भी वह इस आशा से जी रहा है कि एक दिन सब कुछ ठीक हो जायेगा । उसकी प्यारी पत्नी जिसे वह खो चुका है शायद फिर से मिल जाये ।

'कंबल' एक शरणार्थी कैम्प में रहने वाले एक ऐसे परिवार की कहानी है, जहाँ राकेशजी ने विभाजन के बाद हो रही परिवार की स्थिति का यथार्थ चित्र खिंचा है । परिवार में निरंतर बढ़ रहा अभाव संबंधों और मूल्यों को भी किस सीमा तक प्रभावित करता है इस बात की सही तस्वीर भी इस कहानी में मिलती है । रामशरन और उसकी पत्नी गंगादोई अपनी पुत्री बनारसी और छोटे बेटे राजु के साथ कैम्प में शरण लिये हुए है । देश–विभाजन की आग में वे पहले ही अपना एक युवा पत्र खो चुके हैं ।

इस बात का गंगादोई और रामशरण को बहुत दुःख हैं । बर्फ जैसी ठंड़ी रात में पूरा परिवार कैम्प में काँपता है । शर्दी से काँपती बनारसी को देखरकर कुछ लोग जो शरणार्थीओं का फायदा उठाना चाहते है, बनारसी के शरीर को स्पर्श करने की चाहत में उस पर तो कंबल डाला जाता है पर शर्दी से ठिठुरते और खासते रामशरण पर कंबल नहीं डाला जाता । बनारसी के शरीर पर कंबल देखकर गंगादोई इसे अपनी ओर खिंच लेती है । उसे स्वयं अपनी ही चिंता है अपने पति की नहीं । सुबह माँ–बेटी दोनों देखती है कि शर्दी के कारण रामशरण मृत्युशरण हो गया है ।

प्रस्तुत कहानियों में विभाजन के बाद टूटते परिवार के साथ टूटते मूल्यों का भी राकेशजी ने बेखूबी चित्रण खिंचा है ।

४.५ बच्चों की समस्या :

राकेशजी ने समाज की विविध समस्याओं को अपनी कहानियों में सफलतापूर्वक प्रस्तुत किया है । राकेशजी की दृष्टि से बच्चों की समस्या भी अछूती नहीं रही है । वैसे देखा जाय तो पति–पत्नी के जीवन संबंधी विविध समस्याओं पर राकेशजी ने अपनी लेखनी चलायी है और पति–पत्नी संबंधों से जुड़े विविध पहलुओं का विश्लेषण किया हैं । पति–पत्नी के बीच तनाव, अहं, आदि से उत्पन्न होनेवाले संघर्ष और उब भरे संबंध का सीधा असर बच्चों के मानस पर पड़ता है । 'पहचान', 'एक और ज़िन्दगी', 'खाली', 'नन्ही', 'छोटी सी चीज़', 'मरुस्थल' आदि जैसी कहानियों में राकेशजी ने बालमनोविज्ञान का आधार लेकर बच्चों की समस्याओं पर प्रकाश डाला है ।

बच्चों की समस्या को सशक्त रूप से अभिव्यक्ति देनेवाली कहानियों में 'पहचान' कहानी अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है । इस कहानी में राकेशजी ने पति–पत्नी के तनाव से उत्पन्न विवाह संबंध की समाप्ति के बाद माँ के पुनः विवाह से उत्पन्न बच्चे की मानसिकता को सशक्त अभिव्यक्ति दी है । 'पहचान' कहानी का शिवजीत इस मानसिकता का शिकार है । शिवजीत की माँ

अपने पति मि. सचदेव से संबंध न निभने के कारण तलाक लेकर पुनः विवाह का फैंसला करते हुए डाक्टर अवरोल से शादी कर लेती है । अपनी माँ के इस संबंध को लेकर शिवजीत के मन में निरंतर संघर्ष चलता रहता है । वह डाक्टर अवरोल के घर में अपनी माँ के साथ रहते हुए भी अपने आप को अकेला और अजनबी महसूस करता है । वह जब अकेला माँ के साथ रहता था तब माँ का पूरा ध्यान सिर्फ उसकी ओर ही लगा रहता था । घर का नौकर चंदाराम भी सिर्फ उसकी ही सुनता था । अपने घर में वह खूब मनमानी करते हुए रहता था । लेकिन माँ की दूसरी शादी से उसे डाक्टर अवरोल के घर रहने आना पड़ता है । जहाँ डाक्टर अवरोल के चार बच्चों के साथ उसका गुजारा करना मुश्किल हो जाता है । साथ ही माँ भी अधिक व्यस्तता के कारण शिवजीत को पूरा समय नहीं दे पाती । अतः शिवजीत माँ को भी बदला हुआ अनुभव करता है ।

स्कूल में उसका नाम शिवजीत सचदेव से शिवजीत अवरोल कर दिया जाता है । जब क्लास में उसकी हाज़िरी शिवजीत अवरोल कहकर ली जाने लगी और उसको सचदेव की जगह अवरोल से पुकारा जाने लगा तब ‘‘आसपास से कई आँखें आधी पैनी उसकी तरफ घूम गई । कुछ आँखें सिर्फ एक दूसरी की तरफ घूमकर हल्की मुस्कराहटों के बाद फिर सीधी हो गयी । हाज़िरी का जवाब देने के बाद से उसके कान काफी सुर्ख हो गए थे । उस सुर्खी की आँच उसे अपने गालों पर फैलती महसूस हो रही थी । पीठ और गरदन की गाँठ पर जैसे छिपकली चिपक गयी थी । उसने दो–एक बार गरदन ऊँची करके उस छिपकली को झाड़ देने की कोशिश की । मगर इससे उसे लाग जैसे छिपकली गांठ के अंदर धंसती जा रही हो ।’’[93]

शिवजीत के सहपाठी डाक्टर अवरोल से उसका संबंध पूछते हुए उसका मज़ाक उड़ाया करते है । वह जवाब नहीं दे पाता अतः झुंझलाहट अनुभव करता है । शिवजीत सचदेव नाम उसे अपने अस्तित्व से जुड़ा लगता था जबकि शिवजीत अवरोल नाम उसे बेगाना लगता है । उसे मम्मी के साथ डाक्टर अवरोल के घर रहना भी अच्छा नहीं लगता । डाक्टर अवरोल से

मम्मी की शादी हो जाने पर शिवजीत अपने आपको असहाय और असुरक्षित अनुभव करता है । क्लास में भी वह अत्यंत अस्त-व्यस्त रहने लगता है । उसके मन में निरंतर यह संघर्ष चलता रहता है कि ''पापा ?... कौन ? महेन्द्र सचदेव या डाक्टर हरदेव अवरोल ।''[94]

यह कहानी उन माँ-बाप के लिए चेतवानी भी है जो अपने भविष्य के लिए, अपने सुख के लिए तो अवश्य सोचते है । पर कभी-कभी बच्चे के विषय में न सोच कर बच्चे का भविष्य दाँव पर लगा देते हैं । जिसके कारण बच्चे को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है जो उसके लिए मानसिक तनाव का कारण बन जाती है । '' 'पहचान' के शिवजीत की मनःस्थिति और अधिक आलोडनपूर्ण है । अपनी माँ के दूसरे विवाह के कारण वह अचानक शिवजीत अवरोल बन जाता है । इस स्थिति में वह अपने को एक उपेक्षापूर्ण स्थिति में पाता है । घर से बाहर उसका परिचय बदल जाता है तो घर के अंदर वह अपनी माँ के नये पति के चार बच्चों के बीच अजनबीपन की स्थिति में पाता है । टूटते परिवार और बिखरते संबंधों के बीच नये संदर्भो की तलाश में बच्चों की हीनता ग्रंथि से ग्रस्त मनः स्थिति का चित्रण शिवजीत के माध्यम से हुआ है । पिता के बाद माँ की आवश्यकता शिवजीत को अधिक थी, परंतु नये संबंध बनने से शिवजीत असहायता और असुरक्षा की भावना से घिर जाता है । अपने सुख के लिए बच्चों के भविष्य को दाँव पर लगाने की प्रतिक्रिया स्वरूप ही शिवजीत की त्रासदी उत्पन्न होती है ।''[95]

'एक और ज़िन्दगी' कहानी का बच्चा पलाश माता-पिता दोनों से प्यार करता है और दोनों के साथ रहना चाहता है । किन्तु प्रकाश और बीना के बीच असामंजस्य होने के कारण दोनों तलाक लेकर अलग-अलग रहते हैं । तलाक से पहले प्रकाश बीना से पूछता है कि - ''तुमने सोचा है कि तुम्हारे इस तरह व्यवहार करने से बच्चे का क्या होगा ।''[96] बीना का उतर है - ''जब हम अपने ही बारे में कुछ नहीं सोच सके, तो इसके बारे में क्या सोचेंगे ।''[97] इस तरह प्रकाश और बीना अपने भविष्य ओर अपने अहं की

संतुष्टि के लिए अलग हो जाते है । तलाक मे बाद कोर्ट बच्चे का अधिकार माँ बीना को सौंपती है । पलाश जब कभी अपने पापा प्रकाश के पास आता तो दिनभर उसके साथ रहता और अंधेरा हो जाने पर भी वह पिता से दूर जाना नहीं चाहता । बच्चा अपने पापा के पास रहने की जिद करता । प्रकाश का मन भी पलाश को अपने पास रखने के लिए बेताब हो जाता । पर फिर भी वह पलाश को लौटाने के लिए मजबूर हो जाता था ।

पहाड़ी पर जब प्रकाश को बीना और पलाश मिलते है तब प्रकाश उसे देखकर खिल उठता है । पलाश को पाकर वह अपने सारे दुःख भूला बैठता है । पलाश प्रकाश से तरह–तरह की जीद करता है । वह चाहता है कि पापा के घर उसके साथ मम्मी भी चले । वह प्रश्न करता है कि ''मम्मी मेरे साथ उपर क्यों नहीं आती ?''[98] प्रकाश और बीना पलाश के इस प्रश्न का उत्तर नहीं दे सकते और तटस्थ भाव से एक–दूसरे को देखते रहते हैं । पलाश की जीद के आगे झुककर जब बीना उसके साथ प्रकाश के घर चलने के लिए तैयार हो जाती है तब उसका रुआंसा भाव हँसी में बदल जाता है । पलाश को माँ–बाप दोनों की जरूरत है । वह माँ–बाप दोनों से प्यार महसूस करता है किन्तु यह संभव नहीं हो सकता । पलाश और बीना के चले जाने के बाद प्रकाश फिर से अपने आपको अकेला महसूस करते हुए बच्चे के अभाव को शराब में डूबो देना चाहता है । यहाँ राकेशजी ने माता–पिता के तलाक से उत्पन्न बच्चे की सोचनीय स्थिति का वर्णन तो किया ही है साथ ही साथ बच्चों के अभाव से माता–पिता पर पड़ने वाले प्रभाव पर भी दृष्टिपात कर दिया है ।

माता–पिता के व्यवसाय और स्वार्थवृत्ति का बच्चे पर पड़ते वाले प्रभाव को राकेशजी ने 'मरुस्थल' कहानी में अभिव्यक्ति दी हैं । 'मरुस्थल' धनपतराय और नसीम की बेटी इन्दु के जीवन की करुण कहानी है । इन्दु की उम्र सात साल की है । इन्दु की माँ नसीम जो कभी वेश्या थी बाद में अभिनेत्री बन जाती है । इन्दु के पिता धनपतराय जो कभी थियेटर में पर्दे खिंचने का काम करता था अब डायरेक्टर बन गया है । धनपतराय और नसीम दोनों अपनी बेटी इन्दु को अपने अपने व्यवसाय के आधार पर लाभ

की दृष्टि से देखते हैं । किन्तु छोटी उम्र में भी इन्दु समझदार है वह इन सब बातों को बराबर समझ लेती है । जब गोपाल उसकी माँ से कहता है कि – “तू इन्दु को मेरे हवाले कर दे, उसका जो तू चाहे ले ले ।”[99] इस बात पर उसकी माँ की प्रतिक्रिया को भी इन्दु साफ समझ जाती है । कथानायक ‘मैं’ को इन्दु इस विषय में बताते हुए कहती है – “अम्मी वैसे तो हम को पीटती है, पर उसके सामने ऐसे तारीफ कर रही थी जैसे सचमुच हम को बेचना हो ।”[100] सकीना इन्दु को लेकर गोपाल के साथ जाने की बात सोचती है । इन्दु को यह अच्छा नहीं लगता । तो दूसरी ओर इन्दु के पिता कंपनी में पैसे लगाने वाले सेठों से इन्दु की मार्केट वैल्यू समझाते हुए उनसे पैसे अेंठना चाहते है । अतः उन्हें इन्दु का वेरायटी शो और कला दिखाना चाहते है । वह अपना काम निकालने के लिए इन्दु का डान्स प्रोग्राम बनाते है । माता–पिता की इस प्रकार की भावना देखकर इन्दु उदास हो जाती है ।

थियेटर में काम करने वाले शंकर और शर्मा इन्दु को ‘रंडी की औलाद’ कहकर पुकारते है, तब इन्दु को बहुत दुःख होता है । वह कथानायक ‘मैं’ से प्रश्न करती है कि – “आप बताइए में रंडी हूँ ।”[101] इन्दु के बालक मन पर यह बात गहराई से बैठ जाती है । इन्दु पिता द्वारा बुलाये गये सेठों के सामने नाचना भी पसंद नहीं करती क्योंकि वह सोचती है कि वह कोई तमाशा नहीं है । उसे तो डॉक्टरी पढ़नी है । वह कथानायक “मैं” से कहती है – “आप मुझे दिल्ली ले चलिए वहाँ मेरी एक सहेली है, मुझे उसके घर छोड़ आइए ।”[102] वह माता–पिता का व्यवहार देखकर क्षुब्ध हो जाती है । वह अपने पिता के डर से आये हुए सेठों के सामने नृत्य तो दिखाती है । पर नाचते–नाचते बेहोश हो जाती है । सात दिनों तक बुखार उतरने का नाम नहीं लेता और उसके शरीर की हड्डीयाँ निकल आती है । फिर भी माँ–बाप अपनी–अपनी व्यस्तताओं में खोये हुए हैं । इन्दु की नज़र कथानायक ‘मैं’ से निरंतर प्रश्न करती रहती है कि ‘क्याँ मैं रंडी हूँ’ – एक नन्ही बालिका की दर्द भरी तस्वीर राकेशजी ने ‘मरुस्थल’ कहानी में चित्रित की है; जो पाठकों के हृदय पटल को बहुत गहराई से छूने में सक्षम है ।

‘खाली’ कहानी के पति–पत्नी जुगल और तोषी के उब भरे संबंध का प्रभाव उसकी बेबी पर भी पड़ता है । जुगल और तोषी के बीच झगड़ा होने के बाद कई–कई घण्टे दो तरफा छायी खामोशी से कमरे का वातावरण कसा रहता है । जिसके कारण बेबी भी सोफे के कोने में दुबकी पड़ी रहती है । उसकी समझ में कुछ नहीं आता । जब खाना बन जाता तो वह पापा के पास चली जाती और दबी आवाज में पूछ लेती कि ‘‘पापा, मम्मी से कहूँ खाना ले आए ?’’[103] और मम्मी के पास आ कर कहती ‘‘मां पापा खाना मांग रहे है ।’’[104] कहते हुए बेबी के स्वर में हल्का संतोष होता कि अब शायद झगड़े का कार्यक्रम पूरा हो जाने से रात भर सोया जा सकता है । माता–पिता के बीच के तनाव का सीधा प्रभाव बेबी पर पड़ता है । जब तनाव के बाद वातावरण शांत हो जाता है तब वह दोनों के बीच समाधान लाने का काम भी करती है और संतोष की साँस लेती है ।

‘नन्ही’ कहानी में माँ की मृत्यु के बाद पिता के दूसरे विवाह से होने वाली बच्चों की स्थिति को रेखांकित किया है । ‘नन्ही’ कहानी की नन्ही की स्मृतियों में से माँ एक दिन अचानक उससे अलग हो गई । नन्ही बेखबर सोई रही । माँ की मृत्यु की स्थिति को वह नहीं समझ सकती थी । औरो के लिए उसकी माँ मर गयी थी धीरे–धीरे नन्ही के लिए भी मर गई वह । कुछ दिनों बाद नन्ही को पता चलता है कि उसके लिए नयी माँ आ रही है । तब उसे अपनी माँ की याद आने लगती है – ‘‘अस्पष्ट–स्पष्ट सी मूर्ति उसे गोद में लिए उसे खिलाती, हँसती, चूमती, जगाती, सुलाती, कपड़े पहनाती प्यार देती । उसे धुंधली–सी माँ की याद हो आई ।’’[105] और एक दिन आ गयी नन्ही के लिए नयी माँ । नन्ही माँ के पास जाने के लिए उतावली हो उठी । किन्तु आनेवाली नवयुवती को अभी तक ‘बेटी’ सुनने का ही अभ्यास था । अतः नन्ही का ‘माँ’ संबोधन सुनकर उसने नन्ही को पीछे हटा दिया । ‘‘अब नन्ही कोशिश कर रही थी यह समझने की कि यहीं माँ है, तभी उसका हाथ झटक दिया गया । वह रुआंसी सी दो कदम पीछे गयी और न जाने कैसे गिर गई ।’’[106] नयी माँ के वर्ताव से नन्ही को ज्वर हो आया । वैद्य

को बुलाने पर भी नन्ही का बुखार कम नहीं हुआ । नन्ही की बुआ ने उसे समझाते हुए नये खिलौने के लिए कहा तब वह अधिक घबरा उठी और 'नये नई' कहते हुए बेहोश हो गयी । फिर उसकी नब्ज़ नहीं मिल रही थी ।

पिता के दूसरे विवाह से आयी नयी माँ में अपनी माँ को ढूँढ़ पाने में असफल नन्ही की ज्वर ग्रस्त होने के बाद मृत्यु को पा लेती है ।

जिन अन्य कहानी में राकेशजी ने बाल मनोविज्ञान को अपने कथानक का आधार बनाया है वह है 'छोटी–सी चीज़' यह कहानी एक ऐसे नन्हें बच्चे यशवीर की कहानी है, जिसे घर के एकतार जीवन से निकालकर रार्बटसन स्कूल के खुले और अपरिचित वातावण में छोड़ दिया है । यहाँ आकर वह स्कूल के वातावरण के साथ अपने आपको जोड़ नहीं पा रहा । वह बार–बार अभ्यास करने के बाद भी गुड ईवनिंग की जगह गुड मोर्निंग या गुड मोर्निंग की जगह गुड नून कह देता है । जिससे अन्य सहपाठी उसका मज़ाक उड़ाते है । लंच के वक्त छुरी काँटे से रोटी मटर खाना उसे असंभव लगता है । बार–बार अभ्यास करते रहने से उसने थैंक्यू सर कहना तो सीख लिया परंतु इस वाक्य के प्रयोग के उपयुक्त–अनुपुक्त समय का वह निर्णय नहीं कर पा रहा । कहानी के अत में मि. बर्टन के प्यार से वह इस स्थिति से संभलता हुआ दिखाई देता है ।

इन कहानियों में राकेशजी ने बच्चों की समस्याओं को विविध कोणों से देख कर उसे स्वर दिया हैं । राकेशजी की युग–चेता दृष्टि ने बच्चों की समस्याओं को पूर्ण संवेदना के साथ अभिव्यक्ति दी हैं । बच्चें हमारे समाज का एक अभिन्न अंग है, जिन्हें दूर रखकर समाज का मूल्यांकन नहीं किया जा सकता । राकेशजी ने इसी मान्यताओं को आधार देते हुए बच्चों की जिन–जिन समस्याओं पर प्रकाश डाला है वह राकेशजी की सतर्क दृष्टि को स्पष्ट कर देती है ।

४.६ मूल्य विघटन :

स्वतंत्रता के बाद के समय में मूल्य विघटन से पूरे समाज में तीव्रता से परिवर्तन के चिन्ह दिखायी देने लगे । और छठे दशक में तो मूल्यों में व्यापक विघटन का दौर शुरू हुआ । समाज में अमानवीयकरण, विसंस्कृतिकरण के साथ तमाम जीवन मूल्यों में बहुस्तरीय विघटन सामने आया । मानव संबंधों में स्नेहहीनता, अजनबीपन एवं पारिवारिक एवं दाम्पत्य संबधों में संवादहीनता, बिखराव, टूटन आदि दिखाई देने लगे । सरकारी कार्यालय और राजनीतिक परिवेश में स्वार्थ, अनाचार, रिश्वत आदि का प्रचार प्रसार होने लगा । स्त्री–पुरुष के संबंधों में यौन स्वच्छंदता तथा स्वच्छंदी संबंधों की भटकन दिखाई देने लगी । सारी की सारी व्यवस्था एवं तंत्र प्रदूषित हो उठा ।

इन वैयक्तिक, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, नैतिक विघटन को स्वातंत्र्योत्तर युगीन कहानीकारों ने अपने विषय के रूप में प्रस्तुत किया है । नयी–कहानी ने समाज में आये इस बहुस्तरीय विघटन को अनेक स्तरों पर महसूस करते हुए बड़ी सच्चाई से इसे अभिव्यक्ति देने का प्रयास किया है ।

राकेशजी अपने समाज के प्रति सजग एवं विचारशील व्यक्ति के रूप में हमारे सामने आते हैं । उन्होंने अपने लेखकीय दायित्व को निभाते हुए समाज के बीच होने वाले परिवर्तन और उससे होने वाले मूल्य विघटन को सही रूप में पकड़ ने की कोशिश की हैं । अतः राकेशजी की इस विषय संबंधी कहानियाँ साहित्य की समाज शास्त्रीय व्याख्या के अध्ययन में भी महत्त्वपूर्ण उपलब्धि के रूप में स्वीकृत की गई हैं ।

बदलते युग की भौतिकता, उपभोक्तावादी संस्कृति और यांत्रिकता ने मानव जीवन में स्वार्थपरता, कुटिलता, विवेक शून्यता और हृदयहीनता जैसी शक्तियों को विकसित किया है । जिससें मानवीय संबंध अपनी पूरी उष्मा खो चुके है । इस संवेदनहीनता का सर्वाधिक प्रभाव परिवार पर पड़ा है । आज हमारे पारिवारिक एवं सामाजिक संबंधों में संवेदना की जगह कहीं स्वार्थ का तो, कहीं अपने अहंकार का घुन लग गया है और ये संबंध व्यक्ति के सुख का कारण होने के बजाय दुःख का कारण बन रहे हैं ।

नारी शिक्षा, नयी चेतना और नारी के बदलते परिवेश के कारण प्राचीन सामाजिक संरचना और मूल्यों में बहुत गहरा बदलाव आया है । नारी ने सदियों से परिवार के बीच चले आ रहे पुरुष के प्रभुत्व को जबरदस्त चुनौती दी है । अब स्त्री पति को देवता न मानकर एक पूर्ण पुरुष के रूप में निरखती परखती है और जब पति उस साँचे में फिट नहीं बैठता तो वह जन्मजन्मान्तर के संबंधों को एक झटके में तोड़ने में भी विलंब नहीं लगाती इस स्थिति का चित्रण राकेशजी की 'एक और ज़िन्दगी' और 'पहचान' कहानी में देखा जा सकता है ।

नारी चेतना ने नारी की स्थिति, उसकी मान्यताओं और संस्कारों ने बहुत प्रभावित किया है । उसकी प्राचीन मान्यताएँ और मूल्य बदल चुके हैं वह वैयक्तिक स्तर पर अहस्तक्षेप्य ज़िन्दगी जीना चाहती है । नारी स्वतंत्रता की चेतना और आधुनिकता बोध ने उसकी सोच को नयी दिशा दी है । किन्तु इस बदलती मूल्य दृष्टि के कारण वैवाहिक जीवन गहराई से प्रभावित हुआ है । विवाह भी आज नितांत निजी मामला बन गया है । इसमें भी स्त्री आज माँ–बाप की पसंद की कायल नहीं है वह स्वेच्छा से विवाह करना चाहती है और न निभ पाने की स्थिति में अपना स्वतंत्र निर्णय करने में सक्षम है । 'गुंझल' कहानी की कुन्तल इसी प्रकार की जीवन शैली की पक्षधर है । वह अपना जीवन अपनी स्वतंत्रता के साथ गुजारने के लिए कटिबद्ध है । विवाह संबंध बोझ बन जाने की स्थिति में वह उसे सिर्फ अपने निर्णय से ही समाप्त घोषित कर देती है । इसके लिए वह अपने पिता या किसी अन्य तीसरे व्यक्ति को बीच में लाने के पक्ष में नहीं है ।

बदलते मूल्यों के इस दौर में पति–पत्नी बनने और उतनी ही जल्दी उनसे छुटकारा पाने की स्थितियों का वर्णन उपरोक्त कहानियों में हुआ है ।

आपसी संबंधों के माध्यम से टूटता परिवार, टूटती परंपराएँ और आर्थिक कारणों से बिगड़ते संबंधों ने आज भारतीय परिवार का ढाँचा बिगाड़ दिया है । 'क्वार्टर' कहानी में परिवार के सभी सदस्य एक ही घर में रहते है । फिर भी उनमें आपसी वैमनस्य है अतः पूरे घर में एक

सूत्रता तथा अपनेपन का निरंतर अभाव है । 'आर्द्रा' कहानी के दोनों भाईयों के बीच कहीं भी स्नेहपूर्ण या रक्तिम संबंध का आभास नहीं मिलता । बड़ा भाई लाली आर्थिक अभाव में जी रहे छोटे भाई बिन्नी की ओर उपेक्षापूर्ण दृष्टि रखता है ।

संबंधों के बदले हुए मूल्यों के लिए आर्थिक परिवेश बहुत कुछ जिम्मेदार हैं । अर्थ की बढ़ती प्रधानता ने आज मनुष्य–मनुष्य के बीच के संबंधों को प्रभावित किया है साथ ही नैतिक मूल्यों को भी तोड़ दिया है । व्यक्ति–व्यक्ति के बीच संबंध का आधार सिर्फ अर्थ और स्वार्थ ही रह गया है । राकेशजी की सजग दृष्टि गहराई में जाकर मानव संबंधों की पड़ताल सामाजिक संदर्भो में करती है । जहाँ, स्थापित नैतिक बोध का बहुस्तरीय विघटन हुआ है ।

'वासना की छाया में' कहानी पिता–पुत्री के संबंधों के ह्रास को चित्रित करती है । कहानी का बूढ़ा जाट अपनी शारीरिक के तृप्ति के लिए विधुर हो जाने के बाद फिर से विवाह करना चाहता है । वह इस दूसरी शादी के लिए पैसे खर्च करने के लिए भी तैयार है । किन्तु इस बूढ़े जाट की इच्छा फिर भी पूरी नहीं होती । वह फिर से विवाह करने के लिए गाँव से शहर तक का चक्कर लगाता है, किन्तु यहाँ भी उसकी सारी कोशिशों पर पानी फिर जाता है । उसे पत्नी के रूप में कोई अन्य स्त्री नहीं मिलती, तब वह निश्चय कर लेता है कि वह अपनी चौदह वर्षीय लड़की के बदले में दूसरे चौधरी की लड़की से विवाह करेगा । पिता वासना की हवस शांत करने के लिए अपनी मासूम बेटी तक की बलि चढ़ाने के लिए तैयार है – वह कहता है – "हमारे में यह रिवाज है, बाबूजी ! बराबर का रिश्ता हो तो दो घर आपस में लड़कियाँ बदल लेते हैं । मैं जाकर अपने जैसा ही कोई घर देखूँगा ।"[107] पिता–पुत्री के बीच के संबंधों में आये बदलाव को राकेशजी ने स्वाभाविक रूप में प्रस्तुत किया है – "बापू जो गाली देता है वह गाली उसे नहीं लगती । पर बापू जो गाली उसे नहीं देता वह गाली उसे लग रही है ।"[108] क्योंकि उसका बाप उसके बदले एक ऐसी औरत चाहता है – "जो उसके लिए चारा बन सकती है, जो अपना यौवन रांधकर उसे खिला सकती है ।"[109] बूढ़े जाट

की वासना का यह विकराल रूप अपनी असलियत और विदारकता के साथ रचनाकार ने प्रस्तुत किया है । ज़िन्दगी कितने ही कोणों से बिखरती जा रही है । इन्सान इन्सान से दूर होता चला जाता है । एक सैलाब सा आ गया है । उस सैलाब में सबकुछ यहाँ तक कि आत्मीय रिश्ते भी खत्म होते जा रहे है । राकेशजी ने सक्षम शब्दों में इसे सजीव किया है ।

'हक हलाल' का पण्ड़ित अपनी पत्नी के घर से भाग जाने पर अपने से बहुत छोटी उसकी साली (पत्नी की छोटी बहन) को घर ले आता है । कुछ दिनों के बाद पत्नी लौट आती है, पर वह अपनी साली को वापस करने के लिए तैयार नहीं होता । बल्कि वह रुपये देकर उसे भी अपने पास रख लेना चाहता है । वह अपने वासनात्मक अत्याचार पर मानवता से पूर्ण संवेदना का पर्दा डालते हुआ कहता है – ''वह अब कहाँ जायेगी जी ? ... उसका बाप बहुत गरीब आदमी है । उसके पास इसे खिलाने के लिए एक पैसा भी नहीं है । उसको इसका सौ सवा सौ चाहिए सो मैं ही उसे दे दूंगा । इतने दिनों से घर में रही है, सो अब छोड़ने को मन नहीं करता । आदमी को आदमी से मोह हो जाता है ।''[110]

'वासना की छाया' का बूढ़ा जाट और 'हक हलाल' का पंडित पैसे के बदले ऐसी औरतें चाहते है जो उसकी हवस को शांत कर सके । क्योंकि बूढ़े जाट के पास 'उसकी हड्डियों में जितना अधिक जोर है, उससे कहीं अधिक उसकी गाँठ में पैसे है ।''[111] और पंडित के पास भी उतने पैसे है जिसको लेकर वह औरतों की गोरी चमड़ी खरीद सकता है ।

जीवन की बीभत्सता और अनियंत्रित यौन विभिषिका से जीवन के मूल्यों को टूटते हुए राकेशजी ने यथार्थवादी रंग के साथ प्रस्तुत किया है । 'रोजगार' कहानी की मीस दारूवाला अपने और अपने भाई की आर्थिक जरूरतों को पूरा करने के लिए शरीर का व्यापार करने के लिए मजबूर है । उसका भाई अपनी बहन की काया की कमाई पर निःसंकोच गुजर–बसर करता है । 'गुनाह–बेलज्जत' में यौन संबंधों से उत्पन्न जीवन की अव्यवस्था का वर्णन है । 'सोया हुआ शहर' कहानी में रात के अंधेरे में जीवन की बीभत्सता और

काला पक्ष उभर कर सामने आता है । 'कटी हुई पतंगे' में सेक्स की भावना सामने आयी है, जहाँ अकेली लड़की को देखकर लोग मन–ही–मन "छीपो ! मेरा ई माल ! छीपो ! मेरा ई माल !"[112] कहकर झपटते है ।

'मरुस्थल' कहानी संबंधों में आये बदलाव और टूटते नैतिक मूल्यों को यथार्थ रूप में रेखांकित करती है । कहानी के माँ–बाप अपनी पुत्री इन्दु को रुपयों की लालच में बेचने के लिए तैयार है । इन्दु का बाप धनपतराय स्वार्थवश अपनी बेटी को रंड़ी बनाने पर तुला है और माँ उसके जिस्म की कमाई खाने के दिन की तैयरी में दिखाई देती है । ऐसे माहौल में इन्दु का भोला प्रश्न कि "आप ही बताइए मैं रंड़ी हूँ ?" रिश्तों के तह में छिपे घृणित पक्ष का उद्‌घाटन करता है ।

'एक आलोचना' कहानी में राकेशजी ने भाई कैलाश के चरित्र के माध्यम से दिन–प्रतिदिन खत्म हो रही रिश्तों की संवेदनहीनता पर प्रकाश डालते हुए आज के लेखकों द्वारा हो रहे स्नेहहीनता के व्यापार को स्पष्ट किया है ।

भाई कैलाश जो कभी गरीब थे । पर आज वह बात पुरानी है । आज भाई कैलाश "रेशमी खादी का कुर्ता पहनकर अमरीकन कट के सुनहरे चश्मे के पीछे से झाँकते है, अनन्नास के रस से अपने दिमाग को तर रखते है, और मोटे गद्दे पर बैठकर पार्कर प१ के कलम से लिखते हैं – 'मेरी गरीबी ।' भाई कैलाश शब्दों का व्यापार करते हैं । नकद माल लेते हैं, आकाश–चित्र बेचते है ।"[113]

भाई कैलाश की पहली पत्नी तारा सात साल पहले अभावग्रस्ता के कारण मृतयु की शरण में चली गयी है । तारा की मृत्यु के बाद भाई कैलाश के जीवन में रेणु का प्रवेश होता है । भाई कैलाश अपनी पहली पत्नी की मृत्यु और अपनी अभावग्रस्तता को पुस्तकों के माध्यम से बेचते है । इन सात वर्ष में भाई कैलाश की पाँच पुस्तके छप चुकी है जिसमें उन्होंने अपने जीवन की घटनाओं द्वारा लोगों की संवेदना पाने की कोशिश की है और वे सफल भी रहे ।

भाई कैलाश की पुस्तकों में तो संवेदना की बाढ़ सी दिखाई देती है किन्तु उनके मित्र द्वारा उनके पुत्र मृत्यु के कारण पूछने पर उनके मुख से सिर्फ ठंडे शब्द ही निकलते है । वह कहते हैं – ''ईश्वर की इच्छा ही समझो । और क्या कारण हो सकता है ।''[114] भाई कैलाश का जवाब सुनकर उनके मित्र अनुभव कर रहे है – '' 'संघर्ष के सात वर्ष' कुल तीन सौ पच्चीस पृष्ठ है । हर पृष्ठ पर पंक्तियाँ है, हर पंक्ति में शब्द हैं । और शब्दों के पीछे एक स्त्री रो रही है, एक बच्चा सिसक रहा है, और एक पुरुष गुनगुना रहा है – 'अभी तो मैं जवान हूँ ।' ''[115]

प्रस्तुत कहानी में राकेशजी ने संबंधों की स्नेहहीनता और जूठी संवेदना को व्यक्त करते शब्दों के व्यापार पर प्रकाश डालते हुए दिन–प्रतिदिन खत्म हो रही संवेदना और मूल्यहीनता को यथार्थ रूप में अभिव्यक्ति दी है ।

'क्वार्टर' और 'सेफ्टी पीन' कहानियों में सामान्य संबंधों की तह में छीपे सेक्स की मनोवृत्ति को उभारा है । 'क्वार्टर' कहानी का शंकर पड़ोसी रवि शर्मा की पत्नी मिसेज़ शर्मा जिसे शंकर भाभी कहकर पुकारता है । दोनों (शंकर और मिसेज़ रवि शर्मा) के संबंधों में अपरिभाषित किन्तु सेक्स जनीत आकर्षण का हाथ है । शंकर अपनी पत्नी राधा की तुलना मिसेज़ शर्मा से करता रहता है । राधा अपने पति शंकर और मिसेज़ शर्मा के संबंधों को लेकर परेशान है । वह शंकर से कहती है – ''पिछवाड़े के पास हर वक्त साड़ी के बल ठीक करती रहें और पसीना पोंछने के बहाने बार–बार छातियों के बीच उंगली से.. ।''[116] 'सेफ्टी पीन' कहानी में सेक्स के आधार बनाकर संबंधों में आये खोखलापन और निस्सारता उभरकर सामने आयी है । रमेश खन्ना की पत्नी शानो मौका पाते ही कथानायक से फ्लर्ट करने लगती है । वैवाहिक स्त्री–पुरुषों के आपसी संबधों का जो निरूपण इन कहानियों में हुआ है वह हमारे समाज के विद्रुप रूप की बखियाँ उघेड़ कर रख देता है ।

'मिट्टी के रंग' कहानी में भोग और सेक्स की मानवीय संबंधों पर विजय दिखाई गयी है । मैथिलोन और सदानंद इजिप्त (मिश्र) में स्थित भारतीय सौनिक है । अतः दोनों को अपनी जिन्दगीं का कोई भरोसा नहीं

है । क्योंकि वो जीवन जंग में जूझते है । मैथिलोन की युद्ध में मृत्य होने के पश्चात् उसकी जेब से हीरे की अंगूठियाँ और चिट्ठी मिलती है । जिसे वह अपनी बहन को पहुँचाना चाहता था । चिट्ठी को पढ़कर सदानंद मैथिलोन की यह इच्छा को पूर्ण करने का निश्चय कर लेता है । परंतु मृत्यु की अंतिम घड़ी में वह स्वार्थी बनकर उसे अपनी पत्नी को पहुँचाने की आशा करता है । सदानंद की मृत्यु के पश्चात् यह अंगूठियाँ महानंद को मिलती है । महानंद सदानंद की इच्छा को पूरी करना चाहता है । पर एक चुस्त इजिप्शियन युवती के साथ रात बिताने के बाद वह प्रेम की निशानी के रूप में हीरे की अंगूठियाँ उसे पहना देता है । ''यहाँ सेक्स और स्वार्थ उच्चत्तर जीवन–मूल्यों पर हावी है । कहानी एक विषाद और विरक्ति के साथ–साथ अभाव बोध को जन्म देती है । यह अभाव मानवीयता का अभाव है ।''[117]

'आखिरी सामान' कहानी जीवन यथार्थ को अभिव्यक्त करनेवाली सबसे तीखी कहानी है । जो गिरते जीवन मूल्यों का सूक्ष्म अंकन करती है । मिस्टर भंडारी एक्साइज़ टैक्सेशन विभाग में अफसर है । वह अपनी आकांक्षाओं को पूरी करने के लिए सभी प्रकार के तरीके अपना रहे है । अपनी नौकरी में उच्च पद पाने के लिए वह अपनी रूपसी पत्नी को भी अपने उच्चाधिकारी को सौंपने के लिए तैयार हो जाते है । किन्तु मिसेज़ बेला भंडारी अपना आबाद बचाव करने में सफल रहती है । जिससे रुष्ट होकर उच्चाधिकारी मिस्टर भंडारी को रिश्वतखोरी का जाल बिछाकर पकड़ लेते है । उन्हें जेल से छुड़ाने के प्रयास में मिसेज़ भंडारी घर की एक–एक चीज नीलाम करा रही है । शौक से खरीदी चीजें बिक जाती है । घर से निकलते हुए मिसेज़ भंडारी खुद को भी घर का आखिरी सामान अनुभव करती है । ''कहानी का यह अंत आजादी के बाद तीव्रता से होने वाले नैतिक, मानसिक, आर्थिक ह्रास का द्योतक है । जहाँ सामाजिक दृष्टि और व्यवस्था ही गड़बड़ा गई है उसका मार्मिक चित्रण इस कहानी की उपलब्धि है ।''[118]

व्यक्तिगत स्वार्थ और संभ्रान्त बनने के लोभ में व्यक्ति पत्नी, बेटी और बहन को बाजार में उतारने में संकोच नहीं करता । 'मरुस्थल', 'रोजगार'

'सोया हुआ शहर', 'वासना की छाया में', 'हक हलाल', 'आखिरी सामान', 'गुनाह बेलज्जत' आदि इसी संदर्भ को प्रस्तुत करनेवाली कहानियाँ है ।

आज व्यक्ति ने आर्थिक हित के लिए चारित्रिक मूल्यों का अस्वीकार कर दिया है । क्योंकि समाज की व्यवस्था ही कुछ इस प्रकार की हो गयी है जहाँ चरित्र की बात सोचे तो रोटी और अन्य जीवन से सम्बन्धित चीज़ो से दूर रहना पड़ता है । ऐसे में आज व्यक्ति जीवन जरूरी चीजों के लिए अपने चारित्रिक मूल्यों का अस्वीकार कर रहा है । 'जानवर और जानवर' की अनिता मुखर्जी और मणी नानवती आर्थिक हित के लिए चारित्रिक मूल्यों का न चाहते हुए अस्वीकार करने के लिए मजबूर है । 'रोजगार' कहानी की मिस दारूवाला आर्थिक मजबूरी में मूल्यों का अस्वीकार करती नज़र आती है । अर्थ के अभाव में हो रहे मूल्यों का विघटन पात्रों की विवशता के साथ राकेशजी ने यथार्थ रूप में निरूपित किया है । दूसरी ओर राकेशजी ने 'भूखे' कहानी की नायिका ऐलवीना को अपने चरित्र की रक्षा करते हुए जूझते दिखाया है । ऐलवीना अपने बीमार पति और अपने बच्चे के साथ जीवन निर्वाह कर रही है । पति की मृत्यु के बाद अर्थ के अभाव में वह अपने बच्चे की छोटी–छोटी इच्छा भी पूरी नहीं कर पाती । भूखा बच्चा मचलता हुआ अंड़ा खाने की जीद करता है । किन्तु ऐलवीना पैसे के अभाव में उसे अंड़ा नहीं खिला सकती । होटेल में वह बच्चे को आलु की टीकिया खिलाने के लिए ले आती है, पर बच्चा अंड़ा खाने की जीद पर अड़ जाता है । होटल का मालिक लाला दो उबले अंड़े लेकर उसके पास चला आता है । पर ऐलवीना अपने स्वमान की रक्षा करते हुए उसे वापस कर देती है । इससे लाला अपने आपको अपमानीत समझता है । अंत में जब ऐलवीना ने लाला से जब टीकियाँ के पैसे के विषय में पूछा तो वह दो आने की जगह चार आने माँगता है । इस पर ऐलवीना बिना कुछ कहे चार आने देकर चली जाती है । उसके चले जाने के बाद लाला वहाँ खाना–खा रहे लोगों से कहता – ''बड़ा दिमाग दिखा रही थी, अब सारा दिमाग निकल गया कि नहीं ?''[119]

एक बेबस नारी जो अपने चरित्र को संभालकर रखना चाहती है, किन्तु समाज के लोग उसका फायदा उठाना चाहते है । अगर वह नहीं झुकती तो उसे परेशान करने की हर संभव कोशिश की जाती है । स्त्री के साथ अमानवीय व्यवहार करके उसे हर कोई बरबाद करना चाहता है ।

राकेशजी ने अपनी कहानियों में महानगरीय जीवन की परिवर्तित सामाजिक स्थितियों, दशाओं तथा संबंधों का प्रमाणिक चित्रण किया है । 'बस स्टैन्ड की एक रात', 'पांचवे माले का फ्लैट', 'सोया हुआ शहर', 'एक ठहरा हुआ चाकू', 'पंख युक्त ट्रेजड़ी', 'मवाली', 'नये बादल' आदि कहानियाँ शहेरी जीवन की चमक–दमक के साथ बढ़ रहे सूनेपन, अजनबीपन और मूल्य विघटन की स्थिति को स्पष्ट करती है ।

रिश्ते टूटने के क्रम में केवल पारिवारिक जीवन ही नहीं, बल्कि सामाजिक जीवन में भी अमानवीयता की स्थिति पनपती है । 'बस–स्टैन्ड की एक रात' कहानी में बस स्टैन्ड पर एकत्र हुए लोग शर्दी से बचने के लिए वहाँ जल रही अंगीठी पर अपनी अपनी ताकात और हैसियत के मुताबित कब्जा करते है । थोड़ी देर बाद कई लोगों की ठंड़ी को दूर करनेवाली अंगीठी मैनेजर साहब के कमरे में रख दी जाती है । सामाजिक हैसियत का बढ़ता दबदबा मानवीय संवेदना को समाप्त कर देता है । ''संबंधों और संघर्ष की दुनिया से अलग एक अमानवीय दुनिया भी होती है । जहाँ अपने व्यक्तित्व को लिए बहुत सारे लोग साथ एकत्र दिखाई पड़ते हैं । ऐसे लोगों में न आपसी रिश्ता होता है, न एक दूसरे के लिए या किसी के लिए मानवीय सहानुभूति ही रहती है । दर असल यह एक ऐसी निर्वासित दुनिया होती है, जहाँ आदमियों के समूह तो दिखाई पड़ते है, पर आदमियत का कोई चिन्ह नहीं दिखाई पड़ता है । 'बस–स्टैन्ड़ की एक रात' ऐसे ही संदर्भो की एक कहानी है ।''[120]

'नये बादल' कहानी में भी राकेशजी ने संबंधों की व्यर्थता का बोध कराया है । प्रस्तुत कहानी के सभी पात्र धर्मशाला में इकट्ठा होते है और सुबह होते ही संवादहीन ढ़ंग से एक–दूसरे से कट जाते है । इनमें मानवीय संवेदना का जरा भी भाव नहीं है । ''कहानी में अजनबीयत का बादल शुरू

से अन्त तक छाया हुआ है । आधुनिकरण की प्रक्रिया में यह कहानी नगरों में जी रहे लोगों की संवादहीनता की कहानी बन गयी है । यह भी एक नये तरह का नियतिवाद है जो मनुष्य की क्रियाशीलता को नष्ट करता है ।''[121]

साथ ही धर्मशाला जैसे सार्वजनिक स्थलों पर चलनेवाले अनैतिक भ्रष्टाचार से भरे कार्यो पर भी कहानीकार ने प्रकाश डाला है । धर्मशाला का चौकीदार बिना पैसे लिये किसी को कमरा देने के लिए तैयार नहीं है । ''बिना पैसे लिए किन्हीं तीन लोगों को कमरे दे देना भी संभव नहीं था क्यों कि इससे और लोग शिकायत करते कि पक्षपात कर रहा है । वह चाबियाँ ढूँढ़ने के बहाने कभी इधर से उधर और कभी उपर से नीचे आ–जा रहा था कि किसी तरह एक दो लोगों से अकेले में बातचीत करने का मौका लग जाए तो वह उनसे पैसे लेकर पक्षपात के दोष से बच जाए ।''[122]

शहरी जीवन में संवादहीनता और अजनबीपन का इतना कहर छा गया है कि लोग अपने आस–पास रहनेवाले तथा अपने साथ काम करनेवाले व्यक्ति का नाम जानने की भी परवाह नहीं करते । चारों और आत्मीयता का अभाव ही अभाव नज़र आता है । 'पाँचवे माले का फ्लैट' कहानी का अविनाश मुम्बई जैसे महानगर में सालों से रहता है । लेकिन उसे उसके पूरे नाम से कोई नहीं जानता था । एक शाम जब वह समुद्र के किनारे घूमते हुए अपना नाम सुनता है । किन्तु उसे लगता है – ''गलतफहमी हुई है । पुकारने को राह चलती भीड़ में कोई भी पुकार सकता है, पर यहाँ इस नाम से जानता कौन है ? जो भी जानता है, घिसेपिटे दफ्तरी नाम से ही जानता है । ए. कपूर के ए. को कोई गिनती में नहीं लाता । ए. का मतलब अविनाश है या अशोक, यह जानने की जरूरत किसी को नहीं । कामकाजी ज़िन्दगी के सब–काम कपूर से चल जाते है ।''[123]

महानगरीय जीवन की स्नेहहीनता और अमानवीयता का एक अन्यरूप 'मवाली' कहानी में उभरकर सामने आया है । 'मवाली' कहानी मुम्बई की चौपाटी पर घुमनेवाले आवारा किशोर की है जो परिवार के सदस्यों के अभाव में अकेला जी रहा है । वह नंगे पाँव, नंगे सिर, सिर्फ घुटनों तक की लम्बी

मैली कमीज़ पहने, वहाँ एक सिरे से दूसरे सिरे तक चलता हुआ चुपचाप सबकुछ देखता रहता है । ''उसकी उम्र तेरह या चौदह साल की होगी । रंग सांवला था और नक्श भी खास अच्छा नहीं था । मगर उसकी आँखों में अजीब बेबाकी और आवारगी थीं । आँखें सड़क की तरफ रहने से वह एक रेत में पड़े बड़े से पत्थर से ठोकर खा गया, जिससे उसका घुटना थोड़ा छिल गया । उसने छिले हुए घुटनों पर थोड़ी रेत डाल ली, और थोड़ी रेत अपनी हथेली पर लेकर उसे फूंक से उड़ा दिया ।''[124]

वह चौपाटी पर घूमनेवाले लोगों को देखकर खुश होता है । जो सीपियाँ उसे खूबसूरत लगती है । उसे साफ करके कमीज़ में डाल देता है । वह लोगों का ध्यान अपनी और आकर्षित करने के लिए ''खिप्खिप् खिर्र्र्'' की आवाज निकालता है । जब वह देखता है कि उसकी आवाज की तरफ किसी का ध्यान नहीं गया, तो वह तनकर चलता हुआ आगे चलने लगता है । लोगों का ध्यान उसकी ओर फिर भी नहीं जाता क्योंकि वहाँ घूमनेवाले लोगों की नज़र में चौपाटी पर घूमनेवाले, माल ढोनेवाले, मजदूरी करनेवाले सब लोग चोर ही होते है । कोई ऐसे लड़को को काम भी देते है तो तिरस्कार भरी भाषा में बात करते हुए । एक पारसी दंपति ने उसे अपना बच्चा उठाकर चलने का काम सौंपना चाहा, पर उसने इन्कार कर दिया । तब पारसी ने कहा ''साला बदमाश है । कहता है खाली नहीं है ।''[125] आगे एक और दंपति बैठा था, जिसके साथ आये हुए बच्चे गेंद खेल रहे थे । उन्होंने उसे बरतन धोने के लिए कहा । लड़का प्लेट, चम्मच, बगैरह सामान लेकर उसे साफ करने के लिए समुद्र के किनारे चला जाता है । वह बरतन को रेत में मलकर साफ करता है और अच्छी तरह अपनी कमीज़ से पौंछ देता है । उसके वापस आते ही स्त्री डाँटने लगती है कि इतनी देर कैसे लगी ? फिर प्लेट, चम्मच की गिनती करती है तो उसे लगता है कि शायद एक चम्मच कम है । वह उसे पूछती है कि वह चम्मच कहाँ छिपा आया है ? लड़का सच बताता है कि उसे पता नहीं है, उसने कहीं कुछ नहीं छिपाया है । तब पुरुष उसके बाल पकड़कर उसे मारते हुए तलाशी लेना शुरू कर देता है ।

वह बच्चे की जेब से सारी चीजें निकालकर उसे बहार फेंक देता है । लड़का कहता है कि जेब में सिर्फ उसी की ही चीजें है । पुरुष यह सुनकर दुगने वेग से उसकी जेब खाली करते हुए कहता है – "अभी देखता हूँ तेरी कौन सी अपनी चीजें है । लड़के की सीपियाँ दूर हो रही थी जिसके चहेरे भी उसे याद थे ।... उस लड़के को जमीन पर गिराकर वह उसे जूते से ठोकरे मारने लगा ।"[126] स्त्री भी कहती है इतना सा है मगर पक्का चोर है, ऐसे को तो गोली मार देनी चाहिए । साले एक तो चोरी करते है और ऊपर से मवालीगिरी करते है ।

तीन–चार व्यक्तियों के रोकने पर वह व्यक्ति मारने से हटा । वह लड़का छटपटाता हुआ रो रहा था । और अपनी माँ की निशानी तांबे का तावीज़ वापस पाने के लिए संघर्ष करता है । वह कहता है – "मेरा टिक्का मेरी माँ ने मुझे दिया था । मेरी माँ मर चुकी है । अब मुझे वह टिक्का कहाँ से मिलेगा ? मैं उससे अपना टिक्का लेकर रहूँगा । या यह मेरी जान ले ले, या मैं इसकी जान ले लूंगा ।"[127] वह सबके चले जाने के बाद अंधेरे में तावीज़ ढूँढ़ता रहता है ।

इस कहानी में राकेशजी ने संवेदना के साथ एक लावारिस किशोर का चित्र खिंचा है और स्पष्ट किया है कि अपने बच्चों को प्यार करने वाले लोग गौर और गरीब बच्चे का कितना तिरस्कृत करते है । साथ ही अभिजात्य वर्ग की मानसिकता को भी दर्शाया है कि यह लोग मजदूरी करनेवाले, माल उठानेवाले लोगों को चोर और मवाली ही समझते हैं । उन्हें बिना कसूर पीटने पर भी उन्हें जरा भी अफसोस नहीं होता । गोद में कुत्ते के बच्चे को सहलाने वाले लोग मनुष्य के बच्चे के साथ ऐसा बुरा व्यवहार करते है । " 'मवाली' का नन्हा बालक इस दुनिया में अपनी माँ की अन्तिम निशानी एक ताबीज़ के लिए स्नेह और प्रेम के लिए भटकता है । सौंदर्य के प्रति आकर्षण रखने वाला हँसमुख बालक समाज की निर्दयता का शिकार बनकर वह भी गालियों को बकता है जो समाज उसे देता है । एक सरल हृदय बालक को 'मवाली' बनाने वाला आज का समाज अपने आप में 'मवाली' वत् आचरण से

भरा है । 'मवाली' के बालक मनःस्थिति आधुनिक जीवन में खत्म होते मानवीय आधार पर पुनः सोचने पर मजबूर करता है ।"[128]

'एक पंख युक्त ट्रेजड़ी' कहानी में राकेशजी ने मनुष्य में बढ़ती आत्मकेन्द्रितता और संवेदनहीन स्थिति को व्यंग्यात्मक स्वर दिया है । आज व्यक्ति के लिए भूखमरी, हत्या या आत्महत्या आदि अखबार की खबर मात्र खबर बनकर रह गयी है । जीवन में से निरंतर समाप्त होती जा रही संवेदना के कारण अन्य व्यक्ति के सुख–दुःख या त्रासदी से उसे कोई फर्क ही नहीं पड़ता । यहाँ तक कि आस–पास घटनेवाली कारुणिक घटनाएँ भी उसे संप्रेषित नहीं कर पाती है – संभवतः आज का जीवन ही संप्रेषण के अभाव से ग्रस्त है ।

इस कहानी में कहानीकारने प्रेम–प्रक्रिया द्वारा अपनी बात को रखने का एक नया प्रयोग किया है । प्रोफेसर चोपड़ा भूरे और नीले पंखोवाली एक सुन्दर सी मुर्गी ले आते है । उसके आते ही प्रोफेसर साहब के काले मुर्गे को उससे प्रेम हो जाता है । किन्तु मुर्गी पास के मकान में रहने वाले सफेद मुर्गे पर मर मटती है । इस कारण दोनों मुर्गो के बीच उस सुन्दर मुर्गी के लिए लड़ाई छिड़ जाती है । लगातार दो घंटे तक चलनेवाली लड़ाई के बाद काला मुर्गा विजयी होकर अपनी प्रेयसी मुर्गी के पास लौटता है, तब तक वह मुर्गी प्रोफेसर साहब के महमानों के लिए खाने की टेबल पर पहुँच चुकी होती है । रचनाकार ने इस प्रसंग के यह माध्यम से यह स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि प्रणय का कारुणिक पक्ष सामाजिक स्तर पर आज कुछ प्रभाव नहीं छोड़ पाता । प्रणय का कारुणिक पक्ष भी समाज के लिए हास्यास्पद हो जाता है । "दर असल यह एहसास नहीं घटना मात्र है । इसी तरह आज की ज़िन्दगी में कई घटनाएँ अत्यंत कारुणिक होते हुए भी सहजता से संप्रेषित नहीं हो पाती । महज एक मामूली खबर या साधारण सी सूचना बन जाती हैं । घटना का मामूली सूचना तक रह जाना आज ज़िन्दगी का यथार्थ संत्रास है । कुछ वैसे ही जैसे हत्या, रेप या विवाह की सूचना का अखबार में एक साथ एक तरह से पढ़ना ।"[129]

इस प्रकार राकेशजी ने विविध प्रसंगो और विविध शैलियों में समाज में हो रहे मूल्य विघटन पर प्रकाश डाला है । राकेशजी ने समाज के हरेक कोण को इस दृष्टि से देखने की कोशिश की है और वे इस प्रयास में सफल भी रहे हैं ।

४.७ देश विभाजन और बदलती परिस्थिति में मूल्य विघटन

भारत विभाजन को पृष्ठभूमि बनाकर लिखी गयी कहानियों में राकेशजी ने विभाजन की कटुता एवं क्रूरता की सशक्त अभिव्यक्ति की है । विभाजन के पश्चात् जीवन के नैतिक मूल्य और संबंधों तथा मर्यादाओं के सारे सूत्र खत्म हो रहे थे और आदमी अपने निहायत संकुचित और कमीनी ज़िन्दगी जीने के लिए अभिशप्त था । 'मलबे का मालिक', 'परमात्मा का कुत्ता', 'कटी हुई पतंगे', 'कम्बल', 'क्लेम' आदि जैसी कहानियों में राकेशजी ने मनुष्य की बार्बरता और अमानवीयता को यथार्थ अभिव्यक्ति दी है, जो इतिहास बनकर आज भी सिसकती रह गयी है ।

'मलबे का मालिक' कहानी विभाजन पश्चात् मूल्यों और संबंधों में आये ह्रास को अभिव्यक्त करनेवाली सशक्त कहानी है । कहानी का पात्र गनी अपने बेटे चिरागादीन, पुत्रवधू जुबैदा और उनके बच्चें किश्वर तथा सुलताना को अपने साथ पाकिस्तान ले जाना चाहता था । किन्तु चिरागादीन अपना नया मकान छोड़कर उसके साथ नहीं जाता । गनी ने उसे समझाने का प्रयत्न भी किया किन्तु ''वह जिद पर अड़ा रहा कि नया मकान छोड़कर नहीं आऊँगा वह कहता था – यह अपनी गली है, यहाँ कोई खतरा नहीं है ।''[130] और फिर चिरागादीन को गली के पहलवान रक्खे पहलवान पर भी भरोसा था कि ''रक्खे के रहते मेरा कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता ।''[131] चारों ओर फैले सांप्रदायिक विषक्त वातावरण से प्रेरित होकर अपनी पाशविक वृत्तियों की पुष्टि के लिए तथा मकान की लालच में आकर एक दिन रक्खे ने चिरागादीन का क़त्ल करके उन्हें पाकिस्तान दे दिया । उसके बाद ''जुबैदा, किश्वर और सुलताना के चीखने की आवाजें सुनाई देती रही । रक्खे पहलवान और उनके

साथियों ने उन्हें भी उसी रात पाकिस्तान भेज दिया, मगर दूसरे तबील रास्ते से । उनकी लाशें चिराग के घर में न मिलकर बाद में नहर के पानी में पाई गई ।''[132] आसपास के किसी भी व्यक्ति ने इस संबंध में कुछ नहीं पूछा या कहा । जो लोग इस दृश्य के साक्षी थे उन्होंने दरवाजें बन्द करके अपने को इस घटना के उतरदायित्व से मुक्त कर लिया था ।

रक्खे ने चिरागादीन का मकान और संपति हड़पने के लिए चिरागादीन और उसके परिवार की नृशंस हत्या की । उस मकान को वह अपनी संपति समझने लगा । लेकिन जब किसी अनजान व्यक्ति ने उस मकान को जला दिया तो रक्खा उस मलबे को अपनी संपति समझने लगा । यह मलबा कसकती सिसकती अमानवीयता तथा टूटने सारे मूल्यों की कहानी सुना देता है ।''प्रस्तुत कहानी में मानव मूल्यों के विघटन का चित्र उकेरा गया है । जो रक्खा पहलवान गनी के मुसलमान परिवार का रक्षक समझा जाता था, जिस पर परिवार के मुखिया चिराग को इतना भरोसा था कि वह कहता था – 'रक्खे के रहते मेरा कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता ।' जिस रक्खे पहलवान पर इतना विश्वास था कि वह गली के बाहर के किसी व्यक्ति को भी नुकशान पहुँचाने नहीं देगा, भला इस पहलवान के बारे में वह यह कैसे सोच सकता था कि वह खुद ही हत्या के लिए पहल करेगा । अतः रक्खे पहलवान ने न केवल चिराग को अपितु उसके संपूर्ण परिवार को मौत के घाट उतार कर पाकिस्तान देकर, भक्षक का काम किया ।''[133]

साढ़े सात साल बाद गनी मियाँ के पाकिस्तान से भारत में आगमन के बाद रक्खे पहलवान से उसका आमना–सामना होता है । गनी मियाँ के मन में रक्खे पहलवान के प्रति कोई तिरस्कार का भाव नहीं है, क्योंकि गनी को अपने परिवार की तबाही का मूल कारण पता नहीं है और न वह इस विषय में पता करने की इच्छा व्यक्त करता है । गनी पूरी आत्मीयता के साथ रक्खे से मिलता है । इससे रक्खे को अपनी नृशंस क्रियाओं की निरर्थकता का बड़ी तीव्रता से अहसास होता है । अतः गनी को मिलने बाद और गनी के व्यवहार से रक्खे पहलवान के मन में गहरी पीड़ा और घुटन उमड़ती है ।

कहानी के अंत में यह भावना मानवता की समर्थक है । अतः अंत में मलबा ध्वस्त मानवीय मूल्यों का प्रतीक है तो मलबे के मालिक का प्रायश्चित मानवीय मूल्यों की सर्जना का समर्थक बन गया है ।

विभाजन के बाद बदलते मूल्यों पर प्रकाश डालनेवाली कहानी 'क्लेम' भी राकेशजी की मार्मिक कहानी है । प्रस्तुत कहानी में राकेशजी ने शरणार्थियों को दी जाने वाली सरकारी सहायता 'क्लेम' से संबंधी घटनाओं और इस विषय संबंधी पात्रों की मनोदशा पर प्रकाश डाला है । पाकिस्तान में छूटी जमीन जायदाद के लिए जिन्होंने वास्तविक जायदाद से अधिक क्लेम मांगे उन्होंने सरकार से एक लम्बी चौड़ी रकम मंजूर करा ली । किन्तु जिन्होंने सत्य का आश्रय लिया वे घाटे में रहे । कहानी के नायक साधुसिंह के ताँगे में बैठे तीन व्यक्ति क्लेम के दफ्तर जाते हुए अपनी अपनी कहानी कह रहे हैं । ताँगे में बैठी उस स्त्री का अट्ठारह हज़ार का क्लेम मंजूर हुआ है, जिसमें से उसे छः हज़ार का क्लेम मिल चुका है । इस पर वह सुतंष्ट नहीं है । वह कहती है कि उसके पति ने उसकी बात नहीं मानी । अगर वह अपनी जायदाद थोड़ी ज्यादा लिखवाते तो उसे अधिक रुपया मिल सकता था । ताँगे में बैठे सरदारजी को क्लेम के साठ हज़ार रुपये मिलने वाले है । क्योंकि उसने क्लेम की रकम पहले से ही बढ़ा–चढ़ा के लिखवायी थी । अन्य एक व्यक्ति है जिसकी आंखों की रोशनी कम हो गयी है तथा जो जीता हुआ मुर्दो के समान है । वह केवल एक हज़ार रुपये चाहता है जिससे छोटी–मोटी दुकान ही लगा सके । लेकिन उसे अभी तक एक रुपया भी नहीं मिला है ।

ताँगेवाला साधुसिंह भी पाकिस्तान से जान बचाकर भागा है । यहाँ तक कि उसकी पत्नी और घर भी पीछे छुट गया है । देश विभाजन के बाद वहाँ से आये लोगों की भौतिक संपति की भरपाई तो मिल सकती है । किन्तु क्याँ भावनाओं के कुचले जाने का कोई मूल्य हो सकता है ? साधुसिंह पाकिस्तान में अपनी पत्नी हीरा जिसे वह बहुत प्यार करता था वह आम का पेड़ जिस पर पहली बार फल आने की खुशी में उसने न जाने कितनी कच्ची अंबिया खा डाली थीं । घर की खास तरह की गंध, जो कपड़ो की गांठ से लेकर आंगन

की दीवारों तक हर चीज में समाई रहती थी । क्या पति–पत्नी के बिछड़ने का, परिवार के तथा घर के टूटने का जो साधुसिंह की अमूल्य संपति है क्लेम मांगा जा सकता है ? यहाँ कहानीकार ने स्पष्ट किया है कि साधुसिंह जैसे न जाने कितने ही लोग है, जिन्होंने कुछ भी क्लेम नहीं किया, जो अपने परिवेश से उखड़कर अपने परिवार के अभाव में बेमानी ज़िन्दगी जी रहे है । इस कहानी में मनुष्य की स्वार्थपरता और टूटते मूल्यों को निरूपित किया है साथ ही मनुष्य की भावनाओं के कुचले जाने के दर्द की अभिव्यक्ति भी की गयी है । ''इसमें 'क्लेम' का आधार बनाकर न केवल तत्कालीन स्थिति को उभारा गया है, बल्कि यह भी संकेतित है कि विभाजन के कारण व्यक्ति टूटा है, परिवार विघटित हुआ हैं और जीवन विडंबना बनकर रह गया है । मानव मूल्यों में परिवर्तन हुआ है । परिणामतः मानव–संबंध भी अप्रभावित नहीं रहे हैं ।''[134]

पाकिस्तान में रहनेवाले हिन्दु विभाजन के बाद वहाँ से भागकर भारत आये थे, जिन्हें शरणार्थी शिबिरों में रखा गया था । ऐसे ही विस्थापित परिवार की कहानी है 'कम्बल' । प्रस्तुत कहानी में तत्कालीन परिस्थिति से उत्पन्न विस्थापित परिवार की निर्धनता और अभाव का फायदा उठाकर शोषण कर रहे लोगों की वृत्ति को राकेशजी ने अभिव्यक्ति दी है । साथ ही पारिवारिक संबंधों में आयी स्वार्थपरक वृत्ति और परिस्थिति से उत्पन्न जीवन दृष्टि से टूट रहे जीवन मूल्यों को भी यथार्थ अभिव्यक्ति दी है ।

प्रस्तुत कहानी के परिवार का मुख्य सदस्य रामशरण, उसकी पत्नी गंगादोई, युवा बेटी बनारसी तथा बेटा राजु शरणार्थी शिबिर में निर्धनता में अपना जीवन गुजार रहे हैं । गरीबी के कारण माँ खीजती है, बेटी दुःखी होती है । क्योंकि आने–जाने वाले की नज़र बनारसी के शरीर पर होती है और लड़के बनारसी को देखकर सीटी की आवाज निकालते है, और कभी–कभी भीड़ का फायदा उठाकर कोई उसे छू भी लेता है ।

शरणार्थी परिवार की मदद करने के लिए रात को केम्प में सेवा वृत्ति का ढोंग रचनेवाले लोग कम्बल ओढ़ाने के लिए आते है जो बनारसी को

कम्बल ओढ़ाने के बहाने उसकी जांघो और छातियों पर स्पर्श करने से नहीं चूकते । अभाव में जी रहे मनुष्य को सहायता करनेवाले ऐसे पुण्य बटोरनेवाले लोग इस तरह शोषण करके अपनी मानसिकता स्पष्ट करते है । साथ ही यहाँ मनुष्य में बढ़ रही अमानवीयता को भी राकेशजी ने सांकेतिक रूप में स्पष्ट कर दिया है ।

बनारसी को मिले कम्बल को बनारसी चाह कर भी अपने बिमार बाप को नहीं दे पाती । गंगादोई बनारसी के शरीर पर पड़े कम्बल को देखती है तो वह उसे छीनकर अपने पर ओढ़ लेती है अपने पति के विषय में सोचती तक नहीं । परिणामतः ठंड़ से सुबह तक रामशरण की मृत्यु हो जाती है । अभाव मनुष्य को इतना स्वार्थी बना देता है कि वह सिर्फ अपने विषय में ही सोचने के लिए मजबूर हो जाता है । यहाँ विभाजन से उत्पन्न अर्थ अभाव और इससे उत्पन्न संबंधों की स्वार्थपरकवृत्ति पर राकेशजी ने प्रकाश डाला है । ''राकेशजी की कहानी 'कम्बल' प्रेमचंद की 'कफन' कहानी की याद दिला देती है । आर्थिक विपन्नता से सृष्टि संबंधों में बिलगाव और शारीरिक शोषण का चित्रण इस कहानी में है ।''[135]

'परमात्मा का कुत्ता' स्वतंत्रता के उपरांत पनपने वाले भ्रष्टाचार और सरकारी अफसरों के अमानवीय व्यवहार का यथार्थ चित्रण करनेवाली कहानी है । स्वतंत्र देश का नागरिक सरकारी तंत्र की गैर जिम्मेदारी के कारण वर्षो बाद भी अपने अधिकारों से वंचित रहा है । 'परमात्मा का कुत्ता' कहानी का बूढ़ा सरदार अपने भाई की विधवा, जवान बेटी और बेटे के साथ सपरिवार कमिश्नर के दफ्तर के आगे धरना दे देता हैं । क्योंकि उसे जो सो मरला बंजर गढ़ोंवाली जमीन मिली है उसके बदले उसे खेती योग्य जमीन मिल सके । इस संदर्भ में उसने सरकार को अर्जी दे रखी है । किन्तु सालों से उसकी अर्जी दफ्तर के टेबल पर पड़ी हुई है । उस पर कोई कार्यवाही नहीं हो रही है । दफ्तर के सभी लोग अपनी–अपनी मर्जी और अपने–अपने स्वार्थ को लेकर चल रहे हैं । उन्हें लोगों की परेशानी की कोई फिक्र नहीं है । सरकारी तंत्र की इस स्थिति से उत्पन्न अन्याय से यह सरदार परेशान हो

चुका है । बार–बार दफ्तर में चक्कर काँटे पर उसकी बात किसी ने नहीं सुनी । अतः आर्थिक अभाव से बेबस होकर वह सत्याग्रह करके मरने की नियत से इस बार सपरिवार आया है ।

यह बूढ़ा सरदार जो पाकिस्तान से भारत आया है । उसके पास अपने परिवार को चलाने के लिए कोई अन्य सहारा नहीं है । वह विभाजन की अमानवीयता भोग चुका है । वह इस विषय में कहता है – ‘‘यह मेरे भाई की बेबा है उस भाई की जिसे पाकिस्तान में टांगो से पकड़कर चीर दिया गया था । यह मेरे भाई का लड़का है जो अभी से तपेदिक का मरीज है । और यह मेरे भाई की लड़की जो अब ब्याहने लायक हो गई है । इसकी बड़ी कुंवारी बहन आज भी पाकिस्तान में है ।’’[136]

सरदार का सरकारी तंत्र के प्रति आक्रोश है कि सरकार ने जमीन के नाम पर गड़ढा एलाट कर दिया है । उसने जमीन के लिए फिर से अर्जी दी है । मगर दो साल से अर्जी यहाँ के दो कमरे ही पार नहीं कर पाई । इस कमरे से उस कमरे तक अर्जी पहुँचने में वक्त लगता है । उस मेज से उस मेज तक जाने में भी वक्त लगता है । अतः इस बार वह पूरा बंदोबस्त करके आया है और कहता है कि – ‘‘सरकार वक्त ले रही है । लै, मैं आ गया हूँ आज यहीं पर अपना सारा घर–बार लेकर । ले लो जितना वक्त तुम्हें लेना है ।.... सात साल की भूखमरी के बाद सालों ने जमीन दी है मुझे सो मरले का गड़ढा ! उसमें क्या मैं बाप–दादों की अस्थियाँ गाड़ूँगा ? अर्जी दी थी कि मुझे सौ मरले की जगह पचास मरले दे दो – लेकिन जमीन तो दो ! मगर अर्जी दो साल से वक्त ले रही है ! मैं भूखा मर रहा हूँ, और अर्जी वक्त ले रही है !’’[137]

दफ्तर का कोई भी कर्मचारी उसकी बात सुनने के लिए तैयार नहीं है । दफ्तर में बारह सो छब्बीस बटा सात ही उसकी पहचान बन गयी है जो उसकी अर्जी की फाईल का नम्बर है । अतः वह वहाँ के कर्मचारियों को जली कटी सुनाते हुए कहता है – ‘‘तुम सब भी कुत्ते हो, और मैं भी कुत्ता हूँ । फर्क सिर्फ इतना है कि तुम लोग सरकार के कुत्ते हो – हम लोगों की

हड्डियाँ चूसते है और सरकार की तरफ से भौंकते हो । मैं परमात्मा का कुत्ता हूँ । उसकी दी हुई हवा खाकर जीता हूँ, और उसकी तरफ से भौंकता हूँ । उसका घर इन्साफ का घर है । मैं उसके घर की रखवाली करता हूँ । तुम सब उसके इन्साफ की दौलत के लुटेरे हो ।"[138]

भूख, जीने की विवशता और अन्याय ने उसे ऐसी अमानवीय स्थिति पर पहुँचा दिया है, जहाँ वह सार्वजनिक रूप से गालिया निकालता हुआ नंगा होकर कमिश्नर के सामने पहुँच जाता है और अपना विरोध प्रकट करते हुए कहता है – "परमात्मा के हुकम से आज बेताज बादशाह नंगा होकर कमिश्नर साहब के कमरे में जाएगा । आज वह नंगी पीठ पर साहब के डण्ड़े खाएगा । आज वह पैसे नहीं चढ़ाएगा । किसी की पूजा नहीं करेगा ।"[139] वह कमिश्नर के सामने तन कर खड़ा होकर पूछता है कि – "क्या महात्मा गांधी ने इसलिए इन्हें आजादी दिलाई थी कि ये आजादी के साथ इस तरह संभोग करे ? उसकी मिट्टी खराब करे ? उसके नाम पर कलंक लगाए ? उसे टके–टके की फाइलों में बाँधकर जलील करे ? लोगों के दिलों में उसके लिए नफरत पैदा करे ?"[140] वह इस तरह कमिश्नर के सामने अपना काम पूरा करा लेता है और कमरे के बाहर खड़े लोगों से कहता है – "चूहों की तरह बिटर–बिटर देखने से कुछ नहीं होता । भौंको–भौंको सब भौंको । अपने आप सालों के कान फट जायेंगे ।"[141] आज अपने अधिकारों को इस तरह माँगने से न मिले तो उसे छीनना पड़ता है । वह कहता है – "यारो, बेहयाई हजार बरकत है ।"[142]

प्रस्तुत कहानी में सरकारी तंत्र की उदासीनता, अमानवीयता और क्रूरता का वर्णन है । मनुष्य की दूसरे मनुष्य की परेशानी में लाभ उठाने की प्रवृत्ति पर राकेशजी ने व्यंग्य किया है ।

'कटी हुई पतंगे' कहानी विभाजन की विभिषिका से हुए मूल्य विघटन को एक ओर ही रूप में प्रस्तुत करती है । लाहौर के कृष्णनगर में रहनेवाली राजकरनी जो उस महोले की सबसे तेज लकड़ी मानी जाती थी और जो स्वभाव से लज्जाशील और संकुचित थी । लेकिन विभाजन से उत्पन्न स्थिति

की मार ने उसे बदल दिया है । उसका शरीर स्त्री–पुरुषों की भीड़ में भिंचा जा रहा था, उसे इसकी कोई चिंता नहीं थी । शरीर को दूसरों के स्पर्श से बचाकर रखना है, ऐसा कोई भाव उसके चेहरे पर नहीं । । एक अधेड़ महिला रास्ते पर ही उसे गालियाँ देते हुए सुनायी दी – ‘‘अंधी हो गई है रंड़ी । बहुत मस्ती चढ़ी है, तो जाकर अपने यारों को दिखा ।’’[143] यह सुनकर भी राजकरनी कुछ प्रतिभाव नहीं देती वह चुपचाप सुन लेती है । वह लड़की जिसे कृष्णनगर के उस मोहल्ले में लड़कियाँ ‘‘ ‘बिल्ली’, ‘बाधन’, ‘रीछनी’ कहा करती थी, आज मरे हुए शिकार की तरह न कुछ सुन रही थी, न कुछ समझ रही थी ।’’[144] लेकिन जब वह औरत अधिक उतेजित होकर उसकी माँ को गाली देती है तो राजकरनी सहसा भड़क उठती है किन्तु फिर वह मुरझा जाती है । ‘‘क्षण भर के लिए जो लाली उसके चेरे पर आयी थी, वह अदृश्य हो गयी और उसके स्थान पर वही निर्जीवता फैल गई, जो पाँच साल से उसकी कोमलता को, उसके शरीर की चिकनाहट को, उसके कपड़ो की सफेदी को और उसकी रोटियों के स्वाद को खा रही थी ।’’[145] और गेट के नीचे खड़ी भीड़ की भूखी नज़रे उसे लूटने को तैयार थी ।

रवि जो उसका लाहौर का पड़ोसी था । राजकरनी की इस स्थिति को देखकर दुःखी होता है, वह चाह रहा था कि वह उसे बांह से पकड़कर उन आँखों से परे ले जाए, परंतु उसके सामने वही प्रश्न आया कि – ‘‘किस संबंध से ? और संबंध नहीं तो किस उदे्श्य से ?’’[146] प्रस्तुत कहानी में विभाजन के बाद उपस्थित परिस्थिति में एक युवती की दयनीय स्थिति का संवेदना के साथ वर्णन किया है । और साथ ही उसे लूंटने के लिए हंमेशा तैयार समाज की मनोवृत्ति पर भी प्रकाश डाला है ।

४.८ मानवीयता और नवीन मूल्यों की खोज :

नयी परिस्थिति से जुड़कर व्यक्ति पुरानी मान्यताओं, रूढ़ियों और परंपरा को अस्वीकार कर रहा है । अपनी इच्छा और भावना के साथ स्वतंत्र ढ़ंग से जीने की उसमें उद्दाम इच्छा स्पष्ट परिलक्षित होती है । आज के बदलते

संदर्भ में मनुष्य प्राचीन मान्यताओं के स्थान पर विवेक, विज्ञान और जीवन की बदलती परिस्थितियों का स्वीकार करते हुए वह नैतिकता का चुनाव करता है । नैतिकता के दायरे से भी आगे चलकर वह मानवीयता और नये मूल्यों की खोज करता है । विशेषकर नयी पीढ़ी का युवा वर्ग किसी की परवाह किये बिना ही नये मूल्यों को अपनाता है । राकेशजी की 'चाँदनी और स्याह दाग' और 'जंगला' ऐसी ही कहानियाँ है, जिसमें नवीन मूल्यों की तलाश की गयी है ।

'चाँदनी और स्याह दाग' कहानी में प्राचीन मूल्यों को वैयक्तिक मूल्य के सामने टूटता हुआ दिखाया है । कहानी का नायक समदू अपनी प्रेमिका मेहर से शादी करने की इच्छा रखता है । अतः पैसे जोड़ने के लिए गाँव से शहर मजदूरी करने जाता है । तीन साल की मेहनत के बाद वह इतना लायक हुआ था कि शादी के लिए पाँच सौ रुपया जमा करके घर आ सके । परंतु उसके लौटकर आने तक ज़िन्दगी बदल गयी थी । उसके वापस आने पर मेहर उससे दूर दूर रहने लगी थी और वह कई बार चेष्टा करके भी वह उस दूरी को तो क्यां उसकी खामोशी को भी नहीं तोड़ पाया । गाँववालों से समदू को पता चलता है कि उसके शहर जाने के बाद कबाइलों ने गाँव पर हमला किया था । और यह भी पता चलता है कि इन कबाइलों के द्वारा मेहर की इज्जत लूंटी गयी है । यह सब सुनकर भी समदू मेहर से विवाह करने से पीछे नहीं हटता । ''उसने मन में निर्णय कर लिया था कि कुछ भी हुआ हो, वह मेहर से शादी जरूर करेगा । समय के दाग समय के साथ मिट जाऐंगे । कबइलियों के वहाँ रह जाने से मेहर मासूमियत में क्या अंतर आया ? पीलेपन के बावजूद उसकी आँखों में वही कोमलता थी और उसके नन्हे–नन्हे दाँत उसी तरह चमकते थे । मेहर आज भी गाँव की सबसे हसीन लड़की थी ।''[147] मेहर समदू को यह विश्वास दिलाना चाहती है कि – ''मैं वह मेहर नहीं हूँ जिसे तू पाना चाहता है, इस ज़िन्दगी में । अब मैं वह मेहर हो भी नहीं सकती । मैं एक गला हुआ बीमार ज़िस्म हूँ और कुछ नहीं, जिसमें अब ज़हर ही ज़हर है ।''[१४८] लेकिन समदू मेहर को विश्वास

दिलाते हुए कहता है – ‘‘जो कुछ तेरे साथ हुआ है, उसमें तेरा क्या दोष है ? ज़िन्दगी इस तरह बर्बाद कर देने की चीज नहीं है । कबाइलियों को यहाँ से गए अर्सा हो गया । दिनों के दाग धीरे–धीरे मिट रहे हैं । मेरी नज़रों में तू आज भी इस चांदनी की तरह पाक और हसीन है ।’’[148]

समदू का प्रेम और मानवतापूर्ण विचार मेहर को चांदनी की तरह पवित्र और सुन्दर बना देता है । कबाइलों द्वारा लूंटी गयी प्रेमिका को समदू निःसंकोच स्वीकार कर मानवीय दृष्टिकोण का परिचय देता है । इस कहानी में राकेशीजी ने प्राचीन मूल्यों और विचारधारा के समक्ष वैयक्तिक और बदलते हुए मानवता सभर मूल्यों की विजय दिखलायी है ।

‘जंगला’ पारिवारिक संघर्ष की कहानी होने के साथ ही परंपरा और रूढ़ियों में परंपरागत मूल्यों के स्थान पर नये मूल्यों की खोज करती है । ‘जंगला’ कहानी का नायक बिशन परंपरा और रूढ़ि से ग्रस्त माता–पिता की परवाह किये बिना अपनी ज़िन्दगी के लिए अपने पूर्ण विश्वास के साथ परित्यक्ता राधा का चुनाव करता है । बिशन की दृष्टि से यह निर्णय बिलकुल उचित है । किन्तु परंपरावादी माँ–बाप अपने बेटे बिशन और उसकी पत्नी राधा को घर से निकाल बहार करते है । बिशन को इस बात का कोई दुःख नहीं है अतः वह अपने निर्णय पर अटल रहते हुए माँ–बाप को छोड़कर पत्नी राधा को लेकर अन्यत्र चला जाता है । किन्तु बाद में बेटे बहु के अभाव में माँ की ममता और पिता का वात्सल्य पुत्र के प्रति झुकता है । वह समझौतावादी दृष्टि अपनाते हुए चाहते है कि बिशन और राधा पुनः उनके पास लैट आये । ‘‘कथानायक बिशन के माता–पिता के अंतर्मन में चलनेवाला द्वन्द्व अंततः मन–ही–मन बिशन और राधा के संबंध को मान लेना पुरानी मान्यताओं और रूढ़िग्रस्त नैतिकता की पराजय है । परित्यक्ता राधा के साथ बिशन के संबंध को अस्वीकार और तिरस्कार करने वाली माँ अंत में यह निर्णय कर लेती है कि ‘‘मेरी तरफ से वह किसी को भी घर ले आये । मैं यहाँ न पड़ी रहूँगी, पीछे के केमरे में पड़ी रहूँगी’’ दूसरी और कहानी में टूटते संबंधों के बीच वात्सल्य जैसी शाश्वत् भावना की प्रबल विजय भी दर्शायी गयी

है । नयी–पुरानी मान्यताओं के संघर्ष के बीच वात्सल्य भाव मानवीय संबंधों का साथ देता है ।”[150]

४.६ प्रेम और यौन संबंधों की समस्या :

प्राचीन युग में जीवन के प्रत्येक पहलू का नियंत्रण धर्म के आधीन रहता था । आधुनिक युग बोध के विकास के साथ–साथ यह धार्मिक व्यवस्था बदल चुकी है । फलतः परंपरागत मूल्यों का विघटन हो गया और नये मूल्यों का विकास हुआ । परंरागत मूल्यों का विघटन मानवीय संबंधों की जिन इकाइयों में बड़ी तीव्रता से अनुभव किया गया है, उनमें से एक इकाई है परिवार । परिवार का विघटन इतनी तेजी से हुआ कि टूटन की प्रक्रिया निरंतर बनी रही । पारिवारिक तनावों के परिणाम स्वरूप यौन और प्रेम संबंध भी प्रभावित हुए हें । शारीरिक पवित्रता का भाव बोध समाप्त हो रहा है । अब स्त्री और पुरुष दोनों ही यौन संबंध मुक्ति अथवा यौन तृप्ति के लिए, बिना किसी पाप–बोध के अपनी इच्छा के अनुकूल जीवनी जी रहे हैं ।

राकेशजी ने अपनी कहानियों में मनुष्य के बाहरी यथार्थ के साथ–साथ उसके आंतरिक यथार्थ को भी सशक्त रूप में पकड़ा है । इन कहानियों में अशरीरी प्रेम, मानसिक व्यभिचार, आर्थिक आवश्यकताओं के दबाव में शरीर बेचाने की नियति, प्रेम के नाम पर वासनापूर्ति आदि समस्याओं को यथार्थ रूप में उभारा हैं ।

‘पाँचवे माले का फ्लैट’ कहानी की प्रेमिला और सरला कथानायक अविनाश से ‘फलर्ट’ करती है । सरला परित्यक्ता होते हुए भी अविनाश की ओर आकर्षित है । अविनाश उसकी बहन प्रेमिला से प्रेम करता है । किन्तु फिर भी उसका जुकाव सरला की ओर है । अविनाश सरला को सामान पकड़ाने के बहाने स्पर्श करने की चेष्टा करता है । सरला अविनाश की सहूलियत के लिए अपनी साड़ी का पल्ला ढलका देती है । यहाँ अविनाश और सरला के बीच के व्यवहार में यौन आकर्षण उभर कर आया है ।

'मिस्टर भाटिया' कहानी के मिस्टर भाटिया स्त्री की ओर कामुकता भाव रखता है । उसकी कामुकता मात्र इतने से ही शांत हो जाती है कि वह सिनेमां में दो लड़कियों के बीच बैठकर पीक्चर देख सके । वह जब मेजर की बहन लीना के परिचय में आता है कि तुरंत ही उसके साथ विवाह बंधन में बँधने के लिए तत्पर हो उठता है । किन्तु जब वह यह जानता है कि लीना किसी और से प्रेम करती है तब उसका दिल टूट जाता है । मिस्टर भाटीया बड़ा आदमी बनने की इच्छा रखता है । उसकी इच्छा है कि रीटा हेवर्थ जैसी दस–दस लड़किया उसके आगे पीछे धूमे और एंग्लो–इन्डियन लड़किया उसके दफ्तर में काम करें । मिस्टर भाटीया की दृष्टि स्त्रीयों की ओर अधिक आकर्षित रहती है ।

'फटा हुआ जूता' कहानी का विपन्न नायक राय अपनी शारीरिक भूख मिटाने के लिए बैचेन है । किन्तु अर्थ के अभाव में वह अपने घर की जालीदार खिड़की के पास हिलती हुई नारी की मूर्ति देखकर ही अपनी कामना की पूर्ति कर लेता है । राय को अपनी पहेली के पुरस्कार में तीस रुपये का इनाम मिला है । इन पैसों से राय बहुत कुछ खरीदना चाहता है । वह फटेहाल तीस रुपये लेकर एक रेस्टोरां में घूस जाता है । उसकी मेज पर बैठी लड़की के शरीर की गोलाइयों पर उसकी आँखें घूमाते ही उसके शरीर की भूख उसके अंग–अंग में लहरा उठती है । राय की नज़रे जेनी की गोरी पिंडलियों पर जमी रहती है । यहाँ राय जेनी के प्रति शारीरिक रूप से आकर्षित हुआ दिखाया गया है । किन्तु आर्थिक अभाव के कारण वह अपनी इच्छा को दबा देता है ।

'ज़ख्म' कहानी का नायक विवाहित स्त्रीयों से ही प्रेम करना चाहता है, क्योंकि यहीं उसे अपनी प्रकृति के लिए स्वाभाविक लगती है । 'पाँचवे माले का फ्लैट', 'मिस्टर भाटिया', 'ज़ख्म', 'फटा हुआ जूता' कहानियों में राकेशजी ने अभाव ग्रस्त, तनावग्रस्त व्यक्तियों में प्रणय के नाम पर हो रहे यौन आकर्षण को मुख्य रूप से उभारा है ।

'जानवर और जानवर' की मणि नानवती स्कूल के पादरी की वासना का शिकार बनती है । नयी मेट्रन अनिता मुकर्जी भी अपनी आर्थिक मजबूरी से पादरी की हवस का शिकार होती है ।

'खाली' कहानी की तोषी अपने विवाह पूर्व के प्रेमी की याद को दिल में संजोये है । इन बातों से वह अपने असमंजस्य और अपूर्ण दाम्पत्य जीवन पर मरहम लगाती रहती है । ''सतीश उसका मौसेरा भाई था । फिर भी जहाँ–कहीं उसे अकेली पाकर तीन–चार बार उसने ज़बर्दस्ती उसे चूम लिया था । हरिकृष्ण की शादी में वह जो एक दोस्त आया था उसका, जो शादी की भीड़ में कई जगह उसके साथ सटकर बैठा था । मधु का भाई हरीश, जिसने उसके नाम दो–एक पत्र लिखे थे ।''[151] विवाह पूर्व के प्रणय की यह स्मृतियाँ अब तोषी के जीने का आधार देती है । क्योंकी उसकी 'लगातार' चलनेवाली ज़िन्दगी में इन कुछ यादों के सिवा और कुछ नहीं है । तोषी विवाहित है किन्तु फिर भी अपनी इन स्मृतियों को बार–बार दोहराने में कोई ग्लानि महसूस नहीं करती, बल्कि यहीं स्मृतियाँ उनके चेहरे पर रोनक लाने का काम करती है ।

'दोराहा' कहानी का नायक केसरी श्यामा के परिचय में आता है । कुछ ही दिनों में दोनों एक दूसरे के करीब आ जाते है । वह श्यामा के जीवन में पहला पुरुष नहीं था । श्यामा केसरी से कहती है – ''उसने पहले भी प्यार किया है । वह इसे भूल नहीं मानती । शील उसके यौवन से निकट परिचित पहला युवक था ।''[152] लोग श्यामा के विषय में कहते हैं कि श्यामा चरित्रहीन है, केसरी पर डोरे डाल रही है । उसे फुसला रही है । ''श्यामा जो कभी शील से प्यार का दम भरती थी, शील के शंधाई चले जाने पर वहाँ से उसे, पत्र न लिखने पर, उपहार न भेजने पर, अपना सिक्का दूसरे पर अज़माने चली है । जैसे खिलौनो से खेल रही हो – एक टूट गया, दूसरा सही ।''[153] श्यामा सचमुच केसरी से प्रेम का सिर्फ नाटक ही करती थी । जब शील ने उसे शंधाई बुलावा भेजा तो वह केसरी को बिना मिले और बताये शील के

पास चलने को तैयार हो गयी । केसरी श्यामा से प्रेम के नाम पर अपने आपको छला हुआ महसूस करता है ।

'धुंधला दीप' कहानी का नायक केसरी ही है, यहाँ राकेशजी ने प्रणय–त्रिकोण की रचना की है । केसरी अपने अकेलेपन से उत्पन्न उदासी दूर करने के लिए रेस्टोरन्ट में बेठा है । उसकी जेब में राधा और नरेन्द्र के विवाह का चित्र है । श्यामा से दूर होकर केसरी जब अकेलेपन की स्थिति झेल रहा था, उसी समय राधा से उसकी मुलाकात होती है । राधा नरेन्द्र की मुलाकात उसके भाई के रूप में कराती है । किन्तु वास्तव में राधा नरेन्द्र से प्रेम करती है । केसरी और नरेन्द्र के बीच काफी बार विभिन्न विषयों पर बहस चलती रहती है । केसरी, राधा और नरेन्द्र तीनो का ऐसा त्रिकोण था जिसमें सभी अपने–अपने व्यक्तित्व से एक–दूसरों को प्रभावित करना चाहते थे । राधा केसरी को अपनी इच्छा से चलाना चाहती थी । वह खुद उसके अनुसार बदलना नहीं चाहती । राधा केसरी के अहं पर आक्रमण करती रहती है नरेन्द्र राधा को श्यामा और केसरी के संबंधों की जानकारी देकर उसे उत्तेजित कर देता है । अतः राधा का झुकाव नरेन्द्र की ओर बढ़ने लगता है । अंततः राधा नरेन्द्र के साथ विवाह कर लेती है । केसरी फिर से अकेलेपन के साथ ज़िन्दगी बिताने के लिए मजबूर हो जाता है ।

'लक्ष्यहीन' कहानी में भी नायक वही है – केसरी । वह अपने मित्र सतीश और खन्ना के साथ मंजुला से पहलीबार मिलता है । पहली ही मुलाकात में केसरी मंजुला की ओर आकर्षित हो जाता है । ''पहले वह मंजुला को नहीं जानता था । आज ही दूर से वह दिखाई दी, और आज ही यह लंबी काली छाया हृदय पर आ पड़ी ।''[154] केसरी अपनी सहपाठिनी सरोज के घर रात्रि भोज के लिए जाता है, वहाँ वह फिर से मंजुला से मिलता है । रात्री–भोजन की बातों और चर्चा से मंजुला उससे प्रभावित होती है । वापस घर लौटते समय मंजुला केसरी को घर छोड़ने के लिए अपनी गाड़ी में आमंत्रित करती है । पर अभी तक उसे केसरी का पूरा परिचय नहीं है, यहाँ तक कि वह उसका नाम भी नहीं जानती थी । जब केसरी बनाता है कि वह

चंद्रहास में रहता है, तब मंजुला उसे पूछ बैठती है कि वहाँ कोई केसरी नाम का भी व्यक्ति रहता है ? जिसके विषय में मैंने कुछ सुन रखा है । केसरी के यह पूछने पर कि वह क्याँ सुन चुकी है ? मंजुला लापरवाही से कह देती है कि – ''वह काफी सनकी है, काफी बद दिमाग और व्यवहार–शून्य है ।''[155] मंजुला की इस बात को सुनकर केसरी का प्यार के लिए तड़पता दिल फिर से एक–बार टूट जाता है ।

'दोराहा', 'धुंधला दीप' और 'लक्ष्यहीन' प्रेम खोजते एक ऐसे मनुष्य की कहानी है जिसे प्रेम के बदले निरंतर असफलता ही हाथ लगी है । केसरी जो स्नेह की तलाश में भटकता हुआ श्यामा, राधा और मंजुला से प्रेम की हल्की सी किरण महसूस करता है पर सबकी स्वार्थ परकता के कारण फिर पराजित होकर टूट जाता है । इन कहानियों में राकेशजी ने नारी और पुरुष के प्रणय संबंधों में लगातार आ रहे बदलाव को स्पष्ट करते हुए प्रेम में एक निष्ठता की समस्या पर प्रकाश डाला है । प्रेम में एक निष्ठा और उसके अभाव में बनते प्रणय संबंधों के रिश्ते और रिश्तों के बिखराव को राकेशजी ने 'धुंधला दीप', 'दोराहा' और 'लक्ष्यहीन' कहानियों में रेखांकित किया हैं ।

'सेफ्टी पिन' कहानी में आधुनिक पति–पत्नी के संबंधों पर यथार्थवादी शैली में प्रकाश डाला गया है । कहानी के पति और पत्नी दोनों अन्य किसी से फर्लट करते दिखाई देती हैं । रमेश खन्ना की पत्नी शानो अपने अकेले होने के समय का पता देकर कथानायक को निमंत्रण देते हुए कहती है – ''किसी भी दिन जब तुम्हें फुरसत हो । रमेश नौ बजे चला जाता है । मैं सारा दिन घर पर ही रहती हूँ ।''[156] मिसेज़ सक्सेना चन्दर के साथ फर्लट कर रही है । '' 'सेफ्टी पिन' आधुनिक समाज, परिवार और संबंधों की ऊब की कहानी है । मिसेज़ सक्सेना, सुदर्शन और उनके मित्र सब एक दायरे में है, पर अपने–अपने केन्द्र में है । 'सेफ्टी पिन' मध्यवर्गीय परिवारों के सतही लगाव और भीतरी अलगाव और बिखराव को दर्शाता है । प्रदर्शन और स्वयं की सर्वोपरि साबित करने का निर्ल्लज प्रयास सामाजिक संबंधों को कमजोर बना रहा है । इन सबके बीच कथानायक की परेशानी उघड़ी हुई बटनों को लेकर

है, जिसको उसने सेफ्टी पिन से बन्द कर रखा है, सबकी नज़रों से बचाकर वह अपने उघड़ेपन को सँभाले है । परंतु अंत तक जेब में से बचे हुए सेफ्टी पिनों में से एक जेब से सुराख कर बाहर निकल आती है । सेफ्टी पिन का बाहर निकल आना संकेतात्मक है, मानो समाज के सारे खोखलेपन को, ठहकों और खुशियों की शुष्कता का संकेतात्मक वर्णन है ।"[157]

'सेफ्टी पिन' कहानी में आधुनिक युग के स्त्री–पुरुष में बढ़ते अमर्यादित भोग और उन्मुक्त समाज में बढ़ रहे यौन आकर्षण का यथार्थ चित्रण हुआ है ।

'क्वार्टर' कहानी के पति–पत्नी शंकर और राधा के बीच पड़ोस की मिसेज़ शर्मा है । शंकर का झुकाव मिसेज़ शर्मा की ओर है । मिसेज़ शर्मा की गैरमौजूदगी में शंकर को अपना कमरा और भी खाली महसूस होने लगता है । अपने पति का अपनी पड़ोसन जिसे शंकर 'भाभी' के नाम से संबोधित करता है । यह झुकाव राधा से सहन नहीं होता । वह शंकर को इस विषय में साफ–साफ बता देती है । परिणामतः पति–पत्नी के संबंधों में तनाव देखा जा सकता है । यहाँ लेखक ने जूठे रिश्तों के पीछे छीपे यौन आकर्षण को संकेतात्मक अभिव्यक्ति दी है ।

'ग्लास टैंक' कहानी की नीरू सुभाष के प्रति आकर्षण अनुभव करती है । सुभाष के चले जाने के बाद घर में फैली शांति और उदासी उस की प्यार की माँग को तीव्रता से व्यक्त कर देती है ।

'सीमाएँ' कहानी प्रणय की इच्छा से छटपटाती, संस्कारो में बंधी उमा की स्थिति को वर्णित करती है । उमा अपनी उम्र के अनुसार पुरुषों के प्रति सहज आकर्षण अनुभव करती है । किन्तु उसके भीतर भरा असन्दर होने का भाव उसे कुंठा से भर देता है । अपनी सहेली की शादी में वह अपने को सबसे हीन समझती है, क्योंकि उसे लगता है कि वह किसी भी युवक को अपनी ओर आकर्षित नहीं कर पा रही है । मंदिर में पहली बार एक युवक ने उसे देखा तो वह रोमांचित हो उठती है । पहलीबार हुए किसी पुरुष के

स्पर्श से वह आनंदित हो उठती है । परंतु गले का हार चुराये जाने का भाव उस आकर्षण से उत्पन्न आनंद को छलता है ।

'मिस पाल' कहानी की मिस पाल अपनी कुरूपता और मोटापे के कारण किसी भी पुरुष के आकर्षण का केन्द्र नहीं बन पाती । उसके यौवन की काम तृप्ति अतृप्त ही रह जाती है । अतः वह काम कुण्ठा ग्रस्त होती है और उसके जीवन को अस्त-व्यस्त बनाने में भी उसकी इस प्रणय इच्छा का बहुत बड़ा हाथ है । रणजीत जो उसके प्रति सहानुभूति रखता है उसे आत्मीय लगता है । उसकी नीरस-उदास ज़िन्दगी में उसके आने से चहल-पहल हो जाती है । उसकी पुरुष को पाने की कामना तीव्र हो उठती है । वह बरामदे में सोये रणजीत को बार-बार पुकारती है किन्तु रणजीत के ठण्डे जवाब से खुद को अकेली और उपेक्षित महसूस करती हुई अपने ही भीतर सिमट जाती है ।

'बनिया-बनाम इश्क' कहानी का इन्द्रदेव सिंधी वेश्या पुत्री से अपने प्रेम का दावा करता है । वह उसे पाँचसौ रुपये महीना देकर अपने साथ रखने के लिए तैयार हो जाता है । किन्तु जब वह पाँचसौ के बदले महीना हज़ार रुपये माँगती है तो इन्द्र के सिर से प्रेम का भूत उतर जाता है । वह कहता है – ''हज़ार रुपया तो बहुत ज्यादा है । दो-सौ, चार-सौ, पाँच-सौ तक हो, तो इन्सान खर्च कर सकता है, मगर हज़ार रुपया... ।''[158]

शारीरिक आकर्षण बनामप्रेम को राकेशजी ने 'सीमाएँ', 'ग्लास टैंक', 'मिस पाल', 'बनिया बनाम इश्क' जैसी कहानियों में वर्णित किया है ।

'चांदनी और स्याह के दाग' कहानी में प्रेम का आदर्श रूप वर्णित हुआ है । 'नये बादल' कहानी में संस्कार ग्रस्त वैचारिक मान्यता को एक नये रिश्ते से प्रस्तुत किया है । साथ ही स्त्री-पुरुष संबंधी खोखली विचारधारा की ओर भी लेखक ने प्रकाश डाला है । '' 'नये बादल' स्त्री-पुरुष के संबंधों में बदलाव की कहानी है । परंपराग्रस्त समाज स्त्री और पुरुष के बीच पति-पत्नी, भाई-बहन आदि परंपरा ग्रस्त संबंधों देखने का ही आदी रहा है । एक युवक और एक युवती अविवाहित होकर केवल मित्र के रूप में साथ-साथ

रह सकते है, यह बात समाज के परंपरागत संस्कारों को काफी आहत करती है । यह कहानी नारी–पुरुष के नये संबंध को रेखांकित करती है, दूसरी ओर उससे टकराकर आहत होने वाली हमारी परंपरागत सामाजिक मानसिकता को उद्घाटित करती है ।''[159]

४.१० *नारी पर अत्याचार और शोषण की समस्या :*

'चौगान', 'रोजगार', 'मरुस्थल', 'भूखे', 'कटी हुई पतंगे', 'कम्बल', 'चांदनी और स्याह दाग', 'सुहागिनें', 'हक हलाल', 'जानवर और जानवर', 'बनिया बनाम इश्क', 'गुनाह बेलज्जत' आदि कहानियों में राकेशजी ने नारी को मानसिक, शारीरिक, आर्थिक अत्याचार और शोषण की स्थितियों में जूझती हुई दिखाया हैं । राकेशजी की इन कहानियों के नारी चरित्र पढ़े लिखे और पुरुष के साथ कदम मिलाकर चलने में सक्षम है जैसे मनोरमा, मिसेज़ बेला भंडारी, मीरा, एलवीना, अनिता मुखर्जी, मणी नानवती आदि । तो दूसरी ओर ग्रामीण तथा अनपढ़ नारियाँ भी है जैसे काशी, मेहर, हक–हलाल के पंडित की पत्नी और साली 'बनिया बनाम इश्क' की वेश्या पुत्री, 'गुनाह बेलज्जत' की सुन्दरी, 'चौगान' की सन्तो, 'मरुस्थल' की इन्दु आदि । ये नारियाँ जो शिक्षित और बौद्धिक है तथा कुछ अनपढ़ ग्रामीण है, सभी अत्याचार और शोषण का भोग बनी दिखाई देती हैं ।

नारी पुरुष के लिए केवल वस्तु है यह मनःस्थिति परोक्ष रूप में 'हक हलाल' के बूढ़े पंडित और उस पिता में है, जो दोनों बेटियों को बेच देता है । 'वासना की छाया' कहानी का बूढ़ा जाट अपनी युवा लड़की के बदले अपने लिए औरत खरीदना चाहता है जो उसकी वासना को शांत करे । 'मरुस्थल' की छोटी सी इन्दु की कीमत उसके माँ–बाप दोनों ही लगाना चाहते है । 'आखिरी सामान' का मिस्टर भण्डारी और 'फौलाद का आकाश' का रवि अपना काम निकालने के लिए अपनी पत्नी को आगे कर देते है ।

'हक हलाल' कहानी का अखबार बेचनेवाला पैंतीस–चालीस साल का गालों की झुंरियाँ और निकले हुए घुटनों के कारण मरी–मरी चाल चलने वाला

बूढ़ा पंडित सत्रह–अठ्ठारह वर्ष की युवती को डेढ़ सौ रुपया देकर ब्याह लाता है या कहे खरीद लाता है । पंडित की यातना से त्रस्त वह एक दिन भाग जाती है । पंडित उसके बाप पर पैसे वापस करने का दबाव डाल कर उसकी छोटी बहन को अपने घर ले आता है । कुछ महीने पश्चात् पुलिस जब उसकी पत्नी को खोज निकालने में सफल होती है, तब भी वह अपनी साली को वापस करने के लिए तैयार नहीं होता । बल्कि वह उसको भी अपने पास रख लेना चाहता है । कथानायक द्वारा पूछा गया प्रश्न कि "तो अब तुम्हारी साली अपने बाप के घर लौट जाएगी ।"[160] प्रश्न के उत्तर में पंडित कहता है – "उसको इसका सौ–सवासौ चाहिए सो में ही उसे दे दूँगा ।"[161]

'हक हलाल' कहानी का पंडित यह अच्छी तरह जानता है कि पैसों के बल पर वह अपनी चरमराती हड्डियों के लिए कोमल किशोरियों को पा सकता है । साथ ही वह अपने वासनात्मक अत्याचारों पर मानवीय संवेदना का पर्दा डालकर खुद को अच्छा साबित कर देता है ।

पुरुष की विकृत मनःस्थिति से उत्पन्न नारी शोषण का एक यथार्थ चित्रण 'वासना की छाया' कहानी में हुआ है । प्रस्तुत कहानी की पुष्पा का बाप जो बूढ़ा और शारीरिक रूप से भी कुछ अशक्त है, अपनी बेटी के बदले एक औरत चाहता है । जो उसके लिए चारा बन सके । जो अपना यौवन रांधकर उसे खिला सके । क्योंकि "वह जमींदार है और उसके घर में एक गाय और दो भैंसे है, और उसकी हड्डियों में जितना जोर है, उससे कहीं अधिक उसकी गाँठ में पैसे है ।"[162]

'मरुस्थल' की सात वर्षीया बालिका इन्दु की कहानी है, जो उसके माँ–बाप के लिए बेटी के बदले पैसा कमाने की चीज बन गयी है । इन्दु की माँ नसीम इन्दु को लेकर गोपाल के साथ मुम्बई भाग जाना चाहती है । और अपने बाकी के समय में इन्दु की कमाई पर अपनी ज़िन्दगी शांति से गुजार ने की बात सोचती है । तो दूसरी ओर इन्दु का बाप धनपतराय इन्दु की मार्केट वेल्यू जानते हुए अपने थियेटर के लिए पैसे एकत्र करना चाहता है । माँ–बाप दोनों अपने–अपने स्वार्थ के लिए इन्दु का सौदा करने के लिए तैयार है ।

'चौगान' कहानी की सन्तो को उसकी माँ ने पाँच सौ रुपये में साहबजी (हैरी विल्सन) को बेच दिया है ।

'बनिया बनाम इश्क' का इन्द्रदेव सिंधी वेश्यापुत्री को केवल अपने लिए रखना चाहता है । उसे पाँचसौ रुपये देने के लिए भी तैयार हो जाता है । 'गुनाह बेलज्जत' कहानी का सुन्दरसिंह अपनी हवस मिटाने के लिए सुन्दरी को पैसे देकर अपने घर ले आता है ।

'कटी हुई पतंग' कहानी की राजकरनी लाहौर से शिमला आयी है । देश विभाजन की परिस्थिति ने उसे बदल कर रख दिया है । कथानायक उसे लाहौर से जानता है, वह वहाँ के महोल्ल की सबसे साहसी और संकोचशील लड़की मानी जाती थी । लेकिन जब वह शिमला में मिलती है तब वह परिस्थितियों से उलझी हुई बेवस लड़की के रूप में नज़र आती है । उसकी इस बेबसी का फायदा वहाँ के सभी लोग उठाना चाहते है । उसे कटी पतंग की तरह लूँट लेना चाहते है ।

'लेकिन इस तरह' की आध्यापिका राजकरनी अपनी सहेली के भाई रवि के प्रति आकर्षित होती है । परंतु सामाजिक और आर्थिक मजबूरी उसे भाईजी की वासनापूर्ति का साधन बना देती है । परिणामतः वह आत्महत्या कर लेती है ।

''चांदनी और स्याह दाग' की नायिका मेहर गाँव की सबसे सुन्दर लड़की थी । समदू उसका प्रेमी, विवाह के लिए पैसे कमाने शहर जाता है । परंतु गाँव में वापस आने पर पता चलता है कि कबाइलियों द्वारा मेहर और उन जैसी अनेक लड़कियों की इज्जत लूट ली गयी है । यद्यपि समदू इसमें मेहर को अपराधी न मानकर उसे स्वीकार कर लेता है । फिर भी यहाँ राकेशजी ने स्त्रीयों पर हो रहे अत्याचारों को सशक्त स्वर प्रदान किया है ।

'कम्बल' कहानी में समाज के खोखलेपन को दर्शाते हुए स्त्रीयों की लाचारी में उसका फायदा उठानेवाले लोगों की मनोवृत्ति को यथार्थ रूप में रेखांकित किया हैं । शरणार्थीयों की मदद करने के लिए अपनी दानवीरता का ढोल पीटने वाले दानवीर असहाय और बेबस औरतों का शोषण करने से नहीं

चुकते । 'कम्बल' कहानी में ऐसे ही ठंडी की रात में कम्बल ओढ़ाने वाले लोग कम्बल ओढ़ाने के बहाने शरणार्थी केम्प में फँसी बनारसी जैसी असहाय लड़कियों की छातियों को छूने से नहीं चुकते ।

'भूखे' कहानी की नायिका एलवीना अपने पति सत्यकाम की मृत्यु के बाद सामाजिक–आर्थिक स्थितियों से जूझती है । आर्थिक अभाव और मातृत्व के बोझ से पीड़ित एलवीना को देखकर समाज के पुरुष की वासना की लार टपकती है । एलवीना इन भ्रष्ट व्यक्तियों से भरे समाज से अपने को बचाती हुई निकल जाना चाहती है । किन्तु समाज के लोगों की गिद्ध नज़र उसको नोचने के लिए तत्पर है ।

'रोजगार' कहानी की मिस दारूवाला अपने और अपने बीमार भाई का जीवन निर्वाह करने के लिए अपना शरीर बेचने के लिए मजबूर है । उसकी यह मजबूरी उसे 'टैक्सी' बनाकर रख देती है । 'जानवर और जानवर' कहानी की अनिता मुखर्जी और मणी नानवती अपने और अपने परिवार का निर्वाह करने के लिए अपनी आर्थिक अभाव से उत्पन्न लाचारी के लिए पादरी की वासना का शिकार है । पादरी अनिता मुखर्जी का आर्थिक और शारीरिक दोहरा शोषण करता है ।

'उसकी रोटी', 'सुहागिनें', 'आखिरी–सामान', 'फौलाद का आकाश' जैसी कहानियों में राकेशजी ने पति की प्रशन्नता के लिए कष्ट उठानेवाली स्त्रीयों की मर्मस्पर्शी घटनाओं को निरूपित किया हैं । 'उसकी रोटी' राकेशजी की आंचलिक कहानी है । प्रस्तुत कहानी की नायिका बालो अनपढ़ और निराश्रित औरत है । उसका पति सुच्चासिंह बस का ड्राईवर है । अपने पति के लिए बालो हररोज दो कोस पैदल चलकर भरी दुपहरी में रोटी पहुँचाती है । किन्तु एक दिन बालो की बहन जिंदा गाँव के दादा जंगी के चंगुल से बचकर घर पहुँचती है । इस स्थिति को लेकर बालो दुविधा अनुभव करती है कि वह जिंदा को अकेली छोड़कर सुच्चासिंह को रोटी देने कैसे जाये । बाद में यह जानते हुए भी कि अब तक सुच्चासिंह की बस रास्ते से निकल चुकी होगी । फिर भी वह सुच्चासिंह के लिए रोटी लेकर निकल पड़ती है । वह यह भी

जानती है कि सुच्चासिंह ने दिन की रोटी नकोदर के किसी तंदूर में खा ली होगी । मगर उसे रात के लिए रोटी देना जरूरी था और वह सारी बातें बताना भी जिसकी वजह से उसे देर हो गई थी ।

चार–पाँच घंटे इन्तजार करते–करते बालों के पैरों की एड़िया दुखने लगती है । किन्तु वह खड़े–खड़े बस के आने का इन्तजार करती रहती है । बस के आने पर वह सुच्चासिंह के सामने आरजू–मिन्नत करते हुए यह बताना चाहती है कि किस वजह से उसे आने में देर हो गयी । पर सुच्चासिंह क्रोध के मारे कुछ सुनने को तैयार नहीं होता । ''हट जा'' कहकर वह बालों को वहाँ से हट जाने के लिए कहता है । बालो मिन्नत के लहजे में फिर से कहती है – ''सुच्चास्यां, एक मिनट नीचे उतरकर मेरी बात सुन ले । आज एक खास वजह हो गई थी । मैं दो घंटे से यहाँ खड़ी हूँ, तू मुझ पर नाराज हो, पर रोटी तो रख ले ।''[163] पर सुच्चासिंह उसे दूर हटाकर एक मोटी–सी गाली देकर बस स्टार्ट कर देता है ।

बालो बेबस खड़ी रह जाती है । वह सोचती है कि ''अगर उसने गुस्से होकर घर आना बिलकुल छोड़ दिया तो ?''[164] वह सोच लेती है कि अब वह उसे रोटी देकर ही जायेगी । क्योंकि सुच्चासिंह रात दस बजे फिर वही से बस लेकर निकलेगा । तब तक वह अकेली उसका इन्तजार करती रहती है । सुच्चासिंह के रोटी देकर ही लौटती है । जाते हुए वह कहती है – ''सुच्चास्यां कल गुरु परब है । कल मैं तेरे लिए कहाड़ प्रसाद बनाकर लाऊँगी ।''[165]

यह कहानी एक असहाय स्त्री की कहानी है । जो आर्थिक अभाव में अपने को बेसहारा महसूस करती हुई अपने पति के द्वारा दिये जा रहे कष्ट पर कष्ट झेलती है । किन्तु पुरुष प्रधान समाज में उसे जो मिलता है, वह है अपमान, तिरस्कार, निरादर और अवहेलना । सुच्चासिंह में पुरुष का अहंकार है जो नारी की कोई परवाह नहीं करता । नारी के कर्तव्य परायणता की आड़ में हो रहे अत्याचार का सहज और यथार्थ चित्रण प्रस्तुत कहानी में हुआ है ।

'सुहागिनें' दो नारियों के विभिन्न स्तरों पर यंत्रणा सहने भोगने की प्रामाणिक कहानी है । इस कहानी में एक ओर जहाँ लेखक ने काशी जैसी अनपढ़ और ग्रामीण स्त्री पर नारी धर्म की आड़ में मनमाना अनाचार होते दिखाया है तो दूसरी और मनोरमा जैसी स्वावलंबी नारी का भी स्त्री धर्म और कर्तव्य की आड़ में हो रहे आर्थिक शोषण को भी दिखाया है ।

'सुहागिनें' कहानी की हेड मेस्ट्रेट मनोरमा अपने पति और घर से दूर अकेली रहकर अपने नारी धर्म का पालन करते हुए अपने पति की आर्थिक मदद करती नज़र आती है । किन्तु मनोरमा का पति सुशील अपने माता–पिता और भाई–बहन के दायित्व के प्रति अधिक झुका हुआ है । अतः मनोरमा को उसने सिर्फ पैसे कमाने का जरीया मात्र समझ लिया है । मनोरमा की इच्छा, आकांक्षाओं की वह जरा भी कद्र नहीं करता । वह मनोरमा पर अधिक से अधिक पैसे जोड़ने का दबाव भी बार–बार डालता रहता है । मनोरमा अपने पति की इच्छापूर्ति के लिए अपने शरीर की चिंता किये बिना पैसे जोड़ने में जुट जाती है ।

दूसरी तरफ मनोरमा की नौकरानी काशी का पति अजुध्या काशी का शारीरिक और आर्थिक शोषण करता है । वह काशी से शारीरिक संबंध बनाता है । और पैसे के लिए मार–पीट भी करता है । किन्तु काशी अपने पति का अत्याचार और गाली–गलौज सब–कुछ चुपचाप सहन करती रहती है । यहाँ राकेशजी ने मनोरमा और काशी के माध्यम से पुरुष की निर्ममता और नारी के शोषण की कहानी कही हैं । 'आखिरी सामान' कहानी का मि. भंडारी अपनी रूपसी पत्नी को अपनी नौकरी की तरक्की के लिए अपने उच्चाधिकारी को सौंपने के लिए तैयार हो जाता है । लेकिन मिसेज़ भंडारी अपना आबाद बचाव करने में सफल रहती है । परिणामतः रचे गए रिश्वत लेने के जाल में मि. भंडारी को जेल जाना पड़ता है । मिसेज़ भंडारी अपने पति को छुड़ाने के लिए अपने घर का एक–एक सामान नीलाम करवा देती है । वह खुद भी अपने आपको घर का आखिरी सामान महसूस करती हुई पति को छुड़ाने के लिए अपने नारी धर्म का पालन करती दिखाई देती है ।

'फौलाद का आकाश' कहानी की मीरा का पति रवि उसे अपने सहपाठी और मिनिस्टर राजकृष्ण को मिलने जाने का आग्रह करता है । राजकृष्ण रवि के स्टील प्लांट में चल रही हड़ताल में मालिक और मजदूरों के बीच मध्यस्थी बनकर आया है । रवि के आग्रह से मीरा राजकृष्ण से मिलने जाती है वहाँ वह उसकी वासना का शिकार बनती है । नारी की विवश मनःस्थिति का यह सजीव चित्रण है । 'आदमी और दीवार' की राजी भी पुरुष के रूप में भाई सतो द्वारा प्रताड़ित है । सतो के मित्र हरीश ने जो पत्र सतो के नाम लिखा था जिसमें सभी बाते पारिवारिक थी, परंतु तीन बिन्दु का संकेत सतो के मन में संदेह भर देता है । सामाजिक नैतिकता में पुरुष का व्यभिचार पौरुष है तथा नारी मुक्ति की बात करते हुए भी पराए पुरुष के साथ उसका सामान्य संबंध संदेह से परे नहीं है । नारी की विवश मनःस्थिति का यह सजीव चित्रण है ।

राकेशजी ने अपनी कहानियों में नारी जीवन से जुड़े विविध पहलुओं को चित्रित करते हुए नारी पर हो रहे शोषण और अत्याचार को स्वर दिया है । 'उर्मिल जीवन' की नीरा सामाजिक परंपरा और पारिवारिक विडंबना का भोग बनी दिखाई देती है । वह न चाहते हुए भी अपने अघेड़ जीजा से विवाह संबंध निभाने के लिए बाध्य है ।

राकेशजी ने इन कहानियों में नारी जीवन की पीड़ा को गहरी सहानुभूति के साथ अभिव्यक्ति दी है । कभी स्वार्थ के लिए, कभी नारी धर्म के नाम पर कभी सामाजिक परंपरा के नाम पर उन पर शारीरिक, मानसिक अत्याचार हो रहे है । राकेशजी ने प्रस्तुत समस्याओं को सामाजिक यथार्थ के साथ प्रस्तुत किया है ।

❀ *निष्कर्ष :*

राकेशजी ने अपनी कहानियों में संक्रमणशील समाज में हो रहे मूल्य विघटन की प्रक्रिया से संबंधों में आये बिखराव और संबंधों को ठोस धरातल पर स्थापित करने की कठिनाईयों को विविध पहलुओं से अभिव्यक्ति देने का

प्रयास किया है । मानव मन, आस्था, विश्वास एवं भावनात्मक गहराई के अभाव में कमजोर होता जा रहा है । प्रेम संबंधों में से प्रेम का नामो–निशान ही मिट गया है । दाम्पत्य संबंधों में अहं के विस्फोट हो रहे है । भावनात्मक संबंधों में निरंतर कृत्रिमता आ रही है । महत्त्वकांक्षा और परिवेशगत दबावों में पति–पत्नी के संबंध कैसे बनते–बिगड़ते है, इसका यथार्थ निरूपण राकेशजी की कहानियों में हुआ हैं ।

राकेशजी ने पारिवारिक संबंधों की निरर्थकता की ओर भी संकेत किया है । परिवार टूट रहे है । माँ–बेटा, भाई–बहन, पति–पत्नी, माँ–बेटी आदि जैसे स्नेहपूर्ण संबंध भी अब नाम मात्र के रह गये है । पारिवारिक सभ्यता का आधार ही हिल गया है ।

इस संक्रमणकाल में मूल्यों का विघटन इतनी तेजी से हुआ है कि कोई भी मूल्य महत्त्वपूर्ण नहीं रहा है ।

विवाहपूर्व, विवाहेतर, प्रेम स्वरूप को राकेशजी ने अपनी कहानियों में पुरुष नारियों को समान रूप से उक्त संबंधों से ग्रस्त बताया है । किसी का भी प्यार गहरा नहीं है क्योंकि सभी को क्षणिक सुख की तलाश हे, सभी आत्मकेन्द्रित है । अतः सभी व्यक्ति चाहे वह स्वतंत्र हो या दाम्पत्य संबंधों में बंधा हुआ कुंठित एवं परेशान है ।

अंततः कहा जा सकता है कि राकेशजी ने अपनी कहानियों में जिन विविध दृष्टिकोण से मानवीय संबंधों और समाज की विविध समस्याओं का विश्लेषण किया है, उसने समाज की बखियाँ उघेड़ कर रख दी है । राकेशजी की कहानियाँ सामाजिक यथार्थ के साथ पूर्ण गहराई से जुड़ी हुई है ।

संदर्भ सूची :

१ हिन्दी कहानी पहचान और परख – अमृतराय, सं. इन्द्राथ मदान, पृ. ७६

२ मोहन राकेश और उनका साहित्य – डॉ. कविता शनवरे, पृ. ७२

३ कहानी नयी कहानी – नामवरसिंह – पृ. ६० (लोक भारती प्रकाशन इलाहबाद १९७३)

४ नयी कहानी संदर्भ और प्रकृति – सं. देवीशंकर अवस्थी, पृ. १९१ (राजकमल प्रकाशन प्रा. ली., विभी प्रथम आवृत्ति १९७३)

५ मोहन राकेश व्यक्तित्व और कृतित्व, डॉ. सुष्मा अग्रवाल, पृ. २०७

६ कथा लेखिका मन्नू भंडारी – डॉ. व्रज मोहन मिश्र, पृ. ४१

७ हिन्दी कहानी साहित्य का समाज शास्त्रीय अध्ययन, डॉ. रघुवीर सिन्हा पृ. ६२

८ मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'एक और जिन्दगी, पृ. २७८

९ हिन्दी कहानी का समाज शास्त्रीय अध्ययन, डॉ. रघुवीर सिन्हा पृ. ६२,६३

१० हिन्दी कहानी का समाज शास्त्रीय अध्ययन, डॉ. रघुवीर सिन्हा पृ. ६८

११ मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, एक और ज़िन्दगी, पृ. २७७

१२ मोहन राकेश के साहित्य में पारिवारिक संबंधों के विघटन की स्थितियाँ – डॉ. सुनीता श्रीमाल, पृ. ८०

१३ हिन्दी कहानी का समाज शास्त्रीय अध्ययन, डॉ. रघुवीर सिन्हा, पृ. ६६

१४ मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, एक और ज़िन्दगी, पृ. २७८

१५ मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, एक और ज़िन्दगी, पृ. २७६

१६ मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, एक और ज़िन्दगी, पृ. २८१

१७ मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, एक और ज़िन्दगी, पृ. २८२

१८ मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, एक और ज़िन्दगी, पृ. २७६

१९ मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, एक और ज़िन्दगी, पृ. २७६

२० मोहन राकेश का साहित्य पारिवारिक संबंधों के विघटन की स्थितियाँ – डॉ. सुनीता श्रीमाल, पृ. १०२–१०३

२१ मोहन राकेश की कहानियों में आधुनिक बोध, डॉ. सदनकुमार पाल, पृ.५४

२२ मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'गुंझल', पृ. ३८६
२३ मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'गुंझल', पृ. ३८५
२४ मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'गुंझल', पृ. ३८४
२५ मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'गुंझल', पृ. ३८६
२६ मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'गुंझल', पृ. ३८३
२७ मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'गुंझल', पृ. ३९१
२८ मोहन राकेश का साहित्य संबंधों के विच्छेदन की स्थितियाँ, डॉ. सुनीता श्रीमाल, पृ. १५३
२९ मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'फौलाद का आकाश', पृ. ११६
३० मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'फौलाद का आकाश', पृ. ११४
३१ मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'आखरी सामान', पृ. १७५
३२ मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'आखरी सामान', पृ. १७५
३३ मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'आखरी सामान', पृ. १७६
३४ मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'अपरिचित', पृ. ९२
३५ मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'गुंझल', पृ. ३८५
३६ मोहन राकेश का साहित्य पारिवारिक संबंधों के विघटन की स्थितियाँ – डॉ. सुनीता श्रीमाल, पृ. १५१
३७ मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'गुनाह बेलज्जत', पृ. २५२
३८ मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'गुनाह बेलज्जत', पृ. २५२
३९ मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'अपरिचय', पृ. ९२
४० मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'अपरिचित', पृ. ९१
४१ मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'अपरिचित', पृ. ९२
४२ मोहन राकेश व्यक्तित्व और कृतित्व – डॉ.सुष्मा अग्रवाल, पृ. २३६
४३ मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'सुहागिनें', पृ. १५४
४४ मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'फौलाद का आकाश', पृ. ११७
४५ मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'फौलाद का आकाश', पृ. ११७
४६ मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'एक और ज़िन्दगी', पृ. २८१
४७ मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'चौगान', पृ. १९५
४८ मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'खाली', पृ. ३०

४६ मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'फौलाद का आकाश', पृ. ११४
५० मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'खाली', पृ. २६
५१ मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'सुहागिनें', पृ. १५८
५२ मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'सुहागिनें', पृ. १५८
५३ मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'हक हलाल', पृ. ३६१
५४ मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'हक हलाल', पृ. ३६०
५५ मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'हक हलाल', पृ. ३६६
५६ मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'उर्मिल जीवन', पृ. १८३
५७ मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'उर्मिल जीवन', पृ. १८३
५८ मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'उर्मिल जीवन', पृ. १८१
५६ मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'उर्मिल जीवन', पृ. १८४
६० मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'नन्ही', पृ. ४२६
६१ मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'क्वार्टर', पृ. १३७
६२ मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'क्वार्टर', पृ. १३८
६३ मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'क्वार्टर', पृ. १३८
६४ मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'क्वार्टर', पृ. १२८
६५ मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'ग्लासटैंक', पृ. ५३
६६ मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'ग्लासटैंक', पृ. ५४
६७ मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'सुहागिनें', पृ. १५४
६८ मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'क्वार्टर', पृ. १३६
६६ हिन्दी कहानी का समाज शास्त्रीय अध्ययन – डॉ. रघुवीर सिन्हा, पृ.६६
७० मोहन राकेश की कहानियों में आधुनिक बोध – डॉ.सदन कुमार पाल, पृ. ८८
७१ मोहन राकेश का साहित्य पारिवारिक संबंधों के विघटन की स्थितियाँ – डॉ. सुनीता, पृ. १३१
७२ मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ – 'एक और ज़िन्दगी', पृ. २७८
७३ हिन्दी कहानी का समाजशास्त्रीय अध्ययन – डॉ. रघुवीर सिन्हा, पृ.६२–६३
७४ मोहन राकेश की डायरी, पृ. १६६

७५ हिन्दी कहानी का समाज शास्त्रीय अध्ययन – डॉ. रघुवीर सिन्हा, पृ.१७०
७६ मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'चौगान', पृ. १६५
७७ मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'गुंझल', पृ. ३८४
७८ हिन्दी कहानी का समाज शास्त्रीय दृष्टि – डॉ. रघुवीर सिन्हा, पृ. ६५
७९ स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी : कथ्य और शिल्प डॉ. शिवशंकर पाण्डेय, पृ.१८८
८० मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'आर्द्रा', पृ. ४४
८१ मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'आर्द्रा', पृ. ४७
८२ मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'आर्द्रा', पृ. ४६
८३ मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'आर्द्रा', पृ. ४६
८४ मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'आर्द्रा', पृ. ४६
८५ मोहन राकेश की कहानी में आधुनिक बोध, डॉ. सदन कुमार पाल, पृ.८६
८६ मोहन राकेश की कहानी यात्रा– डॉ. गोरधन सिंह पृ. ४८
८७ मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'क्वार्टर', पृ. १२६
८८ मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'क्वार्टर', पृ. १३६
८९ मोहन राकेश की कहानी यात्रा डॉ. गोरधन सिंह – पृ. ४६
९० मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'अपरिचित', पृ. २१
९१ आधुनिकता ओर मोहन राकेश – डॉ. उर्मिला मिश्र, पृ. ११०
९२ मोहन राकेश व्यक्तित्व और कृतित्व – डॉ. सुष्मा अग्रवाल, पृ. २५६
९३ मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'पहचान', पृ. २७०
९४ मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'पहचान', पृ. २७३
९५ मोहन राकेश की कहानियों में आधुनिक बोध – डॉ. सदन पाल, पृ.७१
९६ मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'एक और ज़िन्दगी', पृ. २७८
९७ मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'एक और ज़िन्दगी', पृ. २७६
९८ मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'एक और ज़िन्दगी', पृ. २६१
९९ मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'मरुस्थल', पृ. ६८
१०० मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'मरुस्थल', पृ. ६८

१०१ मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, ‘मरुस्थल’, पृ. १०१
१०२ मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, ‘मरुस्थल’, पृ. १०१
१०३ मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, ‘खाली’, पृ. २६
१०४ मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, ‘खाली’, पृ. २६
१०५ मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, ‘नन्ही’, पृ. ४२६
१०६ मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, ‘नन्ही’, पृ. ४२५
१०७ मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, ‘वासना की छाया से’, पृ.२२३
१०८ मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, ‘वासना की छाया से’, पृ.२२४
१०९ मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, ‘वासना की छाया से’, पृ.२२३
११० मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, ‘हक हलाल’, पृ.३६५
१११ मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, ‘वासना की छाया से’, पृ.२२३
११२ मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, ‘कटी हुई पतंगे’, पृ.४६०
११३ मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, ‘एक आलोचना’, पृ.३२७
११४ मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, ‘एक आलोचना’, पृ.३३०
११५ मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, ‘एक आलोचना’, पृ.३३०
११६ मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, ‘क्वार्टर’, पृ.१३८
११७ मोहन राकेश की कहानियों में आधुनिक बोध – डॉ. सदन पालन, पृ.१२०
११८ मोहन राकेश और उनका साहित्य – डॉ. कविता शतवरे – पृ. ८६
११९ मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, ‘भूखे’, पृ. १०७
१२० आधुनिकता और मोहन राकेश, ‘उर्मिला मिश्र’, पृ. ६२
१२१ आधुनिकता और मोहन राकेश, ‘उर्मिला मिश्र’, पृ. ६३
१२२ मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, ‘नये बादल’, पृ. ३०५
१२३ मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, ‘पाँचवे माले का फ्लैट’, पृ. २६०
१२४ मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, ‘मवाली’, पृ. ३६२
१२५ मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, ‘मवाली’, पृ. ३६६
१२६ मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, ‘मवाली’, पृ. ३६४
१२७ मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, ‘मवाली’, पृ. ३६३
१२८ मोहन राकेश की कहानी में आधुनिक बोध – डॉ. सदन पाल, पृ. ७१

१२९ आधुनिकता और मोहन राकेश – 'उर्मिला मिश्र', पृ. ६४–६५
१३० मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'मलबे का मालिक', पृ. २२९
१३१ मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'मलबे का मालिक', पृ. २२७
१३२ मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'मलबे का मालिक', पृ. २३०
१३३ हिन्दी साहित्य में भारत विभाजन – डॉ. हेमराज निर्मल, पृ. १५५
१३४ मोहन राकेश व्यक्तित्व और कृतित्व – डॉ. सुष्मा अग्रवाल, पृ. २५७
१३५ मोहन राकेश की कहानीयों में आधुनिक बोध, डॉ. सदन पाल, पृ. ५८
१३६ मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'परमात्मा का कुत्ता', पृ. ३२३
१३७ मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'परमात्मा का कुत्ता', पृ. ३२४
१३८ मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'परमात्मा का कुत्ता', पृ. ३२४
१३९ मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'परमात्मा का कुत्ता', पृ. ३२५
१४० मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'परमात्मा का कुत्ता', पृ. ३२५
१४१ मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'परमात्मा का कुत्ता', पृ. ३२६
१४२ मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'परमात्मा का कुत्ता', पृ. ३२६
१४३ मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'कटी हुई पतंगे', पृ. ४५८
१४४ मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'कटी हुई पतंगे', पृ. ४५९
१४५ मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'कटी हुई पतंगे', पृ. ४५९
१४६ मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'कटी हुई पतंगे', पृ. ४६०
१४७ मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'चाँदनी और स्याह दाग', पृ. ४४६
१४८ मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'चाँदनी और स्याह दाग', पृ. ४४६. ४४७
१४९ मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'चाँदनी और स्याह दाग', पृ. ४४६
१५० मोहन राकेश की कहानी में आधुनिक बोध – डॉ. सदनपाल, पृ. ६१
१५१ मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'खाली', पृ. ३१
१५२ मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'दोराहा', पृ. ७१
१५३ मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'दोराहा', पृ. ७१
१५४ मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'लक्ष्यहीन', पृ. ८७
१५५ मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'लक्ष्यहीन', पृ. ८१
१५६ मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'सेफ्टी पिन', पृ. २०६

१५७ मोहन राकेश की कहानियों में आधुनिक बोध – डॉ. सदन पाल, पृ. ७८

१५८ मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'बनिया बनाम इश्क', पृ. ४५६

१५६ मोहन राकेश का साहित्य पारिवारिक संबंधों के विघटन की स्थिति – डॉ. सुनिता श्रीमाल, पृ. ५१

१६० मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'हक हलाल', पृ. ३६५

१६१ मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'हक हलाल', पृ. ३६५

१६२ मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'वासना की छाया में', पृ. २२३

१६३ मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'उसकी रोटी', पृ. २३६

१६४ मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'उसकी रोटी', पृ. २३८

१६५ मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'उसकी रोटी', पृ. २३६

❀❀❀

पंचम अध्याय
मोहन राकेश की कहानियों में आर्थिक चेतना

५.१ प्रस्तावना

५.२ मानवीय संबंधों पर अर्थ का बढ़ता प्रभाव

५.३ बेरोजगारी से उत्पन्न आर्थिक संकट

५.४ अर्थ के अभाव में उत्पन्न ज़िन्दगी का दोहरापन, संघर्ष, घुटन, तनाव और छटपटाहट

५.५ आर्थिक विवशता में पीसता नारीत्व

५.६ निष्कर्ष

पंचम अध्याय
मोहन राकेश की कहानियों में आर्थिक चेतना

५.१ प्रस्तावना :

सामाजिक, पारिवारिक और वैयक्तिक सभी इकाइयों में अर्थ को अत्याधिक महत्त्व दिया जा रहा है । सभी प्रकार के संबंधों के बनने–बिगड़ने में अर्थ का बहुत बड़ा योगदान है । दूसरे शब्दों में कहे तो आज के समय में अर्थ पर आधारित समाज की संरचना हो रही है । व्यक्ति का मूल्यांकन भी अर्थ के आधार पर होने लगा है । अर्थ ही समाज के व्यवहार रिश्ते आदि सभी कुछ निर्धारित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है । अर्थ और अर्थव्यवस्था आज समाज की वह धुरी बन गयी है, जो समाज और व्यक्ति का नियमन करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कर रही है ।

नयी कहानी ने अधिकांशतः मध्यवर्गीय जीवन को अपना मुख्य वर्णय विषय बनाया है । इस जीवन को उन्होंने करीब से जाना और भोगा है । इसलिए नयी कहानी के बारे में कहा जाता है कि उसका यथार्थ 'भोगा हुआ यथार्थ' है । मध्यमवर्ग के सभी पहलुओं का चित्रण नयी कहानी करती है जैसे उसकी आशा–आकांक्षा, निराशा, बेरोजगारी, परस्पर संबंध, कुण्ठाएँ, पीड़ा, घुटन, अनास्था, संत्रास, उब आदि । लेकिन इन सबके मूल में कहीं–न–कहीं आर्थिक विषमता व अभावग्रस्तता है । उससे प्रभावित संवेदनाओं और उससे उत्पन्न विसंगतियों का चित्रण नयी कहानी में बहुतायत से मिलता है ।

स्वातंत्र्योत्तर युगीन व्यक्ति अर्थतंत्र के शिकंजे में ऐसा जकड़ा हुआ है कि हर समय और हर क्षेत्र में उसे आर्थिक प्रश्न और चिंताएँ मथती रहती है । इस मनःस्थिति के परिणाम स्वरूप ही कलाकार के मानस पर भी अर्थ

की छाया देखी जा सकती है । अतः वह चाहे स्त्री–पुरुष संबंधों का विवेचन कर रहा हो, चाहे महानगरीय जीवन के चित्रण में प्रवृत्त रहा हो, चाहे वैयक्तिक, सामाजिक, राजनैतिक किसी भी विषय पर लेखनी उठा रहा हो, फिर फिर कर उसकी दृष्टि आर्थिक प्रश्नों से आ टकराती है । फलतः स्वातंत्र्योत्तर युगीन कहानी का मुख्य कथ्य चाहे कुछ भी हो परंतु उसे आर्थिक स्थितियाँ, चिंताएँ, किसी–न–किसी स्तर पर अवश्य प्रभावित करती दिखायी देती है ।

अर्थ के बढ़ते प्रभाव ने आदमी को व्यर्थ, असहाय, अजनबी और बेचारा बना दिया है । महादेवी वर्मा के शब्दों में – ‘‘अर्थ सामाजिक प्राणी के जीवन में कितना महत्त्व रखता है यह कहने की आवश्यकता नहीं ।... विवश आर्थिक पराधीनता अज्ञातरूप में व्यक्ति के मानसिक तथा अन्य विकास पर ऐसा प्रभाव डालती रहती है जो सूक्ष्म होने पर भी व्यापक तथा परिणामतः आत्मविश्वास के लिए विष समान है ।’’[1]

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारतीय जीवन की जिस स्थिति का उल्लेख किया गया है उसके फलस्वरूप उपस्थित अर्थ प्रधान विषम परिस्थितियाँ उत्पन्न होना अनिवार्य ही था । यह एक नई संक्रान्ति थी, जिससे सब स्तब्ध थे और दिशाहारा की भाँति भटक रहे थे और उन्हें कोई राह दिखाई नहीं पड़ रही थी । स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हमारे अधिकतर कहानीकार इसी संक्रान्ति की देन हैं और इसमें कोई संदेह नहीं कि इस संक्रान्ति को उन्होंने पूरी यथार्थता से अपनी कहानियो में उजागर किया है ।

राकेशजी ने अपनी कहानियों में स्त्री–पुरुष के टूटते–बनते संबंधों को अधिकांश रूप में रेखांकित किया है । साथ ही उन्होंने यह स्वीकार किया है कि मानवीय संबंधों के बिखराव टूटन और अकेलपन की स्थितियों में सामाजिक नैतिक दबाव की अपेक्षा आर्थिक परिस्थितियों की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है । जिसके कारण संबंध टूटे और बिगड़े हैं । व्यक्ति की भीतरी टूटन का कारण भी आर्थिक चुनौतियाँ हैं ।

राकेशजी की कहानियों के अधिकांश पात्र मध्यमवर्गीय हैं । जो आर्थिक संकटों से जूझते दिखाई देते है । उनकी अदम्य आकांक्षाएँ है जो आर्थिक

अभाव में पूरी नहीं हो पा रही है । फलतः उनके जीवन में विवशता, टूटन, अकेलापन और यंत्रणा का साम्राज्य छाया हुआ है और इन सबके साथ जीना उसकी नियति है । राकेशजी ने आर्थिक समस्याओं से उत्पन्न जीवन विविध पहलुओं को अपनी कहानियों में सशक्त स्वर दिया है । 'रोजगार', 'मंदी', 'ज़ख्म', 'लड़ाई', 'फटा हुआ जूता', 'जानवर और जानवर', 'सुहागिनें', 'मिस्टर भाटिया', 'शिकार', 'उलझते धागे', 'कम्बल', 'उसकी रोटी', 'मिट्टी के रंग' आदि कहानियों में राकेशजी ने अर्थ के बढ़ते प्रभाव और उससे उत्पन्न समस्याओं को उजागर किया हैं ।

५.२ मानवीय संबंधों पर अर्थ का बढ़ता प्रभाव :

राकेशजी ने अपने आसपास के वातावरण को भली प्रकार से देखा–परखा है और महसूस किया है कि मानवीय संबंधों के परिवर्तन की प्रक्रिया को आर्थिक कारणों ने बहुत तीव्र किया है । संबंधों के बदलते हुए मूल्यों के लिए आर्थिक परिवेश बहुत कुछ जिम्मेदार है । आज मानव–मानव के बीच से भावनात्मक जुड़ाव खत्म हो रहा है, अधिकांश संबंध अर्थ के आधार पर ही टिके हुए है । अर्थ के धरातल पर मानवीय संबंधों में आये बदलाव को राकेशजी ने अपनी कहानियों में अभिव्यक्ति दी है । 'हक–हलाल', 'मरुस्थल', 'चौगान', 'गुनाह बेलज्जत', 'सुहागिनें', 'वासना की छाया में', 'रोजगार', 'कम्बल', 'मिट्टी के रंग', 'आखिरी सामान' आदि कहानियाँ इस संदर्भ को स्पष्ट करती हैं ।

अर्थ के बढ़ते प्रभाव के कारण माता–पिता, माता–पुत्र, मात–पुत्री, भाई–बहन, पति–पत्नी आदि जैसे आत्मीय रिश्ते भी मात्र औपचारिक बनकर रह गये हैं । ''हक हलाल' का अखबार बेचनेवाला पंडित पैसे के बल पर अपनी आयु से आधी आयु वाली नवयुवती से विवाह करता है । इस युवान पत्नी को वह उसके बाप से डेढ़ सौ रुपये देकर अपने घर ले आता है । जब वह पत्नी पंडित से परेशान होकर घर छोड़कर भाग जाती है, तब वह उसकी बहन को घर ले आता है । पत्नी के लौट आने पर भी वह उसे

वापस नहीं लौटाता, बल्कि सौ – सवासौ रुपये देकर उसे भी रख लेना चाहता है । दोनों बेटियों के वृद्ध पिता अपनी बेटियों को पंडित को सौंप कर आर्थिक विपन्नता से पार पाना चाहता है । 'हक–हलाल' का पंडित अच्छी तरह समझता है कि पैसों के बल पर वह अपने लिए कोमल किशोरियों को पा सकता है । "अर्थ केन्द्रित समाज–व्यवस्था में पुरुष की मनःस्थिति पंडित के जरिये स्पष्ट है । नारी पुरुष के लिए केवल वस्तु है । यह मनःस्थिति परोक्ष रूप में उस पिता में भी है जो बूढ़े पंडित को अपनी दोनों बेटियाँ बेच देता है ।"[2] 'वासना की छाया' में कहानी का बूढ़ा जाट धन–दौलत के सहारे औरत को खरीदना चाहता है । क्योंकि उसके शरीर में जितना बल है, उससे कहीं ज्यादा उसकी गाँठ में पैसा है । वह अपनी वासना की तृप्ति के लिए एक औरत को पत्नी के रूप में खरीदना चाहता है । किन्तु जब उसे लगता है कि इस तरह से उसकी इच्छा की पूर्ति नहीं हो सकती है, तब वह अपनी बेटी के बदले भी अपने लिए स्त्री खरीदना चाहता है ।

'चौगान' कहानी की सन्तो की माँ सन्तो को हैनरी विल्सन को सौंपने के बदले पाँच सो रुपये लेती है । 'मरुस्थल' कहानी के धनपतराय और नसीम दोनों अपनी बेटी को सिर्फ अर्थोपार्जन का साधन बनकर अपनी–अपनी जेबे भरना चाहते हैं । नसीम इन्दु को लेकर गोपाल के साथ बम्बई जाकर उसकी कमाई खाना चाहती है । धनपतराय को जब यह खबर लगती है कि नसीम इन्दु को गोपाल के साथ बम्बई ले जाने की तैयार कर रही है । तब धनपतराय नसीम को कहता है – "इन्दु को लेकर बम्बई जाने की तैयारियाँ कर रही है ? तेरी खाल न उघेड़ दूँ, हरामज़ादी ! नौ बरस से उसे पाल रहा हूँ, हजारों रुपये उस पर खर्च किए हैं, अब कमाई दिन आए तो उसे तेरे साथ भेज दूँ ? तुझे जाना है, जा, अभी निकल जा । उसे हाथ भी लगाया तो तेरा खून पी लूँगा ।"[3] थियेटर में पैसे लगानेवाले सेठों को इन्दु की मार्केटवैल्यू समझाता है । इस प्रकार इन्दु की माँ नसीम और बाप धनपतराय इन्दु के साथ अर्थ के कारण जुड़े हुए हैं । साथ ही कहानी के सभी पात्रों पर भी अर्थ का प्रभाव हावी होता दिखाई देता है । इस कहानी में आधुनिक

जीवन में अर्थ के कारण निर्मूल होते संबंध का वर्णन है । पिता–पुत्री और पति–पत्नी के संबध में अलगाव की स्थिति के मूल में अर्थ ही है ।

'रोजगार' कहानी में राकेशजी ने अर्थ में उलझते भाई–बहन के संबंध को उजागर किया है । आज स्वार्थ और अर्थ ही सभी संबंधों की धूरी है । 'रोजगार' कहानी की मिस दारूवाला अपने तथा अपने भाई जमशेद का जीवन निर्वाह करने के लिए अपना शरीर बेचती है । जमशेद अपने को बीमार और कमजोर बताकर बहन की कमाई पर आराम से ज़िन्दगी गुजारता है । उसे अपनी बहन के शरीर की कमाई खाने में जरा भी संकोच नहीं होता । जब एक बार बीमारी के कारण मिस दारूवाला को अस्पताल में रहना पड़ता है, जिसके कारण वह कई दिनों तक अपने भाई को मिलने नहीं आ सकती है और न ही पैसे भेज सकती है । तब जमशेद अपनी बहन के विषय में कहता है – ''अपने किसी यार के साथ भाग गई होगी... कुत्तिया ।''[4] और किसी के पूछने पर अपनी बहन के विषय में कहता है – ''उसकी बहन जहन्नुम में चली गई है, और जल्द ही वह भी वहाँ जाने वाला है ।''[5]

'क्वार्टर' कहानी में संयुक्त परिवार की समस्याओं पर प्रकाश डाला है । जहाँ, कमानेवाला व्यक्ति एक हो और खानेवाले व्यक्ति ज्यादा हो वहाँ आर्थिक अभाव में समस्या उत्पन्न होना स्वाभाविक ही है । यह अभाव व्यक्ति को एक–दूसरे से निरंतर दूर करता जाता है । 'क्वार्टर' कहानी का शंकर स्कूल में नौकरी करते हुए अपने परिवार का निर्वाह करता है । ऐसे में वह सभी की आवश्यक्ता पूरी नहीं कर पाता है । परिणाम स्वरूप संबंधों में कटुता आयी देखी जा सकती है । शंकर की बहने परिवार की इस स्थिति के लिए उसकी पत्नी राधा को कसूरवार ठहराती है । अतः राधा और शंकर के बीच भी एक तनाव बना रहता है । परिवार के सभी सदस्य साथ रहते हुए भी आर्थिक विपन्नता के कारण घुटन का अनुभव कर रहे है । इसी कारण वे एक–दूसरे से कड़वा वर्तन भी करते है । सभी अपने–अपने असंतोष और अभाव की पूर्ति करना चाहते है । किन्तु आर्थिक अभाव के कारण अपूर्ति की

स्थिति में एक दूसरे को जली कटी सुनकर संतोष पाना चाहते है । इस कारण घर में हंमेशा कलह का वातावरण बना रहता है ।

'आर्द्रा' कहानी का लाली वकील है इसलिए उसके पास पैसे और प्रतिष्ठा है । वह अपने छोटे भाई बिन्नी की निरंतर अवगणना करता रहता है क्योंकि वह आर्थिक दृष्टि से अभाव ग्रस्त है । इस आर्थिक तफावत के कारण दोनों भाईयों के बीच संबंधों में मात्र औपचारिकता ही रह गयी है । भाई–भाई के बीच जो आत्मीय संबंध होना चाहिए उसका निरंतर अभाव बिन्नी और लाली में है । माँ बचन भाई–भाई के बीच के इस ठंठे औपचारिक व्यवहार को देखकर मन ही मन दुःखी होती रहती है ।

आर्थिक दबाव से सामाजिक पारिवारिक सम्बन्धों में जो बदलाव आया है, इससे पति–पत्नी के संबंधों में भी तनाव और कलह दिखायी देता है । 'गुंझल' कहानी के पति–पत्नी चंदन और कुंतल के बीच तनाव का प्रमुख कारण चंदन की बेकारी से उत्पन्न अर्थ का अभाव है । कुंतल चंदन से बहुत कुछ चाहती है किन्तु चंदन पैसे के अभाव में कुंतल की सभी महत्त्वकांक्षाएँ पूरी नहीं कर सकता । फलतः कुंतल चंदन को छोड़कर अकेले रहने का निर्णय कर लेती है । 'खाली' कहानी की तोषी और जुगल के बीच तनाव का प्रमुख कारण भी अर्थ का अभाव और अर्थ का संघर्ष ही है । जुगल रोटी का बंदोबस्त करने के लिए और जीवन की जरूरी चीजों का जुगाड़ करने के लिए रात–दिन ऑफिस के कागजों के बीच उलझा रहता है और तोषी वही एक–रस दिनचर्या में । परिणामतः दोनों के बीच तनाव और खालीपन निरंतर बना रहता है । पत्नी द्वारा पति को अभावों की ओर ध्यान दिलाने पर उसकी झुंझलाहट स्वाभाविक है । इस अभाव से छुटकारा पाने के लिए पति के प्रयत्नों के बाद उसकी पूर्ति नहीं कर पाता तब पति–पत्नी के बीच तनाव उभरने लगता है और कभी–कभी रिश्ता टूटने की नौबत पर आ जाता है ।

अर्थ के लिए बढ़ते प्रभाव के कारण संबंधों में अमानवीयता आने लगी है । अर्थ के लिए परिवार के एक व्यक्ति की विघटनकारी प्रवृत्ति परिवार के सभी सदस्यों को संकट में लाकर खड़ी कर देती है । 'आखिरी सामान'

कहानी के मि. सुशील भंडारी अपनी नौकरी और पद को बढ़ा कर वेतन बढ़ाने की महत्त्वकांक्षा रखता है । इस लालच में वह अपने संभ्रांत पदाधिकारी की हवस को शांत करने के लिए अपनी रूपसी पत्नी को भी आगे करने से नहीं चुकता । मि. भंडारी अपनी पत्नी की सुन्दरता का फायदा उठाकर अच्छी नौकरी पाकर अधिक से अधिक पैसे कमाना चाहता है । किन्तु पत्नी अपने चरित्र की रक्षा करते हुए साथ नहीं देती । पत्नी के साथ न देने की स्थिति में दोनों के बीच तनाव का वातावरण बना रहता है । पदाधिकारी की जाल में फंस कर मि. भंडारी जेल चले जाते है और उसको छुड़ाने के लिए पत्नी को घर की एक–एक चीज नीलाम करनी पड़ती है । अर्थ के बढ़ते प्रभाव ने मानवीय संबंधों की मधुरता, पवित्रता और रागात्मकता को आपसी मन–मुटाव, तनाव, कुण्ठा और त्रासद स्थितियों में बदल दिया है ।

'फौलाद का आकाश' कहानी का पति रवि अपनी पत्नी मीरा से ज्यादा अपने कैरियर के महत्त्वपूर्ण समझता है । रवि के लिए अपना कैरियर, अपना पद और अपना व्यक्तित्व ही अत्याधिक महत्त्वपूर्ण है । अतः पति–पत्नी के बीच अलगाव बढ़ता जाता है । 'अपरिचित' कहानी के पति–पत्नी दोनों भिन्न–भिन्न रुचियों वाले है । अतः दोनों में बहुत कटुता और नीरसता दिखाई देती है । दीशी की पत्नी अपने पति को अपने गहने बेचकर इंग्लैन्ड के लिए जहाज पर बढ़ाकर आयी है । वह अपने पति का डॉक्टरेट पूरा करवाना चाहती है । दीशी अपनी पत्नी की भावनाओं की जरा भी कद्र नहीं करता । वह सिर्फ स्वार्थ के कारण बाहरी तौर पर ही उससे जुड़ा था ।

'सुहागिनें' कहानी का पति सुशील अपनी पत्नी मनोरमा से अर्थ के आधार पर ही जुड़ा हुआ है । वह मनोरमा पर नौकरी करने और पैसे बचाने का दबाव डालता है । सुशील को अपनी बहन के दहेज के लिए पैसे चाहिए, जिसके लिए वह बार–बार मनोरमा पर दबाव डालता रहता है । वह इसके लिए अपनी पत्नी की स्वाभाविक भावनाओं का भी दमन करता है । क्योंकि वह यह नहीं चाहता कि मनोरमा नौकरी छोड़कर सिर्फ घर ग्रहस्थी के लायक ही बनी रहे । अतः वह परिवार से दूर मनोरमा को नौकरी करने के लिए

बाध्य करता है । अतः पति–पत्नी का रागात्मक जुड़ाव धीरे–धीरे अर्थ के स्तर ही रह जाता है । मनोरमा की नौकरानी काशी का पति जो अपनी पत्नी काशी को छोड़कर दूसरे शहर में अन्य स्त्री के साथ रहता है । किन्तु साल में एकाद बार सेब के बाग के पैसे वसूल करने अवश्य आ जाता है । तब वह काशी के महेनत से जोड़े पैसे भी ले जाता है । ''मनोरमा और काशी दोनों का अपने पति से संबंध अर्थ की बुनियाद पर स्थित है । संबंधों का व्यापारीकरण का बड़ा सूक्ष्म और स्वाभाविक चित्रण इस कहानी के कथानक की एक प्रमुख विशेषता है ।[6]

'सेफ्टी पिन' कहानी की मिसेज़ सिंह अर्थ के आकर्षण के कारण अपने से बड़ी उम्र के जागीरदार मेजर सिंह से शादी करती है । यह मिसेज़ सिंह की तीसरी शादी है । पवित्रता और विश्वास के स्थान पर पति–पत्नी के संबंधों मे बढ़ रहे भौतिक सुख सुविधाओं ने संबंधों की व्याख्या ही बदल कर रख दी है । यह स्थिति 'सेफ्टी पिन' कहानी में स्पष्ट उजागर होती है ।

'उसकी रोटी' कहानी का ड्राइवर सुच्चासिंह सप्ताह में एक ही बार घर आता है । उसे अपनी पत्नी और घर से विशेष लगाव नहीं है । उसकी पत्नी बालो रोज उसके लिए एक मील चलकर रोटी लाती है । उसे आने में अगर दो–चार मिनट देर हो जाती है तो वह किसी–न–किसी बहाने बस को रोक रखता है । बालो के आते ही वह उसे डाटता है – ''वह सरकारी नौकर है, उसके बाप का नौकर नहीं कि उसके इंतजार में बस खड़ी रखा करे । वह चुपचाप उसकी डाट सुन लेती और उसे रोटी दे देती ।''[7]

बालो चाहकर भी कुछ नहीं बोलती क्योंकि सुच्चासिंह उसे घर खर्च के लिए बीस रुपये महीना देता था । जब एक बार बालो को रोटी लाने में देर हो जाती है तो इस बात पर नाराज होकर सुच्चासिंह बिना रोटी लिये चला जाता है । तब वह सोचती है अगर वह नाराज होकर घर नहीं आया तो उसका और उसकी बहन का पेट कैसे भरेगी ? अतः वह सुच्चासिंह की हर बात चुपचाप सुन लेती है – ''वह उसे गालिया दे लेता था, मार–पीट लेता था, फिर भी उससे इतना प्यार तो करता था फिर हर महीने तनख्वाह मिलने

पर उसे बीस रुपये दे जाता था ।''[8] बालो आर्थिक रूप से पति पर निर्भर है अतः वह अपने पति के अत्याचार को सहते हुए भी उसके साथ जुड़े रहने के लिए बाध्य है ।

'गुनाह बेलज्जत' कहानी का सुन्दरसिंह अपनी पत्नी भागवन्ती से भावनात्मक रूप से कभी नहीं जुड़ पाया । यहाँ तक कि दोनों में स्नेहपूर्ण संवाद भी नहीं होता है । लेकिन जब–जब सुन्दरसिंह को भागवन्ती की ओर से आर्थिक मदद की जरूरत महसूस हुई तब–तब वह स्वार्थवश होकर उससे मुलायम स्वर में बात कर लेता था । ''पंद्रह बरस के विवाहित जीवन में जब कभी उसने मुलायम होकर बात की थी, उसके पीछे कोई न कोई मतलब रहा था । एक बार जब उसे होटल खोलना था, उसने इसी तरह बात करके उससे उसके गहने मांगे थे । फिर जब उसे होटल का काम बढ़ाने के लए पैसे की जरूरत थी तो उसने इसी तरह की बातों से उसे अपने बाप से मिला हुआ घर गिरवी रखने के लिए राजी किया था । अब उसके पास अपनी संपति के रूप में चांदी के कुछ बरतनों के सीवा कुछ नहीं था । वे भी उसके दहेज मे आये थे ।''[9] भागवन्ती और सुन्दरसिंह के बीच में पति–पत्नी का संबंध मात्र अर्थ के आधार पर ही है । पति–पत्नी के बीच स्नेहपूर्ण आंतरिक संबंध का यहाँ निरंतर अभाव है । दोनों के बीच का संबंध औपचारिक और ढोये जाने वाला ही रह गया है ।

'बनिया बनाम इश्क' कहानी में प्रेम का मूल्यांकन आर्थिक आधार पर किया गया है । इस कहानी का पात्र इन्द्र एक नाचनेवाली लड़की से प्रेम होने का दावा करता है । वह उसे अपनी रखैल बनाकर रखना चाहता है, किन्तु जब वह लड़की इन्द्र से एक महीने के खर्च के लिए हज़ार रुपये मांगती है तब इन्द्र के प्रेम का सारा का सारा नशा उतर जाता है । वह बड़े गर्व से उस लड़की से प्रेम का दावा करता था लेकिन जब एक हज़ार रुपये की बात सामने आती है तब खूबसूरत और प्रेम करने लायक लड़की को देखने का उसका पूरा नज़रिया ही बदल जाता है । वह कहता है रुपया बड़ी चीज है – ''दो सौ, चार सौ, पांच सौ तक हो, तो इन्सान खर्च कर सकता है, मगर

हज़ार रुपया... मानता हूँ खूबसूरत है मगर इतनी खूबसूरत नहीं है कि... ।"[10] प्रेम या इश्क के बीच भी अर्थ का महत्त्व ही अधिक होता जा रहा है । प्रस्तुत कहानी में राकेशजी ने व्यंग्यात्मक रूप से प्रेम से ज्यादा रुपये को महत्त्व देने वाले लोगों की मनोवृत्ति पर प्रकाश डाला है ।

'मिट्टी के रंग' कहानी मानवीय संबंधों के बीच अर्थ के अभाव और प्रभाव को एक अलग ही रूप में प्रस्तुत करती है । मिश्र स्थिति भारतीय सेना के दो सैनिक सदानंद और मैथिलोन अपने तथा अपने परिवार की आर्थिक जरूरतों को पूरा करने के लिए एक अनजान देश में अनजाने लोगों के लिए लड़ रहे है । सदानंद भावुक व्यक्ति है वह लड़ना नहीं चाहता । सदानंद की बात सुनकर मैथिलोन कहता है – "जब तक जिन्दा हो, तब तक तुम लड़ने के लिए मजबूर हो । तुम्हारे चाहने न चाहने की परवाह यहाँ किसी को नहीं । तुम्हारी जान दूसरों ने खरीद रखी है । उनके काम आओ, नहीं तो नष्ट हो जाओ ।"[11] और "हम दूसरों की लड़ाई लड़ रहे हैं दोस्त । इस लड़ाई में सिपाही की एक ही चीज अपनी है, और वह है वेतन के रुपये । उन्हें वह जिस तरह चाहें खर्च कर सकता है ।"[12]

मैथिलोन अपने वेतन में से पैसे बचाकर अपनी बहन के लिए हीरे की अंगूठीयाँ बनवाता है । कुछ दिनों बाद मैथिलोन युद्ध में लड़ते–लड़ते घायल हो जाता है । उसकी वर्दी के सीने पर लहू का बड़ा सा दाग बन रहा था, जो धीरे–धीरे और बड़ा होता जा रहा था । मैथिलोन को अपनी मृत्य साफ दिखाई देने लगती है । वह सदानंद को अपनी जेब की तरफ इशारा करता है जिसमें अंगूठीयाँ रखी हुई थी । मैथिलोन की जेब से अंगूठियों की डिबिया और एक कागज मिला । ये दोनों चीजें उसने अपने पास रख लीं । मैथिलोन के प्राण निकल गये । सदानंद वहाँ से भाग आया और बच गया । उसने मैथिलोन की डिबिया और पत्र निकाला । वह पत्र जिस पर छः महीने पहले की तारीख थी, इस पत्र में मैथिलोन ने अपनी बहन को लिखा था – "मैं नहीं जानता कि कब किस घड़ी मेरी मौत हो जाएगी । मुझे मौत भी आशंका हर समय है, यद्यपि मैं नहीं जानता कि मेरी मौत किस उदे्श्य से होगी । मैं

जिनसे लड़ता हूँ, वे क्यों मेरे दुश्मन है, मैं नहीं जानता । मैं लड़ता हूँ क्यों कि मुझे वेतन मिलता है ।... किसी की गोली एक दिन मेरी जान ले लेगी । फिर मैं तुमसे नहीं मिल सकूँगा । इसलिए दो अंगूठियाँ तुम्हारे लिए ला रखी है । ये भी वेतन के पैसों की है । मेरा कोई मित्र इन्हें तुम तक पहुँचा देगा । इन्हें मेरी ज़िन्दगी और मौत की याद के रूप में अपने पास रख छोड़ना, विदा ।''[13]

पत्र पढ़कर सदानंद चाहता है कि ''काश कि वह आज हिन्दुस्तान जा सके, और ये अंगूठियाँ मैथिलोन की बहन के हाथों में दे सके ।''[14] वह अपनी प्रेमिका माधवी के लिए भी ऐसी ही अंगूठियाँ बनवाना चाहता है । सदानंद मौथिलोन की इच्छा को पूरा करना चाहता था किन्तु रेत का तूफान उसकी सोच बदल देता है । उसे लगता है कि अब वह वापस अपनी छावनी में नहीं पहुँच पायेगा । अतः वह यही अंगूठियाँ अपनी प्रेमिका को देना चाहता है । वह माधवी के नाम पत्र लिखता है और यह अंगूठिया उसको पहुँचाना चाहता है । कुछ दिनों बाद सदानंद रेत में मरा हुआ पाया गया । जिस सिपाही ने उस लाश को पहले देखा था वह महानंद था । उसे सदानंद की लाश के पास से एक डिबिया और एक पेंसिल से लिखा कागज मिला था । कागज की लिखावट पढ़कर उसकी आँखों में आँसू आ गए थे, उसने अपने आप यह जिम्मेदारी ली कि वह उस डिबिया को सदानंद के घर भेज देगा । पर दो दिनों बाद जब उसे छुट्टी मिली तो वह अपने साथी के साथ संध्या के समय शहर में घूमने निकलता है । उस समय उसके पास महीना भर का पूरा वेतन था । अतः एक चुस्त इजिप्शियन युवती से उसे रात भर के लिए प्रेम मिल गया । जब वह प्रेम का मूल्य चुकाकर विदा होने लगा, तो युवती ने उससे कोई ऐसी निशानी माँगी जिससे वह उसे हंमेशा के लिए याद रख सके । महानंद ने जेब से दोनों हीरे की अंगूठियाँ निकालकर उसके हाथ में पहना दी ।

द्वितीय महायुद्ध के अर्थ संकट ने मानव–मूल्यों और संबंधों को बूरी तरह झकझोर कर रख दिया था । अर्थ के लिए व्यक्ति जान लेने और देने

के लिए तत्पर था । अर्थ का प्रभाव व्यक्ति को अपने दायित्व से चाहकर भी दूर रखता है । अर्थ का अभाव व्यक्ति की छोटी–छोटी इच्छाएँ भी पूरी नहीं कर पाता । सदानंद अपनी प्रेमिका माधवी को हलका छल्ला भेंट देना चाहता था, किन्तु जब उन्हें लगा कि अब उसके पास न तो पैसे है और न वक्त तो वह मैथिलोन की बहन की अंगूठियाँ माधवी को भेजने के लिए तैयार हो जाता है । और इसी अंगूठियों के महानंद रात भर के प्रेम के लिए बिना हिचक एक युवती को पहना देता है । इस प्रकार "यहाँ सेक्स और स्वार्थ उच्चतर जीवन मूल्य पर हावी है । कहानी एक विषाद और विरक्ति के साथ–साथ अभाव–बोध को जन्म देती है । यह अभाव मानवीयता का अभाव है ।"[15]

इन कहानियों में राकेशजी ने मानवीय संबंधों के बीच बढ़ते अर्थ के प्रभाव को विविध रिश्तों के माध्यम से इस प्रकार अभिव्यक्ति दी है कि रिश्तों के खोखलेपन की बखियाँ उघेड़ कर सामने आ गयी है । इन कहानियों में विविध पहलुओं से किया गया संबंधों पर हाबी होता आर्थिक प्रभाव इतना सहज, स्वाभाविक और यथार्थ है जिसे हम अपने आस–पास के वातावरण में अनुभव कर सकते है । यहीं राकेशजी की युगचेता दृष्टि की विशेषता हैं ।

५.३ बेरोजगारी से उत्पन्न आर्थिक संकट :

बेरोजगारी की समस्या दिन–प्रतिदिन बढ़ती जा रही है । समाज का एक बहुत बड़ा क्षेत्र आज बेरोजगारी का शिकार है । नौकरी न मिलने के कारण, उचित नौकरी न पाने के कारण, व्यवसाय डूब जाने के कारण, अशिक्षित होने के कारण, बड़े आदमी बनने के चक्कर में शोर्ट कट अपनाने की मनोवृत्ति, या फिर किन्हीं प्राकृतिक या शारीरिक संकोटों के कारण किसी भी आयु में यह स्थिति झेल रहे लोग हमे चारों ओर दिखाई देते हैं । बेरोजगारी का क्षेत्र निरंतर व्यापक हो रहा है, जिसने न केवल समाज व्यवस्था को प्रभावित किया है, बल्कि शासनतंत्र के लिए भी एक चुनौती खड़ी कर दी है । बेरोजगारी का संबंध व्यक्ति, परिवार, समाज, शिक्षा, सांस्कृतिक जीवन

आदि से भी होता है । परिणामतः बेरोजगारी ने व्यक्ति के मन में गहरी निराशा और आक्रोश का भाव उत्पन्न कर दिया है ।

राकेशजी ने अपनी कहानियों में मध्यवर्गीय विसंगतियों के कटु यथार्थ का चित्रण सशक्त ढंग से किया है । बदलती हुई परिस्थितियों में आर्थिक विपन्नता के कारण व्यक्ति तनावपूर्ण स्थिति में जी रहा है और अभावों एवं घुटन–भरे वातावरण में साँस ले रहा है, इस यंत्रणा की सच्ची तस्वीर कहानीकार ने खींची है ।

मनुष्य–जीवन किसी–न–किसी अभाव से पीड़ित होता है । केवल मध्यवर्ग ही अभावपूर्ण जीवन बिताता है, ऐसी बात नहीं है । फिर भी औद्योगिकीकरण के परिणाम स्वरूप आर्थिक अभाव का शिकार मध्यवर्ग ही ज्यादा रहा है । समाज में एक स्तर को बनाएँ रखने का प्रयास करते हुए जिस तनाव एवं यातनापूर्ण स्थितियों से यह गुजरता है, उनका कहीं अन्त नहीं है । अन्दर से बिखरे किन्तु मुखौटा पहने हुए जीने को विवश मध्यवर्ग हंमेशा ज़िन्दगी की लड़ाई पूरी तरह न लड़ पाने की छटपटाहट लिए हुए अपनी ही विसंगतियों से ग्रस्त है । उसकी जरूरतें और आशा–आकांक्षाएँ अन्त में झल्लाहटों में परिणत हो जाती हैं । आय के सीमित साधन के बल पर जीवन–स्तर को ऊँचा उठाने की आकांक्षा यथार्थ के शिलाखण्ड़ से टकराकर चूर–चूर हो जाती है । नाकाम कोशिशें और कसमसाती हुई साधें उसके जीवन में तनाव उत्पन्न कर देती है । व्यक्ति घूम–फिर कर उसी बिंदु पर आ रूकता है, जहाँ से उसका जीवन आरंभ हुआ था । अपनी ही असंगतियों के बीच घिरे रहकर धुलते रहना ही उसकी नियति बन गयी है ।

‘ज़ख्म’ कहानी राकेशजी की चर्चित कहानियों में अपना स्थान रखती है । प्रस्तुत कहानी में एक ऐसे युवक की कथा है, जो बेरोजगारी की मार सहते हुए भी अपने अहं को बनाये रखने का प्रयास करता है । कभी वह नौकरी करता है तो कभी बेकारी और अर्थ से उत्पन्न संकट को झेलता है । वह अनिश्चितता, निराशा और असुरक्षा की स्थिति से गुजर रहा है । अवसाद की स्थिति को वह अकेला झेल रहा है । वह इस स्थिति को छुपाने के लिए

अधिक शराब पीता है । अपने अहं के कारण वह किसी के सामने झुकता नहीं किन्तु अंदर–ही–अंदर धीरे–धीरे टूटता जाता है । इस टूटन की खनक भी कोई सुने यह इसे गवारा नहीं है । कथानायक की यह बात सुनकर कि "तुमने कल नहीं बताया कि तुम्हारी नौकरी छूट गयी है ।"[16] वह उन पर बरस पड़ता है और कहता है – "तुम्हारा खयाल है मैं नौकरी छुटने की वजह से यह बात कह रहा हूँ ? तुम समझते हो कि इसी वजह से कल मैं तुमसे चिपका रहना चाहता था ?..पर खातिर जमा रखो, नौकरी न रहने पर भी मैं दस आदमियों को खिला सकता हूँ.. खाता मैं कभी किसी से नहीं । और यह भी विश्वास रखों कि मुझे अभी बीस साल और जीना है... कम–से–कम बीस साल ।"[17]

नौकरी छूट जाने पर उसका अहं अधिक तीव्र हो जाता है । वह स्वयं अपने आपको अशक्त मानते हुए भी दूसरों के सामने स्वीकार करना नहीं चाहता । उसकी नौकरी जब तक लगी रहती है और पीने को शराब मिल जाती है । तब वह कहता है – "नहीं मैं तुम लोगों की तरह नहीं जी सकता... मैं अपने वक्त का हिस्सा नहीं, उसका निगहबान हूँ । मैं जीता नहीं, देखता हूँ.. क्योंकि जीना अपने में बहुत घटिया चीज है । जीने के नाम पर तो पड़े–पौधे भी जीते है... पशु पक्षी भी जीते हैं ।"[18] पर जब कभी लम्बी बेकारी के दौर से गुजरना पड़ता और कई–कई दिन शराब छूने को न मिलती, तो वह भूलभूलैया में खोए आदमी की तरह कहता – "मुझे समझ आ रहा है कि मैं बिलकुल कट गया हूँ, हर चीज से बहुत दूर हो गया हूँ ।"[19] और फिर नई नौकरी मिल जाने पर वह कहता है – "मुझे खुशी है, मैं अपनी दुनिया में लौट आया हूँ । इस बार बेकारी में तो मुझे लग रहा था कि मैं तुमसे भी कट गया हूँ.. अपने में बिलकुल अकेला पड़ गया हूँ । मुझे यह भी अहसास हो रहा था कि तुम सब लोगों ने मुझे बीता हुआ मान लिया है... बीता हुआ और गुमशुदा ।"[20]

प्रस्तुत कहानी में राकेशजी ने रोजगारी और बेरोजगारी के बीच फँसे युवक की मानसिकता का यथार्थ चित्रण किया है । वह बेरोजगारी की मार

निरंतर सहने के लिए मजबूर है । अतः वह एक ऐसी लड़की से शादी करना चाहता हैं जो अपना भार खुद संभाल सकती हो । ''ताकि आगे कमी बेकारी आए, तो मुझे दुहरी तकलीफ में से न गुजरना पड़े ।''[21]

यहाँ बेकारी से उत्पन्न संकट ने व्यक्ति को जड़, निष्क्रिय, अर्थहीन और अकेला बना दिया है । वह परिवेश से कटकर भी जुड़े रहने के प्रयास में छटपटाता है । बेरोजगारी से उत्पन्न स्थिति ने व्यक्ति को अहंवादी बना दिया है । लेकिन उसका यह अहं उसकी विवशता को छिपाने के लिए है । इस मानसिकता को राकेशजी ने 'ज़खम' कहानी के पात्र द्वारा रेखांकित करने का प्रयास किया है ।

बेरोजगार व्यक्ति जब रोजगार की तलाश करते–करते थक जाता है तब वह अपनी बुद्धि के बल पर बड़ा आदमी बन जाने की महत्त्वकांक्षा रखते हुए यह सपना संजोता रहता है, कि उसका नाम उन लोगों के साथ लिया जाय जो हर दृष्टि से शहर की प्रसिद्ध व्यक्ति हो । महानगर मुम्बई में वहाँ की यंत्रणाओं को झेलते, समस्याओं से टकराते बहुत कम समय में बड़ा आदमी बनने की आकांक्षा वाले युवक की मानसिकता को राकेशजी ने 'मिस्टर भाटिया' कहानी में सशक्त रूप में अभिव्यक्त किया है ।

मुम्बई में रहनेवाले मिस्टर भाटिया के पास अपनी कही जाने वाली सिर्फ दो चीजे हैं । एक उसका शरीर और दूसरा किराये का फ्लैट । वह था तो एक ही कमरे का किन्तु भाटिया उसके लिए फ्लैट से कम शब्द का प्रयोग नहीं करता था । वह अपनी आर्थिक तंगी को दूर करने के लिए अपने फ्लैट में किसी व्यक्ति को 'पेइंग गेस्ट' बनाकर रख लिया करता था ।

उसने अपने नाम के के.सी. भाटिया के पीछे बी.एस.सी., एल.एल.बी. छपवा रखा है । ''डिग्रियों के अक्षर ब्रेकेटस में देने का अर्थ यह है कि दो–दो साल साइंस और लो की श्रेणियों में बिताकर आवश्यक योग्यता को उसने प्राप्त कर ली थी, पर दुर्भाग्यवश एक बार भी सफल परिक्षार्थियों की सूची में उसका नाम नहीं निकाला ।''[22] मुम्बई में नौकरी की तलाश में आकर दो साल वह बेकार रहा । एक साल नौकरी तलाश करता रहा । किन्तु

निराश होकर वह कुछ ऐसी तरकीब लड़ता हुआ हवाई किले रच रहा नज़र आता है । वह एक दिन बहुत बड़ा आदमी बनने की इच्छा रखता है । इन दिनों वह बेकारी दूर करने के लिए रेस पर भाग्य आजमाने के चक्कर में है ।

मि. भाटिया इस विश्वास से कि एक दिन उसे अपनी इच्छाओं के अनुकूल शानदार ज़िन्दगी जीने का मौका मिलेगा । वह 'रेसकोर्ष' में अपना भाग्य आजमाता रहता है । वहाँ उसकी मुलाकात कैप्टन केशव और उसकी बहन लीना से होती है । कैप्टन केशव से मिलकर उसे लगता है कि अब उसकी सारी योजनाएँ सफल हो जायेंगी । साथ ही उसका खयाल है कि वह कुछ ही सालों में बहुत बड़ा आदमी बन जायेंगा । वह कैप्टन केशव से मिलकर रेस कार्ड निकाल ने की सोच रहा है । वह अपनी महत्त्वकांक्षा पूरी करने के लिए अपना सब कुछ दाँव पर लगा देता है । उसका कहना है – ''कैप्टन केशव का पैसा लेगा और मेरा दिमाग । उन्हें मेरे कैल्क्युलेशन पर बहुत विश्वास है । तुम भी देख लेना, जिस घोड़े पर पैंसिल रख दूँगा, वही जीतेगा ।''[23] वह आगे कहता है – ''साल भर में हमारा फोर्ट में दफ्तर खुल जायेगा । चार–चार चपरासी होंगे और एंगलो–इंडियन लड़कियाँ टाइपिस्ट होंगी । बाहर बोर्ड लगा होगा – 'के.सी. भाटिया', एस्क्वायर ।''[24] किन्तु, कैप्टन केशव का तबादला हो जाने से उसकी सारी योजनाएँ पतों के महल की तरह ढ़ह जाती है ।

मि. भाटिया कैप्टन केशव के साथ अपनी योजना तो पूरी नहीं कर पाता किन्तु योजना के असफल होने से उत्पन्न आर्थिक संकट से उबरने के लिए अपना फ्लैट पाँच हजार रुपये में बेच देता है । कर्ज चुकाने के बाद बचे पैसे से वह फिर से रेस खेलता है और फिर नाकामियाब होता है । वह अपने होटल का बिल चुकाने के लिए अपनी घड़ी और अंगूठी तक बेच देता है । बेरोजगारी और आर्थिक तंगी से उबरने के लिए उसे अपनी किताबों को भी बेचना पड़ता है । मि. भाटिया अपनी महत्त्वकांक्षा पूरी करने के लिए एक ऐसी लड़की से शादी करने के लिए तैयार हो जाता है जो उसकी पसंद की

नहीं है । किन्तु दहेज में तीन हज़ार लाने को तैयार है । तीन हज़ार रुपये लेकर वह फिर से अपना भाग्य आजमाना चाहता है । वह कहता है – ''जितना पैसा गया है, वह किसी तरह वापस भी तो आयेगा .... ।''[25]

मि. भाटिया में बड़ा बनने की महत्त्वकांक्षा अत्यंत प्रबल है । वह बेकारी, आर्थिक अभाव की हालत में भी अपनी महत्त्वकांक्षा को भूल नहीं पाता । वह अपने जीवन में निरंतर संघर्षो से घिरा रहकर भी अपने ऊँचे ख्वाब पूरा करने की इच्छा रखता है । अर्थ का अभाव और असफलता उसे भीतर से तोड़ देती है, फिर भी वह जीवन से नहीं हारता । वह इस संबंध में निरंतर प्रयास करता रहता है । शहरी जीवन के आकर्षण से उत्पन्न उच्च महत्त्वकांक्षा और बेकारी की मार व्यक्ति को बिखेर देती है फिर भी अर्थ की दौड़ उसे उसी रास्ते पर दौड़ाती रहती है इस बात का पूर्ण परिचय 'मिस्टर भाटिया' कहानी में युग की सच्चाई के साथ उजागर हुआ है ।

'लड़ाई' कहानी का 'वह' बार–बार बेकारी का सामना करते–करते ऊब गया है । बेरोजगारी की हालत में वह मशीन की भाँति अपना जीवन ढोता है । पाँचवी नौकरी से अलग होकर अब वह अपने मित्र के पास जाने के लिए रेल्वे स्टेशन पर ट्रेन की राह देख रहा है । उसका मन नौकरी छुटने की व्यथा से भरा हुआ है । वह नौकरी छुटने के सार्थक कारण न जान पाने के कारण बहुत दुःखी है । उसे महसूस होता है कि उसके जीने का कोई उद्देश्य ही नहीं है । उसे 'अन्ना करेनिना' का स्मरण हो आता है, जो बेकारी से उत्पन्न जीवन की चरम निराशा के कारण आत्महत्या कर लेती है । ''सहसा उसकी आँखों के सामने 'अन्ना करेनिना' का वह दृश्य आ गया, जिसमें अन्ना अपने जीवन की चरम निराशा में अपने आपको भूलकर एंजिन का घूमते हुए पहियों के नीचे कुचली जाती है । एंजिन के लहू से लथपथ पहियों का स्मरण करके उसने एक ऐसी दृष्टि से शंटिन करते हुए एंजिन की ओर देखा, जैसे वह वही एंजिन हो, जिसने अन्ना करेनिना को कुचल दिया था, जैसे आज वह उसे भी एक तरह का निमंत्रण दे रहा हो ।''[26] पांच–पांच बार बेकारी का सामना करते–करते ज़िन्दगी की आर्थिक विवशता ने उसे इतना

विवश और खोखला कर दिया है कि वह जिन्दा होते हुए भी अपने आपको ट्रेन के नीचे कुचला हुआ अनुभव करता है ।

उच्च शिक्षित होकर भी योग्य अवसर न मिल पाने के कारण बेरोजगारी की मार सहते व्यक्तियों के जीवन की विडंबनाएँ भी राकेशजी ने अपनी कहानियों में चित्रित की हैं । 'भूखे' कहानी का नायक सत्यपाल शिक्षित प्रतिभा सम्पन्न युवक है । उसने चित्रकला में डिप्लोमा पास करके विशेष अध्ययन फ्रांस में पूरा किया है । वह अपना अध्ययन पूरा करके स्वदेश लौट आता है । किन्तु तीन साढ़े तीन साल मुम्बई में रहते हुए भी उसे कोई ढ़ंग का काम नहीं मिल पाता । मुम्बई में रहकर वह ज्यादा–से–ज्यादा किसी कमर्शियल स्टुडियों में नौकरी कर सकता था, जो उसे पसंद नहीं था । क्योंकि उसके पास अन्य कोई चारा नहीं था, इसलिए उसने वहीं काम करना प्रारंभ कर दिया । इस बीच उसने कई दूसरे चित्र भी बनाएँ जिन्हें चित्रकारों के सर्कल में काफी पसंद किया गया । किन्तु ''ऊँची कीमत के समझे जाने पर भी उसके चित्र उसके लिए आय का जरिया नहीं बन सके ।''[27] अंत में वह मुम्बई से दिल्ली चला जाता है और छः आठ महीने दिल्ली में भटकता रहता है । बेरोजगारी की हालत में भविष्य की चिंता और संघर्ष से उसका स्वास्थ्य काफी गिरने लगता है और लंबी बीमारी में सही इलाज न होने के कारण उसे टी.बी. हो जाती है ।

सत्यपाल के रोगमुक्त होने की आशा नहीं थी फिर भी उसकी पत्नी एलवीना अपना सबकुछ बेच–बाचकर उसे शिमला ले आती है । यहाँ आकर भी उसकी तबियत दिन–प्रतिदिन गिरती जाती है । बेरोजगारी और उससे उत्पन्न अर्थ संकट ने उसके पूरे परिवार को पैसे–पैसे के लिए तड़पा दिया । यहाँ तक कि एलवीना बच्चे की छोटी–छोटी इच्छाओं को पूरा करने में अपने आपको असमर्थ और विवश महसूस करती है । इसी तरह अर्थ के अभाव को भोगते हुए एक दिन सत्यपाल की मृत्यु हो जाती है ।

सत्यपाल के चित्रों को एलवीना बेचना चाहती है । यह चित्र सत्यपाल की प्रतिभा को सामने लाने में समर्थ थे । कहानी के 'मैं' के अनुसार ''होटल

की शीशेवाली खिड़कियों से छनकर धूप उस चित्र पर आकर पड़ रही थी । उन चित्रों में घूमिल से लाल और मटमैले रंग का विशेष प्रयोग किया गया था । मैं काफी देर तक उन चित्रों को देखता रहा । मुझे चित्रों की ज्यादा समझ नहीं है, फिर भी मेरे हृदय पर उनका कुछ ऐसा प्रभाव पड़ा जैसे कोई मेरी ओर देखकर दीवानावर प्रलाप कर रहा हो । एक चित्र का शीर्षक था 'गिद्ध' उसमें गिद्धों की आँखें कुछ ऐसी थी जैसे वह दुनिया की हर चीज का मज़ाक उड़ा रही हों और चोंचें कुछ इस तरह खुली थीं जैसे वे हर चीज को निगल जाना चाहती हों । वह एक ऐसा चित्र था जिसे देखकर लेने का मन होता था और आँखें हटा लेने पर फिर देखने की कामना होती थी ।''[28] किन्तु लोग इसे सिर्फ देख लेते है उसे खरीदने का नाम नहीं लेते । लोग सत्यपाल की कला की सराहना करने के बदले उसका मज़ाक उड़ाते है । होटेल का मेनेजर कहता है – ''किस का दिमाग बिगड़ा है कि हज़ार–हज़ार रुपया देकर इन तस्वीरों को खरीदेगा ? मैं तो कहता हूँ कि कोई दस–दस रुपये में खरीदने को तैयार हो जाए, तो बहुत महेरबानी करेगा ।''[29]

'भूखे' कहानी में राकेशजी ने बेकारी से ग्रस्त प्रतिभा सम्पन्न चित्रकार की व्यथा–कथा को तथा उसके जीवन के संघर्ष को यथार्थ रूप में प्रस्तुत किया है ।

'वारिस' कहानी के मास्टरजी रचनात्मक प्रतिभा सम्पन्न शिक्षित व्यक्ति है । किन्तु उसे भी बेकारी से उत्पन्न आर्थिक संकट ने घेर रखा है । वे गंदी सी चाली में चार रुपया महीने किराये की एक कोठरी में रहते है और अपना गुजरान चलाने के लिए दो बच्चों को टयुशन पढ़ा रहा है । उन्होंने बच्चों के पिताजी से कहा था – ''एक भी पैसा पास न होने से बहुत तंगी में है मगर वे किसी से खैरात नहीं लेना चाहते, काम करके रोटी खाना चाहते हैं । उन्होंने बताया कि उन्होंने कलकता युनिवर्सिटी से बी.ए. किया है और बच्चों को बंगला और पंजाबी पढ़ा सकते है ।''[30] उसकी प्रतिभा की झलक तभी देखी जाती है जब वह ''टेनीसन ब्राउनिंग और स्काट की पंक्तियों की व्याख्या करते हुए कहीं और ही पहुँच जाते थे । उनकी आँखें चमकने लगती

थीं और दोनों हाथ हिलने लगते थे । भाषा उनके मुँह से ऐसी निकलती थी जैसे खुद कविता कर रहे हों ।"[31] उनकी संपति में कुछ कटी–पुरानी पुस्तकें और कपड़ों के नाम पर चन्द चीथड़े थे । साथ ही कुछ नये फुलस्केप कागज़ थे जिन पर बंगला और अंग्रेजी में बहुत कुछ लिखा हुआ था । उसके कहने के अनुसार यह उसकी "सारी जिन्दगी की पूंजी है ।"[32]

एक बार वह लगातार चार सप्ताह तक टाइफाइड़ में पड़े रहे । वे अपने कम्बल में लिपटकर चारपाई पर लेटे हुए "हाय–हाय' करते रहते थे । उनके लिए दवाई, सूप वगैरह भी टयुशन वाले घर से आता था ।

मास्टरजी अपने शिष्यों को बहुत कुछ समझाना सीखाना चाहते थे । वह उन्हें यह रहस्य भी समझाना चाहते थे कि 'मनुष्य जीवित रहना क्यों चाहता है ?' वे अपने विचारों की अभिव्यक्ति दोनों बच्चों के सामने लिखकर देते थे ताकि वे बड़े होकर उनके विचारों को समझ सके । किन्तु मास्टरजी के जाते ही दोनों भाई–बहन एक–दूसरे के पन्नों की छीना–झपटी करते और एक–दूसरे के कागजों को मसलने और नोचने लगते । दोनों बच्चों की परीक्षा के बाद टयुशन समाप्त होने की स्थिति में वे (मास्टरजी) यहाँ से चले जाने का निश्चय कर लेते है । "उन्होंने निश्चय किया था कि वे कुछ दिन जाकर गरुड़चट्टी में रहेंगे, फिर उससे आगे घने पहाड़ो में चले जाएंगे, जहाँ से फिर कभी लौटकर नहीं आएँगे ।"[33]

'वारिस' कहानी में राकेशजी ने बौद्धिक प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति की बेरोजगारी और अर्थ के अभाव से युक्त ज़िन्दगी की मनोव्यथा को सहानुभूति पूर्ण अभिव्यक्ति देने का प्रयत्न किया है ।

बेरोजगारी से रोजगारी और रोजगारी से बेरोजगारी की ओर चक्कर काटते व्यक्ति के लिए परिवार और समाज के बीच का रिश्ता भी कभी–कभी कटु हो जाता है । 'गुंझल' कहानी में राकेशजी ने रोजगारी और बेरोजगारी के बीच पीसते हुए व्यक्ति की इस स्थिति पर प्रकाश डाला है । 'गुंझल', कहानी का चंदन रोजगारी और बेरोजगारी से निरंतर संघर्ष कर रहा है । चंदन की इस स्थिति से उसकी पत्नी कुन्तल अपनी इच्छाओं और महत्त्वकांक्षाओं की पूर्ति

चंदन के माध्यम से न होते देखकर अंतर्द्वन्द्व अनुभव करती है, फलतः पति–पत्नी के संबंधों में मधुरता और भावनात्मकता के स्थान पर कुंठा, तनाव और त्रासद परिस्थितियों का निर्माण होता है ।

बेकारी से उत्पन्न आर्थिक तंगी ने चंदन को बाहर और भीतर से तोड़ दिया है । राकेशजी ने चंदन की इन दोनों स्थितियों का सचोट वर्णन किया है । चंदन की आर्थिक स्थिति उसके कपड़ो से साफ झलकती है – ''उसकी 'काड़राय' की पतलून के घुटने बाहर को निकल आए थे और रोओं के घिसे जाने से जगह–जगह उस पर चकतिया–सी पड़ी थी । पांयचो के टांके टूट गए थे जिससे उसका मुड़ा हुआ हिस्सा बाहर को खुल गया था । जूते की एड़िया और तलुबे घिसे हुए थे और ऊपर के चमड़े में गहरी–गहरी लकीरें पड़ी थी ।''[34] जम्मू पहोंच कर कमरें का और खाने का प्रबंध करने से पहले ''उसने जेब में हाथ डालकर पैसों को गिना । अभी पचास–पचपन रुपये बाकी थे । वहाँ से घर पहुँचने तक तो काम चल ही सकता था । उसके बाद की बात बाद में सोची जा सकती थी ।''[35]

चंदन कुन्तल के साथ अपने सुखमय जीवन की कल्पना तो करता है किन्तु बेकारी और आर्थिक तंगी से उसे अपनी यह कल्पना पूरी होती नहीं दिखाई देती । वह सोचता है – ''सुख, घर, विश्राम की सारी कल्पनाओं और सारे अभावों की मिली–जुली अनुभूति । उसके मन में वह प्रश्न, वह दर्द और भी तीखा होकर चुभने लगा । क्या सचमुच पूरा जीवन उसे बिना घर के ही काटना था ? बिना उस छोटे से कोने के, जहाँ सांस आए, तो मन उदास न हो और सुबह होते ही अपना–आप खाली और व्यर्थ न लगने लगे ? क्या सचमुच घर की वह कल्पना जीवन भर के लिए छिन चुकी थी और उसे वापस लानेके लिए वह कुछ भी नहीं कर सकता था ?''[36] अर्थ के अभाव में कुंतल चंदन के साथ रहना नहीं चाहती । चन्दन को अपनी कल्पना सिर्फ कल्पना ही नज़र आती है क्योंकि इस स्थिति में वह चाहकर भी इसे पूरा करने में असमर्थ और लाचार नज़र आता है ।

बेरोजगारी और अर्थ के अभाव ने व्यक्ति को किस दयनीय स्थिति में पहुँचा दिया है उनका चित्र इस कहानी में अत्यंत मार्मिक ढ़ंग से हुआ है । चंदन नौकरी न रहने की स्थिति में अपनी पत्नी की महत्त्वकांक्षाओं की पूर्ति नहीं कर पाता । अतः कुन्तल उसे नकारात्मक रुख से देखती है । पति–पत्नी के बीच उपस्थित इस स्थिति के लिए अर्थ का प्रभाव ही महद अंश में उत्तरदायी है । आर्थिक विवशता ने चंदन को सामाजिक दुनिया से, पारिवारिक दुनिया से और स्वयं की वैयक्तिक दुनिया से हर तरफ से काट कर रख दिया है ।

'शिकार' कहानी में राकेशजी ने बेकारी की त्रासदी से ग्रस्त पटवर्द्धन नामक युवक का चित्रण किया है जो मुम्बई जैसे महानगर में रोजगारी की तलाश करते–करते थक चुका है । और आर्थिक अभाव में वह जेब काटने का काम करता है । वह अपने शिकार की तलाश में दादर, बांदरा, सैंटाक्रुज़, अंधेरी – अंधेरी, सैंटाक्रुज़, बांदरा, दादर ट्रेन में बार–बार आता–जाता रहता है । अगर उसके पास पैसे होते तो वह दस दिनों तक अच्छे मौके का इन्तजार करता और जब आते या लौटते अच्छा शिकार मिल जाता तो वह किसी–न–किसी की जेब साफ करने से नहीं चुकता । इन पैसों से वह रोटी का जुगाड़ करता और जिस दिन अधिक पैसे हाथ लगे हो उस दिन वह जुआ भी खेल लेता ।

इस बार जुए में पंद्रह रुपये हार जाने के बाद कुल देढ़ रुपया बचा रहा था, जिससे वह काम चला रहा था । किन्तु बड़े शिकार पर हाथ मारने के प्रयास में उसके तीन दिन खाली निकल गये थे । अब ''इस वक्त उसके पास सिर्फ दो इकन्नियाँ थीं । रात की रोटी के लिए कुछ न कुछ पैदा करना जरूरी था ।''[37] वह इस प्रयास में तीन घंटे से सफर कर रहा था । अब भी उसे खड़ा रहना था क्योंकि ''उसका काम गाड़ी के दरवाजे के पास ही बन सकता था । काम का मौका वे कुछ ही क्षण होते थे जब अंदर आने बाहर जाने वालों के बीच संघर्ष होता था ।''[38] सैंटाक्रुज़ से दरवाजे पर काफी भीड़ हो गयी । इससे पटवर्द्धन को अपना काम बनता नज़र आने लगता

है । इस समय उसकी भेंट एक नवयुवक से होती है जो काम की खोज में मुम्बई आया है । उस युवक के द्वारा उसके व्यवसाय संबंधी सवाल के जवाब में वह कह देता है कि – “ ‘ग्रान्ट रोड़ पर मेरी जुराबों की फैक्टरी है ।’ यह उन अनेक उत्तरों में से था जो यह सवाल पूछे जाने पर वह लोगों को दिया करता था । उसे इसके लिए सोचना नहीं होता था । अनायास ही वह कह देता कि वह एक दवाई कम्पनी में सैल्ज़मैन है । कभी कि जूते बनाने वालों को चमड़ा सप्लाई करता है । हर बात वह बहुत स्वाभाविक ढंग से कहता था ।”[39]

स्टेशन आते ही भीड़ का दबाव बढ़ा । उस समय युवक का शरीर पटवर्द्धन के शरीर के साथ सट गया । क्षण में ही वह जान गया कि युवक की जेब में चमड़े का एक बटुवा है, “जिसमें दस–दस के या पाँच–पाँच के बारह–तेरह नोट हैं ।”[40] स्टेशन पर बढ़ रही धक्का–मुक्की का फायदा उठाकर पटवर्द्धन युवक की जेब से बटुवा निकालनख में सफल रहता है । वह उतरकर चाय के स्टाल के पास खड़ा हो जाता है । वह युवक स्टेशन से आगे निकल जाता है । किन्तु वह अपने सन्मुख अपराधी मनोवृत्ति को अनुभव करता है । “पटवर्द्धन का मन चाह रहा था, कि ज़िन्दगी लौटकर कुछ मिनट पहले के उस मुकाम पर पहुँच जाए जब उसके चारों तरफ भीड़ का दबाव बढ़ रहा था, पर उसका हाथ अभी नवयुवक की जेब तक नहीं पहुँचा था ।”[41] तभी उसने देखा कि वह युवक घबराया सा वापस आ रहा है । “उसे देखकर पटवर्द्धन की टांगो में जैसे जान आ गयी । वह दौड़ा और गाड़ी के आखिरी डब्बे के फुटबोर्ड पर लटक गया ।”[42] उसका दाया हाथ फुटबोर्ड के डंड़े को पकड़े था और बाया हाथ जेब में पड़े बटुए को सहला रहा था । “मगर अब उसका मन चाह रहा था कि ज़िन्दगी लौटकर उस मुकाम पर चली जाए जब गाड़ी का आखिरी ड़ब्बा निकल रहा था और वह अपनी प्लेटफार्म पर ही था ।”[43]

पटवर्द्धन के माध्यम से राकेशजी ने भूख, गरीबी, अभावग्रस्तता, बेरोजगारी आदि से ग्रस्त होकर काम की तलाश में भटकते हुए युवकों की

स्थिति का यथार्थ वर्णन किया है । अपनी इच्छाओं की समाजमान्य पद्धति से परिपूर्ति न होने के कारण ऐसे युवक अमानवीय मार्ग अपनाने के लिए अपने आप से समझौते के लिए बाध्य हो जाता है । सभी इच्छा–अपेक्षाओं का मूलभूत आधार 'अर्थ' की प्राप्ति है, इस अर्थ प्राप्ति ने व्यक्ति को स्वयं केन्द्रित बना दिया है । पटवर्द्धन नवयुवक का बटुवा मारने के बाद मन में द्वन्द्व अनुभव करता है । एक ओर वह पैसे लेकर अपने पेट की भूख मिटाना चाहता है तो दूसरी ओर उस युवक को उसका बटुवा वापस देना चाहता है । वह सोचता है कि वह वक्त वापस आ जाय जिस समय उसने नवयुवक की जेब से बटुवा नहीं निकाला था । वह उस नवयुवक को परेशान देखकर अर्थ और सद्विवेक के बीच उलझता है । किन्तु अंत में विजय अर्थ की ही होती है । वह चाहकर भी बटुवा वापस नहीं करता और ट्रेन में चढ़ जाता है । ''कहानी का यहीं मोड़ आदर्शवाद से बचाकर उसे यथार्थ की भूमिका पर प्रतिष्ठित करता है । मनुष्य की अधिकांश बुराईयों की उतरदायी उनकी परिस्थितियाँ ही है । भूख की आग सारे मानव आदर्श को निगल जाती है ।''[44]

'आर्द्रा' कहानी का बिन्नी मुम्बई जैसे महानगर में नौकरी न मिलने के कारण मुश्किल से जगह–जगह टयुशन करके साठ–सत्तर रुपये कमा लाता है । उससे मुश्किल से दोनों माँ–बेटे का काम चलता है । पूरे दिन की व्यस्तता के बाद भी जब कभी–कभी पैसे का अभाव रहता है तब वे कभी कपड़े के तो कभी दूध सब्ज़ी के अभाव में जीते है । जब कभी दस रुपये ज्यादा ले आता तो साथ अपनी माँग भी रख देता – ''इस बार माँ, दो कमीज़े सिल जाएँ, और एक बढ़िया सा जूता ले लिया जाए । और जब वह साठ रुपये से भी कम रुपये लाता, तो महीने भर की बड़ी आसान–सी योजना उसके सामने पेश कर देता 'दूध–सब्ज़ी का नागा । दाल, प्याज, खुश्क फुलके और बस ।''[45] अर्थ के अभाव में उसे एक गन्दी बस्ती में मकान रखकर रहना पड़ता है, क्योंकि ''बम्बई की और किसी बस्ती में बीस रुपये महीने में मकान नहीं मिल सकता ।''[46]

बचन यह जाननी है कि – ''ये रुपये भी वह टयुशन ऊशन करके ले आता है, वरना सही माने में वह बेकार ही है ।''[47] बिन्नी अपने मन में

भविष्य के लिए बड़े–बड़े मनसूबे रखता है । वह अपनी लायकात की बात करते हुए कहता है कि – ‘‘माँ मेरी लायकात मेरे पेट में बंद है । जिस तरह हिरन के पेट में कस्तूरी बंद होती है न, उसी तरह । जिस दिन वह खुलकर सामने आयेगी, उस दिन तू अचम्भे से देखती रह जाएगी ।’’[48] वह नौकरी की तलाश में बहुत व्यस्त रहता है । कई–कई दिनों तक घर नहीं आता । उसके घर न आने से बचन बहुत चिन्तित रहती है, और बिन्नी जब आता, ‘‘तो अपने में ही उलझा हुआ और व्यस्त सा । वह समझ नहीं पाती थी कि उस लड़के को किस चीज की व्यस्तता रहती है ।’’[49]

बड़े–बेटे लाली की तबियत खराब होने पर बचन वहाँ जाने की बात करती है । लेकिन बिन्नी के पास इतने पैसे नहीं कि वह माँ के लिए टिकट खरीद सके । बिन्नी पैसे उधार लेकर बचन के जाने की व्यवस्था करता है । वह बचन से कहता है – ‘‘तेरे लिए नकद सवाबीस खर्च करके आया हूँ, वे भी उधार के ।’’[50]

बिन्नी और उनके दोस्त सभी बेरोजगारी की मार सहते है । उन लोगों का शायद कोई ठेर–ठिकाना भी नहीं था, क्योंकि वे आते तो दो–दो दिनों तक वहीं पड़े रहते थे । उन लोगों के भी बड़े–बड़े मनसूबे थे । ‘‘उन लोगों के बहस–मुबाहिसे कभी समाप्त नहीं होते थे । वे सब जोर–जोर से बोलते थे और इस तरह आपस में उलझ जाते थे जैसे उनकी बहस पर ही धरती और ईश्वर का दामोमदार हो ।’’[51]

प्रस्तुत कहानी में राकेशजी ने बड़े शहरों में रोजगारी की तलाश में भटकते युवकों की स्थिति को यथार्थ रूप में अंकित किया है ।

मध्यवर्गीय युवकों को जब अपनी इच्छानुसार नौकरी नहीं मिलती या अपनी लायकात के अनुसार नौकरी नहीं मिलती । ऐसी स्थिति में उन्हें बेकारी में जीवन गुजारना पड़ता है । बेकारी से उत्पन्न अर्थ संकट से वह परजीवी होने के कारण हीन भावना का शिकार हो जाते है और इस बेकारी से उबरने के लिए नयी–नयी तरकीबे लड़ाते रहते है । परिणामतः कभी–कभी वे अहं की प्रबलता से कभी बड़े आदमी बनने का सपना संजोकर कभी बहसो के द्वारा

तो कभी असामाजिक कार्य द्वारा भी बेकारी को भूलाने के लिए असफल प्रयत्न करते दिखाई देते है ।

इस प्रकार बेरोजगारी से ग्रस्त युवकों की समस्याओं को राकेशजी ने पूर्ण यथार्थ के साथ अभिव्यक्ति देने का सफल प्रयत्न किया है ।

५.४ अर्थ के अभाव में उत्पन्न ज़िन्दगी का दोहरापन, संघर्ष, घुटन, तनाव और छटपटाहट :

अर्थ का अभाव आम आदमी के जीवन में संघर्ष, तनाव, घुटन, छटपटाहट उत्पन्न कर देता है । जिससे व्यक्ति का जीना मुश्किल हो जाता है, क्योंकि आज जीवन के मूल में अर्थ है । अर्थ के अभाव में व्यक्ति की समस्या दिन–दिन जटिल से जटिलत्तर हो रही है । राकेशजी ने अर्थ के अभाव में उत्पन्न–समस्याओं को विविध कोणों से सामने रखने का प्रयत्न किया है । 'पांचवे माले का फ्लैट', 'फटा हुआ जूता', 'भूखे', 'वारिस', 'मंदी', 'सौदा', 'क्लेम', 'परमात्मा का कुत्ता', 'उलझते धागे', 'मिट्टी के रंग' आदि कहानियाँ इन स्थितियों को उजागर करती है ।

'पांचवे माले का फ्लैट' कहानी में आर्थिक संकट से उत्पन्न घुटन को झेल रहे आधुनिक व्यक्ति का चित्रण है । कहानी का नायक अविनाश आर्थिक अभाव में जीवन जी रहा है । किन्तु फिर भी वह संभ्रांत होने का असफल प्रयास करता हुआ दिखाई देता है । वह अपनी जेब में चार मिनार सिगरेट रखता है और उसके लिए पैन्ट की क्रीज ठीक रखना अनिवार्य है । अविनाश मुम्बई में अर्थ के अभाव में औपचारिक जीवन जी रहा है । इस प्रकार की ज़िन्दगी से वह महसूस करता है कि उसकी ज़िन्दगी का रस धीरे–धीरे सुखता जा रहा है । क्योंकि वह सोचता कुछ और है, कहता कुछ है और अर्थ के अभाव में होता कुछ और ही है ।

अविनाश पांचवे माले के फ्लैट में इसलिए रहता है क्योंकि उसकी आर्थिक स्थिति अलग जगह पर मकान लेकर रहने की नहीं है । वह प्रेमिला से प्रेम करता है । उसने प्रेमिला को पिक्चर दिखाने का वादा किया था । जब वह प्रेमिला और उसकी बहन सरला को लेकर निकला तब उसकी जेब में

कुल छः रुपये बाकी थे । यद्यपि जब वह प्रेमिला को लेने गया था तब वह अपनी जेब में पचास रुपये लेकर गया था । जो उसने अपने दोस्त से उधार लिये थे । मगर चालीस से ज्यादा वह प्रेमिला के भाई के साथ ताश खेलने में हार गया । वह चाहकर भी इस स्थिति में प्रेमिला को पिक्चर नहीं दिखा पाता अतः प्रेमिला को बुरा लगता है । सरला के कहने पर अविनाश दोनों को अपने फ्लैट में ले आता है । जहाँ जाने के लिए अविनाश के कदम भी नहीं उठ रहे थे । क्योंकि ''एक के बाद एक पाँच माले । पहले माले पर सारी बिल्डींग की सडांध । दूसरे पर खोपड़े की बास । तीसरे पर कुठ और अनारदाने की बू । चौथे पर आयुर्वेदिक औषधियों की गंध ।''[52] सरला अविनाश के फ्लैट और उसके सामान का उपहास करती हुई कहती है – ''यह गुसलखाना तो अच्छा–खासा अजायब घर है । मैं तो समझती हूं कि अंदर जानेवालों से एक आना टिकट वसूल किया जा सकता है । यह पलंग कब का है । मराठों के जमाने का ? ... पढ़ने की मेज पर वह क्या चीज रखी है ? साबुन की टिकिया ? मैंने समझा पेपरवेट है ... ।''[53] प्रेमिला और सरला की अविनाश के फ्लैट और उसकी चीजों के उपहास में अविनाश की आर्थिक स्थिति झलक जाती है । यही वजह थी कि अविनाश सरला और प्रेमिला को अपने फ्लैट पर लाने से कतराता था ।

कुछ सालों बाद प्रेमिला और सरला अविनाश से फिर मिल जाते है, अब भी अविनाश की आर्थिक हालत उसी तरह की है । वह चाहता है कि वह दोनों को चाय के लिए कहे, पर उसे पैसे कम पड़ जाने का डर लग रहा है – ''कितनी ही बार सोचा था कि कहीं चलकर चाय पीने को कहूँ । पर डर था कि पैसे कम न पड़े । पहले पता होता तो किसी से उधार मांग लेता या पहली तारीख को बचाकर रखता । हंमेशा जरूरत के वक्त ही पैसे कम पड़ते थे । तब भी तो यही हुआ था ।''[54] सरला अविनाश के ज़ख्म को कुरेदते हुए पूछती है कि क्या वह अब भी उसी पाँचवे माले के फ्लैट में रहता है ? इस पर अविनाश को लगता है कि – ''एक शहर में रहे जाना किसी हद तक बरदाश्त हो सकता है, मगर उसी फ्लैट में बने रहना हरगिज

नहीं । खास तौर से जब फ्लैट उसी तरह का है ....।''[55] वह फिर पूछती है – ''अब भी उसी तरह पाँच मंज़िल चढ़कर जाना पड़ता है ?''[56] वह मार खाए स्वर में कहता है – ''बिना चढ़े पाँचवी मंज़िल पर कैसे पहुँचा जा सकता है ?''[57] सरला अविनाश को शादी के विषय में पूछती है । इस प्रश्न से अविनाश का ''मन छोटा हो गया । अफसोस हुआ कि अपने अकेलेपन का ज़िक्र क्यों किया ? क्यों सही वक्त निकल जाने दिया ? अब जाने वह क्याँ सोचेगी ? जाने उसी वजह से ... या जाने उस फ्लैट की वजह से...।''[58]

महानगरों में कितने ही लोग है जो अविनाश की तरह ज़िन्दगी गुजार रहे है । आर्थिक अभाव में वे अपनी इच्छाओं को पूरा करने की असमर्थता से उत्पन्न जीवन की घुटन और छटपटाहट के साथ जीने के लिए मजबूर है । अविनाश के जीवन की त्रासदी यह है कि उसे अर्थ के अभाव में अपने प्रेम से भी वंचित रहना पड़ता है । उसे अपनी सभी इच्छाओं और भावनाओं को भी दबा के जीना पड़ता है ।

'फटा हुआ जूता' कहानी भी अर्थ से उत्पन्न जीवन की घुटन और छटपटाहट को मुखरित करती है । कहानी का मैटिक फैल राय एशिया सर्जिकल की नौकरी करता है । वेतन के रूप में उसे सिर्फ साठ रुपये मिलते हैं । लेकिन यह रुपये भी उसके पास नहीं रहते, क्योंकि चालीस–पैंतालीस खाना खर्च और शेष तीन–चार दिनों के जेब खर्च के बाद पूरे हो जाते है । बाद के दिनों में उसे उधारी से काम चलाना पड़ता है । राय अपनी इस स्थिति से तंग आ चुका है वह इस एक तरह की लगातार चल रही ज़िन्दगी से परेरशान हो चुका है । वह ठीक से अपनी इच्छानुसार ज़िन्दगी जीना चाहता है, इसलिए वह अधिक पैसे जुटाने का प्रयास करता रहता है । इस प्रयास में वह कहानी लिखता है और पहेली भरता रहता है । वैसे पैसे का अभाव उसकी नियति बन गयी है । राय का जीवन खेली हुई ताश की तरह घीसा हुआ बन गया है और किसी भी चीज के लिए प्रतीक्षा करना उसके जीवन का अहम् कार्य बन गया है ।

राय की लिखी कहानियाँ तो जहाँ गई, वहीं की हो रही न छपी और न लौटकर आयी । किन्तु एक बार पहेली में किसी तरह उसका तीस रुपये का पुरस्कार निकल आया । ''राय ने पुरस्कार विजेताओं की सूची में अपना नाम देखा तो उसे विश्वास हो गया कि उसकी छिपी हुई योग्यता को अपने लिए मार्ग मिल गया है – वह अब पहेलियाँ भरकर अपना जीवन–स्तर ऊँचा उठा सकता है ।''[59] हर मास उसे वेतन के जो साठ रुपये मिलते थे वे कभी उसके अपने नहीं होते थे । क्योंकि वह पहले ही अपनी जरूरतों के लिए कर्ज कर चुका होता है और वेतन उसके पास आते ही उसे लौटाना होता था । लेकिन यह तीस रुपये बिलकुल उसके अपने थे । ''मगर वे तीन और शून्य के दोनों हिन्दसे आज उसके अपने थे – वह उनसे कुछ भी कर सकता था, कुछ भी खरीद सकता था । राय ने चेक हाथ में ले लिया और फिर कुर्सी के साथ टेक लगाकर थोड़ा पीछे की ओर झूल गया ।''[60]

राय इन रुपये से अपनी इच्छा की तमाम चीजें पाने का प्रयत्न करता है । वह चाहता है कि इन रुपये से नये जूते खरीदे जाय, तो कभी सोचता है कि शार्कस्टिन की बुश्शर्ट और आर्टलिन की पटलून खरीद ले । वह बरसाती कोट, मोजे, सिगरेट केस, रंगीन कुर्सियाँ जैसी चीजों को भी खरीदना चाहता है । वह तीस रुपये लेकर चार मंजिलों की सीढ़िया उतरा तब उसके होठों पर मुस्कराहट अनायास ही फैल रही थी । उसने मार्केट जाकर अपने लिए जूता, कपड़ा, कुर्सियां सब देखना शुरू किया । ''उसे इन सब चीजों की जरूरत थी परन्तु यह दिक्कत हर जगह बनी रही कि जहाँ दाम ठीक थे वहाँ चीज अच्छी नहीं थी और जहाँ चीज मनपसंद थी, वहाँ दाम जरूरत से ज्यादा थे ।''[61] वास्तविकता यह है कि राय इन सब चीजों को खरीदना चाहता है, किन्तु यह तय नहीं कर पा रहा था कि किस चीज की उसे सबसे ज्यादा जरूरत है । उसे वह सभी चीजें लेना जरूरी लगता था । अतः वह खरीदने से पहले मानसिक द्विधा में पड़ जाता है कि इतने रुपये से वह क्या ले और क्या न ले । वह इस द्विधामय स्थिति में कुछ भी नहीं खरीद पाता । वास्तविकता यह है कि राय को सभी चीजों की जरूरत है किन्तु इतने रुपये

में वह कोई एक चीज ही खरीद सकता है । अतः वह मार्केट से खाली हाथ लौट आता है । मार्केट से लौटते समय वह एक रेस्तरां में चला जाता है । वहाँ उसकी मुलाकात जेनी डिसूजा से होती है । जेनी राय को अपने साथ शाम गुजारने के लिए निमंत्रण देती है । राय की आँखें उसके शरीर की गोलाइयों पर धूम जाती है उसके शरीर की दबी हुई भूख उसके अंग–अंग में लहराने लगती है । राय सोचता है – ''कभी उसके पास इतने पैसे नहीं हुए थे कि वह उस भूख को शांत कर सकता । आज ज़िन्दगी में पहला अवसर था जब कि एक लड़की उसके बगल में बैठी थी, और बैठी ही नहीं थी उसकी आँखें उससे प्रस्ताव कर रही थी और उसकी जेब में दस–दस के तीन नोट थे । जिनकी सामर्थ्य से वह उसे पा सकता था ।''[62]

राय की आँखें पल भर के लिए जेनी के हरे रंग के सैंडलो पर टिक जाती है और वहाँ से उड़कर सहसा अपने पाँव में पड़े फटे जूतों पर । उसे ''जूते के पंजे बीच से बल खाकर थोड़ा–थोड़ा ऊपर की उठ आएँ थे और मैल से भरी एड़िया कोनों से तीन चौथाई घिस चुकी थी । पैरों के पास से ही पतलून के फूंदने निकल रहे थे ।''[63] राय ने सिगरेट का टुकड़ा मसल दिया और होठों पर जबान फेरकर गीला करते हुए तीनो नोटों को जेब से निकालकर देखा और दूसरी जेब में रख लिया और वह रेस्तरां से बाहर निकल कर फुटपाथ पर आ पहुँचा । राय एक–एक करके उन सब दुकानों के पास से गुजर गया, जहाँ आते हुए वह एक दूसरी चीज के भाव पूछने के लिए रुका था । उसे जो जूते पसंद आये थे वह उस ''सफेद बाउन जूते के पास से तो वह जैसे आँख चूराकर आगे निकला ।''[64] वह घर पहोंचते–पहोंचते मन–ही–मन हिसाब लगाते है – ''ढाबे वाले के उसकी ओर पुराने हिसाब के तेईस–चौबीस रुपये के लगभग निकलते है । ढाबे के पास ही पनवाड़ी की दुकान थी जिसके नौ रुपये में से इस बार कुल पाँच रुपये ही चुकाये गये थे । और पंद्रह रुपये नकद उधार के थे, जो उसने चार महीने पहले तुलुजा से लिए थे ।''[65]

कमरे में आकर राय कई क्षण जूते की घिसी हुई एडियो और उघड़ी हुई सीवनों को देखता है । उसने आँखें मूंद ली तो वे सब चीजें एक–एक करके उसके सामने आने लगी – ''सफेद बाउन जूता, बरसाती कोट, मोजा, सिगरेट केस, रंगीन कुर्सियां और जेनी डिसूजा''[66] वह इन सभी चीजों की सिर्फ कल्पना ही कर सकता है । उसकी तमाम इच्छाएँ और आवश्यकताएँ फटे हुए जूते की 'तपत तपत् तपत्' की आवाज में उलझकर रह जाती है । क्यों कि तीस रुपये प्राप्त करने बाद भी राय का जूता फटा हुआ ही रहता है ।

''प्रस्तुत कहानी में राकेशजी ने राय के चरित्र के माध्यम से आर्थिक अभावों में जीने वाले युवक की मनःस्थिति का चित्रण स्वाभाविक एवं मानसिक स्तर पर यथार्थ के साथ प्रस्तत किया है । अर्थ का अभाव राय को सर्वत्र उपेक्षित सा बना देता है । जिससे वह रिक्तता, तनाव और छटपटाहट अनुभव करता है ।''[67]

'मिस्टर भाटिया' कहानी के मि. भाटिया एक ऐसे बेरोजगार महत्त्वकांक्षी है जो जल्द से जल्द संभ्रांत वर्ग का हिस्सा बनने की अपेक्षा रखता है । वह बेकारी और आर्थिक अभाव की स्थिति में भी ''टमाटर और अंडे खाने की बजाय चिट्ठियाँ लिखने के लिए आसमानी रंग का पैड मेज पर रखना भाटिया की दृष्टि में ज़िन्दगी की ज्यादा बड़ी जरूरत है । उसने नीले सुन्दर अक्षरों में अपने नाम के लेटर पैड़ छपवा रखे हैं ।''[68] वह 'रेषकोर्ष' में अपना भाग्य अजमाता है । उसके पास अपनी कही जाने वाली चीजों में केवल दो चीजें थी । एक उसका शरीर और दूसरा उसका एक कमरे का फ्लैट । वह अपनी महत्त्वकांक्षा पूरी करने के चक्कर में फ्लैट को भी खो देता है । और एक ऐसी लड़की से शादी करने के लिए तैयार हो जाता है जो दहेज में तीन हज़ार रुपये लाने को तैयार है । उसकी इच्छाएँ उन्हें भीतर से तोड़ देती है लेकिन फिर मि. भाटिया अपनी महत्त्वकांक्षाओं को पूरा करने के लिए फिर से तैयार होता दिखाई देता है । यहाँ बड़ा आदमी बनने की उसकी इच्छा उसे आत्मनिर्वासन के बोध से पीड़ित करती है । ''शहरी जीवन के आकर्षण और बेरोजगारी की मार किस तरह लहलहाती आकांक्षाओं का गला घोंटती है, यह

'मिस्टर भाटिया' कहानी में अपने परिवेश की सच्चाई के साथ उजागर हुआ है ।''[69]

'ज़ख्म' कहानी का नायक कभी रोजगारी में रहता है तो कभी बेरोजगारी की मार सहता है । उसका अहं प्रबल है । वह जीवन में आर्थिक संघर्ष के सामने झुकता नहीं, किन्तु भीतर–ही–भीतर धीरे–धीरे टूटता जाता है । क्योंकि उसकी अपनी दुनिया है, उसके अपने मनसूबे है और अपनी योजनाएँ है लेकिन इनके साथ जुड़ाव वह तभी महसूस करता है जब वह नौकरी में होता है । उस समय उसका असाधारण व्यक्तित्व और अहं उसे दूसरो से भिन्न सिद्ध कर देता है, लेकिन ज्यों ही वह नौकरी से हट जाता है त्यों ही वह दुनिया से अलग हो जाता है, जिसमें वह अपने अहं को उद्धत रूप में देखता है ।

''राकेश ने खंडित अहं के नीचे दुखते ज़ख्मों की वेदना को आज की आर्थिक परिस्थितियों के संदर्भ में प्रमाणिकता के साथ प्रस्तुत किया है । कहानी का कथ्य युग यथार्थ की गहरी संवेदना को अपने में समेटे हुए है ।''[70] 'वारिस' कहानी के मास्टरजी अर्थ के अभाव में भीतरी टूटन अनुभव करते हुए पहाड़ो पर चले जाने का फैंसला कर लेते है ।

'मन्दी' कहानी में पहाड़ी जीवन में आयी आर्थिक मन्दी का वर्णन है । कहानी के सभी पात्र आर्थिक संकट के कारण उत्पन्न घुटन एवं छटपटाहट से त्रस्त है । कहानी के प्रारंभ में ही चेयरिंग क्रोस पर अकेला घूमता कथानायक अनुभव करता है – ''घाटी में एक जली हुई इमारत का जीना इस तरह शून्य की तरफ झाँक रहा था जैसे सारे विश्व को आत्म हत्या की प्रेरणा और अपने ऊपर आकर कूद जाने का निमंत्रण दे रहा हो ।''[71] पूरी कहानी में मन्दी की छाया स्पष्ट है क्योंकि पहाड़ी इलाके में घूमने फिरने वाले लोगों से ही उनकी रोजी–रोटी चलती है । लेकिन कुछ सालों से इस इलाके में घूमने वालों की संख्या में काफी कमी आयी है । जिसके कारण यहाँ रहने वालों को आर्थिक मुश्किल का सामना करना पड़ रहा है ।

रास्ते चलते कथानायक को एक पचास–पचपन साल का आदमी मिल जाता है । वह कथानायक को देखकर समझ जाता है कि वह यहाँ घूमने आने वालों में से है, क्योंकि पुराने लोग तो सब उसके पहचाने हुए है । वह कथानायक से ठहरने और खाने के इन्तज़ाम के लिये पूछता है । वह कथानायक को नत्थासिंह के होटल में भेजता है, ताकि उसे अच्छा और सस्ता खाना मिले । कथानायक उस होटल में पहुँचता है उस समय सरदार नत्थासिंह और उसके दोनों बेटे अपनी दुकान के सामने की हलवाई की दुकान में बैठे हलवाई के साथ ताश खेल रहे थे । कथानायक को देखकर वे पने फैंक कर बहार निकल आये । उस समय कथानायक उस होटल का अकेला ग्राहक था । वे सब कथानायक की सेवा में तत्पर हो जाते है, क्योंकि इस मन्दी की स्थिति में अपने होटल में आये ग्राहक को किसी भी स्थिति में वे छोड़ना नहीं चाहते । क्योंकि ‘‘अब वह पहले वाली बात नहीं है, पहले दिनों में हज़ार–बारह सौ आदमी इधर को आते थे, हज़ार–बारह सौ उधर को जाते थे, तो लगता था कि हाँ, लोग बाहर से आए है । अब भी आ गए सौ–पचास तो क्या है ।’’[72] कथानायक चाय और आमलेट खाकर वहाँ से चलने लगा, तो नत्थासिंह ने पीछे से आवाज देते हुए उसे रात को वहीं खाना–खाने के लिए अनुरोध किया । शाम को वह दूसरे रेस्तरां में खाना खाने के लिए जाता है । यहाँ भी वह इसी मन्दी का अनुभव करता है । यहाँ होटल में एक मात्र कर्मचारी था जो किसी ग्राहक को छोड़ने के लिए स्वयं स्टेशन पर गया था । वह कथानायक की रुची के अनुसार खाना बनाता है । यहाँ भी कथानायक पूरे रेस्तरां का अकेला ही ग्राहक था । इसी रेस्तरां में कथानायक की मुलाकात एक कोयला बेचनेवाली लड़की से होती है । इस लड़की के साथ के उसके वार्तालाप से भी आर्थिक मन्दी की स्थिति ही मुखर होता है ।

रात के समय नत्थासिंह और उसके दोनों बेटे कथानायक का भोजन बनाकर इन्तजार करते हैं । क्योंकि वे मन्दी के दौर में ग्राहक बनाएँ रखने के प्रयास में है । वे बड़ी देर तक कथानायक का इन्तज़ार करके खाना खाने बैठते है । उसे देखते ही नत्थासिंह के बेटे ने कहा, ‘‘वह लो, आ गए भाई

साहब ।''[73] लेकिन जब उन्हें पता चलता है कि वह दूसरी जगह से खाना खाकर आया है तब नत्थासिंह कहता है – ''खास आपके लिए मुर्गा बनाया था, हमने सोचा था कि भाई साहब देख ले, हम कैसा खाना बनाते है । खयाल था दो–एक प्लेटें और लग जाएगी । पर न आप आए, और न किसी और ने ही मुर्गे की प्लेट ली । हम सब तीनों खुद खाने बैठे है । ज़िन्दगी में ऐसे भी दिन देखने थे ! वे भी दिन ये जब अपने लिए मुर्गे का शोरबा तक नहीं बचता था । और एक दिन यह है ।''[74]

प्रस्तुत कहानी के सभी पात्र आर्थिक अभाव से उत्पन्न घुटन की स्थिति में जी रहे है । कहानी का बूढ़ा व्यक्ति आर्थिक अभाव में जी रहा है । वह नत्थासिंह के होटल में ग्राहक भेजने के बदले एक प्याली चाय पीने की तलाश में जिन्दा है, होटल वाला कथानायक 'मैं' के लिए मुर्गा बनाने और ग्राहक को अपनी ओर बनाएँ रखने की नियति से जी रहा है । कोयले वाली लड़की पैसे के लिए अपने भाई को कथानायक के पास रखना चाहती है । मन्दी के दैर में हर कोई कुछ न कुछ कमा लेने की होड़ में दिखाई देते हैं ।

'लड़ाई' कहानी का 'वह' अपने जीवन में बार–बार बेकारी का सामना करते हुए भीतर से टूट रहा है । यह उसके जीवन में पाँचवा अवसर था कि उसे बेकारी का सामना करना पड़ रहा था । ज़िन्दगी की आर्थिक विवशता ने उसको खोखला कर दिया है । अर्थ के लिए हो रहे निरंतर संघर्ष ने उसके जीवन को उलझनों से भर दिया है । ''वह कितनी ही आस्थाएँ और कितने ही विश्वास पीछे छोड़कर स्टेशन की ओर चल रहा था ।''[75] नौकरी छूट जाने की स्थिति में वह ''मानसिक संताप से परे भागना चाहता था और उसके लिए ऐसा प्रतीत हो रहा था कि किसी भी दिशा में चलते जाना चाहिए – किसी ऐसी दिशा में, जहाँ से और भी कहीं आगे जाया जा सकता हो ।''[76] बार–बार की बेकारी से उत्पन्न ज़िन्दगी की विषम कटुवाहट भरी घुटन और संत्रास को राकेशजी ने 'लड़ाई' कहानी में स्वर दिया है ।

'भूखे' कहानी की एलवीना पति की बिमारी से उत्पन्न आर्थिक संकट को झेल रही है । अर्थ के अभाव में वह अपने बीमार पति और छोटे बच्चे

की देखभाल ठीक से नहीं कर पाती । अतः भीतर–ही–भीतर घुटन और तनाव का अनुभव करती है । वह अपने पति के बनाये चित्रों को बेचकर इस स्थिति से उबरना चाहती है । किन्तु उसे इसके लिए कोई खरीदार नहीं मिलता । पति की मृत्यु के बाद एलवीना की आर्थिक स्थिति अधिक खराब हो जाती है । आर्थिक अभाव की यह झलक उसके और उसके बच्चे के शरीर से भी झलकता दिखाई देने लगता है । ‘‘वह पहले से काफी बदली हुई थी । उसकी नीली आँखों के नीचे हल्के–हल्के काले दायरे बन गये थे । उसके होठों पर पपड़िया जम रही थी और गालों पर खुश्क सफेदी झलक आई थी.... उसका बच्चा भी पहले से कुछ दुबला हो गया था और उसके होंठ लगातार रोने वाले बच्चे के लग रहे थे ।’’[77]

एलवीना के सौदर्य से आकर्षित भूखे लोग उसे खरीदना चाहते है, उसकी अभाव ग्रस्त स्थिति का फायदा उठाना चाहते है । ऐसी स्थिति में एलवीना अर्थ के अभाव में जीने के लिए संघर्ष करती हुई तनाव महसूस करती है । ‘‘उसकी आर्थिक स्थिति दिन–प्रतिदिन गिरती चली जाती है । लेकिन बच्चा बाजार में आलू की टिकिया और कबाब खाने की जिद करता है । वह उसे समझाने के लिए मूंगफली खरीद कर देना चाहती है । लेकिन बच्चा नहीं मानता । वह अत्यंत निराश और खिन्नता से भर जाती है । अपनी आर्थिक निर्भरता के कारण ही वह इस तरह के तनाव को झेलती है ।’’[78]

‘एक घटना’ कहानी की नीलिमा पुरातत्त्व के विद्वान डॉक्टर हरिवंश की बेटी है । वह नीलिमा को बहुत बड़ी विदुषी बनाना चाहते थे । क्योंकि नीलिमा छोटी–सी आयु से ही चतुराई के साथ तर्क करना सीख गई थी और गंभीर विषयों में भी अपनी संमति दिये बिना नहीं मानती थी । ‘‘डॉक्टर हरिवंश ने अपने जीवन–काल में कुछ भी धन संचित नहीं किया था । उनका विचार था कि वे अपनी बेटी को इतना योग्य बना जाएंगे कि वह हर तरह से स्वावलंबिनी बन सके ।’’[79] किन्तु अचानक ही डॉ. हरिवंश की मृत्यु हो जाती है । इस मृत्यु के पश्चात माँ–बेटी दोनों पैसे–पैसे के लिए तरस जाते

हैं । दिन–ब–दिन घर की आर्थिक स्थिति अधिक–से–अधिक खराब होने लगती है । घर की हालत इतनी खराब हो गयी है कि मेहमान को चाय पिलाने के लिए घर में सिर्फ एक ही प्याली बची हुई है । ऐसी स्थिति में नीलिमा की पढ़ाई छूट जाना स्वाभाविक ही था । यह स्थिति नीलिमा के लिए असहनीय बन जाती है, क्योंकि नीलिमा एक बहुत बड़ी विदुषी बनना चाहती थी किन्तु ‘‘अब नीलिमा अनपढ़ ही रहेगी । वह जो एक बहुत बड़ी विदुषी हो सकती थी, शायद अब कुछ भी नहीं होगी । बात उतनी महत्त्वपूर्ण न होती, यदि वह स्वयं उसे न जानती । ट्रेजेडी यही थी कि वह जानती थी । वह बहुत छोटी आयु में ही अपने को पहचानना सीख गयी थी, और आज वह पहचान ही उसके जीवन की कसम बन रही थी ।’’[80]

आर्थिक हालत सुधारने के लिए या कहे तो दो वक्त की रोटी के लिए नीलिमा अपने पिता द्वारा एकत्र किये हस्त लिखित ग्रंथ बेचने के लिए भी बाध्य हो जाती है । जो डॉक्टर हरिवंश की अमूल्य निधि थे । जिसे ‘‘डॉक्टर हरिवंश ने अपने जीवन काल में देश के विभिन्न भागों से हस्तलिखित ग्रंथ एकत्रित किए थे और उन्हें वे अपनी एक अमूल्य संपति समझा करते थे । यदि उनकी आकस्मिक मृत्यु न होती तो निःसंदेह वे ये ग्रंथ किसी पुस्तकालय को भेंट कर जाते । पर अब परिस्थिति भिन्न थी, और उस परिवार को रूखे गौरव की अपेक्षा धन की अधिक अपेक्षा थी ।’’[81] आर्थिक विवशता ने नीलिमा को पिताजी की इस बहुमूल्य निधि को नगण्य कीमत पर बेचने के लिए विवश कर दिया और उसे एक विदूषी के बदले सामान्य ही बने रहने के लिए बाध्य कर दिया । आर्थिक अभाव ने नीलिमा के जीवन में छटपटाहट और संघर्ष भर दिया है । डाक्टर हरिवंश के मित्र ‘‘मैं’’ उस घर की परिस्थिति और नीलिमा की प्रतिभा से पूरी तरह परिचित होते हुए भी स्वयं के अर्थाभाव में चाहकर भी सहानुभूति के अलावा उन्हें कुछ नहीं दे सकते ।

‘जानवर और जानवर’ कहानी के सभी पात्र पादरी के आतंक को चुपचाप सहन करते है । क्योंकि उनकी नौकरी का सवाल है । पादरी के वर्तन से सभी पात्र भीतरी घुटन और पीड़ा से भीतर–ही–भीतर टूटते चले

जाते हैं । अनिता मुखर्जी जो नौ सौ मील दूर से यहाँ नौकरी के लिए आयी है । आर्थिक विवशता की स्थिति में पादरी के अत्याचार और वासना का शिकार बन जाती है । क्योंकि उसके घर में वह अकेली कमाने वाली है और उस पर अपने भाई और माँ के जीवन निर्वाह का दायित्व है । अतः वह घुटन महसूस करते हुए भी पादरी के अत्याचार को सहने के लिए बाध्य दिखाई पड़ती है ।

आर्थिक विवशता के कारण उत्पन्न उठ रहे रोजमर्रा के जीवन संघर्षो और उससे उत्पन्न ज़िन्दगी की छटपटाहट, घुटन, तनाव को राकेशजी ने अपनी कहानियों में सशक्त रूप में चित्रित किया है । 'उलझते धागे' कहानी में निम्न मध्यवर्ग की आर्थिक विषमता से उत्पन्न तनावपूर्ण परिस्थिति को राकेशजी ने अपना स्वर दिया है । 'उलझते धागे' कहानी में शिमला के पहाड़ी इलाके में ठण्ड़ी रात में रिक्शा खींचते मजदूरों के रोजी–रोटी के लिए किये जाने वाले संघर्ष को सचोट ढंग से प्रस्तुत किया है ।

प्रस्तुत कहानी रिक्शा खींचने वाले मजदूरों के जीवन की त्रासदी है । जो सुबह से लेकर रात तक सवारी को खींचते हैं । पर किसी–किसी दिन तो सुबह से लेकर रात तक सवारी का सिर्फ इन्तजार ही करते रह जाते हैं । रात नौ बजे के बाद कोई सवारी मिलने की उम्मीद न रहने पर भी रोजी–रोटी चल जाने की आशा में इन्तज़ार करते है, क्योंकि ''सवारी और मौत का कोई पता नहीं ।''[82]

कथानायक अपनी ज़िन्दगी की विवशता को स्वर देते हुए कहता है – ''मेरा बाप फेफड़ो के बुखार में मरा था । अब तो उसे मरे भी पाँच साल हो गए । पाँच साल से मैं सवारियाँ खींच रहा हूँ । मेरा बाप सत्रह बरस का था जब वह इस काम में लगा था । मैं जब लगा था तो मैं पूरे चौदह का भी नहीं था । हमारा यह पूश्तैनी धंधा है । लेकिन एक बात मेरी समझ में नहीं आती – हम सवारियाँ ढोते है कि पेट भरें और पेट भरते है कि सवारियाँ ढोएँ – बड़ी अजीब बात लगती है ।''[83] उसकी ज़िन्दगी का सत्य यह है कि उसे 'मेम', 'साहब' आदि की सवारियाँ रिक्शा से खींचनी ही है ।

कभी–कभी तो बर्फ के रास्ते पर दौड़ते–दौड़ते पैर बर्फ से सन्न हो जाते है, नीचे से पैर में पत्थर गड़ते है, एक–एक कदम उठाना मुश्किल है, फिर भी उसे रिक्शा लिए भागते रहना पड़ता है । क्योंकि "आखिर रोटी का मामला है, काम नहीं करे तो खाना कहा से खाएँ ?"[84]

दो वक्त की रोटी के लिए रिक्शे में लोगों को खिंचना इन रिक्शा चलाने वाले मजदूरों की नियति बन गया हैं । हवा घर के पास बैठे युगल की स्त्री अपना सैंडल उतारकर पुरुष से कहती है कि उसको चलने की आदत न होने के कारण उसके पैर में छाला पड़ गया है, यह सुनकर कथानायक अपने विषय में सोचता है – "यहाँ पैरों में कितने ही सुराख हो गये है । पैरों को छूकर मुझे वैसी ही झुरझुरी होती है जैसे दीमक खायी लकड़ी को छूकर होती है । यह अंगूठे के नीचे एक बड़ा सूराख है, इसके आस–पास कितने ही छोटे–छोटे सुराख और हैं । अब तो पैरों की चमड़ी बिलकुल मर गयी है । बर्फ और पत्थर को छोड़कर और किसी चीज का पैरों के नीचे पता ही नहीं चलता ।"[85]

कथानायक शिब्बी नाम की लड़की से प्यार करता है । उसे भी अपना और अपने बाप का पेट भरने के लिए घास छीलने जाना पड़ता है । इसलिए अब उसकी मुलायम उँगलिया भी कड़ी हो गयी है । उसका माँस फटा सा रहने लगा है । उसके पैरों में भी अब सुराख हो गये है ।

इन मजदूरों के पास न तो इतना पैसा है कि वह भर पेट खाना भी खा सके और न रहने के लिए कोई सही ढंग का मकान, और इतनी सर्दी में ओढ़ने के लिए ढंग का कपड़ा ही है । इन रिक्शा खिंचने वाले मजदूरो को देखकर दो नौजवान अपनी संवेदना व्यक्त करते हुए कहते हैं –

"इन बेचारों की भी क्या ज़िन्दगी है ?"

"चार आदमी मिलकर एक आदमी को खींचें यह हैवानियत है ।"[86]

गाँव से लेकर शहर तक बेरोजगारी की विकट समस्या ने मनुष्य को मशीन की तरह जड़ बना दिया है । क्योंकि उसे अर्थ के लिए मशीन की तरह दौड़ते ही रहना पड़ता है । उसकी इच्छाएँ और संवेदनाओं को वह अर्थ

से ज्यादा प्राधान्य न दे पाने की स्थिति में दबा देता है । क्योंकि रोजी–रोटी का सवाल प्राथमिकता प्राप्त करने में सफल रहता है । 'उलझते धागे' कहानी का कथानायक शर्दी की रात में आग लपते हुए तम्बाकू पीने की इच्छा रखता है तथा शिब्बी को मंदिर के पीछे मिलना चाहता है । लेकिन पहले सवारी मिलने की राह में और बाद में सवारी मिल जाने पर वह अपनी इच्छा को दबा कर 'साहब और मेम साहब' की सवारी खिंचने के लिए तैयार हो जाता है ।

देर रात में मिली सवारियों को पहुँचाने के लिए उसे अपनी इच्छाओं का गला घोंटना पड़ता है । वह बहुत चाह रहा था कि वह शिब्बो के पास जाये । वह यह बात भी सोच लेता है कि दो मील की दूरी को आधे पौंने घंटे में तय कर लेगा । तभी अचानक सवारी मिलने पर वह अपना ख्याल त्याग देता है ।

'उलझते धागे' कहानी में राकेशजी ने रिक्शा खिंचने वाले मजदूरों के अर्थ को लेकर हो रहे जीवन संघर्ष को संवेदना के साथ प्रस्तुत किया है ।

'मिट्टी के रंग' के मैथिलोन और सदानंद दोनों अपनी नौकरी के लिए अपने परिवार और देश से बहुत दूर मिश्र में स्थित भारतीय सेना के सैनिक है । दोनों को अपनी इस नौकरी के प्रति कोई लगाव नहीं है । वे सिर्फ वेतन के लिए ही नौकरी करते है । क्योंकि अगर वे सेना में नौकरी नहीं करेंगे तो परिवार को पैसे कहाँ से भेजेंगे ? सदानंद को पता चलता है कि दो दिनों के बाद उनकी टुकड़ी फ्रंट पर लड़ने के लिए भेज दी जायेगी । यह सुनकर वह मैथिलोन से कहता है कि "मैं लड़ना नहीं चाहता ।"[87] मैथिलोन उसे कहता है – "तो जहर खा लो । जब तक जिन्दा हो, तब तक तुम लड़ने के लिए मजबूर हो । तुम्हारे चाहने न चाहने की परवाह यहाँ किसी को नहीं । तुम्हारी जान दूसरों ने खरीद रखी है । उनके काम आओ, नहीं तो नष्ट हो जाओ । हम दूसरों की लड़ाई लड़ रहे है, दोस्त ! इस लड़ाई में सिपाही की एक ही चीज अपनी है, और वह है वेतन के रुपये । उन्हें वह जिस तरह चाहे खर्च कर सकता है ।"[88]

मैथिलोन अपनी बहन के लिखे पत्र में अर्थ के लिए हो रहे संघर्ष को स्पष्ट करते हुए लिखता है – "मैं जिसे लड़ता हूँ, वे क्यों मेरे दुश्मन है, मैं नहीं जानता । मैं लड़ता हूँ क्योंकि मुझे लड़ने का वेतन मिलता है । सिपाही से कमांड़र तक हर एक को वेतन मिलता है । मिनिस्टर और प्राइम मिनिस्टर को वेतन मिलता है । सम्राट और उसके परिवार को वेतन मिलता है । इतने वेतनों के पीछे कोई लड़ाने वाली शक्ति है । मैं उसे नष्ट नहीं कर सकता क्योंकि मुझे हर महीने वेतन की जरूरत पड़ती है ।"[89]

सिर्फ वेतन के लिए अपनी जान देने और लेने को तैयार मैथिलोन और सदानंद के चरित्र के माध्यम से राकेशजी ने अर्थ के लिए हो रहे जीवन संघर्ष की सशक्त अभिव्यक्ति दी है ।

'क्लेम' कहानी में राकेशजी ने बस की सुविधा के बाद आर्थिक संकट झेल रहे तांगेवाले साधुसिंह की स्थिति का वर्णन किया है । देश विभाजन के बाद भारत आये साधुसिंह के पास उसका घोड़ा अफसरा और तांगा ही उसकी रोजी–रोटी का प्रमुख माध्यम है । लेकिन बस की सुविधा के कारण उसको सवारियों के लिए मुश्किल का सामना करना पड़ रहा है । अतः दो–तीन सवारियों को लेकर भी उसे चलना पड़ता है । वह मोडेल टाउन से कचहरी तक का लंबा सफर सिर्फ पांच पैसे में ले आता है । सुबह से उसने मोडल टाउन से कचहरी तक के तीन फेरे लगाये थे मगर फिर भी अभी उसकी जेब में सत्रह आने भी जमा नहीं हुए थे । उसे दोपहर में कचहरी से लौटने समय एक भी सवारी नहीं मिली । जून की चिलचिलाती धूप में उसका मन होता था कि एक गिलास शिकंजवी बनवाकर पी ले और कुछ देर रिक्शावालों के पास ही लेट ले । लेकिन जब उसका ध्यान अपनी जेब की ओर गया तो उसने अपना इरादा बदल दिया । क्योंकि "साधुसिंह की जेब में जो सत्रह आने थे वे भी हिसाब से उसके अपने नहीं थे । घोड़े के लिए चारा खरीदने के लिए ही उसे कम–से–कम दो रुपये चाहिए थे । उसने जबान से होठों को गीला किया और घोड़े का रुख शहर की तरफ कर दिया ।"[90]

पूरे दिन के कठीन परिश्रम और दौड़ते रहने पर भी साधुसिंह अपना और अपने घोड़े का पेट मुश्किल से भर पाता है । जीवन निर्वाह के लिए पैसे जुटाने के संघर्ष में जी रहे साधुसिंह का अंकन राकेशजी ने बखूबी किया है ।

'सौदा' कहानी में सौदेबाजी का चित्रण है । लाला वर्गगत चरित्र है । मोहन राकेश की कहानियों में ऐसे वर्गगत चरित्र बहुत कम हैं । पहाडी इलाके में पहाडी पर घूमने के लिए लाला घोडे का सौदा करना चाहता है, किन्तु कोई भी घोडेवाला बिना बकसीस चलने के लिए तैयार नहीं होता । लाला घोडेवालों को अपने तरीके से चलाने का प्रयास करता है, बिन्तु वह अपनी संकुचित दृष्टि और काइयाँपन के कारण अन्त तक असफल रहता है । यहाँ राकेशजी ने लाला जैसे वर्गगत चरित्र के माध्यम से घोडेवाले निम्न लोगों के शोषण करने की प्रवृत्ति पर प्रकाश डाला है ।

राकेशजी ने अपनी कहानियों में अर्थ से उत्पन्न जीवन की छटपटाहट, तनाव, संघर्ष और घुटन को सशक्त अभिव्यक्ति दी है । अर्थ का बढ़ता प्रभाव व्यक्ति को दोहरा जीवन जीने के लिए किस प्रकार मजबूर कर देता है, इस पर भी राकेशजी ने प्रकाश डाला है । उपरोक्त कहानियों में राकेशजी ने अर्थ से जुड़े विविभ प्रश्नों का विविध पहलुओं से चित्र खिंचा है । अतः इन कहानियों में जीवन की इस वास्तविकता की सही तस्वीर उभरकर सामने आयी है ।

५.५ आर्थिक विवशता में पीसता नारीत्व :

शताब्दियों से भारतीय नारी सामंती व्यवस्था और पुरुष से आक्रान्त हो घर की चार दीवारी में बंद रही । अतः घर गृहस्थी और प्रजनन से आगे उसका कोई कार्य नहीं माना गया । उन्नीसवीं शती से प्रारंभ हुआ नारी जागरण बींसवी शती में विकास की ओर उन्मुख हुआ । परिणामतः नारी शिक्षा का प्रयास हुआ और स्वतंत्रता के बाद भारतीय समाज, संस्कृति आदि में जो नैतिक मूल्यों शा परिवर्तन हुआ, उसने नारी को भी आंदोलित किया । फलतः

नारी अपने अधिकारों के प्रति और अपने आत्म विकास की ओर जागृत हुई । बदलते परिवेश ने नारी को स्वतंत्र दर्जा तो दिया, पर इसके साथ–साथ उसके तनाव और दर्द भी बढ़े हैं । क्योंकि आज वैयक्तिक और सामाजिक इकाईयों में व्यक्ति ने आर्थिक हित के लिए नैतिक और चारित्रिक मूल्यों को नकारा है । अतः आर्थिक संकट को झेलती हुई नारी अपने घर–परिवार की हालत सुधारने के लिए और आर्थिक स्तर ऊँचा लाने के लिए घर से बाहर नौकरी या व्यवसाय में लग गयी है । बढ़ते आर्थिक संघर्ष ने नारी को घर–बाहर के विविध क्षेत्रों में प्रवृत्त कर दिया है, किन्तु फिर भी यह परिवर्तन कुछ खास नहीं देखा गया । कुछ वर्गो और कुछ पदों पर आसीन नारियों को बाद करके देखे तो आज भी सामान्य नारी की मूल स्थिति में कुछ खास परिवर्तन नहीं हुआ हैं । दिन–प्रतिदिन अर्थ का बढ़ रहा प्रभाव नारी की स्थिति दारुण बना रहा है । आर्थिक विवशता से जूझती हुई नारी मजबूर बनी हुई है तो कहीं–कहीं निर्जीव चीजों की तरह उसका मूल्य भी लगाया जा रहा है ।

'जानवर और जानवर', 'रोजगार', 'आखिरी सामान', ''हक–हलाल', 'चौगान', 'कटी हुई पतंगे', 'बनिया बनाम इश्क', 'मरुस्थल', 'वासना की छाया में', 'गुनाह बेलज्जत', सोया हुआ शहर', 'सुहागिनें' आदि कहानियों में राकेशजी ने अर्थ के लिए पीसते नारीत्व को अपना स्वर दिया हैं ।

'जानवर और जानवर' कहानी की अनिता मुखर्जी और मणि नानवती आर्थिक कमजोरी या आर्थिक अभाव के कारण ही पादरी की काम वासना का शिकार बनती है । अनिता की आर्थिक मजबूरी उसे पादरी की हवस का शिकार बना देती है, क्योंकि वह घर में अकेली कमानेवाली है, उसकी माँ की आँखें कमजोर हो गयी है, तथा भाई अभी पढ़ रहा है । वह इस विवशता में घर से बाहर नौ–सौ मील दूर नौकरी करने आयी है । वह अपनी इस स्थिति को स्पष्ट करती हुई कहती है – ''मैं अपने घर में अकेली कमानेवाली हूँ । मेरी माँ पहले बहुएँ सीया करती थी, पर अब उसकी आँखें बहुत कमजोर हो गयी है । मेरा छोटा भाई अभी पढ़ता है, उसके एम.एस.सी. करने तक मुझे नौकरी करनी है ।''[91]

अनिता आर्थिक अभाव को झेल रही है । यह अभाव उसके कपड़े और सामान से अधिक सशक्त ढंग से व्यक्त हुआ है । "दरवाजा खुलने पर पीटर ने उसके सामान पर एक सरसरी नज़र डाली । स्कूल के फर्नीचर के अलावा उसे एक टीन का ट्रंक और दो–चार कपड़े ही दिखाई दिए । मेज पर एक सस्ता टेबल लैम्प रखा था ।"[92] नवम्बर की पहाड़ी इलाके की ठण्ड झेलने के लिए उसके पास एक शाल के अलावा कुछ नहीं था । वह कहती है – "मेरे लिए मई और नवम्बर दोनों बराबर है । मेरे पास उनी कपड़े है ही नहीं ।"[93] इस पर पीटर कहता है कि "एक बढ़िया सा कोट सिला लो ।"[94] इस पर अनिता मीठी–सी हँसी हँसते हुए कहती है – "मेरे पास इतने पैसे होते तो मैं यहाँ नौकरी करने ही क्यों आती ।"[95] अनिता जॉन और पीटर को अपने कोटेज में चाय के लिए निमंत्रण देती है । तब वह अपने और पीटर के लिए सासर में चाय डालती हुई कहती है – "हमारे घर में कुल दो ही प्यालियाँ थी । वह मैं उठा लाई थी । आते ही एक टूट गयी ।"[96] वह पहला वेतन मिलने पर अपनी माँ और भाई के लिए कुछ कपड़े भेजना चाहती है क्योंकि उनके पास अच्छे कपड़े नहीं हैं । अनिता और उसका परिवार आर्थिक अभाव झेल रहा है । अनिता नौकरी करके इस अभाव को दूर करने का प्रयत्न कर रही है । अनिता की इस लाचारी का फायदा पादरी उठाता है । वह अनिता को अपनी हवस का शिकार बनाता है और अनिता अपनी आर्थिक हालत के कारण इसे चुपचाप सहने के लिए मजबूर दिखाई देती है ।

जॉन और पीटर अनीता को पादरी की हवस से बचाना चाहते है । वह अनिता को बताना चाहते है कि वह किन जानवरों के बीच आ गयी है । किन्तु अनिता की स्थिति को जानकर चाहकर भी वे चुप रह जाते हैं । अनिता को अपने परिवार की जिम्मेदारी उसे अपने नारीत्व के साथ समझौता करने के लिए मजबूर कर देती है । अनीता की शाल भी उसकी विवशता नहीं छिपा सकती ।

'बनिया बनाम इश्क' कहानी में राकेशजी ने नारियों के अस्मत के व्यापार का यथार्थ चित्रण खिंचा है । कहानी का इन्द्रदेव सिंधी बाजार की एक

वेश्या लड़की से प्रेम करने का दावा करता है । वह उसे अपनी रखैल बनाकर अपने लिए रखना चाहता है । वह यह भी चाहता है कि वह लड़की जगह–जगह पर जाकर मुजरा या अपने अंग का प्रदर्शन न करे, वह सिर्फ उसके लिए ही बनी रहे । इन्द्रदेव उसे पांचसौ रुपया महीना देकर अपने लिए रखना चाहता है ।

'सोया हुआ शहर' में भी निम्न मध्यमवर्गीय लड़कियों के अस्मत के व्यापार का चित्रण हुआ है । कहानी की लड़की अपने शरीर का सौदा अर्थ के स्तर पर करती है । साथ ही कहानी में रात में लड़कियों की तिजारत करने वालों का पर्दाफाश किया गया है । लेखक ने बड़ी सूक्ष्मता और सांकेतिकता से दिन के उजाले में शरीफ बने रहने वालों को रात में इस काले धंधे का सौदा करते और करवाते लोगों की ओर अंगूलि निर्देश किया है ।

'गुनाह बेलज्जत' कहानी में हरजीत कौर जैसी मोटी चमड़ी की औरत सुन्दरी जैसी नाबालिग लड़कियों से अर्थ के अभाव में देह का सौदा करवाती दिखायी देती है । पैसे के अभाव में स्त्री की मजबूरी का फायदा उठाकर नगर और महानगर हो रहे शारीरिक व्यापार के बढ़ रहे प्रचलन को प्रस्तुत कहानी में यथार्थ रूप से अंकित किया है ।

'रोजगार' कहानी की मिस दारूवाला को अपने और अपने भाई की रोजी–रोटी के लिए जब और कोई रास्ता नहीं मिलता, तब वह अपना जिस्म बेचने के लिए मजबूर हो जाती है । उसे 'कोलगर्ल' बनना पड़ता है । होटल की मालकिन मिसेज़ एडवर्ड्स को जब पाँचवी मंजिल के किसी कमरे के लिए उसकी जरूरत पड़ती थी तब वह हरबंश सिंह टैक्सी ड्राईवर को भेजकर उसे बुलवा लिया करती थी । मिस दारूवाला की आर्थिक विवशता ने उसे मात्र 'टैक्सी' बनाकर रखा दिया है ।

'कटी हुई पतंग' की राजकरनी विभाजन के पश्चात् उत्पन्न आर्थिक तंगी की स्थिति में अपने आदर्शो को छोड़ने के लिए लाचार सी दिखाई देती है । जिस राजकरनी को कृष्ण नगर के महोल्ले की लड़कियां 'बिल्ली', 'बाधन', 'रींछनी' कहा करती थी, वह बदली हुई परिस्थिति में चुपचाप गाली खाने पर

भी उतेजित नहीं होती । आर्थिक विवशता से वह मुरझा गयी है । उसकी इस परिस्थिति का फायदा उठाने के लिए लोग तैयार ही खड़े है । ‘‘उन आँखों में वही लूटने वाला भाव है, जो पतंग लूटने वाले बच्चों की आँखों में था ।’’[97]

‘लेकिन इस तरह..’ की राजकरनी स्कूल में नौकरी करती है । यहाँ वह भाईजी की वासना का शिकार होकर एक ही साल में मृत्यु को गले से लगा लेती है ।

अर्थ की बढ़ती महत्ता ने रिश्तों को छिन्न–भिन्न कर दिया हैं । आज पैसे के लिए भाई–बहन को और बाप–बेटी को बाजार में खड़ा करने से नहीं हिचकिचाता । भाई को अपनी बहन की अस्मत का सौदा करके अपना पेट भरना है, तो बाप को बेटी के बदले लाखों रुपये चाहिए, तो कहीं–कहीं नौकरी में तरक्की के लिए पति अपनी पत्नी को आगे करने से नहीं चुकता । राकेशजी ने अर्थ के आधार पर बनते–बिगड़ते रिश्तों के बीच पीसती नारियों के जीवन की विडंबनाओं को ‘उर्मिल जीवन’, ‘चौगान’, ‘मरुस्थल’, ‘‘हक हलाल’, ‘रोजगार’, ‘सुहागिनें’, ‘वासना की छाया में’ आदि जैसी कहानियों में अंकित किया हैं ।

‘मरुस्थल’ कहानी का धनपतराय अपनी बेटी को बाजार में सजी–धजी गुड़िया बनाकर बेचना चाहता है । वह अपनी बेटी के बदले लाखों रुपये कमाने की इच्छा रखता है । उसकी बेटी इन्दु डॉक्टर बनना चाहती है, किन्तु वह अपनी बेटी की भावनाओं और सपनों को तोड़कर उसे अपनी मर्जी से चलाना चाहता है । वह इन्दु का मूल्य बाज़ार में इस तरह लगाता है जैस वह उसकी बेटी या जीवित बच्ची न होकर एक पुतली या बाजार में बेची और खरीदी जानेवाली चीज की बात करता हो । इन्दु की माँ भी इन्दु के जिस्म की कमाई खाना चाहती है । वे इन्दु के बदले पैसे ही चाहते हैं । इस कहानी में अर्थ के लिए निरर्थक होते संबंधों का चित्रण हुआ है । साथ ही इन्दु की बाज़ारू कीमत धनपतराय के माध्यम से जिस प्रकार लगायी जाती है, इससे नारी की यथार्थ स्थिति का राकेशजी ने अंकन किया है ।

'वासना की छाया में' कहानी का बूढ़ा जाट पत्नी की मृत्यु के बाद रुपये के बलबूते पर अपने लिए स्त्री खरीदना चाहता है । जो उसकी हवस शांत कर सकती हो । अगर यह नहीं हुआ तो वह अपनी चौदह वर्षीय लड़की को किसी दूसरे जाट को देकर बदले में अपने लिए स्त्री खरीदना चाहता है । 'गुनाह बेलज्जत' का सरदार सुन्दरसिंह भी पैसे के बदले सुन्दरी का शरीर और प्यार खरीदना चाहता है ।

'हक हलाल' कहानी का पंडित जो चालीस वर्ष के आसपास की उम्र का है, सत्रह–अठारह वर्ष की युवती लड़की को उसके गरीब बाप से डेढ़ सौ रुपया देकर ब्याह लाता है, या कहे कि खरीद लाता है । किन्तु अनमेल विवाह और पंडित से तंग आकर जब वह भाग जाती है तब पंडित उसके बाप को धमकी देकर पत्नी के बदले उसकी छोटी लड़की को अपने घर ले आता है । पंडित की पत्नी के वापस आ जाने पर भी वह अपनी साली को वापस करने को तैयार नहीं होता । वह उसकी कीमत देने की बात करते हुए कहता है – ''इसका बाप बहुत गरीब आदमी है । उसके पास इसे खिलाने के लिए पैसे नहीं है । उसको इसका सौ सवासौ चाहिए सो मैं ही उसे दे दूँगा ।''[98] आर्थिक विषमता के कारण बाप अपनी बेटियों की शादी नहीं कर सकता पर उन्हें बेचकर पैसे अर्जित करता है । और पंडित जैसे आदमी पैसे के बदले में स्त्रीयों को खरीदने से नहीं चुकते । इस कहानी में राकेशजी ने पहाड़ी इलाके के निम्न वर्गीय परिवार की नारियों पर हो रहे अत्याचार और शोषण को स्पष्ट किया है ।

'उर्मिल जीवन' कहानी की नीरा अर्थ के अभाव में अपनी जीजी की मृत्यु के बाद अपने अधेड़ जीजाजी की पत्नी बनकर उसकी वासना का शिकार बनती नज़र आती है । नीरा की लाचारी यह है कि उसकी माँ के पास उसका अन्य जगह ब्याह करने के लिए पैसे नहीं है । अतः वह बड़ी बेटी की मृत्यु के बाद सामाजिक परंपरा का निर्वाह करने की आड़ में नीरा का विवाह अपने बड़े दामाद से करके शांति की साँस लेना चाहती है । किन्तु लाल चूड़िया और लाल सिन्दूर देखकर नीरा महसूस कर रही है – ''छूरी पर

लहू गीला सा लगता था । कसाई, आग, बकरी और घास यह एक परंपरा है । वह भी इसी परंपरा को निबाह रही है ।''[99] 'उर्मिल जीवन' कहानी में राकेशजी ने परंपरा की आड़ में हो रहे स्त्री के शोषण और उसकी दयनीय स्थिति को यथार्थ वास्तविकता के साथ अपने शब्दों में रेखांकित करने का प्रयास किया है ।

'चौगान' कहानी की वृद्धा अपनी युवा बेटी सन्तो को पाँचसौ रुपये देकर साहब को सोंप देती है ।

''सुहागिनें'' कहनी की दोनों सुहागिनें मनोरमा और काशी अपने अपने पति के शोषण का शिकार है । मनोरमा शिक्षित और आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर स्त्री है । किन्तु फिर भी उसे अपने पति की इच्छानुसार अपनी भावनाओं का गला घोंटना पड़ रहा है । पति की इच्छानुसार वह अधिक पैसे बचाने के चक्कर में व्यक्तिगत खर्च पर कटौती करते हुए अपने पति की बहन के विवाह के लिए दहेज के पैसे जुटाने में पति की मदद करती दिखाई देती है । मनोरमा पढ़ी–लिखी होने पर भी अपने पति द्वारा हो रहे अन्याय को चुपचाप सहती नज़र आती है । दूसरी तरफ उसकी नौकरानी काशी जो अनपढ़ और ग्रामीण स्त्री है, अपने पति के अत्याचार का शिकार है । काशी का पति दूसरी स्त्री के साथ दूसरे शहर में रहता है । किन्तु साल में एक बार वह सेब के पैड़ का ठेका देने काशी के घर आता है । तब वह काशी का शारीरिक और आर्थिक शोषण करके हर बार उसे कोख में एक बच्चा देकर जाता है और साथ ही साथ उसको पीटकर साल भर के बचाये पैसे भी छीनकर ले जाता है । प्रस्तुत कहानी में राकेशजी ने शिक्षित और अनपढ़ दोनों सुहागिनों की स्थिति का वर्णन करते हुए उस पर हो रहे अत्याचार को रेखांकित किया है ।

'आखिरी सामान' कहानी का मि. भंडारी स्वयं अपनी पत्नी के जिस्म का सौदा करके नौकरी में तरक्की पाना चाहता है । किन्तु जब मिसेज़ बेला भंडारी द्वारा अपना आबाद बचाव कर लेने की स्थिति में मि. भंडारी के अधिकारी खफा होकर मि. भंडारी के खिलाफ साजिस करके उसे जेल में बंद

करा देता है । उसकी रिहाई के लिए बेला को घर का सामान भी बेचना पड़ जाता है । उसे लगता है कि अपने पति को छुड़ाने के लिए उसे स्वयं भी बिकना पड़ेगा । कहानी के अंत में निराशा की स्थिति में घर की सीढ़ियाँ उतरती हुई वह अपने को भी इच्छाविहीन सामान के रूप में महसूस करती है – ''सीढ़ियाँ उतरते हुए उन्हें लगा जैसे वे आप नहीं उतर रहीं, घर का आखिरी सामान नीचे पहुँचाया जा रहा है ।''[100]

'आखिरी सामान' कहानी में उत्पन्न सारी परिस्थितियों के मूल में अर्थ का बढ़ता महत्त्व ही स्पष्ट होता है । अर्थ के सामने रिश्ते नाते सबकुछ निरर्थक नज़र आ रहा है ।

किसी जमाने में स्त्री को संपति माना जाता था, उस पर तरह–तरह के दुर्व्यवहार भी किये जाते थे । उसके अस्तित्व को प्राणी या वस्तु की तरह समझा जाता था । आज परिस्थितियों ने करवट बदली है । जिसके कारण स्त्री शिक्षा को प्राधान्य दिया जा रहा है, वह आत्मनिर्भर हो रही है, अपने अस्तित्व के प्रति जागृत हो रही है, वही आर्थिक संघर्ष ने उसके जीवन में थकान, टूटन, निराशा एवं विवशता भर दी है । कभी–कभी तो उसकी स्थिति लेने और बेचने की वस्तु मात्र की बनकर रह गयी है । जिसे पुरुष कभी अपने फायदे के लिए बेच सकता है या फिर खरीद सकता है । राकेशजी ने नारी जीवन के इस सत्य को अपनी कहानियों में उद्घाटित किया है ।

५.६ निष्कर्ष :

राकेशजी की युग–चेता दृष्टि ने समाज में बढ़ते अर्थ के महत्त्व के कारण बनते बिगड़ते मानवीय संबंधों को अपनी कहानियों में स्वर देते हुए संबंधों के सामने अर्थ किस प्रकार हावी हो रहा है इसका यथार्थवादी स्वर में निरूपण किया है । अर्थ के बढते प्रभाव से ढह रहे रिश्तों के कारणों को भी राकेशजी ने मानव–मन के भीतर में जाकर झाँका है । बेरोजगारी की समस्या और उससे उत्पन्न आर्थिक संकट को राकेशजी ने युग की समस्या के रूप में चित्रित करते हुए विभिन्न पहलुओं से उन पर प्रकाश डाला है । आर्थिक

अभाव से आज ज़िन्दगी बद–से–बदतर हो रही है । परिणामतः उत्पन्न ज़िन्दगी के दोहरापन, संघर्ष, घुटन, तनाव और छटपटाहट को राकेश ने संवेदना और यथार्थ के साथ अभिव्यति दी हैं । साथ ही अर्थ के अभाव में दिन–ब–दिन खराब हो रही नारी की स्थिति को भी राकेशजी ने स्वर दिया है ।

वर्तमान समय में अर्थ का बढ़ता प्रभाव संबंधों में अमानवीयता की स्थिति पैदा कर रहा है । अर्थ आज के समाज की धुरी बन गया है । इस धुरी का आकर्षण इतना प्रभावपूर्ण है कि कोई भी इसके प्रभाव से मुक्त नहीं रह सकता । आज अर्थ ही सभी संबंधों में अपना सर्वोच्च स्थान बना चुका है । राकेशजी ने अर्थ से जुड़ी विविध समस्या और उसके प्रभाव से हो रहे मूल्य विघटन को अपनी कहानियों में पूर्ण यथार्थ और संवेदना के साथ अभिव्यक्ति दी है ।

संदर्भ सूची :

१	श्रृंखला की कडिया, महादेवी वर्मा, पृ. ११०
२	मोहन राकेश की कहानियों में आधुनिक बोध, डॉ. सदनकुमार पाल, पृ. ६४-६५
३	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'मरुस्थल' पृ. ९९
४	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'रोजगार' पृ. २२९
५	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'रोजगार' पृ. ३०१
६	मोहन राकेश की कहानियों में आधुनिक बोध ,डॉ. सदनकुमार पाल, पृ. ८५
७	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'उसकी रोटी' पृ. २३२
८	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'उसकी रोटी' पृ. २३५
९	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'गुनाह बेलज्जत' पृ. २५५
१०	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'बनिया बनाम इश्क' पृ. ४५६
११	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'मिट्टी के रंग' पृ. २४७
१२	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'मिट्टी के रंग' पृ. २४७
१३	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'मिट्टी के रंग' पृ. २५०
१४	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'मिट्टी के रंग' पृ. २५०
१५	मोहन राकेश की कहानियों में आधुनिक बोध ,डॉ. सदनकुमार पाल, पृ. १२०
१६	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'ज़ख्म' पृ. ४१७
१७	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'ज़ख्म' पृ. ४१७
१८	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'ज़ख्म' पृ. ४१५
१९	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'ज़ख्म' पृ. ४१५
२०	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'ज़ख्म' पृ. ४१५
२१	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'ज़ख्म' पृ. ४१६
२२	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'मिस्टर भाटिया' पृ. ३३७
२३	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'मिस्टर भाटिया' पृ. ३४१
२४	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'मिस्टर भाटिया' पृ. ३४०
२५	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'मिस्टर भाटिया' पृ. ३४५
२६	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'लड़ाई' पृ. ४६१
२७	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'भूखे' पृ. १०४
२८	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'भूखे' पृ. १०५
२९	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'भूखे' पृ. १०४
३०	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'वारिस' पृ. ४२०
३१	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'वारिस' पृ. ४२१
३२	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'वारिस' पृ. ४२३
३३	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'वारिस' पृ. ४१९
३४	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'गुंझल' पृ. ३८१
३५	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'गुंझल' पृ. ३८८
३६	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'गुंझल' पृ. ३८६

३७	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'शिकार' पृ. ३४६
३८	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'शिकार' पृ. ३४६
३९	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'शिकार' पृ. ३४७
४०	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'शिकार' पृ. ३४७
४१	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'शिकार' पृ. ३४७
४२	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'शिकार' पृ. ३४८
४३	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'शिकार' पृ. ३४८
४४	मोहन राकेश व्यक्तित्व और कृतित्व, डॉ. सुष्मा अग्रवाल, पृ. २४३
४५	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'आर्द्रा' पृ. ४१
४६	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'आर्द्रा' पृ. ४१
४७	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'आर्द्रा' पृ. ४१
४८	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'आर्द्रा' पृ. ४२
४९	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'आर्द्रा' पृ. ४१
५०	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'आर्द्रा' पृ. ४५
५१	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'आर्द्रा' पृ. ४२
५२	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'पांचवे माले का फ्लैट' पृ. २६४
५३	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'पांचवे माले का फ्लैट' पृ. २६८
५४	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'पांचवे माले का फ्लैट' पृ. २६५
५५	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'पांचवे माले का फ्लैट' पृ. २६३
५६	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'पांचवे माले का फ्लैट' पृ. २६३
५७	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'पांचवे माले का फ्लैट' पृ. २६३
५८	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'पांचवे माले का फ्लैट' पृ. २६४
५९	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'फटा हुआ जूता' पृ. ३५१
६०	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'फटा हुआ जूता' पृ. ३५५
६१	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'फटा हुआ जूता' पृ. ३५३
६२	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'फटा हुआ जूता' पृ. ३५७
६३	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'फटा हुआ जूता' पृ. ३५७
६४	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'फटा हुआ जूता' पृ. ३५८
६५	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'फटा हुआ जूता' पृ. ३५९
६६	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'फटा हुआ जूता' पृ. ३५९
६७	मोहन राकेश की कहानी यात्रा, डॉ. गोरधन सिंह पृ. ६२
६८	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'मिस्टर भाटिया' पृ. ३३७
६९	मोहन राकेश की कहानी यात्रा, डॉ. गोरधन सिंह पृ. ६४
७०	मोहन राकेश की कहानी यात्रा, डॉ. गोरधन सिंह पृ. ६४
७१	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'मंदी' पृ. ३१६
७२	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'मंदी' पृ. ३१८
७३	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'मंदी' पृ. ३२१

७४	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'मंदी' पृ. ३२१
७५	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'लड़ाई' पृ. ४६०
७६	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'लड़ाई' पृ. ४६०
७७	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'भूखे' पृ. १०६
७८	मोहन राकेश का साहित्य पारिवारिक संबंधो के विघटन की स्थितियाँ, पृ. १७३
७९	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'एक घटना' पृ. ४४६
८०	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'एक घटना' पृ. ४४६
८१	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'एक घटना' पृ. ४४६
८२	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'उलझते धागे' पृ. ४०१
८३	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'उलझते धागे' पृ. ४०२
८४	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'उलझते धागे' पृ. ४०२
८५	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'उलझते धागे' पृ. ४०४
८६	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'उलझते धागे' पृ. ४०४
८७	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'मिट्टी के रंग' पृ. २४७
८८	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'मिट्टी के रंग' पृ. २४७
८९	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'मिंट्टी के रंग' पृ. २५०
९०	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'क्लेम' पृ. १११
९१	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'जानवर और जानवर' पृ. ३७५
९२	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'जानवर और जानवर' पृ. ३७५
९३	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'जानवर और जानवर' पृ. ३७४
९४	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'जानवर और जानवर' पृ. ३७५
९५	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'जानवर और जानवर' पृ. ३७५
९६	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'जानवर और जानवर' पृ. ३७६
९७	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'कटी हुई पतंगे' पृ. ४५९
९८	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, ''हक हलाल' पृ. ३६३
९९	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'उर्मिल जीवन' पृ. १८२
१००	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'आखिरी सामान' पृ. १७९

षष्ठ - अध्याय
मोहन श्चकेश की कहानियों में श्चजनीतिक चेतना

६.१ प्रस्तावना

६.२ सरकारी व्यवस्था के खोखलेपन, निष्क्रियता, घूसखोरी और अन्याय के सामने पीड़ित आम आदमी

६.३ तत्कालीन भ्रष्टाचार और उससे उत्पन्न त्रासदी

६.४ सार्वजनिक रूप से खत्म हो रही वैयक्तिक सुरक्षा

६.५ राजनीतिक प्रतिष्ठा की आड़ में हो रहे कुकृत्यों का चित्रण

६.६ निष्कष

षष्ठ - अध्याय
मोहन राकेश की कहानियों में राजनीतिक चेतना

६.१ प्रस्तावना :

साहित्य सामान्य जन मन वृत्तियों को प्रतिबिंबित करता है । जन मन की वृत्तियाँ समाज में ही प्रस्फुटित एवं विकसित होती है और समाज को समुचित रूप से चलने के लिए राजनैतिक नियमों का परिपालन आवश्यक हो जाता है । इस प्रकार तत्कालीन राजनीति का प्रभाव साहित्य पर पड़े बिना नहीं रहता ।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारतीय राजनीति के विभिन्न परिदृश्य सामने आते हैं । भारतीय जनमानस में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद आकांक्षाओं का मोहभंग हो चुका था, जिस आशा और आकांक्षा से भारतीय जनता ने जिन हाथों में सत्ता सौंपी थी उन हाथों की विश्वसनीयता भंग हो चुकी थी । अतः जनता ने स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद जो सुख, समृद्धि, शांति के स्वप्न देखे थे वह रेत की दीवार की तरह टूट गये, लोगों की तंद्रा टूट चूकी थी । रिश्वतखोरी, भ्रष्टाचार, भाई–भतीजावाद बड़ी तेजी से उभरे, राजनीति का प्रभाव तत्कालीन जीवन पर भी पड़ा । नये प्रजातंत्रीय संस्कारों का उदय हुआ जिसके कारण नये मूल्यों का जन्म हुआ । फलतः अनेक समस्याएँ उठ खड़ी हुई । राष्ट्रीय नैतिकता का अवमूल्यन हुआ । इस प्रजातंत्रीय शासन तंत्र के संक्रांत जीवन का प्रभाव नयी कहानी में देखा जा सकता है ।

तत्कालीन राजनीतिक चेतना के विविध बिंदुओं को राकेशजी ने यथार्थ रूप में अपनी कुछेक कहानियों में अभिव्यक्ति दी हैं । 'परमात्मा का कुत्ता', 'क्लेम', 'हवा मुर्ग', 'एक ठहरा हुआ चाकू' आदि जैसी कहानियों के माध्यम से राकेशजी ने सरकारी व्यवस्था के खोखलेपन, निष्क्रियता, घूसखोरी, अन्याय के सामने दमित आम आदमी की समस्या, सार्वजनिक रूप से खत्म हो रही

सुरक्षा, पुलिस तंत्र की निष्क्रियता, मालिक–मजदूर संघर्ष में नेताओं के स्वयं का फायदा उठाने की मनःस्थिति, दिन–ब–दिन खराब हो रही राजनीतिक व्यवस्था आदि को उजागर करने का सशक्त प्रयास किया है ।

६.२ सरकारी व्यवस्था के खोखलेपन, निष्क्रियता, घूसखोरी और अन्याय के सामने पीड़ित आम आदमी :

'परमात्मा का कुत्ता' सरकारी व्यवस्था का पर्दाफाश करने वाली राकेशजी की सशक्त कहनी है । प्रस्तुत कहानी में देश विभाजन के पश्चात् पनप रहे भ्रष्टाचार एवं सरकारी अफसरों के अमानवीय व्यवहार, निष्क्रियता और घूसखोरी का यथार्थ चित्र खिंचते हुए एक आम आदमी की झुंझलाहट को व्यक्त किया है । सरकारी तंत्र की निष्क्रियता के कारण कथानायक सिर्फ एक नंबर बनकर रह जाता है और जीवन महज एक 'केस' बनकर रह जाता है । व्यक्ति का नंबर बन जाता है और जीवन सरकारी फाइल की डोरी में कैद होकर केस बनकर रह जाता है – यह स्वाधीन भारत की सबसे बड़ी विडंबना बन गयी है ।

सरकारी कार्यालय में चपरासी से लेकर कमिश्नर की कार्य निष्क्रियता के कारण 'परमात्मा का कुत्ता' कहानी के कथानायक बूढ़े सरदार को जमीन के नाम पर गड्ढा एलट कर दिया जाता है । वह इस संबंध में अर्जी देता हे कि उसे गड्ढे की जगह खेती लायक जमीन दी जायें । किन्तु दो साल तक इन्तजार करने के बाद भी जब फाइल आगे नहीं बढ़ पाती तो वह भूखमरी और अभाव को अधिक समय तक झेल न पाने की स्थिति में पूरे परिवार के साथ कार्यालय पर आ जाता है । वह अपना आक्रोश व्यक्त करते हुए कहता है – "इस कमरे से उस कमरे में अर्जी के जाने में वक्त लगता है । इस मेज से उस मेज तक जाने में भी वक्त लगता है । लो मैं आ गया हूँ आज यहीं पर अपना सारा घर–बार लेकर... मैं भूखा मर रहा हूँ और अर्जी वक्त ले रही है ।"[1]

सरकारी अफसर कोई भी काम बिना रिश्वत लिये नहीं करते । अतः वह कथानायक के काम में वक्त ले रहे है और यह कहकर कि कल या परसों आ जाना तुम्हारी अर्जी पर कारवाई 'तकरीबन–तकरीबन' पूरी हो चुकी है । और यह तकरीबन–तकबीरन कार्यवाही तब–तक पूरी नहीं होती जब तक उसे आगे बढ़ाने के लिए रिश्वत नहीं मिलती । कथानायक से रिश्वत न मिलने की स्थिति में दफ्तर का बाबू उसके प्रश्न को अनसुना करते हुए कहता है कि "बाबाजी, आज जाओ, कल या परसों आ जाना । तुम्हारी अर्जी की कार्रवाई तकरीबन–तकरीबन पूरी हो चुकी है ... ।"[2] उतर सुनकर वह कहता है – "तकरीबन–तकरीबन पूरी हो चुकी है ! और मैं खुद ही तकरीबन–तकरीबन पूरा हो चुका हूँ । अब देखना यह है कि पहले कार्रवाई पूरी होती है, कि पहले मैं पूरा होता हूँ । तुम्हारा तकरीबन–तकरीबन अभी दफ्तर में ही रहेगा और मेरा तकरीबन–तकरीबन कफन में पहूँच जाएगा । सालों ने सारी पढ़ाई खर्च करके दो लफज ईजाद किए हैं – शायद और तकरीबन ।"[3] वह सरकारी तंत्र की इस स्थिति से विद्रोह करने के स्वर में कहता है "मैं आज शायद और तकरीबन दोनों घर पर छोड़ आया हूँ । मैं यहाँ बेठा हूँ और यही बैठा रहूँगा । मेरा काम होना हैं, तो आज ही होगा और अभी होगा ।"[4] अपने नाम और केस के विषय में बताते हुए वह कहता है – "मेरा नाम है बारह सौ छब्बीस बटा सात ! मेरे माँ–बाप का दिया हुआ नाम खा लिया कुत्तों ने । अब यही नाम है जो तुम्हारे दफ्तर का दिया हुआ है । मैं बारह सौ छब्बीस बटा सात हूँ । मेरा और कोई नाम नहीं है । मेरा यह नाम याद कर लो । अपनी डायरी में लिख लो । वाहगुरु का कुत्ता बारह सौ छब्बीस बटा सात ।"[5]

सरकारी कार्यालय गप्पाबाजी का अड्डा बन गया है । कार्यालय में सरकारी कार्यो के स्थान पर जो कार्य हो रहे है उस पर राकेशजी ने व्यंग्यात्मक प्रहार किया है – "अंदर हाल कमरे में फाइले धीरे–धीरे चल रही थीं । दो–चार बाबू बीच की मेज़ के पास जमा होकर चाय पी रहे थे । उनमें से एक दफ्तरी कागज़ पर लिखी अपनी ताजा गज़ल दोस्तों को सुना

रहा था ।... एक फरमायशी कहकहा लगा जिसे 'शी–शी' की आवाजों के बीच में ही दबा दिया । कहकहे पर लगाई गई इस ब्रेक का मतलब था कि कमिश्नर साहब अपने कमरे में तशरीफ ले आए हैं । कुछ देर का वक्फा रहा, जिसमें सुरजीतसिंह वल्द गुरमीत सिंह की फाइल एक मेज़ से एक्शन के लिए दूसरी मेज़ पर पहुँच गई, सुरजीतसिंह वल्द गुरमीतसिंह मुसकराता हुआ हाल से बाहर चला गया, और जिस बाबू की मेज से फाइल गई थी, वह पांच रुपये के नोट को सहलाता हुआ चाय पीने वालों के जमघट में आ शामिल हुआ ।''[6]

कमिश्नर साहब भी अपने कमरे में अपने काम का प्रारंभ जिस प्रकार करते है उसे देखकर तो प्रजातंत्र की दशा का कारण और भी मुखर हो जाता है । ''चपरासी से खिड़की का पर्दा ठीक कराकर कमिश्नर साहब ने मेज़ पर रखे ढेर–से कागजों पर एक साथ दस्तखत किए और पाइप सुलगाकर 'रीडर्ज़ डायजेस्ट' का ताजा अंक बैग से निकाल लिया । लेटीशिया बाल्ड्रिज का लेख कि उसे इतालवी मर्दो से क्यों प्यार है, वे पढ़ चुके थे । और लेखों में हृदय की शल्य चिकित्सा के संबंध में जे. डी. रैटफ्लिक का लेख उन्होंने सबसे पहले पढ़ने के लिए चुन रखा था । पृष्ठ एक सौ ग्यारह खोलकर वे हृदय के नये ओपरेशन का ब्योरा पढ़ने लगे ।''[7]

कथानायक सरकारी तंत्र की इस स्थिति से विद्रोह करता हुआ अपने काम को पूरा करवाने के लिए कोई लाज–शरम नहीं रखता और इन सरकारी बाबूओं पर भौंकना शुरू कर देता है । वह कहता है – ''यहाँ तुम सबके सब कुत्ते हो, तुम सब भी कुत्ते हो, और मैं भी कुत्ता हूँ । फर्क सिर्फ इतना है कि तुम लोग सरकार के कुत्ते हो हम लोगों की हड्डीया चूसते हो और सरकार की तरफ से भौंकते हो । मैं परमात्मा का कुत्ता हूँ । उसकी दी हुई हवा खाकर जीता हूँ, और उसकी तरफ से भौंकता हूँ । तुम सब पर भौंकना मेरा फर्ज है, मेरे मालिक का फरमान है । मेरा तुम से अजली बैर है । कुत्ते का बैरी कुत्ता होता है । तुम मेरे दुश्मन हो, मैं तुम्हारा दुश्मन हूँ ।''[8] इस पर भीड़ में से कोई उसे समझाते हुए कहता है – ''शान्ति से काम लो

यहाँ मिन्नत चलती है, पैसा चलता है, धौंस नहीं चलती ।"[9] इस पर वह अधिक आक्रोश के साथ कहता है – "आज बेलाज बादशाह नंगा होकर कमिश्नर साहब के कमरे में जाएगा । आज वह नंगी पीठ पर साहब के डण्डे खाएगा । आज वह बूटों की ठोकरें खाकर प्रान देगा । लेकिन वह किसी की मिन्नत नहीं करेगा, किसी को पैसा नहीं चढ़ायेगा और किसी की पूजा नहीं करेगा ।"[10]

कथानायक के इस विद्रोह के कारण ही जो काम दो सालों में नहीं हुआ था वह आधे धण्टे में हो जाता है । वह दो साल चक्कर लगाता रहा, किसी ने बात नहीं सुनी । खुशामदें करता रहा किसी ने बात नहीं सुनी । वास्ता देता रहा किसी ने बात नहीं सुनी । लेकिन जब उसने सरकारी तंत्र के खिलाफ भौंकना प्रारंभ किया तब उसका काम कुछ ही मिनटों मे हो जाता है । वह वहाँ खड़े अन्य लोगों से कहता है – "चूहों की तरह बिटर–बिटर देखने से कुछ नहीं होता । भौंको, भौंको, सबके सब भौंको । अपने आप सालों के कान फट जाअेंगे ।"[11] प्रस्तुत कहानी में "लेखक ने अन्याय, अत्याचार, शोषण और ऐसे ही अमानुषिक कृत्यों और तत्त्वों के प्रति अपनी झुंझलाहट व्यक्त की है । इतना ही नहीं इस अभिव्यक्ति में लेखक ने अत्यंत साफ जबान में सरकारी व्यवस्था के खोखलेपन, निष्क्रियता, घूसखोरी और अन्याय से ग्रस्त वातावरण में उपेक्षित, मर्दित आदमी का चित्रण व्यंग्यात्मक शैली में किया है । राकेश ने न्याय पाने के लिए भौंकने वाले सामान्य व्यक्ति के भौंकने को नियति के स्तर पर ही नहीं छोड़ दिया है उसमें विद्रोह का अर्थ एक और उपलब्धि भी प्राप्त करता है । भौंकने से व्यवस्था की जड़ता टूटती है, कान में तेल डालकर सोये हुए अफसरों की तंद्रा दूर हो जाती है ।"[12]

'क्लेम' कहानी में शरणार्थियों को दी जाने वाली सरकारी सहायता के स्वरूप के माध्यम से सरकारी नीति में चल रहे कामों की निष्क्रियता का पर्दाफास किया है । जिन प्रसंगो और चरित्रों के माध्यम से यह चित्रण किया गया है यह भी बड़ा प्रभावशाली बन पड़ा है । स्वतंत्रता पश्चात जिन्होंने

वास्तविक जायदाद से ज्यादा क्लेम माँगा था उन्हें तो एक लम्बी–चौड़ी रकम मिल गयी । किन्तु जो लोग सत्य का आश्रय लेकर बैठे वे घाटे में रहे । साधुसिंह के तांगे में बैठी स्त्री को अठ्ठारह हज़ार का क्लेम मिल गया है । आगे बैठे सरदारजी ने अपनी जायदाद से ज्यादा क्लेम भरा है अतः उनका साठ हज़ार का क्लेम मंजूर हुआ है । एक अन्य व्यक्ति जो तांगे में बैठा है उसकी आँखें कमजोर हो गयी है । उसका परिवार दो रोटियों के लिए लाचार हो गया है । वह कहता है – ''मैं जीता हुआ भी क्या मुर्दो से बेहतर हूँ ? मगर सरकार के घर में ऐसा अंधेरे है कि लोग इन्सान की जरूरत को नहीं देखते बस जीते और मरे हुए का हिसाब करते है । मुझे आज ये एक हज़ार दे दे तो मैं कोई छोटी–मोटी दुकान डालकर बैठ जाऊँ । मेरे बच्चों के पास तो एक–एक फटी कमीज़ भी नहीं है ।''[13]

विभाजन की दानवी आग ने साधुसिंह जैसे लोगों से जो छीन लिया था, वह क्लेम से पूरा नहीं हो सकता है । उसका घर, स्वप्न और भावनाएँ उनसे छीनी गयी है । वह सोचता है कि क्या इन सब का क्लेम हो सकता है ? – वह क्लेम लेना नहीं चाहता । परंतु साथ ही उसके मन में भविष्य का एक सपना है, जिसमें अतीत के खो जाने के दुःख की संपूर्णता में भी निराशा नहीं है । वह राजनीति की कोख से प्रसव विभाजन में अपने सपनों के बदले कुछ भी लेना नहीं चाहता । वह अपने भविष्य के निर्माण के लिए अपने तांगे के घोड़े 'अफसरा' को फरियाद करता हुआ कहता है – ''अपने सब क्लेम तुझी को पूरे करने हैं,''[14] ''स्वातंत्र्योत्तर भारत के भविष्य पर हाबी होते अफसरशाही के समानान्तर 'अफसरा' को लाकर लेखक ने आक्रोश, पीड़ा और व्यंग्य को एक साथ प्रस्तुत किया है ।''[15]

६.३ तत्कालीन भ्रष्टाचार और उससे उत्पन्न त्रासदी :

राकेशजी ने अपने वर्तमान समय की राजनीति से उत्पन्न असंगतियों की कुछ झलक अपनी कहानियों में दी हैं । नौकरी पाने के लिए रिश्वत, पदोन्नति के लिए रिश्वत, काम को आगे बढ़ाने के लिए रिश्वत हर काममें रिश्वत देना

और लेना सामान्य–सी बात बनी गयी है । अगर व्यक्ति इस रास्ते पर नहीं चलता तो उसका काम नहीं होता, अगर होता भी है तो देर से काफी मन्नत करने के बाद । इस तरह का भ्रष्टाचार उपर से नीचे तक फैला हुआ है । जिसमें मध्यवर्ग और निम्नमध्यवर्ग पीस रहा है । संपूर्ण राजनैतिक व्यवस्था ही पांगु बन गयी है । क्योंकि दफ्तर में बैठे अफसरों में और ही और लेने की आकांशा उत्पन्न होती रहती है । फलतः समाज का यह दूषण बढ़ता ही जा रहा है । आज ऐसे भी व्यक्ति है जो पदोन्नति के लिए पत्नी का उपयोग करने में भी संकोच नहीं करते है । अनैतिक लोभ में फँसना और अपनी उन्नति करना आज के व्यक्ति का चरित्र बन गया है । नौकरी के लिए यौनाचार की मांग भी आज सामान्य सी बात बन गयी है ।

‘आखिरी सामान’ कहानी का मि. भंडारी एक्साइज़ और टैक्सेशन विभाग में ओफिसर है । लेकिन सिर्फ आमदनी से उसकी महत्त्वकांक्षा पूरी नहीं हो सकती थी । वह रिश्वत के पैसे से अपनी आमदनी और हैसियत के बाहर खर्च करते थे । रिश्वत के पैसों से कभी रेफ्रिजरेटर, डाइनिंग टेबल, सोफा–सेट, तो कभी कालीन, अलमारियाँ जैसा कीमती सामान आता रहता था । ‘‘मिस्टर भंडारी की जेब में भी काफी पैसे रहते थे । यह जानना शेष नहीं था, कि वह पैसा कहाँ से आता है ।’’[16] ‘‘मिस्टर भंडारी सब–इन्स्पेकटर के जरिये काम करते थे । सब–इन्स्पेकटर तिहाई के साझेदार होते थे । ‘‘आज एक कम्पनी का बिक्री टैक्स आधा करके तीन हजार वसूल लिए जाते, तो बीस दिन बाद छापे में अफीम बरामद करके पाँच–सौ हज़ार में छोड़ दी जाती ।’’[17] सरकारी अफसरों द्वारा हो रही अनैतिकता को यहाँ खुले रूप में प्रस्तुत किया गया है ।

मिस्टर भंडारी बारह सौ रुपये की नौकरी का मनसूबा रखते थे । जिसे पूरा करने के लिए वह अपनी पत्नी को रिश्वत के रूप में संभ्रांत अतिथि को सौंपने के लिए तैयार हो जाते है । लेकिन मिसेज़ भंडारी द्वारा अपना आबाद बचाव करने पर यह संभ्रान्त अधिकारी मिस्टर भंडारी को रिश्वत की योजना में फँसा देता है – ‘‘उनके सब इन्स्पेक्टरों ने पुलिस से मिलकर उन्हें फँसा दिया

था । मिस्टर भंडारी ने जो योजना बनाई थी, उसे खंडित करने की योजना पहले तैयार हो चुकी थी । मिस्टर भंडारी ने रुपया सोने की शक्ल में लिया था । मगर वह पुलिस द्वारा वजन किया हुआ और निशान लगाया हुआ सोना था । मिस्टर भंडारी वहीं पकड़ लिए गए और वहीं पर रिश्वत देनेवाली पार्टी और दोनों सब–इन्स्पेकटर के उनके खिलाफ बयान भी हो गए ।''[18] दिन–ब–दिन बढ़ रही रिश्वतखोरी का विकृत रूप यहाँ प्रस्तुत हुआ है । यह दूषण उच्चाधिकारी से लेकर चपरासी तक दीमक की तरह फैला हुआ है ।

'आखिरी सामान' कहानी में राकेशजी ने हर क्षेत्र में बढ़ रही रिश्वतखोरी पर प्रकाश डालते हुए साथ–सथ राजनेताओं और उच्चाधिकारियों की कामुक दृष्टि और पद का अयोग्य फायदा उठाने के तरीके पर व्यंग्य करते हुए राजनेताओं की मनःस्थिति का वर्णन किया है ।

'फौलाद का आकाश' कहानी में राकेशजी ने मजदूरों और मालिक के संघर्ष के बीच हो रहे राजनैतिक हस्तक्षेप को स्वर दिया है । स्टील प्लान्ट में काम कर रहे मजदूरों ने अपने रात–दिन के परिश्रम से आकाश के रंग को तम्बाई रंग में बदल दिया था । जिसे देखकर लगता था कि जंगल में आग लग गई है । लेकिन अपने अधिकारों की सुरक्षा के प्रश्न के लिए मजदूरों ने अपनी शर्त मालिक द्वारा न मानने की स्थिति में स्टील प्लान्ट में स्ट्राईक कर दी । जिसने फौलाद की मिट्टी की तम्बाई लौ को शांत और काला कर दिया ।

मालिकों और मजदूरों के झगड़ों में मध्यस्था करने के लिए मिनिस्टर आ रहे है । जो इस स्ट्राईक के संदर्भ में दोनों पक्ष की बात सुनकर अपना निष्पक्ष निर्णय देने वाले है । दोपहर को स्थानीय कोंग्रेस के प्रधान के यहाँ उसकी दावत है । मीरा का पति रवि जो फैक्टरी की ओर से लेबर ओफिसर है खाने का मीनू तय करते हुए कहता है – ''मेरा तजुर्बा भी यही कहता है कि जो काम वैसे बहुत मुश्किल नज़र आते है, लंच का मीनू ठीक होने से वे आसान हो जाता है ।''[19] मिनिस्टर राजकृष्ण रवि की पत्नी मीरा का साथ पाकर 'रिलैक्स' होना चाहता है ।

यहाँ मालिक मजदूरों का पक्ष तटस्थ न रहकर लंच और लेबर ओफिसर रवि की पत्नी मीरा की ओर झुकता नज़र आता है ।

६.४ सार्वजनिक रूप से खत्म हो रही वैयक्तिक सुरक्षा :

सरकारी तंत्र की निष्क्रियता के कारण समाज में बढ़ रही अराजकता के कारण सार्वजनिक रूप से व्यक्ति की सुरक्षा समाप्त होती जा रही है । वह संत्रस्त है और असुरक्षित होने के भय के साथ ज़िन्दगी बिताने के लिए मजबूर है । 'एक ठहरा हुआ चाकू' कहानी में राकेशजी ने दिन–प्रतिदिन बढ़ती अराजकता और बढ़ रही हिंसक शक्तियों के बीच थरथराते सामान्य व्यक्ति की विकट हो रही समस्या को यथार्थ रूप में निरूपित किया है ।

प्रस्तुत कहानी का नायक बासी सबेरे अपनी प्रेमिका से मिलकर स्कूटर पर अपने घर लौट रहा था । किन्तु गर्मी के कारण वह रास्ते में बर्फ खरीदने के लिए रुकता है । वह जैसे ही स्कूटर रोक कर उतरता है वैसे ही एक नत्थासिंह नामक गुण्डा उसमें जबरदस्ती करके बैठ जाता है । बासी वापस आकर कहता है कि अभी उसने स्कूटर खाली नहीं किया है, उसे अभी इसी स्कूटर में घर पहुँचना है । इतना सुनकर वह गुण्डा उससे लड़ने पर आमादा हो जाता है । उसने बासी का कोलर पकड़कर अपनी तरफ खींचा और एक झांपड़ उसके मुँह पर दे मारा । बासी के यह कहने पर कि "सरदार, जरा जबान संभालकर बात कर ।"[२०] अभी तो वह इस वाक्य को पूरा भी नहीं कर पाया था कि सरदार ने अपनी जेब से चाकू निकालकर उसके सामने खोल दिया । चाकू देखकर बासी अपनी जान बचाने के लिए भाग कर घर पहुँच जाता है ।

बासी अपने पत्रकार मित्र की मदद से गुण्डे नत्थासिंह के खिलाफ पुलिस में रिपोर्ट दर्ज करवाता है । इस प्रसंग से लेखक ने नेता, पुलिस, अधिकारी, न्याय–कानून, सुरक्षा, समाज आदि सबके चहरों का पर्दाफाश किया है । बासी जब रिपोर्ट दर्ज करवा के वापस आता है तो लोगों ने उसे रीपोर्ट वापस लेने के संबंध में अपनी राय दी । क्योंकि नत्थासिंह राजनीतिक हलके के लोगों के

साथ तथा ऊँचे सरकारी अफसरों के साथ संबंध बनाये हुए है अतः उसके खिलाफ कारवाई होने की संभावना कम ही है । साथ ही अब उससे बासी की जान को भी खतरा पैदा हो गया है । अतः रिपोर्ट दर्ज करवाने के बाद बासी को नत्थासिंह से डर लगने लगा है । क्योंकि उसने जब घटना स्थल पर जाकर पूछताछ की तब वहाँ कोई भी कुछ भी बताने को तैयार नहीं था । सबने यहीं कह दिया कि वह घटना के समय वहाँ नहीं थे । सिर्फ मेडिकल स्टोर के इंचार्ज ने दबी आवाज में कहाँ ''नत्थासिंह को यहाँ कौन नहीं जानता ? अभी कुछ दिन पहले उसके आदमियों ने पिछली गली में एक पानवाले का कत्ल किया है । वे तीन–चार भाई हैं, और इस इलाके के माने हुए गुण्डे हैं । खैरियत समझिए कि आपकी जान बच गयी, वरना हममें से तो किसी को इसकी उम्मीद नहीं रही थी । अब बेहतरी इसी में है कि आप इस चीज़ को चुपचाप पी जाएँ और बात को ज्यादा बिखेरने न दें । यहाँ आपको एक भी आदमी ऐसा नहीं मिलेगा जो उसके खिलाफ गवाही देने को तैयार हो ।''[21] थानेदार से बात करने पर उसने बासी को कहा – ''रिपोर्ट आपको जरूर लिखवानी चाहिए । इन गुण्डों से मत्था लेने में यूं थोड़ा बहुत खतरा तो रहता ही है – और कुछ न करें, आप पर एसिड–वेसिड ही डाल दें । ऐसा उन्होंने दो–एक बार किया भी है । पर हम आपकी हिफाज़त के लिए हैं, आपको डरना नहीं चाहिए । एक अच्छे शहरी होने के नाते आपका फर्ज़ है कि आप रिपोर्ट जरूर लिखवाएँ । हम लोगों को भी तो इनके खिलाफ कारवाई करने का मौका इसी तरह मिल सकता है ।''[22]

बासी निरंतर भय एवं असुरक्षा का अनुभव करता है । उसे लगता है कि उसने रिपोर्ट लिखाकर अच्छा नहीं किया । अब गुण्डा नत्थासिंह उसकी जान के पीछे पड़ जायेगा और समय आने पर उससे अवश्य बदला लेगा । पुलिस, मंत्री, अधिकारी कोई उनकी रक्षा नहीं करेगा क्योंकि सभी गुण्डे नत्थासिंह से डरते है या उसके साथ मिले हुए है । पुलीस स्टेशन में नत्थासिंह की शानाखत के लिए उसे बुलाया जाता है । वह पुलीस स्टेशन में भी असुरक्षा और भय महसूस करता है । बासी को लगता है – ''एक तेज

धार का चाकू उन रस्सियों को काटना आता है । उसके पास आने से पहले ही उसकी धार जैसे शरीर में चुभने लगती है । यह उसकी पीठ है ... पीठ नहीं, छाती है । चाकू की नोक सीधी उसकी छाती की तरफ ... नहीं, गले की तरफ .. आ रही है । वह उस नोक से बचने के लिए अपना सिर पीछे हटा रहा है... फिर वही चाकू की नोक है... वह अपने को नहीं बचा सकता ।''[23] नत्थासिंह की शानाखत हो जाने के बाद भी वह अपने आपको अधिक असुरक्षित और उलझा हुआ पाता है । साथ ही वह अपने और अपनी प्रेयसी के भविष्य को लेकर चिंतित दिखाई देता है । साथ–ही–साथ वह उस इलाके को छोड़ने के लिए विवश हो जाता है । स्पष्ट ही इस कहानी में समाज में निरंतर बढ़ रही भयावहता और तज्जनित संत्रास सशक्त रूप में अभिव्यंजित हुआ है । गुण्डों द्वारा आतंकित और संत्रस्त व्यक्ति का जीवंत चित्रण स्पष्ट करता है कि सुरक्षा और अस्तित्व का संकट आज के मानव की सबसे बड़ी समस्या है । इस समस्या को राकेशजी ने गहरे यथार्थ के साथ अभिव्यक्त किया है । ''इस कहानी में महानगरीय जीवन की भयावहता और तज्जनित संत्रास पूरी सफाई के साथ अभिव्यक्ति हुआ है । गुण्डों द्वारा आतंकित और संत्रस्त परिवेश का जीवंत चित्रण यहाँ है । सुरक्षा और अस्तित्व का संकट आज के मानव की सबसे बड़ी समस्या है । राकेश ने इसे गहराई से संकेतित कर दिया है ।''[24]

६.५ राजनीतिक प्रतिष्ठा की आड़ में हो रहे कुकृत्यों का चित्रण :

राकेशजी की पैनी नज़र उच्चाधिकारी और राजनेताओं के द्वारा पद की आड़ में किये जा रहे कृत्यों की ओर भी गये बिना नहीं रही हैं । राकेशजी की चुभती लेखनी ने उनका पर्दाफाश किया है । 'फौलाद का आकाश', 'आखिरी सामान', 'एक ठहरा हुआ चाकू' जैसी कहानियों में राकेशजी ने इस पहलू की ओर अंगूली निर्देश कर दिया है ।

'एक ठहरा हुआ चाकू' का गुण्डा नत्थासिंह सरे–आम खुलकर गुण्डा–गर्दी करता है, क्योंकि उसे ऐसे लोगों का समर्थन प्राप्त है जो नेता और अफसर के रूप में ऊँचे पद पर आसीन है । उसके अत्याचार के खिलाफ लोग गवाही देने से डरते है क्योंकि वह कुछ भी करे उसके खिलाफ कोई कारवाई तो होती नहीं, पर गवाही देने वालों की जान पर जरूर बन आती है । यहाँ तक कि एस.पी. से लेकर डी.एस.पी. तक नत्थासिंह की गुण्डा–गर्दी और उसके व्यवहार से उत्पन्न होने वाले आतंक की कहानी जानते हुए भी उसके खिलाफ कोई कदम नहीं उठाते । रिपोर्ट लिखवाने के बाद बासी और उसका रीपोर्टर मित्र महेन्द्र डी.एस.पी. से मिलने गये । उस दौरान डी.एस.पी. नत्थासिंह के विषय में कहता है – ''उस आदमी का मुख्य धंधा लड़कियों की दलाली करना है – कि ऊँचे सरकारी और राजनीतिक हलके के अमुक–अमुक व्यक्तियों को वह लड़कियाँ सप्लाई करता है – कि उसकी कितनी भी रीपोर्ट की जाएँ, कभी उसके खिलाफ कारवाई नहीं की जाती – कि नीचे से अमुक–अमुक लोग उससे पैसे खाते है, कि नीचे से कारवाई कर भी दी जाए, तो ऊपर से अमुक–अमुक का फोन आ जाता है जिससे कारवाई वापस ले ली जाती है... ।''[25]

जनता को सुरक्षा का वचन देकर उच्चपद पर आसीन बड़े कहे जाने यह नेता और अधिकारी अपने स्वार्थ और इच्छापूर्ति के लिए नत्थासिंह जैसे गुण्डे का सहारा लेते है । और गुण्डे ऐसे समर्थन का फायदा उठाकर चारों और आतंक फैलाकर आम आदमी का जीना मुश्किल कर देते है । और मजे की बात यह है कि पुलीस तंत्र यह सब जानकर भी चुप–चाप नज़ारा देखता रहता है, क्योंकि उसके उपर किसी नेता या अधिकारी का हाथ है । 'एक ठहरा हुआ चाकू' कहानी में राकेशजी ने समाज में बढ़ते आतंकवाद और आम–आदमी की असुरक्षा के पीछे राजकीय नेता और पुलीस की सांठ–गांठ को खुला करते हुए इस पर करारा व्यंग्य किया है ।

'आखिरी सामान' कहानी का मि. सुशील भंडारी का संभ्रांत अतिथि नेता मि. भंडारी को बारह सौ रुपये की नौकरी देने के बदले में उसकी रूपसी

पत्नी बेला भंडारी का उपभोग करना चाहता है । किन्तु मिसेज़ बेला भंडारी अपना बचाव करते हुए उसकी माँग पूरी नहीं करती । अतः अपनी इच्छा को पूरी न करने का बदला लेने के लिए वह मिस्टर भंडारी को जूठे केस में फँसा कर उसका बदला लेता है । मिसेज़ बेला भंडारी को वह किसी भी तरह पाना चाहता है, अतः वह उसे घर का 'आखिरी सामान' बनने के लिए मजबूर कर देता है । पद की आड़ में अपना स्वार्थ और अहं सिद्ध करते राजकीय उच्चपद पर आसीन व्यक्ति को राकेशजी ने व्यंग्यात्मक और कलात्मकता से प्रस्तुत किया है ।

'फौलाद का आकाश' कहानी का राजनेता राजकृष्ण फैक्टरी में चल रही स्ट्राईक में मालिक और मजदूरों के बीच मध्यस्थी बनकर आया है । किन्तु यहाँ वह लंच मीनू और रवि की पत्नी मीरा के साथ 'रिलैक्स' होने को ही अधिक महत्त्व देता नज़र आता है ।

'लड़ाई' कहानी का कथानायक प्रांतीय युनियन के प्रतिनिधि और अधिकारियों की मिली–भगत के कारण नौकरी से निकाला जाता है । उसको मदद न करने का प्रमुख कारण यह बताया जाता है कि – ''वह विषय स्थानीय युनियन के अधिकर–क्षेत्र का न होने के कारण प्रांतीय यूनियन में नहीं रखा जा सका, और स्थानीय यूनियन की मीटींग में यह निर्णय किया गया है कि जो चीज सामूहिक रूप में सभी इकाइयों को प्रभावित नहीं करती और केवल एक व्यक्ति की ही समस्या है, उसके संबंध में कोई सामूहिक कदम नहीं उठाया जा सकता ।''[26]

अपने पदाधिकारी द्वारा किये जाने वाले अत्याचार और अन्याय को 'जानवर और जानवर' तथा 'लेकिन इस तरह' कहानियों में राकेशजी ने स्वर दिया है । 'जानवर और जानवर' का पादरी अपने अधिकारों का फायदा उठाकर मणि नानवती और अनिता मुखर्जी जैसी आर्थिक दृष्टि से लाचार लड़कियों का फायदा उठा रहा है । ''पादरी के पास अधिकारों की शक्ति है । वह अपने अनाचार और अनीतियों के विरोधी के पेट पर लात मार सकता है । अन्याय सहते–सहते कहानी के पात्रों के भीतर आंतरिक कसमसाहट का

भाव आता है ।"[27] पादरी अपने पद के आधार पर नौकरी करनेवाले मास्टर और मैट्रनों पर मनमाना अत्याचार करता दिखायी देता है । 'लेकिन इस तरह' कहानी में भी अपनी शक्ति की आड़ में हो रहे शोषण का सांकेतिक निरूपण हुआ है । कहानी की राजकरनी भाईजी की वासना का शिकार बनकर लाचारी में अपनी जान गवाती हुई नज़र आती है ।

'परमात्मा का कुत्ता' कहानी का कथानायक सालों से मन्नत करते हुए थक गया है । उसके पास इतने पैसे नहीं कि वह सरकारी बाबूओं और अधिकारी को लाँच देकर अपना काम निकाल सके । वह अपना काम आगे न बढ़ने की स्थिति में सरकारी अधिकारियों की भ्रष्ट और अमानवीय स्थिति को खुला करते हुए उन पर भौंकता है । जिससे वह अपने लिए न्याय का दरवाजा जबरदस्ती खुलवा लेता है । वह कहता है – "भौंको भौंको सबके सब भौंको । अपने आप सालों के कान फट जायेंगे ।"[28] यह कहानी राजनैतिक भ्रष्टाचार और नौकरशाही के संकट को स्पष्ट करती है । अफसरों की स्वार्थपूर्ति, कामचोरी की प्रवृत्ति, मात्र रिश्वत को दी जाने वाली महत्ता ने प्रजातंत्र को जनता के लिए मात्र ढकोसला और छलावा बना कर रख दिया है । आज नौकरशाही तंत्र में 'परमात्मा के कुत्ते' (जनता) कुचले जा रहे है । इस आक्रोश को व्यक्त करते हुए कथानायक कहता है – "तुम लोग सरकार के कुत्ते हो हम लोगों की हड्डियाँ चूसते हो और सरकार की तरफ से भौंकते हो ।"[29]

प्रस्तुत कहानी में सरकारी अफसरों द्वारा आम आदमी के शोषण, अत्याचार और अमानवीयता को राकेशजी ने यथार्थ के रंग में रंगकर अपना आक्रोश तीखे चुमने व्यंग्य में निरूपित किया है । " 'परमात्मा का कुत्ता' सर्वाधिक सशक्त और समर्थ कहानी है । व्यवस्था की जंग लगी मशीनरी के प्रति यहाँ सिर्फ झुंझलाहट ही नहीं वांछित प्राप्त कर लेने की शक्ति और साहस भी है । एक अधेड़ व्यक्ति, जो कहता है कि उसके बाप का नाम इस सरकारी व्यवस्था ने खा लिया और उसे नया नाम दिया है – 'बारह सौ छब्बीस बटा सात ।' उसका गुस्सा इस बात पर है कि दो साल से उसकी दी

हुई अर्जी वहाँ के दो कमरे पार नहीं कर पायी । वह, वहाँ खड़ा होकर जोर–जोर से सभी को गालियाँ सुनाता है और कमिश्नर को भी उल्टी–सीधी सुनाकर अपना काम करा लेता है साथ में वहाँ खड़े प्रतीक्षा करते व्यक्तियों के लिए एक संदेश भी उसके पास है – 'भौंको भौंको सबके सब भौंको' । अपने आप सालो के कान फट जायेंगे ।"[30]

'हवामुर्ग' कहानी भी एक राजनीतिक व्यंग्य है । इसमें अयोग्य अनाधिकारी, अशिक्षित लोगों द्वारा चुनाव जीत कर कुर्सियाँ हथिया लेने जैसी प्रक्रिया और व्यवस्था द्वारा इन हाथों में देश का भविष्य सुरक्षित रह पाने में आशंका व्यक्त हुई है ।

६.६ निष्कर्ष :

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि राकेशजी की पैनी दृष्टि ने युगीन राजनीतिक चेतना को बारीकी से देखा है । साथ ही उसकी विसंगतियों और उससे उत्पन्न होने वाली स्थितियों की ओर भी राकेशजी का ध्यान आकृष्ट हुआ हैं । सरकारी व्यवस्था के खोखलेपन, निष्क्रियता, घूसखोरी और अन्याय के सामने पीड़ित आमआदमी की समस्याओं का चित्रण करके राकेशजी ने आमआदमी की वास्तविक स्थिति का यथार्थ चित्रण कर दिया है । तत्कालीन भ्रष्टाचार से उत्पन्न त्रासदी, सार्वजनिक रूप से खत्म हो रही आम आदमी की सुरक्षा के प्रश्न पर भी राकेशजी ने अपनी कहानियों में स्वर दिया है । राजनीति के विभिन्न पहलुओं को यथार्थ स्वरूप में रेखांकित करने में राकेशजी की युग चेता दृष्टि सफल रही है ।

संदर्भ सूची:

१	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'परमात्मा का कुत्ता', पृ. ३२३
२	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'परमात्मा का कुत्ता', पृ. ३२४ से ३२५
३	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'परमात्मा का कुत्ता', पृ. ३२५
४	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'परमात्मा का कुत्ता', पृ. ३२५
५	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'परमात्मा का कुत्ता', पृ. ३२४
६	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'परमात्मा का कुत्ता', पृ. ३२२
७	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'परमात्मा का कुत्ता', पृ. ३२३
८	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'परमात्मा का कुत्ता', पृ. ३२४
९	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'परमात्मा का कुत्ता', पृ. ३२५
१०	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'परमात्मा का कुत्ता', पृ. ३२५
११	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'परमात्मा का कुत्ता', पृ. ३२६
१२	मोहन राकेश व्यक्तित्व और कृतित्व, डॉ. सुष्मा अग्रवाल, पृ. २२७
१३	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'क्लेम', पृ. ११०
१४	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'क्लेम', पृ. ११३
१५	मोहन राकेश की कहानियों में आधुनिक बोध, डॉ. सदनकुमार पाल, पृ. ८५
१६	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'आखिरी सामान', पृ. १७७
१७	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'आखिरी सामान', पृ. १७५
१८	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'आखिरी सामान', पृ. १७५
१९	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'फौलाद का आकाश', पृ. ११६
२०	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'एक ठहरा हुआ चाकू', पृ. १४३
२१	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'एक ठहरा हुआ चाकू', पृ. १४५.१४६
२२	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'एक ठहरा हुआ चाकू', पृ. १४६
२३	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'एक ठहरा हुआ चाकू', पृ. १४८
२४	मोहन राकेश व्यक्तित्व और कृतित्व, सुष्मा अग्रवाल पृ. २५४
२५	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'एक ठहरा हुआ चाकू', पृ. १४६
२६	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'लड़ाइ', पृ. ४६२
२७	आधुनिकता और मोहन राकेश, उर्मिला मिश्रा, पृ. ७६
२८	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'जानवर और जानवर', पृ. ३२६
२८	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'परमात्मा का कुत्ता', पृ. ३२४
३०	समकालीन हिन्दी कथा साहित्य– प्रेमकुमार, पृ. ३२–३३

❊❊❊

सप्तम - अध्याय
मोहन राकेश की कहानियों में धार्मिक चेतना

७.१ प्रस्तावना

७.२ धार्मिक आडंबर

७.३ अंधश्रद्धा

७.४ धर्म को व्यवसाय के रूप में अपनाने वाले अशिक्षित लोगों द्वारा धार्मिक शास्त्रों की सुरक्षा पर लग रहे प्रश्नार्थ चिन्ह

७.५ धार्मिक स्थलों पर सांप्रदायिक आड़ में हो रहे आंतरिक संघर्ष और अनैतिकता

७.६ निष्कर्ष

सप्तम - अध्याय
मोहन राकेश की कहानियों में धार्मिक चेतना

७.१ प्रस्तावना :

पहले ही इस बात का उल्लेख किया जा चुका है कि राकेशजी की कहानियों में वैयक्तिक, और सामाजिक चेतना की तुलना में राजनीतिक और धार्मिक चेतना का समावेश बहुत ही कम मात्रा में हुआ है । क्योंकि राकेशजी ने अपने साहित्य में तत्कालीन युग को ही प्रस्तुत करना आवश्यक माना है । उसका पूरा साहित्य भोगे हुए यथार्थ का निरूपण है । स्वातंत्र्योत्तर युग से धार्मिकता की भावना बहुत कुछ उपरी वस्तु बन गयी है । आत्मा से इसके संबंध टूट गये हैं । धर्म दिनोंदिन शक्तिहीन होता जा रहा है, जीवन में भौतिकवादी आग्रह आता जा रहा है । यदि धर्म कहीं शेष भी है तो उसमें उसकी अशक्तियों के ही दर्शन होते हैं । भारतीय समाज के संदर्भ में तो यह बात और भी सच है कि यहाँ बाह्याचार एवं अंधश्रद्धा, भौतिक स्वार्थपूर्ति और मनौतियाँ, देवी–देवताओं की पूजा–उपासना आदि आज धर्म के प्रतीक मात्र रह गए हैं । राकेशजी ने अपने तत्कालीन, परिवेश में धर्म संबंधी कुछेक विसंगतियों और अंतर्विरोधों का चित्रण अपनी कहानियों में किया है ।

राकेशजी अपने साहित्य द्वारा मानवतावादी तथा युगान्तकारी व्यक्ति के रूप में हमारे सामने आते है । राकेशजी ने समाज में धर्म के नाम पनप रहे अनाचार, अत्याचार, शोषण और बाह्याचार को सशक्त रूप में प्रस्तुत किया है ।

७.२ धार्मिक आडंबर :

'जानवर और जानवर' कहानी में धर्म और अपने पद के नाम पर अत्याचार करनेवाले पादरी का चरित्र राकेशजी ने काली स्याही से लिखा है ।

मिशन का पादरी फिशर अपने अधिकारों का प्रयोग करते हुए अनाचार, अनीति और भ्रष्ट तरीकों को अपनाता है । यहाँ तक कि वह अपने खिलाफ अनीतियों का पर्दाफाश करने वालों के पेट पर लात मारने से नहीं चुकता । पादरी जानवर और जानवर में फर्क करते हुए निर्दोष कुत्ते को गोली मारते हुए नहीं हिचकिचाता और सबेरे चर्च में जाकर ''अवर फादर हू आर्ट इन हैवन, हैलोड बी दाई नेम, दाई किंगडम कम, दाई विल बी डन, डन दिस वर्ल्ड एज इन हैवन.... ।''[1]

पाल पादरी के इस आडंबर को देखकर कहता है .. ''पादरी, हम गिरजे में तो प्रार्थना करते है, उसका कोई मतलब भी होता है ? .. मेरा मतलब है पादरी, कि रात को तो हम गरीब जानवरों को गोली मारते हैं, और सुबह गिरजे में उसकी रक्षा के लिए ईश्वर से प्रार्थना करते हैं – इसका कुछ मतलब निकलता है ?''[2] पाल की बात सुनकर पादरी की आँखों में खून उतर आता है वह पाल की ओर देखकर कहता है – ''मतलब निकलता है और वह यह कि जानवर एक सा नहीं होता । जानवर और जानवर में फर्क होता है ।''[3] पादरी की यह बात वहाँ के लोगों की समज में नहीं आती इस पर व्यंग्य करते हुए बैरो कहता है कि पादरी की कुत्तिया केनेडा से आयी है और उसकी कीमत तीन सौ रुपये है और वह बिस्कुट और सैंडविच खाकर पली है । और दूसरी तरफ पाल का सामान्य कुत्ता । पादरी ने पाल के कुत्ते बेबी को अपनी कुत्तिया डोली के पास देखा और ''देखते ही पादरी को एकदम गुस्सा आ गया और वह अंदर जाकर अपनी रायफल निकाल लाया । एक ही फायर में उसने उसे चित कर दिया ।''[4] पादरी के इस वर्तन से वहाँ के सभी लोग स्तब्ध हो जाते है । सब लोग एक स्वर में स्वीकार करते है कि – ''यह पादरी नहीं राक्षस है ।''[5]

पादरी अपने पद और धर्म के नाम पर कुकृत्व कर रहा है । पाल और सैली ने जब उसके खिलाफ आवाज उठाने की कोशिश की तो पादरी ने उसे नौकरी से निकाल दिया साथ ही पादरी अनिता और मणि जैसी बेसहारा आर्थिक रूप से असहाय स्त्रीयों का शारीरिक शोषण करने से भी नहीं

चुकता । इस प्रकार राकेशजी ने 'जानवर और जानवर' कहानी में स्कूल मिशन में धर्म और पद की आड़ में हो रहे अनाचार, अत्याचार और पाखंड़ को पादरी फिशर के चरित्र के माध्यम से बेनकाब किया है ।

धर्म के नाम हो रहे छल तथा बाह्य आडंबर को राकेशजी ने 'खंडहर' कहानी में स्वर दिया है । मंदिर का पूजारी पाखंडी और ढोंगी है । भगवान के पूजा, दर्शन, अर्चन से ज्यादा उसका ध्यान अर्थ की ओर ही रहता है । पुजारी गोस्वामी नृसिंहदत्त के माध्यम से कहानीकार ने मंदिर जैसे पवित्र धार्मिक स्थलों पर चल रही धार्मिक ठेकेदारों के चित्रण का जो पक्ष निरूपित किया है उसमें पुजारी के चरित्र की गिरावट साफ नज़र आती है । वह सुबह उठते ही मंगलाचरण का पहला मंत्र पढ़ता हुआ बोलता है – ''चेतू, कहाँ मरा है रे ? हुक्का भर जल्दी से ।''[6] गोस्वामी की आँख तब तक नहीं खुलती जब तक उसके सामने हुक्का नहीं आता । हुक्का गुड़गुड़ाते हुए वह विष्णु सहस्त्र नाम का पाठ करते है ।

मंदिर के बाहर मंगला दर्शन के लिए भक्तों की भीड़ जमा हो रही है । दर्शन का समय हो जाने पर भी गोस्वामी नृसिंहदत्त इस ओर ध्यान न देते हुए इस बात को प्राथमिकता देते नज़र आता है कि रात को रंगवाले सेठ बिशनदास के यहाँ गये शास्त्री प्रीतमदेव वहाँ से क्या–क्या चीजें और कितने रुपये लाये है । वह प्रीतमदेव से पूछकर सब का हिसाब लगाकर उन सब चीजों और पैसों पर अपना कब्जा जमाना चाहता है । ''जाना वहाँ गोस्वामी को खुद ही था क्योंकि वह रंगवाले सेठों का कुलपुरोहित था, पर कल शाम को उसके शरीर में हवा का दौरा बढ़ गया था जिस वजह से ही उसे रात को ग्याहर बजे नींद की गोली खाकर सो जाना पड़ा था, नहीं तो ये सवाल–जवाब वह रात को ही कर चुका होता ।''[7] वह प्रीतमदेव को बुलाकर दक्षिणा के रूप में मिले रुपये, कपड़ो आदि निलकवा कर उसे अपने पास रख लेता है । प्रीतमदेव के यह पूछने पर कि ''रुपये भी क्या मेरे नहीं है गुरुजी''[8] इस पर उसे उत्तर मिलता है – ''तू रंगवाले सेठों का जमाई है न ? वे भगवान के जीव हैं तो भगवान के निमित दे देते है । तू साले रोज़

भगवान के घर में नारंगियाँ केले खाता है, दूध, दही भक्षण करता है, फिर भी तेरी तृष्णा नहीं मरती ? यहाँ अब देनेवाले रहे कितने है ? जो आता है, मुफ्त में ही भगवान के दर्शन करके चला जाता है । ला निकाल रुपये कहा हैं ।''[9]

गोस्वामी नृसिंहदत्त प्रीतमदेव से हिसाब–किताब पूरा करने के बाद भगवान के दर्शन खोलते दिखाई देते है । इस प्रकार स्पष्ट है कि गोस्वामी नृसिंहदत्त और प्रतीमदेव धर्म के बदले अर्थ को ही अधिक महत्त्व देते है । साथ ही वे स्त्रीयों की ओर भी कामुक दृष्टि रखते हैं । गोस्वामीजी और प्रीतमदेव दोनों की दृष्टि पारो पर है । मंदिर में धर्म की आड़ में खेले जा रहे वासनात्मक खेल और शारीरिक व्यभिचार को भी राकेशजी ने सांकेतिकता के साथ स्पष्ट कर दिया है । मंदिर के दोनों पुजारी के अलावा जो भक्त समुदाय वहाँ मौजूद है उसकी मनःस्थिति पर भी यहाँ प्रकाश डाला गया है । मंदिर में भगवान के दर्शन के लिए उपस्थित लोग भगवान के दर्शन की और कम मंदिर के अंदर आने जाने वाली, आकृतियों पर ही ज्यादा ध्यान देते हैं । लाला गुरांदित अपने साथ के मोहनलाल से कहते हैं – ''क्यों मोहलालजी, मछलियाँ गिन रहे हो भगवान के तालाब की ? कितनी है ? तुम जाल फेंकोगे तो उसे मगरमच्छ ही ले जाअेंगे । अरे यार कुछ तो भगवान की शरम करो ।''[10]

'खंडहर' कहानी में राकेशजी ने मंदिर के अंदर और मंदिर के बाहर चल रहे कार्यव्यापार का सूक्ष्मता से निरीक्षण करते हुए मंदिर जैसे धार्मिक संस्थान में चल रहे नाटक का पर्दाफाश किया है ।

'मंदिर–मंदिर की देवी' कहानी में राकेशजी ने धर्म के नाम पर पाखंड़ी लोगों की अर्थ लोलुप दृष्टि को अधिक उजागर करने का प्रयत्न किया है । 'मंदिर–मंदिर की देवी' कहानी की मेहर कौर विधवा माया को भगवान की भक्ति में जीवन निर्वाह करने की सलाह देती है । वह माया को महावीरजी, गोवर्धनजी, हनुमानजी, राधा–गोविंदजी आदि–आदि मंदिरों के दर्शन कराने के लिए ले जाती है । वह माया को भगवान तथा तीर्थयात्रा का माहात्म्य सुनाकर

उसे परलोक संवारने के लिए प्रेरित करती है । वह यह भी आग्रह करती है कि इसके लिए माया को ''अपने वैधव्य का एक मात्र आश्रय अपना घर भी बेचना पड़े तो उसमें संकोच नहीं करना चाहिए ।

मेहर कौर पर सर्राफ का पाँच सौ रुपये का कर्ज है । उसने इसे तीन महीने में चुका देने का वादा किया था । इस समय के बित जाने पर वह उसे चुकाने के लिए चिंतित नहीं है । उसने इस कर्ज के पैसे से मंदिर में जगह–जगह रुपये अर्पण करने की कामना करते हुए अपनी ख्याति का ढिंढ़ोरा पिटा है । जब–जब सर्राफ अपने पैसे के लिए मेहर कौर के घर आता तब–तब जग्गू उसे कह देता कि ''माई जी बिंदरावन गई है ।''[11] मेहर कौर ने जग्गू को जो पड़ोस का आवारा लड़का था ''जिसे वह लेनदारों को सीढ़ियों में से टालने के लिए प्रतिदिन एक पैसा पुरस्कार दिया करती थी ।''[12]

मेहर कौर की बातों में आकर माया अपनी सोने की चूड़ियाँ बेचकर तीर्थयात्रा में जाने की बात सोचती है । इस पर मेहर कौर माया के पास से चूड़ियाँ लेकर इस के मूल्य के विषय में यह कहते हुए कि इससे उसे कम से कम सौ रुपये तो मिल ही जायेंगे । और ''कल बाजार में जाकर पूछ कर पता चलेगा । कहकर मेहर कौर ने चूड़ी को हरे कागज में लपेट लिया और वृंदावन में होनेवाले 'लट्ठ' के मेले की बात सुनाने लगी ।''[१३]

माया की सोने की चूड़ी लेकर मेहर कौर दूसरे दिन खुद ही वृंदावन चली जाती है । सुबह जब माया मेहर कौर के घर आती है तब उसे जग्गू से पता चलता है कि – ''वह तो बिंदरवन चली गई है... सबेरे आठ बजे की गाड़ी से गई है ।''[14]

'मंदिर–मंदिर की देवी' कहानी में राकेशजी ने धर्म की दुहाई देने वाले मेहर कौर जैसे व्यक्ति के कपटी आचरण को खुला किया है । मेहर कौर धर्म और धार्मिक स्थलों की महिमा की बात करके भोली–भाली विधवा माया को छलती है । धर्म के ही सहारे एक सर्राफ से भी पाँचसौ रुपये लेकर वापस नहीं करती । और अंत में माया की सोने की चूड़ियाँ लेकर रात ही रात में

वहाँ से चली जाती है । प्रस्तुत कहानी में धर्म की दुहाई देकर अपना स्वार्थ सिद्ध करने वाले व्यक्तियों की मनोवृत्ति का चित्रण हुआ है ।

७.३ अंधश्रद्धा :

शिक्षित और अशिक्षित लोगों में धर्म के नाम पर अंधश्रद्धा का बोल–बाला रहा है । विज्ञान का प्रचार–प्रसार एक निश्चित सुदृढ़ दिशा की ओर हो रहा है फिर भी लोगों के मानस पर से आज भी अंधश्रद्धा की चादर नहीं हट पायी है । 'मिस पाल' कहानी की मिस पाल नौकरी पेशा सुशिक्षित नारी हैं । फिर भी वह अपने वर्तमान जीवन के लिए मानती है – ''होशियारपुर में उसने भृगुसंहिता से अपनी कुंड़ली निकलवायी थी । उस कुंड़ली के फल के अनुसार इस जन्म में उस पर यह शाप है कि उसे कोई सुख नहीं मिल सकता – न धन का, न ख्याति का, न प्यार का । इसका कारण भी भृगुसंहिता में दिया गया था । अपने पिछले जन्म में वह सुन्दर लड़की थी और नृत्य संगीत आदि कला में बहुत पटु थी... इसलिए मुझ पर अब यह अभिशाप है कि इस जन्म में मुझे सुख नहीं मिल सकता ।''[15] इस बात को लेकर मिस पाल बहुत उदास रहती है मानो उसके जीवन का रस ही सूख गया है ।

'मंदिर मंदिर की देवी' कहानी में लोगों की अंधश्रद्धा का एक और उदाहरण देखने मिलता है । मंदिर के बाहर बैठे पागल व्यक्ति को भी लोग सिद्ध पुरुष मान कर किस तरह अंधविश्वास में जी रहे है, इस बात का उत्तम नमूना यहाँ दिखाई देता है – ''मंदिर के बाहर के कुएँ पर रामू सांई बैठा था, जो अपने पागलपन के कारण सिद्ध पुरुष की पदवी पाए हुए था । रामू सांई चारों ओर मैले कुचैले चीथड़े बिखेरकर 'आ बा आबा' करता बैठा रहता था और उसके मुंह से टपकता हुआ लार धाराप्रवाह से उसके मुनिवेश तथा योगासन को गीला करता रहता था । रामू सांई की विशेष सिद्धि यह थी कि वह मनुष्यों की भाषा में नहीं बोलता था, उसका स्थूल अर्थ समझ में आने पर भी सूक्ष्म अर्थ किसी की समझ में नहीं आता था । जिस कुंए पर बैठता

था, उस कुंए का जल नाना रोगों की सिद्ध औषधि समझा जाता था और उस औषधि पर विश्वास रखनेवाले उसमें से सड़े हुए फूल–पते निकले बिनाही उसका सेवन कर जाते थे ।”[16]

आज के वैज्ञानिक युग में भी सामान्य लोगों के मानस में से अंधश्रद्धा का भूत जहाँ का तहाँ ही घर कर बैठा है । राकेशजी ने कुछेक उदाहरणों द्वारा इस समस्या पर प्रकाश डाला है ।

७.४ धर्म को व्यवसाय के रूप में अपनाने वाले अशिक्षित लोगों द्वारा धार्मिक शास्त्रों की सुरक्षा पर लग रहे प्रश्नार्थ चिन्ह :

गोस्वामी, भगत, शास्त्री, पुजारी आदि नानाविध उपाधि से सन्मानित धर्म का प्रचार–प्रसार करने वाले लोग जो अपनी अर्धशिक्षा या अशिक्षा के कारण सिर्फ कहलाने के लिए ही पंडित होते है । ऐसे लोग भारत के महान शास्त्र जिस पर पूरी संस्कृति को गर्व है । उसका अपनी इच्छा और अपने सीमित ज्ञान के आधार पर मनमाना अर्थ निकालकर एक पवित्र ग्रंथ की उपादेयता पर प्रश्नार्थ लगा देते है । ‘सतयुग के लोग’ कहानी का भगन ‘रामचरित मानस’ का पाठ अपने आस–पास एकत्र हुए लोगों को सुनाते हुए कहता है – “जब भगवान रामचंद्र बनों को चले, तो अजुध्यावासी उनके साथ हो लिए । तो आगे–आगे भगवान चल रहे थे और पीछे–पीछे अजुध्याबासी । कहते हैं कि भगवान, हम भी आपके साथ ही बनों में जाकर रहेंगे ।... तो भगवान मर्यादा–पुरुषोतम ने उन्हें मर्यादा का आदेश देते हुए अजुध्या लौट जाने के लिए कहा । कहा कि मेरे चरणों में तुम्हें तनिक भी अनुराग है, तो सब नर–नारी यहाँ से लैट जाओ । तो महाराज, भगवान का आदेश सिर–आँखों पर धरकर सब–नर–नारी यहाँ से लैट जाते है और भगवान बनों को चले जाते है । एक–एक करके चौदह बरस बीत जाते है । भगवान राक्षसों का दमन करके लक्ष्मण और सीता के साथ बनों से लौकर आते है तो क्या देखते है ? देखते है कि जहाँ से उन्होंने अजुध्यावासियों को लौटने को कहा था, वहाँ पर बहुत से हिजड़े एकत्र हैं । तब उसका मुखिया हाथ जोड़कर कहता

है कि है प्रभु, दीनबंधु, अंतर्यामी, आपने आदेश दिया था कि सब नर–नारी लौटकर अजुध्या चले जायें । परंतु हमारे लिए प्रभु अपने कोई आदेश नहीं दिया था । सो हम आपके सेवक, दासानुदास, तब से आदेश की प्रतीक्षा में यहीं बैठे हे ।”[17]

भगत की बात सुनकर लोगों का प्रतिभाव है – “भगवान सरब अंतर्यामी थे । उन्हें नहीं पता चला कि हिजड़े वहाँ पर क्यों बैठे है .... ? निरा झूठ ! भगवान के नाम पर झूठ बोलते लोगों को शर्म नहीं आती । भगत बने फिरते है ।”[18]

यहाँ राकेशजी ने धार्मिक ग्रंथो पर अपना वक्तव्य देने वाले भगत कहे जाने वाले लोगों के अज्ञान और श्रोता गण की समझ को प्रस्तुत करके धर्म और धर्म ग्रंथ के अर्थ के स्थान पर हो रहे अनर्थ पर व्यंग्य किया है ।

७.५ धार्मिक स्थलों पर सांप्रदायिक आड़ में हो रहे आंतरिक संघर्ष और अनैतिकता

‘भिक्षु’ कहानी में बौद्ध विहार में भिक्षुओं और भिक्षुणियों के व्यवहार और मानसिकता का वर्णन करते हुए उन के बीच हो रहे आंतरिक संघर्षो का वर्णन किया गया है । बौद्ध विहार की अधिष्ठात्री माँ विपला का औसर पुत्र संघमित्र भिक्षुणी तारा जिसे उसने बचपन से छोटी बहन की तरह प्यार किया था, अपनी दृष्टि में अंतर लाकर उसके रूप पर मोहित हो रहा है । साथ ही संघमित्र प्रतिभासम्पन्न एवं विनम्र भिक्षु मृत्युंजय के साथ बातों बातों में उलझता रहता है । संघमित्र के इस प्रकार के व्यवहार से तारा क्षोभ अनुभव करती हुई माँ विपला से संघमित्र के विषय में बात करती है । किन्तु माँ विपला इसे तारा के मन का संदेह कहती है ।

प्रतिभा सम्पन्न मृत्युंजय की बढ़ती लोकप्रियता के कारण संघमित्र उस पर व्यक्तिगत आक्षेप करता है । संघमित्र के इस प्रकार के व्यवहार के कारण मृत्युंजय न चाहते हुए भी विहार छोड़ने के लिए मजबूर हो जाता है । उसी रात संघमित्र माँ विपला की अस्वस्थता का बहाना बना कर भिक्षुणी तारा को

बुलाता है । वह तारा के साथ जबरदस्ती करके अपनी कामवासना शांत करना चाहता है । तारा संघमित्र से विनंती करती हुई कहती है – ''माँ की अस्वस्थता का बहाना करके तुमने मुझे क्यों बुलाया ? तारा तुम्हारी बहन है, उसे जाने दो संघमित्र ।''[19] किन्तु संघमित्र तारा की एक न सुनते हुए उसकी ओर आगे बढ़ने का प्रयास करता है । उसी समय मृत्युंजय वहाँ पहोंचकर तारा को संघमित्र से बचाता है । संघमित्र और मृत्युंजय के बीच जबरदस्त लड़ाई होती है । अंत में लड़ते–लड़ते दोनों बेहोश हो जाते है । संघमित्र की मृत्यु हो जाती है और मृत्युंजय तारा की सेवा सुश्रुषा से बच जाता है । माँ विपला भी इस सदमे को सह नहीं पाती ।

बहुत दिनों तक मृत्युंजय बेहोश रहा । तारा निरंतर उसकी सेवा में रत रहती है । होश में आते ही तारा का स्पर्श और उसकी निकटता मृत्युंजय को भी उसकी ओर आकर्षित करती है । उसे लगता है कि तारा सुंदरी है बहुत बड़ी सुन्दरी है । मृत्युंजय के मन में भी तारा के प्रति कामवासना जागृत हो जाती है । किन्तु अंदर से उसे एक धिक्कार पूर्ण स्वर निकलता सुन पड़ता है – ''मृत्युंजय ! यह रास्ता मृत्यु का है ।''[20] उसे अपनी गलती का अहसास हो जाता है । तब तक माँ विपला का निर्वाण हो चुका होता है । वह माँ की जगह तारा को देखता है । क्योंकि तारा सर्वसंमति से मठ की अधिष्ठित्री बना दी गयी होती है । मृत्युंजय का पश्चाताप सुनकर वह उसे सौम्यवाणी में कहती है – ''विपला माँ का निर्वाण हो चुका ! उनकी समाधि पर फूल चढ़ा आओ भिक्षु ।''[21] यहाँ तारा के चरित्र को उदात्त रूप में प्रस्तुत किया गया हे ।

'भिक्षु' कहानी में राकेश ने ''बौद्ध कालीन भिक्षु समाज से सम्बद्ध इस रचना में संसार को त्यागकर निर्वाण के पथ पर अग्रसर हुए भिक्षुओं के त्याग, वैराग्य, करुणा, दया, आदि के भीतर कुलबुलाती अधिकार लालसा, वासना, लिप्सा, मोह और मानसिक तुलुम का अंकन अत्यंत नाटकीय कथा–स्थितियों में किया है । यह कहानी दो भिक्षुओं और एक भिक्षुणी को केन्द्र में रखकर अग्रसर होती है, जो मानव सुलभ कमजोरियों के क्षणिक आवेग के कारण

अपनी तपस्या के पथ से दिग्भ्रामित होते नज़र आते हैं । किन्तु आत्मग्लानि और पश्चाताप की अग्नि में परिशुद्ध होकर पुनः भिक्षु मृत्युंजय अपनी सात्विक शक्ति को समेटकर धर्म मार्ग पर अग्रसर होता है ।"[22]

'खंडहर' कहानी का पूजारी गोस्वामी नृसिंहदत्त अपने शिष्य चेतनराम को शिक्षा देता है उसमें उसकी कामुक और वासनापूर्ण दृष्टि के ही दर्शन होते है । "रात को गोस्वामी उसे बड़ी रुची के साथ अलंकार पढ़ाया करते थे और हाथ से आकार बना–बनाकर बतलाया करता था कि इतने–इतने स्तनों वाली नारी को 'श्यामा' कहते है और इतने–इतने स्तनों वाली नारी को 'पदमिनी' कहते हैं । चेतू अभ्यास के तौर पर मंदिर में आने वाली युवतियों की छातियों की तरफ देखा करता था कि उनमें से कौन–सी 'श्यामा' है और कौन–सी 'पदमिनी' ।"[23]

गोस्वामी नृसिंहदत्त और शास्त्री प्रीतमदेव के बीच भी लड़की पारो को लेकर तकरार होती है । शास्त्री प्रीतमदेव अपना काम निकालने के लिए नृसिंहदत्त के सामने पारो की बात करता है, जिसे सुनकर नृसिंहदत्त कहता है कि "तो वह रांड़ तेरे साथ भी....."[24] और इतना कहकर "गोस्वामी ने महसूस किया कि उसने लीद कर दी है ।"[25] साथ ही मंदिर के बाहर खड़े लोगों के व्यवहार द्वारा भी राकेशजी ने लोगों की कामुक दृष्टि की ओर संकेत कर दिया है ।

'खंडहर' कहानी में राकेशजी ने मंदिर के अन्दर और बाहर फैले हुए अनाचार और धर्म के खत्म हो रहे मूल्यों की ओर दृष्टिपात किया हैं ।

'जानवर और जानवर' कहानी में भी राकेशजी धर्म की आड़ में हो रहे अनैतिक व्यवहार को अभिव्यक्ति दी हैं ।

७.६ निष्कर्ष :

धार्मिक चेतना का निरूपण राकेशजी ने सिर्फ अपनी कुछेक कहानियों में ही किया है । किन्तु फिर भी राकेशजी की दृष्टि ने धर्म के साथ फैल रही अंधश्रद्धा और धार्मिक आडंबर का जिस व्यंग्यात्मक शैली में वर्णन किया है,

वह उनके धर्म के प्रति, स्वस्थ दृष्टिकोण का ही परिणाम है । धर्म को सिर्फ व्यवसाय के रूप में अपनाने वाले अशिक्षित या अर्धशिक्षित लोगों द्वारा हो रहे हमारे महान धार्मिक ग्रंथों के गलत और मन–माने अर्थ की ओर राकेशजी ने चिंता व्यक्त की हैं । धार्मिक–स्थलों में हो रहे अत्याचार, अनाचार, अनैतिकता और आंतरिक संघर्ष की ओर भी राकेशजी ने संकेत किया है ।

इस प्रकार स्पष्ट है कि राकेशजी ने अपनी युग–चेता दृष्टि से तत्कालीन युग के सभी पहलुओं को देखा, समझा और परखा है । किसी भी रचनाकार का रचना सामर्थ्य इसी बात में है कि वह अपने युग में संपूर्ण क्रिया कलापों को यथार्थ स्वर दे । राकेशजी अपने युग को स्वर देने में शतप्रतिशत खरे उतरे हैं ।

संदर्भ सूची :

१	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'जानवर और जानवर', पृ. ३७०
२	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'जानवर और जानवर', पृ. ३७१
३	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'जानवर और जानवर', पृ. ३७१
४	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'जानवर और जानवर', पृ. ३७०
५	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'जानवर और जानवर', पृ. ३७१
६	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'खंडहर', पृ. २१२
७	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'खंडहर', पृ. २१२
८	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'खंडहर', पृ. २१२
९	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'खंडहर', पृ. २१४
१०	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'खंडहर', पृ. २१४
११	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'मंदिर मंदिर की देवी', पृ. ४३४
१२	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'मंदिर मंदिर की देवी', पृ. ४३५
१३	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'मंदिर मंदिर की देवी', पृ. ४३५
१४	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'मंदिर मंदिर की देवी', पृ. ४३६
१६	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'मंदिर मंदिर की देवी', पृ. ४३३
१५	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'मिस पाल', पृ. २३
१७	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'सत युग के लोग', पृ. ४४१
१८	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'सत युग के लोग', पृ. ४४१
१९	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'भिक्षु', पृ. ४३०
२०	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'भिक्षु', पृ. ४३२
२१	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'भिक्षु', पृ. ४३२
२२	मोहन राकेश का कथा साहित्य 'सुजाता चतुर्वेदी', पृ. १३१
२३	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'खंडहर', पृ. २१० से २११
२४	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'खंडहर', पृ. २१३
२५	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, 'खंडहर', पृ. २१३

उपलब्धि और सीमाएँ

उपलब्धि और सीमाएँ

मोहन राकेश ने कहानी सर्जन की लंबी यात्रा तय की हैं । इस यात्रा का प्रारंभ प्रथम लिखित कहानी 'नन्ही' से और राकेशजी की डायरी के अनुसार प्रथम कहानी 'भिक्षु' से हुआ हैं । राकेशजी के व्यक्तित्व की यह विशेषता रही है कि चाहे लेखन हो, या जीवन नयेपन में उनका असीम विश्वास था और उस विश्वास को खंडित न होने देने में भी उनकी जी तोड़ कोशिश थी । इस कारण उनकी हर रचना विलक्षण गरिमा से मंडित हो जाती है । 'नन्ही' कहानी में संवेदना के झीने तारों की प्रथम झंकार है जिसकी चरम परिणति आगे चलकर 'एक और ज़िन्दगी', 'मिस पाल', 'गुंझल', 'फौलाद का आकाश' आदि जैसी अत्यंत सशक्त रचनाओं में हुई ।

इस अध्याय में राकेशजी की कहानियों की उपलब्धियाँ और सीमाओं का मूल्यांकन हमने समयावधि के अनुसार क्रमशः प्रकाशित किये गये कहानी संग्रहों की कहानियों के आधार पर करने का विनम्र प्रयास किया है । क्योंकि किसी भी रचनाकर की उपलब्धियाँ और सीमाओं को स्पष्ट करने का यह सबसे आसान तरीका है । राकेशजी की कहानियों का प्रारंभ, विकास और उत्कर्ष देखने से उनकी विशेषताएँ और कमियाँ खुद-ब-खुद सामने आ जाती है ।

राकेशजी की कथायात्रा में उनकी कहानियों के पाँच संग्रह कालक्रमानुसार ये हैं । (१) 'इन्सान के खंडहर' (१९५०), (२) 'नये बादल' (१९५७), (३) 'जानवर और जानवर' (१९५८), (४) 'एक और ज़िन्दगी' (१९६१), (५) 'फौलाद का आकाश' (१९६६) राकेशजी के ये संग्रह क्रमशः उनकी कहानी यात्रा के विभिन्न सोपानों को व्यक्त करते हैं । राकेशजी की मृत्यु के पश्चात् कमलेश्वरजी ने उनकी अन्य अप्रकाशित कहानियों को उनकी डायरियों से ढूँढ़ निकाला जो सारिका के मोहन राकेश 'स्मृति विशेषांक' में प्रकाशित है । इस तरह राकेशजी की कुछ ६३ कहानियाँ उपलब्ध होती हैं ।

कमलेश्वरजी द्वारा 'सारिका' में प्रकाशित कहानियाँ राकेशजी की प्रारंभिक रचनाएँ हैं । नयी कहानी की रचना प्रक्रिया के संबंध में राकेशजी ने नये संदर्भो की खोज और अनुभूत सत्य की खोज की हैं । यह उनकी लेखन प्रक्रिया का मूल उत्स है एवं सूक्ष्म युग चेतना दृष्टि से प्राप्त तीव्रानुभूति को अभिव्यक्ति देने की ललक हैं । इसका प्रमाण उन्होंने आरंभ में ही 'नन्ही' और 'लड़ाई' कहानियों में दिया है । प्रस्तुत संग्रह की संकलित कहानियों में राकेशजी के व्यापक एवं युगचेता दृष्टिकोण को देखा जा सकता है । 'नन्ही' में तीव्र संवेदना है, भिक्षु में वासना और उससे मुक्ति पाने की आकांक्षा के बीच का द्वंद्व है, 'मंदिर मंदिर की देवी' और 'सतयुग के लोग' में अंधश्रद्धा और धार्मिक खोखलेपन का चित्र है, 'एक घटना' में परिवार की आर्थिक दुरवस्था के अंकन द्वारा सामाजिक प्रश्न उठाया गया है, 'कटी हुई पतंग' में वासना के छद्म रूप और नारी के शोषण की समस्या की अभिव्यक्ति है, 'गुमशुदा' और 'अर्धविराम' में व्यक्ति के अकेलेपन और अजनबीपन का संत्रास व्यंजित है । इन सब कहानियों में तत्कालीन युग चेतना को अभिव्यक्त करने का सशक्त प्रयास किया गया है । इन कहानियों में वैयक्तिक अनुभूति और सामाजिक चेतना को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है । इन कहानियों में जहाँ, एक ओर राकेशजी की दृष्टि व्यक्ति के अंतर की भीतरी तह को भेद लेने की कोशिश करती है, वहाँ दूसरी ओर समष्टि के सुदूर क्षितिजों को भी पकड़ने का प्रयास करती दिखाई देती हैं ।

सन् १९५० ई. में राकेशजी का प्रथम कहानी संग्रह 'इन्सान के खंडहर' प्रकाशित हुआ । इन रचनाओं में नये भावबोध और उसकी अभिव्यक्ति के बीच परंपरा को बनाएँ रखने का मोह नहीं अपितु परंपरा को तोड़कर नये धरातल से जुड़ने का प्रयास दिखाई देता है । राकेशजी एक ओर दुविधाग्रस्त थे तो दूसरी ओर निर्वासन और विद्रोह के भाव से घिरे थे । उस समय की अपनी मनोदशा को स्पष्ट करते हुए राकेशजी ने लिखा हैं – ''उन दिनों कई कारणों से मैं अपने को अपने तब तक के परिवेश से बहुत कटा हुआ महसूस करता था । जिन व्यक्तियों और संस्कारों के बीच पलकर बड़ा हुआ

था, उनके खोखलेपन को लेकर गहरी कटुता और वितृप्ता थी ।''[1] प्रस्तुत कहानी संग्रह की कहानियों में राकेशजी का ध्यान अभिजात वर्ग के ओढ़े हुए खाल के भीतर रिसते मन और मध्यवर्ग की कुंठा एवं घुटन पर अधिक गया हैं । 'धुँधला दीप', 'लक्ष्यहीन' जैसी कहानियाँ अकेले टूटे से व्यक्ति की ज़िन्दगी की विडंबनाओं का वर्णन करती है । किन्तु ये कहानियाँ राकेशजी की बौद्धिकता के आग्रह और गुमलेबाली के प्रयोग के कारण बाद की कहानियों से अलग लगती है । इस कहानी संग्रह की इन कहानियों के संदर्भ में स्वयं राकेशजी का कथन है – '' 'इन्सान के खंडहर' की कहानियाँ कई दृष्टियों से मेरे बाद के प्रयोगों के साथ एक कड़ी के रूप में ठीक से जुड़ नहीं पाती । उनके शिल्प और कथ्य दोनों में एक तरह की कोशिश है, एक अनिश्चित तलाश का कच्चापन ।''[2] और ''शब्दो के अतिरिक्त मोह के कारण आज उस समय की रचनाएँ इतनी बेगानी लगती हे कि उनमें से किसी एक को यहाँ केवल उदाहरण के रूप में रख लेने को भी मन नहीं हुआ ।''[3] राकेशजी ने स्वयं इस कहानी संग्रह की कहानियों की मर्यादाओं को स्वीकार किया हैं । यह स्वीकृति राकेशजी को आगे चलकर एक सशक्त कहानीकार के रूप में पेश करती हैं ।

राकेशजी के प्रथम संग्रह की कहानियों के विषय में अपना अभिप्राय स्पष्ट करते हुए डॉ. धनंजय वर्मा लिखते हैं – ''राकेश की प्रारंभिक कहानियों में आवेश, धर्म, प्रगतिवादी दौर के सारे साहित्यिक मुहावरे मिल जायेंगे । शोषित और श्रमिक वर्ग के प्रति सहानुभूति का फूटता हुआ लावा, धर्माडंबर के प्रति व्यंग्य का जोश और धनिक वर्ग की लिप्सा के लिए उबलता आक्रोश, पेट में पहुँची आग का ताप और सतह पर तैरते हुए विचार की अस्त–व्यस्त श्रृंखला त्रिकोणों में लिपटता लटपटाता वहीं ड्राइंगरूमी प्रेमी और काफी के प्यालों पर बहसों का अंतहीन सिलसिला भावुकता के विरोध में अतिरिक्त भावुकता और कामोवेश रूढ़िगत 'फार्म' और 'ढहते घर की ईंटों पर गारे का लेप नहीं चलेगा' चाली मुट्ठी बांप घोषणाएँ लेकिन इन सबके बावजूद वह देखता

है, सामने जिंदगी की किताब खुली है, जिसके पन्ने अपने आप पलटते जा रहे है और उन पन्नों की इबारत आप बखूबी पढ़ सकते हैं ।"[4]

इस प्रकार राकेशजी और डॉ. धनंजय वर्मा के प्रथम संग्रह के संबंध में विचार जानने के बाद इतना अवश्य कहा जा सकता है कि इन कहानियों में कथ्य और शिल्प की दृष्टि से कुछ मर्यादाएँ होते हुए भी तत्कालीन परिस्थिति के साथ तेजी से नया रूप लेते जीवन की धड़कने सुनी जा सकती है और वह युग चेतना भी रेखांकित हुई है जिससे हर युग चेता रचनाकार प्रभावित होता है ।

सन् १९५७ ई. में प्रकाशित 'नये बादल' कहानी संग्रह ने राकेशजी को हिन्दी कहानी साहित्य में नये कहानीकारों के रूप में प्रतिष्ठित किया । इस कहानी संग्रह की कहानियों में नवीन कथ्य और नयी संवेदना नितांत नये संदर्भो में तत्कालीन युग–चेतना के साथ अभिव्यक्त हुई है । यहाँ राकेशजी की संवेदना युग–चेतना के साथ अभिव्यक्त हुई है । अब राकेशजी की कोरी बौद्धिक का स्थान प्रामाणिक यथार्थ अभिव्यक्ति ने ले लिया था, जुमलेबाजी का नशा भी उतर गया था और बची–कुची आदर्शवादिता भी लुप्त हो चुकी थी । तत्कालीन युग–चेतना को सशक्त अभिव्यक्ति देने का प्रयास 'नये बादल' की कहानियों में हुआ है । 'नये बादल', 'अपरिचित', 'मंदी', 'उसकी रोटी', 'हवामुर्ग' आदि कहानियों में वैयक्तिक और सामाजिक संदर्भो की खोज, यथार्थ की उपलब्धि के लिए विभिन्न सामाजिक और मौलिक स्तरों पर कहानीकार का विचरण, जीवन के गहरे साक्षात्कार का प्रयास आदि इनमें व्यंजित हैं ।

'मेरी प्रिय कहानियाँ' की भूमिका में राकेशजी लिखते हैं – "लंबे अरसे के बाद जो पहली कहानी लिखी उसका शीर्षक था 'सौदा', मेरे पहले की कहानियों से इतनी अलग थी कि एक तरह से उसे मेरे लेखन के उस दौर की शुरुआत माना जा सकता है जिसमें आगे चलकर 'उसकी रोटी', 'मंदी', 'मलबे का मालिक', 'जानवर और जानवर' जैसी कहानियाँ लिखी गई हैं । 'इन्सान के खंडहर' से इस दौर तक आते–आते ओढ़ी हुई बौद्धिकता के कोने काफी झड गये थे ।"[5]

'नये बादल' के संदर्भ में डॉ. रामदरश मिश्र लिखते हैं – " 'नये बादल की कहानियाँ तीन दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है - एक तो ये कहानियाँ आस–पास के विविध सत्यों के अनुभवों की कहानियाँ है, दूसरे इनमें कलात्मक निःसंगता दिखाई पड़ती है और तीसरे इनमें 'नयी कहानी' की नवीन संरचना का उभार लक्षित होता है ।"[6]

'नये बादल' की कहानियाँ विभिन्न मानव संबंधों को उजागर करनेवाली कहानियाँ हैं । देश के विभाजन की विभीषिका से उत्पन्न मानवीय त्रासदी का चित्रण करने वाली 'मलबे का मालिक' कहानी इस कहानी संग्रह की चर्चास्पद कहानी है । यह कहानी सिर्फ रक्खे या गनी की कहानी ही नहीं बल्कि विभाजन की विभीषिका से बचे मलबे की कहानी है, जो हमारे सामने आज भी ज्यों का त्यों पड़ा है । इस कहानी में विभाजन की मानसिक भूमिका का सफल मानचित्र प्रस्तुत है । एक सशक्त रचनाकार और युग चेता कहानीकार के रूप में राकेशजी ने विभिन्न स्तरों पर प्रस्तुत जीवन के विविध पहलुओं को प्रस्तुत कहानी संग्रह की कहानियों में यथार्थ की व्यापक भूमि के साथ प्रस्तुत कर दिया है ।

राकेशजी की पैनी दृष्टि अपने आस–पास की हर घटना में कहानी ढूँढ़ लेने की क्षमता रखती थी ।

डॉ. इन्द्रनाथ मदान राकेशजी की कहानियों के संदर्भ में अपना भिन्न दृष्टिकोण रखते हुए लिखते हैं – "जिस कहानी में सहज रस नहीं है वह किसी दिन लोकप्रिय नहीं हो सकती और न साहित्य में स्थायी प्रतिष्ठा प्राप्त कर सकती है, क्योंकि आदमी हर चीज से विद्रोह कर सकता है, हर चीज को छोड़ सकता है । अपने आंतरिक स्वभाव को नहीं । कहानी के सारे प्रयोग इस कथा रस के चौखटे में किये जाने पर ही सार्थक हो सकते हैं ।"[7]

पूर्वाग्रह रहित दृष्टि से देखा जाय तो राकेशजी की इन कहानियों में लोकप्रियता भी है और स्थायी प्रतिष्ठा पाने की शक्ति भी क्योंकि इन कहानियों में वह यथार्थ रेखांकित हुआ है जिसे हम अपने आस–पास महसूस करते हैं, परंतु अभिव्यक्ति शक्ति का अभाव होने के कारण अभिव्यक्त नहीं कर पाते ।

किन्तु राकेशजी ने युगचेता कहानीकार का दायित्व निभाते हुए इसे कलात्मकता के साथ अभिव्यक्ति दे दी हैं ।

सन् १९५७ ई. में 'नये बादल' के प्रकाशन के पश्चात् सन् १९५८ ई. में राकेशजी का 'जानवर और जानवर' कहानी संग्रह प्रकाशित हुआ । इस कहानी–संग्रह की 'रोजगार', 'परमात्मा का कुत्ता', 'मवाली', 'आर्द्रा', 'आखिरी सामान', 'मिस्टर भाटिया', 'क्लेम', 'जानवर और जानवर' कहानियों में राकेशजी की रचनात्मकता ऊँचाईयों को छूती हुई दिखाई देती है । व्यक्ति के भीतर से फूटते विद्रोह और आस्था के स्वर की अनुगूँज 'जानवर और जानवर' संग्रह की कहानियों में व्याप्त है ।

इस दौर की कहानियों के संदर्भ में राकेशजी लिखते हैं – ''एक तरह की कटुवाहट इस अनुभूति में भी थी, पर वह कटुवाहट निरर्थक और आरोपित नहीं थी । उसका उदे्श्य जुड़े होने की स्थिति से मुक्ति पाना नहीं, उसकी तत्कालीन शर्तो को अस्वीकार करते हुए जुड़े रहने के सार्थक संदर्भो को खोजना था ।''[8]

इस संग्रह की कहानियों का मुख्य स्वर आर्थिक विपन्नता से ग्रस्त निम्न मध्यवर्ग का मानसिक संत्रास, लाचारी, पीड़ा और इन सब के नीचे दब रही जिजीविषा है । जिसकी अभिव्यक्ति सामाजिक संदर्भो के साथ हुई है । उदाहरण के लिए 'परमात्मा का कुत्ता', 'रोजगार', 'क्लेम' आदि कहानियों को ले सकते है । 'आर्द्रा', 'आखिरी सामान', 'जानवर और जानवर' आदि कहानियाँ वैयक्तिक चेतना प्रस्तुत करते हुए भी विविध स्तरों पर अपना महत्त्व रखती है ।

मार्कण्डेयजी राकेशजी की 'जानवर और जानवर' कहानी के संदर्भ में अपना मत रखते हुए लिखते हैं – ''समस्याओं के साथ वैयक्तिक हस्तक्षेप के कारण ही राकेश जहाँ भी जीवन के यथार्थ प्रसंग को छूते हैं, समस्याएँ अपने सार्वजनिक रूप को छोड़कर व्यक्तिगत जाती है । इस कहानी में तो लगता है कि पादरी को सिर्फ दो ही काम हैं, औरतो के साथ सोना, और दुसरे रोज अपने नीचे के आदमियों को निकालते जाना । सच तो यह है कि पादरी के

जीवनदर्शन से इन दोनों कार्यो का कोई संबंध कहानी में नहीं उभर पाता और अत्यंत सजीव विवरणों के बावजूद, चूँकी पादरी राकेश की आत्मिक मान्यताओं का शिकार हो जाता है, इसलिए उसे फिर से खोजने के लिए तुम उसी प्रकार इन्तजार करते रह सकते है जैसे 'मलबे का मालिक' के पहलवान रक्खे के अगले हृदय परिवर्तन के लिए इन्तजार कर रहे हैं ।''[9]

मार्कण्डेयजी के विचार के समक्ष यह स्पष्ट करना आवश्यक बन गया है कि राकेशजी की कहानियों में यथार्थ की अभिव्यक्ति जिस तरह हुई है उससे जीवन की चरमराहट सहजता से प्रस्तुत हो गयी है । इसीलिए किसी दर्शन विशेष का अनुकरण न होते हुए यह कहानियाँ युग की उमस का, जीवन के स्पंदनों का सूक्ष्म अंकन करती है । यही राकेशजी की कहानियों की विशेषता है ।

सन् १९६१ में प्रकाशित, 'एक और ज़िन्दगी', कहानी संग्रह की कहानियाँ राकेशजी के उत्तरोत्तर व्यापक रूप धारण करते कहानीकार के रूप में सामने लाती है । इस कहानी संग्रह की कहानियों में अत्यंत सूक्ष्म और गहन–स्तर पर संबंधों की यंत्रणा को और अकेलेपन को झेलते लोगों की स्थिति–गतियों को सफल एवं सार्थक अभिव्यक्ति मिली है । 'मिस पाल', 'बस स्टैन्ड की रात', 'एक और ज़िन्दगी', आदि इस कहानी संग्रह की परिष्कृत कहानियाँ है । इन कहानियों की महत्ता इस बात में निहित है कि इनमें व्यक्ति और समाज के संबंधों को आधुनिक परिवेश में भी एक इकाई के रूप में स्वीकार किया गया हैं ।

'मिस पाल' कहानी में अकेलेपन से जूझ रही, जी रही और समाज के उलाहने और उपेक्षा झेल रही एक भद्दी मोटी स्त्री के मनोव्यापार का अंकन हुआ है । 'सुहागिनें' मनोरमा की अव्यक्त यातना की कहानी है । 'एक और ज़िन्दगी' इस कहानी संग्रह की सबसे सशक्त कहानी है । डॉ. धनंजय वर्मा इस कहानी को राकेशजी की सबसे अच्छी कहानी मानते हैं । स्त्री–पुरुष के संबंधों एवं उसके बिखराव तथा उस बिखराव के परिणामों को प्रस्तुत करने वाली यह कहानी तत्कालीन वैयक्तिक और सामाजिक चेतना को यथार्थ के साथ

अभिव्यक्ति करती है । चरित्रों के अंतःर्द्वन्द्व को रागात्मकता और सूक्ष्म प्रवाह के साथ रेखांकित करने में राकेशजी ने सफलता प्राप्त की हे, और यह इस कहानी की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है ।

'एक और ज़िन्दगी' कहानी के संदर्भ में डॉ. मार्कण्डेय अपने विचार स्पष्ट करते हुए लिखते हैं – ''राकेश नये जीवनानुभवों के अनुरूप एक सहज, भौतिक दृष्टि का विकास नहीं कर सके । इसलिए जहाँ नयों के सामने 'एक और ज़िन्दगी' जैसी कहानी एक निहायत भावुकतापूर्ण रोमानी कहानी बन कर रह गयी, वहीं पुराने भाव–बोध के अनुसार इसे एक असंतुलित आदमी की अस्वाभाविक काव्यकथा का विशेषण प्राप्त हुआ । सच्चाई यह है कि राकेश की अनुभव प्रक्रिया और जीवन–दृष्टि में निरंतर एक खाई बनती रही । आत्मगत मान्यताओं में टिके रहने के कारण राकेश समसामयिक जीवन की अंतनिर्हित भावधारा में रहकर भी उसे अपनी ही तरह देखते रहे ।''[10] मार्कण्डेयजी का राकेशजी और उनकी कहानियों के प्रति हंमेशा पक्षपातपूर्ण दृष्टिकोण रहा है । पता नहीं वह क्या बात है जिसको लेकर मार्कण्डेयजी ने हंमेशा अन्य कहानीकारों की तुलना में राकेशजी के व्यक्तित्व और कृतित्व को निम्न कक्षा का साबित किया है । वैसे देखा जाय तो ज्यादातर आलोचकों ने जिस कहानी को राकेशजी की उत्कृष्ट कहानी के रूप से सराहा है उसे भी मार्कण्डेयजी ने 'काव्य कथा' के विशेषण से विश्लेषित कर दिया । अन्य नये कहानीकारों की कहानियों के प्रति मार्कण्डेयजी का पक्षपात रहित दृष्टिकोण रहा है या फिर अधिक झूका हुआ । किन्तु राकेशजी के विषय में उनका दृष्टिकोण पहले से ही उपेक्षापूर्ण रहा है । यदि मार्कण्डेयजी राकेशजी के प्रति तटस्थ दृष्टिकोण अपनाते तो उसे राकेशजी की कहानियों में कुछ विशेषताएँ अवश्य नज़र आती ।

'एक और ज़िन्दगी' कहानी संग्रह की अधिकांश कहानियों के संदर्भ में डॉ. धनंजय वर्मा लिखते हैं' - ''इन कहानियों में एक अव्यक्त सा दर्द कोहरे और बादल की तरह छाया है यह कोहरा और बादल कहानी की हर स्थिति

के साथ गहरा और घना होता जाता है । इतना कि अंत में एक छटपटाहट एक मूल क्रंदन और आंतरिक घनीमूत वेदना शेष रह जाती है ।"[11]

संक्षेप में 'एक और ज़िन्दगी' की कहानियों में अनुभूत यथार्थ की गहरी पकड़ दृष्टव्य है, जिसमें युग चेता कहानीकार राकेशजी का व्यक्तित्व स्पष्ट झलकता हैं ।

सन् १९६६ में राकेशजी का अंतिम कहानी संग्रह 'फौलाद का आकाश' प्रकाशित हुआ । 'फौलाद का आकाश' में राकेशजी ने तत्कालीन युग चेतना को सही रूप में पकड़ा है । इस कहानी संग्रह में 'ग्लास टैंक', 'सोया हुआ शहर', 'जंगला', 'चौगान', 'सेफ्टीपिन', 'ज़ख्म', 'एक ठहरा हुआ चाकू', 'पांचवे माले का फ्लैट' कहानियाँ संकलित हैं । राकेशजी इस संग्रह के संदर्भ में लिखते हैं – "इस संग्रह की दो–तीन कहानियों को छोड़कर प्रायः सभी बड़े शहर की ज़िन्दगी की भयावहता की कहानियाँ हैं । हालांकि भयावहता के संकेत इनमें भी व्यक्ति के माध्यम से ही सामने आते हैं, फिर भी इसका केन्द्र बिन्दु व्यक्ति न होकर उसके चारों ओर का संत्रास है ।"[12]

'ज़ख्म' और 'एक ठहरा हुआ चाकू' कहानियों मे यह संत्रास रेखांकित है । 'पांचवे माले का फ्लैट' और 'सोया हुआ शहर' नगर जीवन की विविधता और व्यक्ति के अकेलेपन को प्रस्तुत करती है । 'ग्लास टैंक' कहानी में संकेतों के माध्यम से पारिवारिक ट्रेजडी को अभिव्यक्ति मिली है । 'फौलाद का आकाश' और 'चौगान' पति–पत्नी के संबंधों की विडंबना और उससे उत्पन्न एकाकीपन को रेखांकित करती हैं ।

डॉ. धनंजय वर्मा 'फौलाद का आकाश' कहानी संग्रह की कहानियों का विश्लेषण करते हुए लिखते हैं – "राकेश ने कहानी को सीधे–सपाट पठनीयता से विकसित कर सूक्ष्मत्तर संवेदनाओं और अनुभवों के अंतर्विरोधी और जटिल रंगो–रेखाओं के अपुर्ण शैली के चित्र मानिंद बनाया है । ... पहले राकेश की कहानियों में एक निश्चित थीम और कथानक मिलता था, परिस्थिति या पात्रों से साक्षात्कार होता था, अब इधर की कहानियों में यह सब गौण हो जाता है । प्रधान होता है, अनुभव, उसके कुछ उत्पन्न क्षण ।"[13]

राकेशजी की कहानियों का खुला स्वागत हिन्दी जगत में हुआ । बहुत से आलोचकों ने राकेशजी के रचना कौशल को खूब सराहा है । लेकिन एक बात हमें नहीं भूलनी चाहिए कि कितना भी समर्थ रचनाकार क्यों न हो, उसकी कुछ सीमाएँ और कुछ कमजोरियाँ भी अवश्य होती है । रचनाकार की कुछ रचनाओं में कमियाँ रह जाना सहज बात है, क्योंकि रचनाकार आखिर मनुष्य होता है सृष्टि रचयिता ईश्वर नहीं कि जिनकी रचना में कहीं कोई कमी न हो । जहाँ तक राकेशजी की कहानियों की सीमाओं का सवाल है उन्होंने खुद अपनी कमियों को स्वीकार किया है और बाद की रचनाओं में उसे दूर करते हुए उत्कृष्ट से उत्कृष्ट रचना देने का प्रयास किया हे । अपनी कमियों को जानकर उसे दूर करने का यह प्रयास राकेशजी को एक सशक्त रचनाकार के रूप में उभारने में सहायक हुआ है ।

डॉ. नामवरसिंह और मार्कण्डेयजी ने राकेशजी की कहानी के दुर्बल पक्ष पर प्रहार किया है । डॉ. नामवरसिंह ने लिखा है – ''राकेश की कहानी में अभी बिजली की कौंध ही है, बिजली की शक्ति नहीं । इसमें यात्राओं में बटोरने की बात है, गहरी संवेदना का अभाव है । यात्रा की संवेदनशीलता बड़ी सतही होती है । यह राकेश की कहानियों की कमजोरी हैं ।''[14] मार्कण्डेय के विचार से ''समझ में नहीं आता कि राकेश किन अर्थो में प्रगतिशिल और नये है जबकि उनकी कहानियाँ साधारण सामाजिक व्यवस्था के सामने प्रश्न–चिन्ह लगाकर भावुकता भरे काव्यमय अनुभवाभास में खो जाती हैं ।''[15] इन आरोपो का निदान प्रस्तुत करते हुए डॉ. इन्द्रनाथ मदान लिखते हैं – ''यह संभव है कि लगभग ४० कहानियों में कुछ कहानियाँ इस तरह की हों जिनमें संदर्भो की खोज सतह पर हो, लेकिन सबके बारे में यह कहना सरलीकरण का परिणाम है ।''[16] राकेशजी की कहानियों के संबंध में डॉ. नामवरसिंह के आरोप के संबंध में डॉ. शरेशचंद्र चुलकीमठ अपने विचार स्पष्ट करते हुए लिखते हैं – ''नामवरसिंह के आरोप को सर्वथा निराधार मानना सत्य से दूर की बात होगी, लेकिन उसे पूर्णतः सही मानना भी राकेश की कहानी कला की जड़ो पर ही कुल्हाड़ी मारने के समान होगा । डॉ.

नामवरसिंह के कथन में आंशिक सत्य अवश्य है पर वे राकेश की कहानियों के उज्जवल्ल पक्ष को भूल जाते है और सारी उत्साहधर्मिता से मृत्युदंड़ का निर्णय सुनाते है कि हर कहानी गहरे में नहीं उतरती और नहीं वह उथले में रह जाती है ।"[17] डॉ. भैरुलाल गर्ग के विचार से "मोहन राकेश सामाजिक संचेतना के प्रमुख कहानीकार हैं । उनकी मनोरचना मध्यवर्गीय हैं – प्रबुद्ध मध्यवर्गीय । उनकी अनुभूतियाँ मध्यवर्गीय प्रबुद्धता को रेखांकित करती हैं । राकेश की कहानियों में नवीन संदर्भो की तलाश है । डॉ. नामवरसिंह ने राकेश की कहानियों पर आरोप लगाय है जो उचित प्रतीत नहीं होता ।"[18]

राकेशजी की कहानियाँ एक सचेत युगचेता रचनाकार की कहानियाँ हैं । अनुभव की सच्चाई और तत्कालीन यथार्थ की अभिव्यक्ति उनकी कहानियों की विशेषता हैं । राकेशजी को सशक्त कहानीकार साबित करते हुए डॉ. शरेशचंद्र चुलकीमठ लिखते हैं – "उन्होंने अपनी कहानियों में जीवन और अभिव्यक्ति के बीच आने वाली अतिरिक्तता और अतिरंजना को मिटाया है । मानव मन को पर्त–दर–पर्त खोलने और जीवन की विसंगतियों एवं विभीषिकाओं को निर्लिप्तता और निर्भयता से कह पाने का संयम एवं साहस वरता है । यही राकेश अन्य कहानीकारों से अलग खड़े हो जाते हैं । राकेश की कहानी कला की मौलिकता जीवन के नये सत्य को उद्घाटित करने में नहीं अपितु उसे उसके सही रूप में पकड़ पाने की साम्थर्य और सफलता में है ।"[19]

राकेशजी की कहानियों को समकालीन परिवेश की सशक्त रचनाओं के रूप में स्वीकार करते हुए डॉ. कविता शनवरे ने अपने विचार इन शब्दों में स्पष्ट किये हैं – "राकेश की कहानियों में चित्रित परिवेशगत कथ्य कहानी की मूल संवेदना से संबंध पात्र की मनोव्यथा को सूक्ष्म रूप में अंकित करने वाला है । इसलिए राकेश की कहानियों को समकालीन परिवेश की सशक्त रचनाओं के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए ।"[20]

राकेशजी की कहानियों का महत्त्व स्थापित करते हुए डॉ. सुष्मा अग्रवाल लिखती हैं – "राकेश की कहानियाँ स्थायी महत्त्व की कहानियाँ हैं । उनमें राकेश ने समकालीन जीवन के सुखद–दु:खद प्रसंगो, जीवन में भरती जा रही

उब, अकेलापन और उदासी का अंकन जिस सूक्ष्मता से किया है, उतनी ही गहराई से मानव–मानव के संबंधों को उनकी पूरी कटुता, रिक्तता और त्रासदी के साथ व्यक्त किया है । एक प्रकार से राकेश की कहानियाँ मानव संबंधों, मानवीय मूल्यों और समकालीन परिवेश में साँस लेते मनुष्य की कहानियाँ हैं । उनमें प्रतिपादित अनुभूतियाँ कच्ची नहीं है । वे तो लेखकीय मानस में घुट–पिटकर रसायन बन गयी हैं । उसका असर कहीं तेज और तिक्त है तो कहीं मीठा और मादक । वे कमी पाठकीय संवेदना को सहलाती है तो कभी धक्का भी दे देती है । उनमें तेजाब की गंध भी है और शरबत का स्वाद भी । वे ज़िन्दगी की प्रतिकृति हैं ।''[21]

डॉ. वासुदेव शर्मा के विचार से ''मोहन राकेश आधुनिक परिवेश के सशक्त कहानीकार हैं । उनकी कहानियों में अंकित मानव जीवन, किसी एक व्यक्ति का नहीं है, अपितु संपूर्ण मानव समाज का है । यहाँ तक कि वे नये संदर्भो की तलाश करते हुए भी वैयक्तिक नैतिकता का चित्रण करते है ।... लेखक ने व्यक्ति की मनःस्थितियों का चित्रण आधुनिक परिस्थितियों में किया है । और टूटते हुए परिवेश में परिवेश और समाज के मूल्यों का अंकन किया है ।''[22]

राकेशजी की कहानियों की प्रासंगिकता सपष्ट करते हुए डॉ. सदनकुमार पाल लिखते हैं – ''आधुनिक जीवन की जटिलता और क्षणिक आवेगों, आवेगों से उत्पन्न स्थितियाँ, मूल्यों का विघटन तथा नवीन मूल्य स्थापित होने की प्रक्रिया, 'स्व' की तलाश में भटकता व्यक्ति, परिवेश से जूझने की अदम्य लालसा नपुंसक आक्रोश से उत्पन्न विडंबनाओं, संबंधों के नये संदर्भो की तलाश, रिश्तों का बिलगाव और बिकाऊपन, अजनबीपन से ग्रस्त वातावरण में पहचान की तलाश, अर्थ और सेक्स की दीवारों के बीच घुटते मानवीय संबंध जैसी विडंबनाओं का वर्णन तो राकेश की कहानियों में है ही, परंतु यह वर्णन केवल यथार्थ का नग्न चित्रण बनकर नहीं रह जाता है, बल्कि हमें इस पर पुनः सोचने पर बाध्य करती है कि वास्तव में आधुनिक जीवन की इस आपाधापी में मनुष्य के ही कंधे पर मानवता का क्रुश, रख दिया । वस्तुस्थिति

से अजनबी बने रहने से मुक्ति नहीं है, अपितु वस्तुस्थिति को पहचान पाने में ही मुक्ति है । राकेश की कहानियाँ इस दृष्टि से अधिक प्रासंगिक प्रतीत होती हे ।''[23]

''मोहन राकेश की गणना हिन्दी साहित्य को आधुनिकता प्रदान करनेवाले दो–तीन गिने–चुने साहित्यकारों में की जाती है । ज्यादातर उन्होंने कहानियों ही लिखीं, एक–दो उपन्यास और तीन–चार नाटक, परन्तु इतना लिखकर ही वे साहित्य की अग्रणी पंक्ति में आकर खड़े हो गए । संसार के सोच–विचार और व्यवहार में द्वितीय महायुद्ध, उपनिवेशों के अंत, मशीनीकरण और पाश्चात्य प्रभावों के कारण जो परिवर्तन आए और जिन्हें साहित्य में 'आधुनिक–बोध' कहा गया, उसके सबसे उज्ज्वल और सशक्त रचनाकारों में मोहन राकेश उभरकर सामने आए । विषय निर्वचन, प्रस्तुतीकरण और भाषा तथा शैली सभी में उन्होंने इसे समाविष्ट किया – जिससे अन्य रचनाकारों ने सीखा और धारा को आगे प्रवाहित करने में सहायता दी ।''[24]

जीवन और साहित्य के सम्बन्ध की व्याख्या करते हुए राकेशजी अपने निबंध '' 'अनुभूति से अभिव्यक्ति तक' में लिखते हैं । जीवन में बहुत कुछ ऐसा है जो बहुतों के परिचित होते हैं, और जिसका विश्लेषण यदि उन्हें साहित्य में मिले तो उनके अपने अंतर के आनंद और वेदना, प्रेम और घृणा के प्रवाह फूट पड़ते हैं । इसीलिए साहित्यिक अभिव्यक्ति में कलात्मकता और ईमानदारी के साथ–साथ यह शक्ति भी अपेक्षित है कि वह उन प्रवाहों को छेड़ दे ।''[25]

राकेशजी की कहानियाँ अंततः इसी विचार मंथन से प्राप्त रचनाएँ हैं । इसीलिए तो 'मिस्टर भाटिया', 'सुहागिनें', 'एक और ज़िन्दगी' जैसी कहानियाँ छपने के बाद राकेशजी को कई ऐसे पत्र आये जिनमें यह आग्रह रहा कि आपकी कहानी हम पर ही लिखी है । दरअसल यही राकेशजी की कहानी यात्रा की सार्थकता है ।

संक्षेप में, राकेशजी ने अपने अभूतपूर्व शिल्प–कला का परिचय देते हुए स्वस्थ एवं संश्लिष्ट जीवन दृष्टि से संयुक्त होकर कहानियों की रचना की हैं ।

उन्होंने अपनी कहानियों के माध्यम से मध्यवर्गीय सामान्य मानव को प्रतिष्ठित कर कहानी को सार्थक आयाम दिया है । राकेशजी ने हिन्दी कहानी को नया रूप देने में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया हैं । यह योगदान तब तक बरकरार रहेगा जब तक हिन्दी में कहानी की बात चलेगी । राकेशजी की एक–एक कहानी साहित्य के विकास का खूबसूरत क्रांतिकारी मोड़ है, युग–चेतना का सशक्त सार्थक वाहक और आधुनिक जीवन, विकास का यथार्थ चित्र भी । राकेशजी ने अपनी समृद्ध एवं विशिष्ट कहानी संपदा द्वारा हिन्दी कहानी को विश्व कहानी के समक्ष बैठाना में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया हैं ।

संदर्भ सूची :

१	'मेरी प्रिय कहानियाँ'(भूमिका से) मोहन राकेश, पृ. ६
२	'मेरी प्रिय कहानियाँ'(भूमिका से) मोहन राकेश, पृ. ६
३	'मेरी प्रिय कहानियाँ'(भूमिका से) मोहन राकेश, पृ. ६–७
४	सारिका मार्च, १९७३, पृउ ८२
५	'मेरी प्रिय कहानियाँ'(भूमिका से) मोहन राकेश, पृ. ८
६	हिन्दी कहानी अंतरंग पहचान, डॉ. रामदरश मिश्र, पृ. १२४
७	हिन्दी कहानी पहचान और परख, डॉ. इन्द्रनाथ मदान, पृ. ७७–७८
८	'मेरी प्रिय कहानियाँ'(भूमिका से) मोहन राकेश, पृ. १०
९	कहानी की बात, मार्कण्डेय, पृ. ५६
१०	कहानी की बात, मार्कण्डेय, पृ. ५७
११	मोहन राकेश एक समर्पित कहानी यात्रा : धनंजय वर्मा, पृ. ८३, (सारिका, मार्च, १९७३)
१२	'मेरी प्रिय कहानियाँ'(भूमिका से) मोहन राकेश, पृ. ११
१३	मोहन राकेश एक समर्पित कहानी यात्रा : धनंजय वर्मा, पृ. ८३, (सारिका, मार्च, १९७३)
१४	हिन्दी कहानी : अपनी जबानी, डॉ. इन्द्रनाथ मदान, पृ. ११६
१५	कहानी नयी कहनाी – डॉ. नामवरसिंह, पृ. ३६
१६	कहानी की बात, मार्कण्डेय, पृ. ५६
१७	मोहन राकेश का साहित्य : समग्र मूल्यांकन, डॉ. शरेशचंद्र चुलकीपठ, पृ. ७५
१८	स्वातंत्र्योतर हिन्दी कहानी में सामाजिक परिवर्तन, डॉ. भैरुलाल गर्ग, पृ. ११२
१९	मोहन राकेश का साहित्य : समग्र मूल्यांकन – डॉ. शरेशचंद्र चुलकीमठ, पृ. ७६
२०	मोहन राकेश और उनका साहित्य – डो. कविता शनवरे, पृ. १०४
२१	मोहन राकेश व्यक्तित्व और कृतित्व – डो. सुष्मा अग्रवाल, पृ. २८९
२२	साठोतरी हिन्दी कहानी : मूल्यों की तलाश – डो. वासुदेव शर्मा, पृ. ८८
२३	मोहन राकेश की कहानियों में आधुनिक बोध – डो. सदन कुमार पाल, पृ. ७३
२४	नया साहित्य – जनवरी २००२ पृ. ३
२५	'परिवेश' – मोहन राकेश, पृ. १०८

उपसंहार

उपसंहार

भारतीय कथा–साहित्य की परंपरा अत्यंत समृद्ध और विकासशील रही है । हिन्दी कहानी साहित्य के विकास पर दृष्टिपात करे तो आज वह एक विविध और व्यापक रूप में सामने आती हैं । साहित्य के क्षेत्र में खड़ीबोली से लेकर आज तक कहानी की विद्या सर्वाधिक चर्चित एवं विकसित रही हैं । किस्सागोई से लेकर प्रेमचंद और प्रसाद काल से होकर आजतक कहानी अपनी व्यापकता और युगीन संदर्भो से जुड़ने में अग्रणी रही है ।

हिन्दी कहानी में प्रेमचंद का आविर्भाव एक प्रमुख घटना है । प्रेमचंदयुग में कहानी जीवन के यथार्थ से जुड़ने लगी थी, परंतु प्रेमचंदोत्तर युग में कहानी की विविधता और व्यापकता प्रसारित हुई । प्रेमचंदोत्तर युग की कहानियाँ विभिन्न युगीन संदर्भो को गहराई से छूने में सक्षम हुई हैं । साथ ही प्रेमचंदोत्तर युग में कहानी के कथ्य और शिल्प में जो बदलाव आया उसके प्रमुख सूत्रधारों में जैनेन्द्र, अज्ञेय, यशपाल, रेणु आदि का नाम लिया जाता है । कहानी को सभी प्रकार के आवरणों से मुक्त कर एक नया स्वरूप प्रदान करने में मोहन राकेश, कमलेश्वर, राजेन्द्र यादव आदि ने प्रमुख भूमिका निभाई । इन कहानीकारों की कहानियाँ युगीन जीवन की चेतना को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करने में सक्षम है ।

मोहन राकेश स्वातंत्र्योत्तर बदलती पीढ़ी और परिवेश के लेखक हैं । स्वातंत्र्योत्तर बदलते भारतीय समाज का यथार्थ चित्रण राकेशजी की कहानियों में है । मनुष्य की टूटती बिखरती आशाओं और बदलते मानवमूल्य के साथ व्यक्ति की वैयक्तिक, सामाजिक और आर्थिक स्थितियों का स्वर राकेशजी की कहानियों में स्पष्ट सुनाई देता है । स्वतंत्रता के बाद का मध्यवर्ग राकेशजी की कहानियों का केन्द्र है ।

नये कहानीकारों में राकेशजी का महत्त्वपूर्ण स्थान है । उन्होंने कहानी को नयी दिशा की ओर मोड़ा है । राकेशजी ने तत्कालीन परिवेश में स्वयं जी कर उसी के दर्द और अकुलाहट का स्वर कहानी में भरा है । यही कारण है कि राकेशजी हिन्दी कहानी को यथार्थ जीवन के निकट ला खड़ा कर सके । नयी कहानी के सन्दर्भ में राकेशजी कहते है – ‘‘मेरे लिए नयी कहानी की दृष्टि अपने संदर्भो में रहकर उनके अन्दर से अपने परिवेश को आँकने की दृष्टि है, जो हर बार, नये प्रयोग में यथार्थ को उसकी सजीवता में व्यक्त करने की एक नयी कोशिश करती है । जहाँ कोशिश नहीं, केवल दोहराव है, वहाँ कहानी हो सकती है नयी कहानी नहीं ।’’[1]

राकेशजी ने अपने साहित्यकार के दायित्व को निभाते हुए अपनी कहानियों में तत्कालीन युग की सच्चाई और अपने अनुभूत सत्यों को अभिव्यक्ति दी है । राकेशजी के विचार है – ‘‘प्रतिबद्धता की बात मैं अपने या अपनी कला के संदर्भ में न सोचकर जीवन और उसके यथार्थ के संबंध में ही सोचता हूँ । मैं अपनी कला से प्रतिबद्ध हूँ । जीवन से हटकर अपने अकेलेपन में प्रतिबद्धता मेरे लिए कोई अर्थ नहीं रखती ।’’[2]

इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि राकेशजी का संपूण साहित्य परिवेशीय यथार्थ पर आधारित है और इस दृष्टि से तत्कालीन युग–चेतना राकेशजी के साहित्य में सहज ही समन्वित हो गयी है ।

अपनी इस अनुसंधान यात्रा के अंतिम पड़ाव पर पहुँचते हुए मैंने, राकेशजी की कहानियों में अभिव्यक्ति युग–चेतना जो यथा समय ग्रंथ में प्रस्तुत है, उन्हें सार रूप में यहाँ प्रस्तुत कर रही हूँ ।

राकेशजी की कहानियों में युग–चेतना विविध स्तरों पर रेखांकित हुई है । राकेशजी ने जीवन के नये संदर्भो की तलाश वैयक्तिक आधार पर की है । अकेलापन, अजनबीपन, तनाव, टूटन, उब, निराशा, संत्रास, निर्णय अनिर्णय की स्थिति आदि झेलते व्यक्तियों का चित्रण राकेशजी ने युगीन संदर्भो के साथ किया हैं । ‘मिस पाल’, ‘सुहागिनें’, ‘अपरिचित’, ‘चौगान’, ‘एक और

ज़िन्दगी', 'खाली', 'मिस्टर भाटिया', 'उर्मिल जीवन', 'मरुस्थल' आदि कहानियों में यह स्थितियाँ अधिक तीव्रता से उभरकर सामने आयी हैं ।

'मिस पाल' कहानी में एक भद्दी मोटी स्त्री के मनोव्यााार का अंकन है । जो अपने अकेलेपन को झेल रही है, जी रही है और समाज जिसे उलाहने और उपेक्षा से देखता ही नहीं बल्कि उसका मज़ाक बनाता है । इस अकेलेपन से कैसे और किस तरह जूझा जा सकता है ? इस बड़े सवाल को इस कहानी में संवेदना के साथ उठाया गया है । 'सुहागिनें' मनोरमा की अव्यक्त यातना की कहानी है । 'फौलाद का आकाश', 'चौगान', 'धुंधला दीप', 'लक्ष्यहीन' आदि कहानियों में भी अकेलेपन की स्थिति को अलग–अलग संदर्भो में अभिव्यक्ति मिली हैं ।

व्यक्तित्व की टकराहट से उत्पन्न स्थितियों को राकेशजी ने अपनी कहानियों में स्वर दिया हैं । 'ग्लास टैंक' की मम्मा का व्यक्तित्व देखे तो वे चुप रहते हुए भी मन ही मन इस टकराव का अनुभव करती है । 'एक और ज़िन्दगी' के प्रकाश और बीना में व्यक्तित्व का टकराव इतना बढ़ गया है कि जिसमें उसका बेटा पलाश झुलस रहा है । व्यक्तित्व की यह टकराहट तलाक की हद तक पहुँच जाती है । व्यक्तित्व की टकराहट से उत्पन्न भीतरी टूटन, अजनबीपन, व्यर्थताबोध को राकेशजी ने अपनी कहानियों के चरित्रों के माध्यम से विविध संदर्भ में प्रस्तुत किया है ।

निर्णय–अर्निणय के दर्द की स्थिति मनुष्य के जीवन का अपरिहार्य अंश बन गया है । निर्णय पूर्व की अनेक उलझनों, घटनाओं और फिर भी अनिर्णय की बनती स्थिति को राकेशजी ने यथार्थ स्वर दिया है । 'गुंझल' कहानी के चंदन और कुन्तल, 'एक और ज़िन्दगी' के प्रकाश और बीना, 'आर्द्रा की माँ बचन, 'फौलाद का आकाश' की मीरा, 'उर्मिल जीवन' की नीरा, 'गुनाह बेलज्जत' का सुन्दर सिंह सभी निर्णय अर्निणय की स्थिति से दुविधाग्रस्त हैं । जीवन की एकरसता से उत्पन्न उब को राकेशजी ने 'खाली' कहानी में रेखांकित किया है । उब का प्रमुख कारण है आज का यांत्रिक जीवन । जहाँ उत्साह, प्रेम, संवेदना समाप्त हो चुकी है । फलतः जीवन में एकरसता और

निष्क्रियता से उब अधिक फैली नज़र आती है । प्रस्तुत कहानी की नायिका तोषी आठ सालों से 'लगातार' चल रही ज़िन्दगी से उब चुकी है । फलतः उसके जीवन में से संबंधों की गर्मी रीत गयी है और ऊब तथा खालीपन जीवन का पर्याय बन गया है । जीवन की एकरसता और यांत्रिकता से उत्पन्न उब की प्रस्तुत करनेवाली यह कहानी अपने आप में अनूठी है ।

'मिस पाल', 'सीमाएँ', 'पहचान', 'गुनाह बेलज्जत' जैसी कहानियों में कुरूपता और शारीरिक मर्यादा के कारण उपेक्षित जीवन जी रहे व्यक्तियों की हताशा, निराशा, उदासी, एकाकीपन, अजनबीपन और उसकी उपेक्षापूर्ण स्थिति का वर्णन किया गया है । 'मिस्टर भाटिया' में अनायास आर्थिक स्थिति को सुधारने की मध्यवर्गीय मानसिकता का चित्रण हुआ है । 'फटा हुआ जूता' का राय मध्यवर्गीय जीवन की उस महत्त्वकांक्षा का प्रतिनिधित्व करता है जो अपनी सीमित मुट्ठी में आधुनिक जीवन के वैभव के आकाश को समेटना चाहता है, परंतु उसे शून्य के अतिरिक्त कुछ नहीं मिलता ।

'एक ठहरा हुआ चाकू' कहानी में शहेरी जीवन के दारुण संत्रास की सशक्त अभिव्यक्ति हुई है । यह कहानी स्वयं राकेशजी के अपने जीवन में घटित एक भयावह घटना पर आधारित होने के कारण अधिक महत्त्वपूर्ण है । आज असुरक्षा का भाव व्यक्ति को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्तर पर ही नहीं, बल्कि वैयक्तिक स्तर पर भी झकझोर रहा है और इसने व्यक्ति के नैतिक अस्तित्व तक को असंदिग्ध बना डाला है । जीवन के संत्रास को अभिव्यक्त करने वाली यह राकेशजी की महत्त्वपूर्ण कहानी है ।

समसामयिक जीवन में महानगरों की सीमाएँ विस्तार पा रही है । पर उनमें रहने वाले लोगों के दिल संकीर्ण हो रहे है । यह विभेद राकेशजी की कहानियों में यथार्थरूप से रेखांकित हुआ है । 'एक और ज़िन्दगी', 'गुंझल', 'पहचान', 'चौगान' कहानियों के पात्रों के दाम्पत्य जीवन बिखर चुके है । 'फौलाद का आकाश', 'आखिरी सामान', 'सुहागिनें', 'क्वार्टर' कहानियों के पति–पत्नी के बीच साथ रहते हुए भी दूराव बढ़ता जा रहा है । पति–पत्नी के बनते–बिगड़ते दाम्पत्य संबंधों को मानव मन की तरलता के साथ सहज

शैली में अभिव्यक्त कर देना राकेशजी की कहानियों की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है ।

'सुहागिनें' राकेशजी की बहुचर्चित कहानियों में से एक है । इस कहानी में यंत्रणापूर्ण मनःस्थितियों से गुजरने वाली दो नारियों की समानान्तर कथा है । 'फौलाद का आकाश' महत्त्वकांक्षी पति रवि की पत्नी मीरा की पति के व्यवहार से उत्पन्न घुटन और आधुनिक जीवन में पुरुष की मानसिक क्रूरता का परिचय देती है । यह कहानी एक पति द्वारा पत्नी की भावना की क्रमिक हत्या की कहानी है । 'आखिरी सामान' पति की महत्त्वकांक्षा की मानसिक उत्पीड़न भोग रही पत्नी की कहानी है ।

राकेशजी की प्रकाशित छयासठ कहानियों में से लगभग बीस कहानियाँ दाम्पत्य संबंधों पर लिखी गयी हैं । दाम्पत्य संबंधों में जो विकृतियाँ आयी है और जिसकी अभिव्यक्ति राकेशजी ने की है, उनके फलस्वरूप विवाह संस्था की उपादेयता पर संदेह होने लगता है । कारण कुछ भी हो दाम्पत्य संबंधो की यह दुर्दशा समाज के लिए सुखद नहीं लगती । तनावग्रस्त परिवार, औपचारिकता और कृत्रिमता की दलदल में फँसकर निरंतर ठंडे पड़ते भावनात्मक संबंधों के मिट जाने की मूक साक्षी राकेशजी की कहानियाँ बनी हुई हैं ।

संक्षेप में, राकेशजी की कहानियों का कथ्य हमारे जीवन का कटु यथार्थ सत्य है जो दाम्पत्य संबंधों के सदैव बिखरने एवं टूटने का गवाह है ।

बदलते परिवेश में मानवीय संबंधों की मधुरता, पवित्रतता एवं रागात्मकता आदि को आपसी मनमुटाव, तनाव, कुंठा आदि त्रासद स्थितियों में बदल दिया है । पारिवारिक संबंधों का रक्तीय आधार समाप्त हो गया हैं । संबंध आत्मीय न होकर औपचारिक मात्र रह गये है । संबंधों में आये इस अमूल परिवर्तन को राकेशजी ने अपनी लेखनी द्वारा अभिव्यक्ति दी है । पारिवारिक विघटन के कारण 'आर्द्रा कहानी की 'माँ बचन दो बेटों में बार–बार बाँटी जाती है । बड़े बेटे लाली और छोटे बेटे बिन्नी की ज़िन्दगी की दूरियों से जूझती माँ के मन का चित्र राकेशजी ने संवेदना के साथ खिंचा है । 'क्वार्टर', 'चौगान',

'पहचान', 'मरुस्थल' आदि जैसी कहानियाँ भी पारिवारिक विघटन को सशक्तताा के साथ रेखांकित करती है ।

राकेशजी की कहानियों में जहाँ दाम्पत्य संबंधों की विडंबनाओं और पारिवारिक विघटन की स्थितियाँ यथार्थ के साथ अभिव्यक्त हुई है, वहीं बाल मनःस्थितियों का चित्रण भी संपूर्ण गंभीरता और शालीनता लिए हुए हैं । बच्चों और बड़ो के बीच आधुनिक समाज में बढ़ती खाई को पाटने का प्रयत्न स्थिति के यथार्थ चित्रण के माध्यम से किया गया है ।

रिश्तों के टूटने के क्रम में केवल पारिवारिक जीवन में ही नहीं, बल्कि सामाजिक जीवन में भी अमानवीयता की स्थिति पनपती है । 'नये बादल' में एक–दूसरे से अपरिचित महानगरीय जीवन की स्थिति पनपती है । 'बस स्टैन्ड की एक रात' में समाप्त होती मानवीयता का चित्रण हुआ है । 'एक पंखयुक्त ट्रेजडी' आधुनिक जीवन में आये संप्रेषण के अभाव को दर्शाती है ।

भारत विभाजन को आधार बनाकर लिखी गयी कहानियों में राकेशजी ने पूरी सहृदयता के साथ मानवीय संबंधों में आये परिवर्तन को चित्रित किया है । 'क्लेम', 'परमात्मा का कुत्ता', 'कटी हुई पतंगे', 'कम्बल', 'मलबे का मालिक' आदि कहानियाँ विभाजन के बाद की स्थिति को उद्‌घाटित करती है । बदली स्थितियों में परिवर्तन हो रहे मानवीय संबंधों को विश्लेषित करने का भगीरथ प्रयास इन कहानियों में उन्होंने किया हैं । राकेशजी की अंतर्दृष्टि, गहन आत्मीयता, भावुकता एवं संबंध स्थापित करने की क्षमता ने मानवीय संबंधों के विवेचन, विश्लेषण को सुंदर कहानियों के सांचे में ढाल देती है ।

आज के जीवन में अर्थ के बढ़ते प्रभाव के जीवन के सभी पहलुओं को प्रभावित किया है । समूचा विश्व जहाँ एक व्यापार–स्थल में परिवर्तित होता जा रहा है, हर वस्तु, स्थितियाँ, भावनाएँ आदि बिकाऊ बनती जा रही हैं, वहाँ अर्थ के प्रभाव के कारण पारिवारिक, सामाजिक और व्यक्तिगत जीवन अस्त–व्यस्त हो गया है । भावनाएँ और मानवीय मूल्य अर्थ के सामने फिके पड़ गये है । राकेशजी की कहानियाँ आर्थिक संकट के कारण विघटित जीवन के विविध आयाम उजागर करती हैं । 'आर्द्र', 'मरुस्थल', 'अपरिचित', 'खाली'

'एक घटना', 'क्वार्टर', 'जानवर और जानवर', 'मिस्टर भाटिया', 'उसकी रोटी', 'मलबे का मालिक', 'मिट्टी के रंग', 'फटा हुआ जूता' आदि अनेक कहानियाँ जीवन के विघटन के लिए आधुनिक परिवेश में अर्थ के दबदबे को एक मुख्य कारण घोषित करती है ।

आर्थिक दबाव से नैतिक और चारित्रिक मूल्यों को भी व्यक्ति अस्वीकार करता जा रहा है । अनैतिकता और चारित्रिक अवमूल्यन आधुनिक अर्थ–केन्द्रित समाज की नियति है । नारी के संदर्भ में यह बात अधिक मुखरित है । 'जानवर और जानवर', 'सोया हुआ शहर', 'रोजगार', 'हक हलाल', 'मरुस्थल', 'वासना की छाया में', 'सुहागिनें', 'गुनाह बेलज्जत' आदि कहानियों में राकेशजी ने आर्थिक विपन्नता से टूट रहे सामाजिक संबंधों को रेखांकित किया हैं ।

तत्कालीन राजीनीतिक व्यवस्था पर भी राकेशजी की दृष्टि गयी है । यद्यपि इसका चित्रण कम फलक पर हुआ है, किन्तु फिर भी राकेशजी की पैनी दृष्टि जहाँ–जहाँ गयी है वहाँ–वहाँ उन्होंने सरकारी तंत्र की बखियाँ उघेड़ कर रख दी है । 'परमात्मा का कुत्ता', 'क्लेम' जैसी कहानियों में तत्कालीन भ्रष्टाचार और उससे उत्पन्न अमानवीयता को सशक्त अभिव्यति दी है । घूस खोरी और अन्याय से ग्रस्त वातावरण में उपेक्षित आम आदमी की समस्याओं को यहाँ स्पष्ट किया गया है । 'हवामुर्ग' कहानी तत्कालीन राजनीतिक व्यवस्था पर करारा व्यंग्य है । वर्तमान राजनीति की असंगतियों से उत्पन्न स्थिति से सार्वजनिक रूप से खत्म हो रही व्यक्ति की सुरक्षा पर भी राकेशजी ने अपनी कहानी 'एक ठहरा हुआ चाकू' के माध्यम से प्रश्नार्थ चिन्ह छोड़ा है ।

तत्कालीन युग चेतना से जुड़े विविध संदर्भो को प्रस्तुत करनेवाली राकेशजी की कहानियाँ मेरी दृष्टि से हिन्दी साहित्य की शीर्ष उपलब्धि हैं ।

रचना जीवन और युग का शाब्दिक प्रतिबिंब है । किसी भी रचना की लोकप्रियता के पीछे यही तत्त्व निहित है । कोई भी रचना रचनाकार की आंतरिक विश्लेषणात्मक दृष्टि का परिणाम होती है, जिसे वह स्वयं के तथा सामाजिक मूल्यों के संघर्ष में से प्राप्त करता है । इस दृष्टि से राकेशजी की

कहानियाँ ‘अनुभूति की सच्चाई’ का अंकन हैं । उन्होंने तत्कालीन युग–चेतना से प्रभावित होकर व्यक्ति, समाज और उससे संबंधित विविध पहलुओं को परखने की ईमानदार कोशिश की हैं । व्यक्ति के अधूरेपन की पहचान और जीवन की सार्थकता–निरर्थकता की खोज राकेशजी ने अपनी कहानियों में स्वदृष्टि से की हैं । उनकी इसी दृष्टि ने हिन्दी कहानी को एक नया आयाम प्रदान किया है । यह राकेशजी की कहानियों की अन्यतम उपलब्धि हैं । कृति के मूल्यांकन में राकेशजी की इसी विशेषता की ओर मेरी दृष्टि रही है । जिससे राकेशजी की कहानियों की सीमाओं से अवगत होते हुए भी मुझे उनकी कहानियों में अभिव्यक्त युग–चेतना महत्त्वपूर्ण लगी है । कहानीकार मोहन राकेश की कहानियों को युगीन आधार देकर एक सचेतन पाठक की दृष्टि से ही प्रस्तुत संशोधन में मैंने इसका विश्लेषण प्रस्तुत किया है । यही प्रस्तुत संशोधन की उपलब्धि और सीमा दोनों हैं ।

संदर्भ सूची :

१	'परिवेश', मोहन राकेश , पृ. २०३
२	साहित्यिक और सांस्कृतिक दृष्टि, मोहन राकेश, पृ. ७३

⁂

परिशिष्ट

१. आधार ग्रंथ
२. सहायक ग्रंथ

परिशिष्ट – १

आधार ग्रंथ–सूची

मोहन राकेश की प्रकाशित कृतियाँ

❀ *मौलिक रचनाएँ*

१. अण्डे के छिलके अन्य एकांकी तथा बीज नाटक, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण – सन् १९८३

२. अंधेरे बन्द कमरे, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण १९८४

३. अन्तराल, राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली, संस्करण – १८७३

४. आखिरी चट्टान तक, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण १९६५

५. आधे–अधूरे, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण सन् १९८४

६. अषाढ़ का एक दिन, राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट दिल्ली, संस्करण सन् १९८४

७. एक और जिन्दगी, राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली, संस्करण सन् १९७०

८. एक एक दुनिया, राधाकृष्ण प्रकाशन, अंसारी रोड, दिल्ली, संस्करण सन् १९६९

९. नये बादल, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी

१०. न आने वाला कल, राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली, संस्करण सन् १९८४

११. पाँच पर्दे – संपादक : मोहन राकेश, राधाकृष्ण प्रकाशन, अंसारी रोड, दिल्ली

१२. पैरों तले की जमीन, राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली, संस्करण सन् १९७२

१३. परिवेश, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम संस्करण – १९६७

१४. बकलम खुद, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, संस्करण – १९७४

१५. मेरी प्रिय कहानियाँ, राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली, संस्करण सन् १९८८

१६. मोहन राकेश की सम्पूर्ण कहानियाँ, राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली, संस्करण सन् १९९४

१७. मोहन राकेश की डायरी, राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली, संस्करण सन् १९९४

१८. मिले–जुले चेहरे, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण सन् १९६९

१९. मोहन राकेश – साहित्यिक और सांस्कृतिक दृष्टि, राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण – १९७५

२०. रात बीतने तक तथा अन्य ध्वनि नाटक

२१. लहरों के राजहंस, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण – २००३

२२. समय सारथी, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण – सन् १९९१

२३. आईने के सामने, अक्षर प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण १९९५

❀ *अनूदित रचनाएँ*

१. एक औरत का चेहरा – अनुवाद : मोहन राकेश

२. मृच्छकटिक – अनुवाद : मोहन राकेश

३. शाकुन्तल – अनुवाद : मोहन राकेश

परिशिष्ट – २
सहायक ग्रन्थ सूची

१. आधुनिक हिन्दी कहानी, लक्ष्मीनारायण लाल, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर, हीराबाग बम्बई, संस्करण सन् १९६२
२. आधुनिकता के पहलू, विपिन कुमार अग्रवाल, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण, सन् १९७२
३. आधुनिकता बोध और आधुनिकीकरण, रमेश कुन्तल मेध, अक्षर प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण, सन् १९७३
४. आधुनिकता बोध और समकालीन रचना संदर्भ, नरेन्द्र मोहन, आदर्श साहित्य प्रकाशन दिल्ली, संस्करण, सन् १९७३
५. आज का हिन्दी साहित्य : संवेदना और दृष्टि, रामकुमार मिश्र, अभिनव प्रकाशन दिल्ली, संस्करण, सन् १९७२
६. आधुनिक कहानी का परिपार्श्व, लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण, सन् १९६०
७. आधुनिक हिन्दी साहित्य, सच्चिदानन्द हिरानन्द वात्सयायन, राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट दिल्ली
८. आधुनिक परिवेश और नव लेखन, शिवप्रसाद सिंह, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, संस्करण – १९७०
९. आधुनिकता और मोहन राकेश, डॉ. उर्मिला मिश्र, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी
१०. आधुनिक नाटक का मसीहा मोहन राकेश, गोविन्द चातक, इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन दिल्ली, संस्करण – १९७५
११. आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ, नामवर सिंह, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, संस्करण – १९८३
१२. आधुनिक हिन्दी साहित्य, डॉ. लक्ष्मीनारायण वाजपेयी, भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण – १९७१
१३. आधुनिक खण्ड काव्यों में युग–चेतना, डॉ. एन.डी. पाटील, अतुल प्रकाशन, कानपुर, संस्करण – १९९६

१४. उपन्यास का समाजशास्त्र – बी. डी. गुप्ता, श्री पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, संस्करण १६७६.

१५. कहानी के ईद गिर्द, उपेन्द्रनाथ अश्क, वाणी विहार वाराणसी, संस्करण – सन् १६७१

१६. कुछ विचार, प्रेमचन्द, सरस्वती प्रेस बनारस, संस्करण – सन् १६७५

१७. कहानी नयी कहानी, डॉ. नामवर सिंह, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, संस्करण – सन् १६७३

१८. कहानी एवं संवेदना, राजेन्द्र यादव, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली, संस्करण – १६६८

१६. कहानी का रचना विधान, जगन्नाथ प्रसाद शर्मा, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी

२०. कहानी की बात, मार्कण्डेय, भारतीय ग्रन्थ निकेतन, दिल्ली

२१. कहानी : अनुभव और अभिव्यक्ति, राजेन्द्र यादव, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली

२२. कहानी नयी कहानी, रघुवीर सिंह, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण सन् १६५२

२३. कहानी नयी कहानी तक – कथा यात्रा, राजेन्द्र यादव, अक्षर प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण – सन् १६६७

२४. कहानी और कहानी, सं. डॉ. इन्द्रनाथ मदान, रामचन्द्र एण्ड कम्पनी, दिल्ली, संस्करण – सन् १६७०

२५. चन्द सतरें और, अनीता राकेश, राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली, संस्करण – सन् १६६३

२६. चिंतामणी (पहला भाग) – आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, इंडियन प्रेस, इलाहाबाद, संस्करण – १६८०

२७. छायावादी काव्य में राष्ट्रीय – सांस्कृतिक चेतना, रवीन्द्रनाथ दरगन, वाणी प्रकाशन, कमलानगर, दिल्ली, संस्करण – १६७३

२८. द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास, लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली, संस्करण – १६८२

२६. नयी कहानी की भूमिका, कमलेश्वर, अक्षर प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण – सन् १६६६

३०. नयी समीक्षा नये संदर्भ, डॉ. नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, संस्करण – सन् १६७४

३१. नयी कहानी : संदर्भ और प्रकृति, मार्कण्डेय, अक्षर प्रकाशन दिल्ली, संस्करण – सन् १६६६

३२. नयी कहानी : संदर्भ और प्रकृति, सं. देवीशंकर अवस्थी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण – १६७२

३३. नयी कहानी में वैयक्तिक चेतना, डॉ. कु. प्रेमपाल, पराग प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण – १६८४

३४. प्रसाद साहित्य में युग–चेतना, डॉ. लीलावतीदेवी गुप्ता, चन्द्रलोक प्रकाशन, कानपुर – १२, संस्करण – सन् १६६४

३५. भारतीय काव्यशास्त्र के सिद्धांत, डॉ. सुरेश अग्रवाल, अशोक प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण – सन् १६८७

३६. भगवतीचरण वर्मा के उपन्यास में युग–चेतना, डॉ. जवाहर लाल सिंह, कला प्रकाशन, वाराणसी, संस्करण – सन् २०००

३७. भगवतीचरण वर्मा के उपन्यासों में युग–चेतना – डॉ. बैजनाथ प्रसाद शुक्ल, प्रेम प्रकाशन मंदिर, दिल्ली–६, प्रथम संस्करण – १६७७.

३७. मेरा हमदम मेरा दोस्त, कमलेश्वर, किताबघर, नयी दिल्ली, संस्करण – १६६७

३६. मोहन राकेश का साहित्य : पारिवारिक सम्बन्धों के विघटन की स्थितियाँ, डॉ. सुनीता श्रीमाल, भारतीय ग्रन्थ निकेतन, नयी दिल्ली

४०. मोहन राकेश का साहित्य : समग्र मूल्यांकन, डॉ. शरेशचन्द्र चुलकीमठ, आर्य प्रकाशन मण्डल, दिल्ली, संस्करण – सन् १६८६

४१. मोहन राकेश और उनके नाटक, गिरीश रस्तोगी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण – २००२

४२. मोहन राकेश की कहानियों में आधुनिक बोध, डॉ. सदन कुमार पाल, भावना प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण – सन् २०००

४३. मोहन राकेश : व्यक्तित्व और कृतित्व, सुष्मा अग्रवाल, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, संस्करण – सन् १६८६
४४. मोहन राकेश और उनका साहित्य, डॉ. कविता शनवारे, विकास प्रकाशन, कानपुर, संस्करण – सन् १६६६
४५. मोहन राकेश का नाट्य साहित्य, डॉ. पुष्पा बंसल, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, संस्करण – सन् १६७४
४६. मोहन राकेश की कहानी यात्रा, डॉ. गोरधन सिंह, चिन्मय प्रकाशन, जयपुर, संस्करण – सन् १६७२
४७. मोहन राकेश का कथा साहित्य – डॉ. सुजाता चतुर्वेदी, श्याम प्रकाशन, जयपुर, प्रथम संस्करण – १६६८
४८. मोहन राकेश रंग शिल्प और प्रदर्शन, डॉ. जयदेव तनेजा, राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण – सन् १६६६
४६. रांगेय राघव के उपन्यासों में युग चेतना – डॉ. प्रभुलाल डी. वैश्य, तारामण्डल प्र. प्रा. लि., विकास कोलोनी, अलीगढ
५०. विविध बोध नये हस्ताक्षर, हुकुमचन्द राजपाल, स्मृति प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण – सन् १६७६
५१. विवेक के रंग, मार्कण्डेय, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, संस्करण – सन् १६८०
५२. साहित्य का उदेश्य, प्रेमचंद, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण – सन् १६५४
५३. साहित्य सहचर – हजारीप्रसाद द्विवेदी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
५४. साहित्य स्थायी मूल्य और मूल्यांकन – डॉ. रामविलास शर्मा, अक्षर प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण – १६६८.
५५. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी का विकास, डॉ. सुबेदार राय, अनुभव प्रकाशन, कानपुर, संस्करण – सन् १६८१
५६. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी : सामाजिक परिवर्तन, डॉ. भैरुलाल गर्ग, चित्रलेखा प्रकाशन इलाहाबाद
५७. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी : कथ्य और शिल्प, डॉ. शिवशंकर पाण्डेय, आलेख प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण – १६७८

५८. समकालीन कहानी की पहचान, नरेन्द्र मोहन, प्रवीण प्रकाशन, दिल्ली
५९. साठोतरी हिन्दी कहानी : मूल्यों की तलाश, डॉ. वासुदेव शर्मा, शारदा प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण – १९८६
६०. साहित्य और साहित्यकार का दायित्व, विजयदेव नारायण साही, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, संस्करण – सन् १९८३
६१. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी, कृष्णा अग्निहोत्री, इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण – सन् १९८३
६२. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक : मोहन राकेश के विशेष संदर्भ में, रीता कुमार, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली
६३. साहित्य निबंध प्रदीप, शिवदत शर्मा, सरोजिनी शर्मा, साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण – १९९१
६४. शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धांत (प्रथम भाग), डॉ. गोविन्द त्रिगुणायन, भारतीय साहित्य मन्दिर, दिल्ली, संस्करण – सन् १९९२
६५. श्रृंखला की कडियाँ – महादेवी वर्मा, सप्तम संस्करण, इलाहाबाद.
६६. हिन्दी कहानी पहचान और परख, इन्द्रनाथ मदान, लिपि प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण – सन् १९५१
६७. हिन्दी कहानी और कहानीकार, प्रो. वासुदेव, वाणी विहार, वाराणसी, संस्करण सन् १९८६
६८. हिन्दी कहानी का मूल्यांकन, क्रान्ता (अरोडा) मेंहदीरता, राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण – सन् १९८४
६९. हिन्दी कहानी समाजशास्त्रीय अध्ययन, डॉ. रघुवीर सिन्हा, अक्षर प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण – सन् १९७७
७०. हिन्दी कथा साहित्य में भारत विभाजन, डॉ. हेमराज 'निर्मम', संजय प्रकाशन, दिल्ली, सन् १९८७
७१. हिन्दी कहानी में जीवन – मूल्य, रमेशचन्द्र लवानिया, अमित प्रकाशन, गाजियाबाद, उ.प्र.
७२. हिन्दी कहानी : प्रक्रिया और पाठ, सुरेन्द्र चौधरी, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण – १९९३

७३. हिन्दी कहानी : एक अंतर्यात्रा, डॉ. वेद प्रकाश अमिताभ, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, संस्करण – सन् १६६४
७४. हिन्दी के प्रतिनिधि कहानीकार, डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, संस्करण – सन् १६८५
७५. हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल, जयकिशन प्रसाद खण्डेलवाल, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा
७६. हिन्दी साहित्य : विधाएँ और दिशाएँ, प्रवीण प्रकाशन, महरोली, नयी दिल्ली, संस्करण १६८१.
७७. हिन्दी नवलेखन, रामस्वरूप चतुर्वेदी, भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी
७८. हिन्दी कहानी दो दशक की यात्रा, सं. रामदरश मिश्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली
७६. हिन्दी कहानी : एक अन्तरंग परिचय, उपेन्द्रनाथ अश्क, नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण – सन् १६६७
८०. हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल, नागिरी प्रचारिणी सभा काशी
८१. हिन्दी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास, राजनाथ शर्मा, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, संस्करण – सन् १६७८
८२. हिन्दी कहानी : उदभव और विकास, सुरेश सिन्हा, अशोक प्रकाशन दिल्ली

❀ *शब्द कोश :*

(१) बृहद हिन्दी कोश – सं. कालीका प्रसाद
(२) हिन्दी साहित्य कोश (भाग–१) – डॉ. धीरेन्द्र वर्मा
(३) हिन्दी विश्वकोश (भाग–४) – डॉ. रामप्रसाद त्रिपाठी
(४) प्रामाणिक हिन्दी कोश – आचार्य रामचन्द्र वर्मा

❀ *पत्र–पत्रिकाएँ :*

(१) नागरी प्रचारिणी पत्रिका – काशी
(२) भाषासेतु
(३) मधुमती
(४) संचेतना पत्रिका
(५) समकालीन भारतीय साहित्य
(६) समालोचना पत्रिका
(७) साहित्य अमृत
(८) सारिका, मार्च सन् १९७३ ई. (फोटो कोपी प्राप्त)
सारिका, अगस्त सन् १९७८ ई. (फोटो कोपी प्राप्त)
(९) नया साहित्य

❀❀❀